संस्कृत व्याकरण निकर

प्रो. उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि'

॥ श्री ॥

द्वारकादास इण्डिक सीरीज

२

卐

संस्कृत व्याकरण-निकर

लेखकः

प्रो. उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषिः'

राष्ट्रपतिसम्मानसम्मानितः

भूतपूर्वसंस्कृतविभागाध्यक्षः

पटना-विश्वविद्यालयः, पटना

सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्

चौखम्भा कलासिका

वाराणसी (भारतवर्ष)

संस्कृत व्याकरण-निकर

ISBN : 978-93-91730-01-7

पृष्ठ : १६ + ३६७

इस ग्रन्थ का प्रकाशनाधिकार प्रकाशक द्वारा सुरक्षित है। इस ग्रन्थ के किसी भी अंश का पुन: किसी माध्यम से तैयार होना, सुधार कर आदि किसी पद्धति से संप्रेषण प्रकाशक तथा कापीराइट धारक के पूर्व अनुमति बिना अवैधानिक होगा।

प्रकाशक

चौखम्भा क्लासिका

'गोकुल भवन', के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : 0542-2332637

मो. : +91-9718594839

e-mail : ichaukhambha@gmail.com

© चौखम्भा क्लासिका, वाराणसी

तृतीय संशोधित एवं परिष्कृत संस्करण : सन् २०२३

₹ 395/=

अन्य प्राप्ति स्थान

चौखम्भा भारती अकादमी

के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : 0542-2330349

चौखम्भा विश्वभारती

के. ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : 0542-2330345

चौखम्भा बुक्स

५, यू. ए., जवाहर नगर, (पोस्ट-आफिस के पीछे)

मलकागंज, दिल्ली-११०००७

मुद्रक : श्रीजी प्रिण्टर्स, नाटी इमली, वाराणसी

प्रस्तावना

संसार की भाषाओं में संस्कृत ही एक मात्र ऐसी भाषा है जिसका व्याकरण सर्वाङ्गपूर्ण है। भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि से लेकर पूर्ण अभिव्यक्ति के साधन वाक्य तक समस्त पक्ष व्याकरण की परिधि में निहित हैं। किन्तु मूल रूप से व्याकरण को पद का विज्ञान (Morphology) कहा गया है। वाक्य में व्यवहार के योग्य शब्दों को 'पद' कहा जाता है। वे सुबन्त, तिङन्त और अव्यय के रूप में होते हैं। व्याकरण इन सबके स्वरूप को विश्लेषण द्वारा समझाता है। व्याकरण का निर्वचन है–**व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेन इति व्याकरणम्** अर्थात् व्याकरण से शब्दों की व्युत्पत्ति (विश्लेषण) का ज्ञान होता है। वस्तुतः व्याकरण का लक्ष्य शब्दों का निर्माण नहीं, अपितु भाषा में प्रयुक्त शब्दों की व्याख्या करना है। इसीलिए प्राचीन काल में व्याकरण का दूसरा लक्ष्यपरक नाम था–**अन्वाख्यान** (अन्वाख्यानं व्याकरणम्)। 'अन्वाख्यान' में दो शब्द हैं–अनु तथा आख्यान। 'अनु' का अर्थ है बाद में, पीछे। आख्यान से कथन, विवेचन, विश्लेषण या व्याख्या का अर्थ निकलता है। तदनुसार जब कोई भाषा अपने साहित्य के साथ आ जाती है, प्रयुक्त होने लगती है। तब व्याकरण शिष्ट व्यक्तियों के प्रयोगों को समझाने में लग जाता है।[१] वह कतिपय नियम या सिद्धान्त बनाता है तथा उदाहरण के रूप में उन प्रयोगों को प्रस्तुत करता है। यह बात अवश्य है कि उक्त नियमों के क्रम में अनेकानेक हमारे अज्ञात शब्द उदाहरणस्वरूप मिलते जाते हैं जिन्हें हम व्याकरण की उत्पादकता कहते हैं और जिसे आज के पाश्चात्य विद्वान् 'उत्पादक व्याकरण' (Generative Grammar) नाम देते हैं।

फिर भी व्याकरण का मुख्य उद्देश्य 'पद की रचना' नहीं, 'रचना-प्रक्रिया की व्याख्या' (Structural Analysis) ही है। जिन पदों का प्रयोग संस्कृत के समर्थ विद्वानों ने (शिष्टजनों ने) किया उनपर व्युत्पादक दृष्टि डालना ही व्याकरण है। संस्कृत का भारतवर्ष में प्रयोग विगत चार हजार वर्षों से होता आ रहा है। आरम्भिक डेढ़ हजार वर्ष तो इसके वैदिक रूप का समय था जो क्रमशः लौकिक संस्कृत में ढलता जा रहा था। प्रायः ५०० ई.पू. में आविर्भूत आचार्य पाणिनि हों या उनसे कुछ पहले ७०० ई.पू. के आचार्य यास्क हों, दोनों ने संस्कृत के वैदिक और अपने युगों के भाषिक (लौकिक) रूपों की चर्चा की है। किसी भी

---

१. इस प्रसंग में पाणिनि के प्रसिद्ध भाष्यकार पतञ्जलि (१५० ई.पू.) की यह बात स्मरणीय है कि जिस प्रकार कोई व्यक्ति कुम्भकार से जाकर कहता है कि मुझे काम है कुछ घड़े बना दो; वैसे वैयाकरण से जाकर नहीं कहता कि मुझे प्रयोग करना है, मेरे लिए कुछ शब्द बना दीजिए। इस प्रकार व्याकरण शब्दों की रचना नहीं करता अपितु लोकप्रयुक्त या शिष्टजनों के वाक्यों में समागत शब्दों की व्याख्या करता है। यह बात अवश्य है कि ऐसी व्याख्या से आये हुए नियम लोक में चल पड़ते हैं, आदर्श बन जाते हैं।

स्थिति में वैयाकरणों के समक्ष पूर्व-प्रचलित भाषा का स्वरूप स्पष्ट था जिसके पदों की व्याख्या करणीय थी। संस्कृत का यह सौभाग्य था कि उसे पाणिनि जैसे महान् वैयाकरण उस युग में ही मिल गये जब विश्व में कहीं भी भाषा के ऐसे विश्लेषण की कल्पना नहीं थी। आज तक भी पाणिनि-जैसा कोई वैयाकरण किसी भी भाषा को नहीं मिल सका। फलस्वरूप संस्कृत भाषा की संरचना पाणिनीय पद्धति में ढलकर एक प्रकार से स्थिर हो गई। स्थिरता ने ही इसे 'अमरभाषा', 'देवभाषा', 'सुरवाणी', 'अमर भारती' जैसे नाम बाद में दिये। आरम्भ में तो इसे 'भाषा' ही कहते थे, 'संस्कृत' नाम तो तब मिला जब इसके समानान्तर प्राकृत आदि भाषाएँ प्रचलित हो गईं।

यह बात नहीं थी कि पाणिनि के बाद संस्कृत में परिवर्तन नहीं हुए। कुछ ही वर्षों के बाद पाणिनि के नियमों में कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन या संशोधन की आवश्यकता हो गई। कात्यायन (३५० ई.पू.) ने अपने वार्तिकों के द्वारा यह कार्य किया। सूत्रों में उक्त (प्रतिपादित), अनुक्त (नहीं कहा गया) या दुरुक्त (गलत कहा गया) का निरूपण 'वार्तिक' कहा जाता है (उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्ता वार्तिकम्)। कात्यायन ने अपने वार्तिकों में कहीं 'इतिवाच्यम्', कहीं 'उपसंख्यानम्' (यह भी जोड़ दें) इत्यादि वाक्यों से पाणिनीय सूत्रों का संशोधन किया। किन्तु पाणिनि के प्रति अनुपम श्रद्धा रखने वाले पतञ्जलि (१५० ई.पू.) ने वार्तिकों की छानबीन करके बहुत से वार्तिकों को अस्वीकार किया तथा पाणिनीय अष्टाध्यायी एवं वार्तिकों पर एक विशाल समीक्षा-ग्रन्थ अपने महाभाष्य के रूप में प्रस्तुत किया। व्याकरणशास्त्र इन तीन आचार्यों का ऋणी है। इन्हीं में पूरा संस्कृत व्याकरण समाविष्ट है (त्रिमुनि व्याकरणम्)। ये तीन मुनि हैं। 'पाणिनीय शिक्षा' नामक एक परवर्ती ग्रन्थ में कहा गया है—

वाक्यकारं वररुचिं भाष्यकारं पतञ्जलिम्।
पाणिनिं सूत्रकारं च प्रणतोऽस्मि मुनित्रयम्॥

कात्यायन को वररुचि भी कहा गया है। 'कथासरित्सागर' में इनका वर्णन है।

पाणिनि का व्याकरण-ग्रन्थ उस ढंग से नहीं लिखा गया है जैसे आजकल के व्याकरण होते हैं। आज के व्याकरण प्रकरण-पद्धति से लिखे जाते हैं, जैसे–वर्ण-प्रकरण, सन्धि-प्रकरण, सुबन्त, तिङन्त, समास, कृदन्त, तद्धित आदि। पाणिनि का व्याकरण शास्त्र-पद्धति से है जिसमें पृथक्-पृथक् कार्यों की दृष्टि से सूत्र प्रस्तुत हैं। इसे सामान्य-विशेष (या उत्सर्गापवाद) क्रम कहते हैं। जहाँ-जहाँ दीर्घ होना है या दीर्घ होने की स्थिति में भी नहीं होना है, ऐसे नियम (सूत्र) क्रम से सजाये गये हैं। पूरा व्याकरण जानना हो तो यह शास्त्रीय पद्धति सर्वाधिक उपयोगी है। पाणिनि का व्याकरण तदनुसार आठ अध्यायों में विभक्त है जिसे अष्टाध्यायी कहते हैं। प्रत्येक अध्याय चार-चार पादों में विभक्त है। उनमें सूत्र हैं। कुल सूत्र चार हजार से कुछ कम हैं। आज जब किसी सूत्र का स्थान निर्दिष्ट करते हैं तो तीन संख्याएँ

लिखते हैं–अध्याय-संख्या, पाद-संख्या और उसमें सूत्र की संख्या। जैसे–'इको यणचि' सूत्र के बाद ६.१.७७ दिया जाता है, अर्थात् यह षष्ठाध्याय के प्रथम पाद का ७७ वाँ सूत्र है। प्रस्तुत व्याकरण-ग्रन्थ में सूत्रों के उद्धरण के साथ कोष्ठकों में इसका प्रयोग हुआ है।

पाणिनि के सूत्र-ग्रन्थ (अष्टाध्यायी) एवं पतञ्जलि के महाभाष्य की अनेक व्याख्याएँ आगे चलकर हुईं। इतना ही नहीं, उनकी भी टीकाएँ हुईं जैसे–अष्टाध्यायी की व्याख्या 'काशिका' (लेखक–वामन और जयादित्य) हुई तो इस पर भी न्यास (लेखक–जिनेन्द्रबुद्धि) और पदमञ्जरी (लेखक–हरदत्त) नामक टीकाएँ विभिन्न कालों में लिखी गईं। महाभाष्य पर कैयट ने प्रदीप-टीका लिखी तो उस पर भी नागेश (१७०० ई.) ने उद्द्योत नामक व्याख्या लिखी। इन टीकाओं को समझने में शिक्षा की सीमा मानी जाने लगी तो व्याकरण एक साध्य बन गया, भाषा के विश्लेषण का शास्त्र हो गया। इतनी प्रौढता कहीं नहीं मिल सकती।

अष्टाध्यायी की परम्परा से संस्कृत व्याकरण का अनुशीलन भारतवर्ष में व्यापक रूप से हो रहा था किन्तु विविध शास्त्रों के उदय के साथ व्याकरण को जब कुछ विद्वान् केवल एक साधनमात्र (भाषा सीखने का तरीका) की श्रेणी में रखने का विचार करने लगे तब दूसरे व्याकरण-सम्प्रदायों का उद्भव हुआ जिनमें व्याकरण की गहराई में न जाकर झटपट संस्कृत-भाषा सीख लेने की पद्धति पर बल दिया जाने लगा। छात्रों को कम समय में साधारण संस्कृत सिखाकर ज्योतिष, आयुर्वेद, दर्शन आदि का कामचलाऊ ज्ञान देना जब अध्ययन का उद्देश्य हो गया तब व्याकरण के अन्य सम्प्रदायों का आगमन शिक्षा-क्षेत्र में होने लगा। इसी क्रम क्रम में कालाप व्याकरण (१०० ई.), चान्द्र व्याकरण (४०० ई.), जैनेन्द्र व्याकरण (४५० ई.), जैनशाकटायन (८५० ई.), सरस्वतीकण्ठाभरण (१०५० ई.), हैयव्याकरण (११५० ई.), संक्षिप्तसार (१३०० ई.), सारस्वत व्याकरण (१३०० ई.), मुग्धबोध (१३०० ई.) इत्यादि विभिन्न व्याकरण-प्रस्थानों के ग्रन्थ भारत के विविध क्षेत्रों में रचे गये और उनका पर्याप्त प्रचार-प्रसार भी हुआ।

फिर भी पाण्डित्य का विषय पाणिनीय व्याकरण ही था। ऐसी स्थिति में इस व्याकरण-तन्त्र में भी मूल सूत्रों को प्रकरण-क्रम से सजाकर छोटे-बड़े व्याकरण-ग्रन्थ लिखे गये। यद्यपि यह क्रम १२वीं-१३वीं शताब्दी ई. से चल पड़ा था किन्तु आरम्भिक ग्रन्थ बहुत लोकप्रिय नहीं हुए। सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी ई. के दो ग्रन्थ बहुत लोकप्रिय हो गये जिनका वर्चस्व आज भी व्याकरण-शिक्षा में है। वे हैं–वरदराज की लघु-सिद्धान्तकौमुदी तथा भट्टोजिदीक्षित की वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी। ये दोनों प्रक्रिया-ग्रन्थ हैं जिनके कुछ प्रकरण व्याकरण-शिक्षा के पाठ्यक्रमों में रखे जाते हैं यद्यपि प्राचीन शिक्षा-पद्धति के विद्यालयों में तथा कुछ विश्वविद्यालयों में इनका आद्यन्त अध्ययन कराया जाता है। पिछले ग्रन्थ (वैयाकरण सिद्धान्तकौमुदी) में पाणिनि के सभी सूत्र प्रकरण-पद्धति से पुनर्व्यवस्थित (Re-arranged) हैं जबकि दूसरे ग्रन्थ में कुल १३६१ सूत्रों का ही प्रयोग हुआ है किन्तु सुबन्त-तिङन्त पदों

की रचना-प्रक्रिया का बोध कराने में यह ग्रन्थ बहुत सफल रहा है। आधुनिक व्याकरण-ग्रन्थों में जो सुबन्त-तिङन्त की रूपावली दी जाती है उसकी रचना सूत्रों से यह ग्रन्थ सिखला देता है।

१९ वीं शताब्दी ई. में पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति के व्यापक प्रचार-प्रसार का प्रभाव संस्कृत पर भी पड़ना आवश्यक था। आधुनिक ढंग के संस्कृत व्याकरण, प्रायः प्रक्रिया-पद्धति का अनुसरण करते हुए, इंग्लैण्ड तथा अमेरिका के संस्कृत विद्वानों ने लिखे जिनमें मोनियर विलियम्स, कीलहॉर्न, ह्विटने तथा मैकडोनल के व्याकरण ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। इन्होंने मुख्यतः पश्चिमी छात्रों के अध्ययन के लिये ये व्याकरण लिखे थे किन्तु नयी शिक्षा पाने वाले भारतीय छात्रों का अध्ययन भी इनसे होता रहा। ह्विटने का व्याकरण लौकिक और वैदिक दोनों भाषाओं का समावेश करता है। इसका बहुत अच्छा हिन्दी अनुवाद डॉ. मुनीश्वर झा से कराकर उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी ने प्रकाशित किया था (प्रथम संस्करण, लखनऊ १९७१ ई.)। मैकडोनल ने वैदिक और लौकिक संस्कृत भाषाओं के पृथक्-पृथक् व्याकरण-ग्रन्थ लिखे थे। इनका वैदिक व्याकरण तो लोकप्रिय हुआ, संस्कृत व्याकरण नहीं। वैदिक व्याकरण का छात्र-संस्करण हिन्दी अनुवाद के रूप में प्रचलित है।

भारतवर्ष में संस्कृत व्याकरण का मानक ग्रन्थ एम.आर. काले ने 'हायर संस्कृत ग्रामर' के रूप में अंग्रेजी में लिखा जो बम्बई से १८९४ ई. में प्रकाशित हुआ। इसकी लोकप्रियता तथा विषय-वस्तु के भारतीय पद्धति से विवेचन ने सभी को पीछे छोड़ दिया। आज भी यह आधुनिक पद्धति का मानक ग्रन्थ है। सम्पूर्ण सिद्धान्तकौमुदी के विषयों को पाश्चात्य पद्धति से इसमें गतार्थ कर लिया गया है। इसका हिन्दी अनुवाद भी इसी नाम से प्रचलित है। यह बात अवश्य है कि इसमें शुद्ध व्याकरण है, रचना या अभ्यासों का प्रयोग इसमें नहीं है। संस्कृत रचना के लिए प्रो. वामन शिवराम आप्टे ने इसके पूर्व ही एक पुस्तक 'अ गाइड टु संस्कृत कम्पोजीशन' नामक पुस्तक लिखी थी जिसके प्रति काले ने अपनी पुस्तक में सामग्री ग्रहण करने के लिए आभार प्रकट किया था। इसका भी अनुवाद हिन्दी में कई स्थानों से प्रकाशित हुआ था। आज के छात्रों की दृष्टि से उक्त दोनों मानक पुस्तकें कुछ कठिन प्रतीत होती हैं क्योंकि विश्वविद्यालयी शिक्षा-पद्धति में संस्कृत का वैसा गम्भीर अध्ययन नहीं होता है। जिन्हें गम्भीर अध्ययन करना होता है वे संस्कृत के मूल व्याकरण-ग्रन्थों की ओर ही झुकते हैं। फिर भी आप्टे की रचना वाली पुस्तक का कोई विकल्प नहीं है, पर्याप्त अनुभव के आधार पर आप्टे ने इसे लिखा था। उनका संस्कृत कोश (जो संस्कृत-हिन्दीकोश के रूप में प्रकाशित है) भी उसी कोटि का संस्कृत सन्दर्भ ग्रन्थ है।

स्वाधीनता-प्राप्ति के पूर्व तक उपर्युक्त (काले और आप्टे के) ग्रन्थों द्वारा व्याकरण और रचना का ज्ञान होता था किन्तु अब भारतीय भाषाओं को माध्यम बनाने से एवं संस्कृत शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार होने से हिन्दी की पुस्तकें इस दिशा में आने लगीं। कुछ में

व्याकरण-मात्र अभ्यासों के साथ रहा तो कुछ पुस्तकें रचना और अनुवाद मात्र तक सीमित रहीं। बार-बार शिक्षानीति में परिवर्तन के क्रम में, विशेष रूप से विद्यालयी पाठ्यक्रम में परिवर्तन होने से, नई-नई पुस्तकों के परिवर्तन के क्रम में, विशेष रूप से विद्यालयी पाठ्यक्रम में परिवर्तन होने से, नई-नई पुस्तकों की आवश्यकता होती गयी। पुस्तक-लेखन पर इधर बाजारवाद भी छा गया। यह एक अच्छा लक्षण है कि आज अन्य क्षेत्रों के समान, संस्कृत व्याकरण की भी दर्जनों पुस्तकें बाजारों में उपलब्ध हैं। विभिन्न कक्षाओं के पाठ्यक्रमों को ध्यान में रखकर, परीक्षाओं पर विशेष दृष्टि डालते हुए, अनेक संस्कृत शिक्षकों तथा विद्वानों ने तरह-तरह की पुस्तकें इस भीड़ में प्रस्तुत की हैं। आज की शिक्षा-पद्धति ज्ञानप्रधान से अधिक सूचना-प्रधान हो गयी है। सूचना ही ज्ञान बनकर सर्वत्र छायी हुई है (Information has eclipsed knowledge)। जिस पुस्तक के अभ्यास-प्रश्नों से जितने अधिक प्रश्न परीक्षा में लड़ गये–उसका महत्त्व बढ़ गया, भले ही वह मौलिक ज्ञान देने में असफल ही हो। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज कोई भी पाठ्यपुस्तक या संस्कृत व्याकरण एवं रचना की पुस्तक देखें, मूल पाठ्यसामग्री तो पुस्तक में केवल ३० प्रतिशत ही रहेगी, अभ्यास के वस्तुनिष्ठ प्रश्न शेष पुस्तक में छाये रहेंगे।

एक समय था जब कोई पुस्तक पीढ़ियों तक पढ़ी जाती थी। काले और आप्टे की पुस्तकें आज भी महत्त्वपूर्ण हैं। किन्तु आज की शिक्षा इतनी प्रगतिशील हो गई है कि एक पुस्तक दूसरे ही वर्ष व्यर्थ हो जाती है। यह स्थिति अवश्य ही बाजारवाद को बढ़ावा देती है, राष्ट्रीय सम्पत्ति का इससे अपव्यय होता है। Use and throw (प्रयोग करो और फेंको) का यह स्पष्ट उदाहरण शिक्षा के क्षेत्र में भी है। यह समझने की बात है कि संस्कृत व्याकरण का आधारभूत ज्ञान रहे तो चाहे कैसे भी घुमावदार और दिमागी कसरत वाले वस्तुनिष्ठ प्रश्न हों वे सहज सरल लगेंगे। वस्तुनिष्ठ प्रश्नोत्तर रटने से वह लाभ नहीं मिल सकता। शिक्षा का अर्थ है संयोजन (परिस्थिति के अनुसार अपने शरीर, मन और बुद्धि को ढालना Adjustment), जो विषय की गहरी समझ से ही उत्पन्न होता है।

प्रस्तुत संस्कृत व्याकरण बाजार की अन्य पुस्तकों से पृथक् है क्योंकि इसमें व्याकरण के यथासाध्य सर्वांगपूर्ण विवेचन पर ध्यान दिया गया है। संस्कृत टीकाकार मल्लिनाथ की उक्ति है–नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते। अर्थात् जो मूल में नहीं है उसे मैं नहीं लिखूँगा और जो अनावश्यक बातें हैं वह भी नहीं दूँगा। व्याकरण का शुद्ध ज्ञान देना और उसका उपयोग मानक उदाहरणों से बताना-यही मेरा मार्गदर्शक है। यथासाध्य आवश्यक अभ्यास प्रश्न भी रखे गये हैं किन्तु इतने ही कि वे स्थायी महत्त्व के हों, किसी परीक्षा को ही ध्यान में रखकर नहीं। पुस्तक के कलेवर पर भी मेरा ध्यान रहा है। रचना (Composition) जैसा विषय तो व्याकरण ज्ञान का अमृतफल होता है। प्रत्येक पाठ ही रचना के सूत्रों को बताता है। फिर भी आज के छात्रों को ध्यान में रखकर कुछ पृथक् पाठ दिये गये हैं जो उपयोगी होंगे। अपने लम्बे अध्यापन-अनुभव एवं पाठ्य-पुस्तक निर्माण की केन्द्रीय तथा

राज्यस्तरीय संस्थाओं से अपनी संबद्धता का उपयोग प्रायः सभी प्रकरणों में मैंने किया है। अनुच्छेद-लेखन तथा व्यावहारिक शब्दकोश को समय की माँग देखकर परिशिष्ट में दिया गया है। उसमें कुछ सांस्कृतिक सूचनाएँ हैं जिनकी संस्कृत विद्यार्थियों से अपेक्षा भारतीय समाज को रहती है।

यद्यपि यह व्याकरण-पुस्तक मुख्यतः उच्च विद्यालयों के छात्रों के उपयोग के लिए है किन्तु इसमें विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों के लिए भी पर्याप्त सामग्री मिलेगी। इन विषयों के ज्ञान से सम्पन्न होकर विद्यार्थी अपनी विशिष्टता का मूल्याङ्कन स्वयं कर सकेंगे। जो प्रकरण या नियम आरम्भिक छात्रों को कठिन लगें उन्हें छोड़कर वे दूसरे प्रकरणों को पढ़ सकते हैं। किन्तु व्याकरण की इस सर्वाङ्गपूर्ण पुस्तक का आनन्द वे जीवन में आगे भी ले सकेंगे–यह विश्वास लेखक को है। पुस्तक में सभी विषय पाणिनीय सूत्रों के सन्दर्भ में समझाये गये हैं। इससे आगे चलकर यदि व्याकरण को गम्भीरता से समझना हो तो बहुत सुविधा होगी।

इसे सामयिक रखते हुए प्राचीन और नवीन दोनों प्रकार की सामग्री से सम्पन्न करने का मेरा यथासम्भव प्रयास है, फिर भी विज्ञ शिक्षकों एवं सामान्य पाठकों से अनुरोध करता हूँ कि इस पर अपनी सम्मति तथा सुझाव देकर मुझे कृतार्थ करें।

इस पुस्तक को तैयार कराने के लिए मैं अहैतुक उपकारी विद्वान् श्री सीताराम शरण जी का उल्लेख करना चाहता हूँ जिन्होंने अपने पारिवारिक संस्कारवश इस व्याकरण-ग्रन्थ को मुझसे लिखवा कर ही छोड़ा। (स्मरणीय है कि ये हिन्दी भूषण आचार्य शिवपूजन सहाय के पौत्र हैं।) इसके आरम्भिक दो संस्करण ज्ञानगंगा लि. से निकले किन्तु प्रकाशकों की अरुचि से पुस्तक ८-१० वर्षों से अनुपलब्ध थी। अतः इसे अपने पुराने प्रकाशक एवं मित्र श्री सुनील कुमार जी के प्रकाशन-संस्थान चौखम्भा क्लासिका (वाराणसी) से प्रकाशित देखने की अभिलाषा पूर्ण होने में आनन्द की अनुभूति कर रहा हूँ। इस संस्करण को परिमार्जित किया गया है। श्री सुनील जी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

वसन्त पञ्चमी
१६ फरवरी, २०२१

उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'

संसिद्धि, वी.-३३, विद्यापुरी, कंकड़बाग
पटना–८०००२०
चलभाष : 9430212570

विषय-सूची

प्रथम पाठ : वर्ण-परिचय ३-१२
प्रत्याहार बनाने की विधि ४
स्वर वर्ण ४
व्यञ्जन वर्ण ५
व्यञ्जनों के भेद ५
स्पर्श वर्ण-परिचय ६
वर्णों के उच्चारण-स्थान ७
प्रयत्न-विचार ८
आभ्यन्तर प्रयत्न ८
बाह्य प्रयत्न ९
जिह्वामूलीय और उपध्मानीय १०
अयोगवाह १०
यम ११
मात्रा ११
संयुक्त व्यञ्जन (संयोग, संयुक्ताक्षर) ११
वर्ण-विश्लेषण १२

द्वितीय पाठ : पारिभाषिक शब्द १३-२०

तृतीय पाठ : सन्धि-प्रकरण २१-४६
सन्धि और समास (अन्तर) २१
सन्धि के भेद २२
स्वरसन्धि २२
१. दीर्घसन्धि २२
२. गुणसन्धि २३
३. वृद्धिसन्धि २३
४. यण् सन्धि २४
५. अयादि सन्धि २५
६. पूर्वरूप सन्धि २६
७. पररूप सन्धि २६
स्वर सन्धि का निषेध (प्रकृतिभाव) २६

व्यञ्जन-सन्धि २८
विसर्ग-सन्धि ३४
विविध सन्धियों के उदाहरण ४०
णत्व-षत्व विधान ४३
१. णत्व-विधान ४३
२. षत्व-विधान ४४

चतुर्थ पाठ : सुबन्त-प्रकरण (शब्द-रूपावली) **४७-८४**
सुप्-विभक्तियाँ ४७
१. अजन्त पुंल्लिङ्ग ४८
२. अजन्त स्त्रीलिङ्ग ५३
३. अजन्त नपुंसकलिङ्ग ५८
४. हलन्त शब्दों के रूप (पुंल्लिङ्ग) ६०
५. हलन्त शब्दों के रूप (स्त्रीलिङ्ग) ६९
६. हलन्त शब्दों के रूप (नपुंसकलिङ्ग) ७२
सर्वनाम शब्द ७५

पञ्चम पाठ : संख्यावाचक शब्द **८५-९२**
पूरणी संख्या ८७

षष्ठ पाठ : तिङन्त-प्रकरण **९३-१५२**
मूलभूत तथ्य ९३
(क) धातुगणों की व्यवस्था ९३
(ख) लकारों का प्राचुर्य ९६
(ग) आत्मनेपद-परस्मैपद की भिन्नता ९७
(घ) सेट् और अनिट् धातुओं की व्यवस्था ९८
(ङ) सकर्मक और अकर्मक धातुओं का भेद ९८
(च) वाच्य का भेद ९८
धातुरूपावली ९९
i) भ्वादिगणीय धातुओं के रूप ९९
१. भू धातु (होना) परस्मैपद ९९
२. गम् धातु (जाना) परस्मैपदी १०१
३. दृश् धातु (देखना) परस्मैपदी १०२
४. स्था धातु (ठहरना) परस्मैपदी १०३

५. नी धातु (ले जाना) परस्मैपदी १०४
६. दाण् (यच्छ्) धातु (देना) परस्मैपदी १०५
७. लभ् धातु (पाना) आत्मनेपदी १०६
८. सेव् धातु (सेवा करना) आत्मनेपदी १०७
९. वृत् धातु (वर्तमान रहना) आत्मनेपदी १०८
ii) अदादिगणीय धातुओं के रूप (विकरण-लोप) १०९
१. अद् (खाना) धातु परस्मैपदी १०९
२. हन् धातु (मारना) परस्मैपदी ११०
३. अस् धातु (होना) परस्मैपदी ११२
४. शास् धातु (शासन करना) परस्मैपदी ११३
५. या धातु (जाना) परस्मैपदी ११४
६. विद् धातु (जानना) परस्मैपदी ११५
७. रुद् धातु (रोना) परस्मैपदी ११६
८. ब्रू धातु (बोलना) परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी ११७
९. स्वप् धातु (सोना) परस्मैपदी ११८
१०. जागृ धातु (जागना) परस्मैपदी ११९
११. स्तु धातु (स्तुति करना) परस्मैपदी १२०
१२. इण् धातु (जाना) परस्मैपदी १२१
१३. शीङ् धातु (सोना) आत्मनेपदी १२१
१४. आस् धातु (बैठना) आत्मनेपदी १२२
१५. अधि + इ धातु (पढ़ना) आत्मनेपदी १२३
iii) जुहोत्यादिगणीय धातुओं के रूप (श्लु-विकरण) १२४
१. हु धातु (हवन करना) परस्मैपदी १२४
२. भी धातु (डरना) परस्मैपदी १२५
३. दा धातु (देना) परस्मैपदी १२६
iv) दिवादिगणीय धातुओं के रूप (श्यन्-विकरण) १२७
१. दिव् (खेलना) परस्मैपदी १२७
२. जन् (जन्म लेना, होना) आत्मनेपदी १२८
v) स्वादिगणीय धातुओं के रूप (श्नु-विकरण) १२९
१. सु (रस निकालना, नहाना) परस्मैपदी १२९
२. श्रु धातु (सुनना) परस्मैपदी १३०
३. आप् धातु (पाना) परस्मैपदी १३१

४. चि धातु (चुनना, संकलित करना) परस्मैपदी १३२
५. शक् धातु (समर्थ होना) परस्मैपदी १३३
vi) तुदादिगणीय धातुओं के रूप (श-विकरण) १३४
१. इष् (इच्छ्, इच्छा करना) परस्मैपदी १३५
२. प्रच्छ् (पृच्छ्, पूछना) परस्मैपदी १३६
३. मृ (मरना) आत्मनेपदी १३७
vii) रुधादिगणीय धातुओं के रूप (श्नम्-विकरण) १३८
१. भुज् धातु (पालन करना) परस्मैपदी १३८
१(अ). भुज् धातु (खाना) आत्मनेपदी १३९
२. छिद् धातु (काटना) परस्मैपदी १४०
viii) तनादिगणीय धातुओं के रूप (उ-विकरण) १४१
१. तन् धातु (विस्तार, फैलाना) उभयपदी परस्मैपदी रूप १४१
२. कृ धातु (करना) उभयपदी १४३
ix) क्र्यादिगणीय धातुओं के रूप (श्ना-विकरण) १४४
१. क्री धातु (खरीदना) उभयपदी १४५
२. ज्ञा धातु (जानना) उभयपदी १४५
३. ग्रह् धातु (लेना) परस्मैपदी १४७
x) चुरादिगणीय धातुओं के रूप (णिच् + शप्) १४८
१. चुर् धातु (चोरी करना) परस्मैपदी १४९
२. चिन्त् धातु (विचार करना) परस्मैपदी १४९

सप्तम पाठ : प्रत्ययान्त धातु तथा अन्य लकार १५३-१६७
i) प्रत्ययान्त धातु १५३
(क) सन्नन्त (इच्छार्थक) १५३
(ख) णिजन्त (प्रेरणार्थक) १५४
(ग) यङन्त (समभिहारार्थक) १५६
(घ) नामधातु १५७
ii) अन्य लकारों का विवेचन १५९
१. लिट् लकार १५९
२. लुङ् लकार १६२
३. लुट् लकार १६४
४. आशीर्लिङ् १६५

अष्टम पाठ : आत्मनेपद-परस्मैपद प्रकरण १६८-१७९

आत्मनेपद-प्रकरण १६८

परस्मैपद-प्रकरण १७६

नवम पाठ : अव्यय-प्रकरण १८०-१८८

१. मूल अव्यय १८०

२. प्रत्ययान्त अव्यय १८२

(क) कृदन्त अव्यय १८२

(ख) तद्धितान्त अव्यय १८३

३. अव्ययीभाव समास १८४

अव्ययों के प्रयोग १८४

स्वरादि १८४

व्यञ्जनादि १८६

दशम पाठ : उपसर्ग-प्रकरण १८९-१९५

सोपसर्ग शब्दों के उदाहरण १९३

एकादश पाठ : कृत्-प्रकरण १९६-२१९

१. कृत्य-प्रत्यय १९६

कुछ प्रमुख धातुओं से कृत्य प्रत्ययान्त शब्द १९९

२. कृत्-प्रत्यय २०१

१-२. भूतकालिक प्रत्यय क्त और क्तवतु २०२

३-४. वर्तमानकालिक शतृ-शानच् प्रत्यय २०४

५-६. पूर्वकालिक अर्थ के क्त्वा-ल्यप् प्रत्यय २०६

७. तुमुन्-प्रत्यय २०७

कर्तृवाचक कृत्-प्रत्यय २०९

भाववाचक कृत्प्रत्यय २१५

अन्य कृत्प्रत्यय २१७

द्वादश पाठ : स्त्री-प्रत्यय-प्रकरण २२०-२३२

१. टाप् (आ) २२०

२. डाप् (आ) २२१

३. चाप् (आ) २२१

४. ङीप् (ई) २२१

५. ङीष् (ई) २२६

६. ङीन् (ई) २३०

७. ऊङ् (ऊ) २३०

८. ति २३०

स्त्रीप्रत्ययों के विशेष नियम २३१

त्रयोदश पाठ : तद्धित-प्रत्यय-प्रकरण **२३३-२४९**

तद्धित-प्रत्ययों की सामान्य प्रक्रिया २३३

(क) विविध तद्धित प्रत्यय २३५

१. अपत्यार्थक २३५

२. रक्ताद्यर्थक तद्धित प्रत्यय २३६

३. अन्य अर्थ २३९

(ख) मतुबर्थीय तद्धित प्रत्यय २४३

(ग) अव्यय बनाने वाले तद्धित प्रत्यय २४५

१. कृत्वसुच् (कृत्वः) २४५

२. तसिल् (तः) २४६

३. त्रल् २४६

४. थाल् २४६

५. दा २४६

६. धा २४७

७. वति २४७

८. शस् २४७

चतुर्दश पाठ : विभक्ति प्रकरण **२५०-२८२**

कारक विभक्ति २५०

उपपद विभक्ति २५०

प्रथमा विभक्ति तथा कर्तृकारक २५२

द्वितीया विभक्ति तथा कर्मकारक २५४

तृतीया विभक्ति तथा करण कारक २५९

चतुर्थी विभक्ति तथा सम्प्रदान कारक २६३

पञ्चमी विभक्ति तथा अपादान कारक २६७

षष्ठी विभक्ति २७१

सप्तमी विभक्ति तथा अधिकरण कारक २७६

विभक्ति-विषयक सामान्य तथ्य २७९

पञ्चदश पाठ : समास-प्रकरण **२८३-३२०**
समास के भेद २८४
अव्ययीभाव समास २८४
तत्पुरुष समास २८८
एकदेशी तत्पुरुष समास २९३
कर्मधारय समास २९४
द्विगु समास (तत्पुरुष) २९८
नञ् तत्पुरुष समास ३००
गति तत्पुरुष समास ३००
प्रादि-तत्पुरुष समास ३०१
उपपद तत्पुरुष समास ३०२
तत्पुरुष समास के कुछ विशेष तथ्य ३०३
बहुव्रीहि समास ३०६
बहुव्रीहि के अन्य रूप ३०८
बहुव्रीहि-विषयक कुछ तथ्य ३०९
द्वन्द्व समास ३१३
द्वन्द्व समास में शब्दों का अनुक्रम ३१४
समाहार-द्वन्द्व की स्थितियाँ ३१५
पूर्व पद में विकृति ३१६
एकशेष-वृत्ति ३१६

रचना-विचार—

षोडश पाठ : वाच्य और उसका परिवर्तन **३२१-३२८**
कर्तृवाच्य ३२१
कर्मवाच्य ३२३
भाववाच्य ३२४
वाच्य-परिवर्तन ३२५
वाच्य-परिवर्तन के कुछ संक्षिप्त सूत्र ३२६

सप्तदश पाठ : विशेषण-विशेष्य-संबन्ध **३२९-३३५**
विशेषण-सूची ३३०
विशेषण-रूप सर्वनाम ३३०
अनिश्चयवाचक सार्वनामिक विशेषण ३३३

अष्टादश पाठ : संस्कृत में पत्र-लेखन ३३६-३४२
१. विद्यालय में प्रवेश पाने के लिए प्रधानाध्यापक को आवेदन ३३७
२. अपने जन्म-समारोह में आने के लिए मित्र को आमन्त्रण ३३८
३. परीक्षा-फल के विषय में अपने पिता को पत्र ३३८
४. विद्यालय में समारोह का वर्णन करते हुए मित्र को पत्र ३३९
५. नगर की टूटी सड़क के निर्माण के लिए नगर-प्रमुख को पत्र ३३९
६. मित्राय विवाहस्य निमन्त्रणपत्रम् (रिक्त स्थान-पूर्ति) ३४०
७. प्रधानाचार्यं प्रति अवकाशार्थम् आवेदनम् ३४०

परिशिष्ट ३४३-३६४
परिशिष्ट - १ : अनुच्छेद-लेखन ३४३-३५२
अनुच्छेद-लेखन में ध्यातव्य बातें ३४३
(क) वर्णनप्रधाना अनुच्छेदाः ३४३
(ख) विचारप्रधाना अनुच्छेदाः ३४९

परिशिष्ट - २ : व्यावहारिक शब्दकोश ३५३-३६४
१. शिक्षा-विषयक ३५३
२. लेखन सामग्री ३५३
३. खेल-कूद ३५४
४. पारिवारिक सम्बन्ध ३५४
५. घरेलू वस्तुएँ ३५५
६. बर्तन ३५६
७. वस्त्र परिधान ३५७
८. आभूषण ३५८
९. अन्नों के नाम ३५८
१०. फलों के नाम ३५९
११. सब्जी-मसाले ३६०
१२. पुष्पों के नाम ३६१
१३. पशु-पक्षी ३६१
१४. वृक्षों के नाम ३६३
१५. भक्ष्य-पेय पदार्थ ३६३

सांस्कृतिक सूचना ३६५-३६७

*

संस्कृत व्याकरण-निकर

१ वर्ण-परिचय
Letters

भाषा में उच्चारण की सबसे छोटी इकाई **वर्ण** है जिसका खण्ड नहीं हो सके। वर्ण के दो भेद हैं–स्वर तथा व्यञ्जन। प्राचीन काल में स्वरों को 'अक्षर' तथा व्यञ्जनों को 'वर्ण' कहा जाता था। किन्तु आगे चलकर यह नामकरण समाप्त हो गया, सब को **वर्ण** या **अक्षर** कहते हैं जिनके ये दोनों भेद सभी भाषाओं में स्वीकृत हैं।

संस्कृत व्याकरण के प्रसिद्ध विद्वान् पाणिनि (५०० ई.पू.) ने ४२ वर्ण माने हैं जिनमें ९ स्वर तथा ३३ व्यञ्जन हैं। उन्होंने १४ सूत्रों में इनकी गणना की है। इन्हें संस्कृत व्याकरण को गंभीरता से समझने के लिए स्मरण रखना चाहिए—

स्वर वर्ण (Vowels)

अ इ उ ण्	ऋ ऌ क्	ए ओ ङ्	ऐ औ च्

(कुल चार सूत्र)

व्यञ्जन वर्ण (Consonants)

ह य व र ट्	ज ब ग ड द श्
ल ण्	ख फ छ ठ थ च ट त व्
ञ म ङ ण न म्	क प य्
झ भ ञ्	श ष स र्
घ ढ ध ष्	ह ल्

(कुल दस सूत्र)

इन वर्णमाला-विषयक सूत्रों को 'प्रत्याहार-सूत्र' कहा जाता है क्योंकि इन्हें प्रत्याहारों द्वारा संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। 'प्रत्याहार' का अर्थ है–संक्षेपण (प्रत्याह्रियन्ते संक्षिप्यन्ते वर्णा अनेन इति प्रत्याहारः)।

'अण्' (प्रत्याहार) कहने से अ इ उ इन तीन वर्णों का बोध हो जाता है। इसी प्रकार 'अच्' में भी सभी स्वर वर्ण, 'हल्' में सभी व्यञ्जन वर्ण आ जाते हैं। इसीलिए **अजन्त** = स्वर से अन्त होने वाला, **हलन्त** = व्यञ्जनान्त, इन शब्दों का प्रचलन हो गया है।

प्रत्याहार बनाने की विधि (Formation of Pratyāhāra)

प्रत्याहार दो वर्णों का होता है। उसमें दूसरा वर्ण हलन्त रहता है जो चौदह उपर्युक्त सूत्रों में से किसी एक के अन्तिम वर्ण के रूप में होता है–ण्, क्, ङ्, च्, ट् इत्यादि। प्रत्याहार का पहला अक्षर अन्य किसी वर्ण के रूप में होता है। जितने अक्षरों को हम निर्दिष्ट करना चाहें उतने वर्ण प्रत्याहार में आ जाएँगे; बीच वाले हलन्त को छोड़ कर सभी बीच के वर्ण प्रत्याहार में समाविष्ट होते हैं, जैसे–अक् के अन्तर्गत अ इ उ ऋ ऌ–ये पाँच वर्ण आते हैं। झष् कहने पर झ भ घ ढ ध–ये पाँचों वर्ण आते हैं। यण् के अन्तर्गत य व र ल ये चार वर्ण होते हैं। इस प्रकार अक्षर-समूह को प्रत्याहार द्वारा सरलता से निर्दिष्ट किया जाता है। नीचे कुछ प्रमुख प्रत्याहार दिये जाते हैं, इन्हें मूल प्रत्याहार सूत्रों से मिलाकर देख लें—

कुछ प्रमुख प्रत्याहार सूत्र

अण्	अ, इ, उ
अक्	अ, इ, उ, ऋ, ॡ
अच्	अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ (= सभी स्वर)
अट्	अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र
इक्	इ उ ऋ ऌ
एङ्	ए ओ
एच्	ए ओ ए औ
ऐच्	ऐ औ
खर्	ख फ छ ठ थ, च ट त क प, श ष स
जश्	ज ब ग ड द
झय्	झ भ घ ढ ध, ज ब ग ड द, ख फ छ ठ थ, च ट त क प
झश्	झ भ घ ढ ध, ज ब ग ड द
यण्	य व र ल
हश्	ह, य व र ल, ञ म ङ ण न, झ भ घ ढ ध, ज ब ग ड द

पाणिनि ने कुल ४२ प्रत्याहारों का प्रयोग अपने व्याकरण-ग्रन्थ (अष्टाध्यायी) में किया है।

स्वर वर्ण (Vowels)

अच् को स्वर कहते हैं। इसमें ५ + ४ = ९ वर्ण ऊपर पढ़े गये हैं। अ इ उ ऋ ऌ–ये पाँच **मूल स्वर** हैं। ऌ का प्रयोग संस्कृत में एकाध शब्द में ही है, वस्तुतः ऋ का ही यह विस्तार है। शेष चार स्वरों के तीन-तीन भेद हैं–ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। इनकी क्रमशः एक, दो और तीन मात्राएँ होती हैं। उच्चारण में लगने वाला समय 'मात्रा' है। तदनुसार **अ इ उ**

ॠ–ये ह्रस्व या लघु स्वर हैं, इन्हीं के दीर्घ या गुरु स्वर **आ ई ऊ ॠ** हैं। प्लुत के रूप में आ३, ई३, ऊ३, ऋ३ हैं। इस प्लुत स्वर का प्रयोग मौखिक भाषा में ही दूर से आह्वान करने, रोदन या गान के समय होता है। लिखित भाषा में इसका उपयोग नहीं होता। प्रत्याहार की दृष्टि से अण्, अक्, इक्, उक्–ये चार मूल स्वरों (Cardinal vowels) से सम्बद्ध हैं।

स्वरों में ए ओ ऐ औ–ये चार सन्ध्यक्षर (Diphthongs) हैं क्योंकि ये चारों दो मूल स्वरों के मेल (सन्धि) से बनते हैं। ये सभी दीर्घ या गुरु स्वर हैं। इनका प्लुत होता है किन्तु उसका भार इनमें आये मूल स्वर पर ही पड़ता है।

व्यावहारिक दृष्टि से कुल १२ स्वर ही हैं–अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ए ओ ऐ औ। इनका ही संस्कृत में उपयोग होता है।

स्वरों के उच्चारण में किसी अन्य वर्ण की सहायता नहीं ली जाती–**स्वयं राजन्ते इति स्वराः**–ऐसा प्रातिशाख्यों में कहा गया है। प्रातिशाख्य वैदिक उच्चारण के बोधक ग्रन्थ हैं।

व्यञ्जन वर्ण (Consonants)

हल् प्रत्याहार को व्यञ्जन कहते हैं। अपने उच्चारण में प्रायः ये स्वर की सहायता लेते हैं, इसीलिए इनका लक्षण है–अन्वक् भवति व्यञ्जनम् (**महाभाष्य**)। अर्थात् ये स्वर के समक्ष ही प्रकाशित होते हैं, अकेले प्रकाशित होने की इनकी क्षमता नहीं है। पतंजलि ने **महाभाष्य** के उक्त स्थल (१.२.३०) में कहा है–न पुनः अन्तरेणाचं व्यञ्जनस्योच्चारणमपि भवति (स्वर के बिना व्यञ्जन का उच्चारण नहीं होता)। व्यञ्जन को हम अकेला लिख भले ही सकते हैं किन्तु उच्चारण कठिन है। क्,ख्,ग्.....ह् ये सभी व्यञ्जन हैं।

व्यञ्जनों के भेद (Kinds of Consonants)

व्यञ्जनों को मुख्य रूप से तीन वर्गों में रखा जाता है–स्पर्श (जिनके उच्चारण में मुख के भीतर दो अवयवों का स्पर्श हो जाता है), अन्तःस्थ (य् र् ल् व् अन्तःस्थ हैं एक ओर स्वराभिमुख है, दूसरी ओर व्यञ्जनाभिमुख) और ऊष्म (खुले मुख से अधिक श्वास द्वारा उच्चरित वर्ण, श् ष् स् ह् ऊष्म हैं)।

स्पर्श (Contact)—व्यञ्जनों के पाँच वर्ग हैं, पाँचों में पाँच-पाँच वर्ण होते हैं। वर्गों के नाम उनके प्रथम अक्षर से (जैसे–कवर्ग, चवर्ग) या उनके उच्चारण स्थान के आधार पर (जैसे–कण्ठ्य, तालव्य) दिये गये हैं। उनके प्रत्येक वर्ण की अपनी पहचान है। यहाँ उनकी तालिका दी जाती है जिसे बाद में स्पष्ट किया जाएगा।

स्पर्श वर्ण-परिचय (Contact sounds)

वर्ग	अघोष अल्पप्राण (Surd non-aspirate)	अघोष महाप्राण (Surd aspirate)	घोष अल्पप्राण (Sonant non-aspirate)	घोष महाप्राण (Sonant aspirate)	अनुनासिक (Nasals)
१. कवर्ग (कण्ठ्य) Guttural	क्	ख्	ग्	घ्	ङ्
२. चवर्ग (तालव्य) Palatal	च्	छ्	ज्	झ्	ञ्
३. टवर्ग (मूर्धन्य) Cerebral, Retroflex	ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्
४. तवर्ग (दन्त्य) Dental	त्	थ्	द्	ध्	न्
५. पवर्ग (ओष्ठ्य) Labial	प्	फ्	ब	भ्	म्

व्याकरण के ग्रन्थों में इसीलिए क् से लेकर म् तक के वर्णों को 'स्पर्श' कहा गया है– **कादयो मावसानाः स्पर्शाः**।

अन्तःस्थ वर्णों को अर्धस्वर (Semi-vowels) भी कहा जाता है क्योंकि इनका सम्बन्ध (सन्धि में परिवर्तन और उच्चारण स्थान की दृष्टि से) इ,उ,ऋ,ऌ इन चार स्वरों के साथ है–इ का य् से, उ का व् से, ऋ का र् से और ऌ का ल् से जुड़ाव है। यण्-सन्धि के प्रकरण में हम देखेंगे कि अन्तःस्थ वर्ण इन स्वरों के विकार के रूप में आते हैं (जैसे–यदि + अपि = यद्यपि)। पुनः संप्रसारण (Devocalization) की प्रक्रिया में य व र ल क्रमशः इ उ ऋ ऌ हो जाते हैं (जैसे–यज् से इज्या, इष्ट; स्वप् से सुप्त; वच् से उक्त; ग्रह से गृहीत)। भाषाशास्त्री मानते हैं कि इन चारों स्वरों और अन्तःस्थों की उत्पत्ति किसी अन्य अर्धस्वर वर्ण से हुई थी।

ऊष्म वर्ण (Spirants) श ष स ह हैं (शल ऊष्माणः, शल् प्रत्याहार है)। ऊष्मा वायु को कहते हैं, उसकी प्रधानता इनके उच्चारण में होती है (ऋक्प्रातिशाख्य १.१२ ऊष्मा वायुस्तत्प्रधाना वर्णा ऊष्माणः)। मुख्यतः इससे ये चार वर्ण ज्ञात होते हैं, किन्तु शास्त्रीय दृष्टि से इनके अतिरिक्त विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय तथा अनुस्वार भी इसमें निहित हैं।

वर्णों के उच्चारण-स्थान (Places of Articulation)

मन की प्रेरणा से फेफड़े से जो वायु ऊपर की ओर चलती है वह ध्वनि-यन्त्र से होते हुए मुख में स्थित विविध स्थानों (कण्ठ और ओठों के बीच) से टकराती है, ये स्थान उच्चारण-स्थान कहलाते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में इन्हें केवल 'स्थान' कहा गया है। उपर्युक्त स्पर्श वर्णों के वर्गों को ध्यान में रखकर केवल पाँच उच्चारण-स्थान माने गये हैं–कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ; किन्तु इनके अतिरिक्त वर्गों के पंचमाक्षर (ङ्,ञ्,ण्,न्,म्) के उच्चारण में नासिका की भी भागीदारी है। व्याकरण के मानक ग्रन्थों में वर्णों के उच्चारण-स्थान के विषय में कुछ सूत्र-वाक्य दिये गये हैं—

१. **अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः**—अ/आ, कवर्ग, ह तथा विसर्ग का उच्चारण स्थान कण्ठ है, अतः ये **कण्ठ्य** वर्ण हैं।

२. **इचुयशानां तालु**—इ/ई, चवर्ग, य और श का उच्चारण-स्थान तालु है, अतः ये **तालव्य** वर्ण हैं।

३. **ऋटुरषाणां मूर्धा**—ऋ/ॠ, टवर्ग, र और ष का उच्चारण-स्थान मूर्धा है, अतः ये **मूर्धन्य** वर्ण हैं।

४. **ऌतुलसानां दन्ताः**—ऌ, तवर्ग, ल और स का उच्चारण-स्थान दन्त हैं, अतः इन वर्णों को **दन्त्य** कहते हैं।

५. **उपूपध्मानीयानाम् ओष्ठौ**—उ/ऊ, पवर्ग तथा उपध्मानीय (प-फ के पूर्व विसर्ग = ᳵप ᳵफ) का उच्चारण स्थान दोनों ओष्ठ हैं, अतः ये **ओष्ठ्य** वर्ण हैं।

६. **ञमङणनानां नासिका च**—वर्गों के पंचमाक्षरों (ङ,ञ,ण,न,म) का उच्चारण-स्थान कण्ठ, तालु आदि के अतिरिक्त नासिका भी है, इसलिए इन्हें **अनुनासिक** कहते हैं। ङ् कण्ठ्यानुनासिक, ञ् तालव्यानुनासिक, ण् मूर्धन्यानुनासिक, न् दन्त्यानुनासिक और म् ओष्ठ्यानुनासिक है।

७. **एदैतोः कण्ठतालु**—ए और ऐ का उच्चारण-स्थान कण्ठ और तालु दोनों है, अतः ये कण्ठतालव्य वर्ण हैं।

८. **ओदौतोः कण्ठोष्ठम्**—ओ और औ का उच्चारण-स्थान कण्ठ और ओष्ठ दोनों हैं, अतः ये कण्ठोष्ठ्य वर्ण हैं।

९. **वकारस्य दन्तोष्ठम्**—व का उच्चारण-स्थान दन्त और ओष्ठ दोनों है, अतः यह दन्तोष्ठ्य वर्ण है।

टिप्पणी—इनमें प्रथम पाँच के उच्चारण-स्थान एकल (Single) हैं, किन्तु शेष चारों के युग्म (Double) हैं; सभी स्वरों, स्पर्शवर्णों, अन्तःस्थों और ऊष्मों की उच्चारण-व्यवस्था जानने के लिए उपर्युक्त सूत्र-वाक्यों को स्मरण कर लेना चाहिए।

प्रयत्न-विचार (Effort)

वर्णों के उच्चारण के लिए 'स्थान' के अतिरिक्त 'प्रयत्न' का भी महत्त्व है, उच्चारण के उपकरणों (यन्त्रों) में होने वाली विविध क्रियाएँ **प्रयत्न** कही जाती हैं। कुछ क्रियाएँ कण्ठ और ओठों के बीच में होती हैं, जिन्हें आभ्यन्तर प्रयत्न (Internal effort) कहा जाता है। कुछ क्रियाएँ इस परिधि के बाहर किन्तु उच्चारण के उपकरणों के अन्तर्गत होती हैं, उन्हें बाह्य प्रयत्न (External effort) कहते हैं। आधुनिक ध्वनि विज्ञान (Phonetics) की सहायता से ही इन्हें समझा जा सकता है।

आभ्यन्तर प्रयत्न

ओष्ठ से लेकर कण्ठभाग में स्थित काकल (टेंटुआ) तक के अन्तर्गत जो क्रियाएँ उच्चारण-काल में होती हैं, उन्हें आभ्यन्तर प्रयत्न कहा जाता है। महाभाष्य (I.i. ९) में इस क्षेत्र को 'आस्य' कहा गया है (किं पुनरास्यम्? ओष्ठात् प्रभृति प्राक् काकलात्)। नासिका का द्वार या विवर आस्य के बाहर कहा गया है। 'मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः' (I.i.8) इस पाणिनिसूत्र में मुख (आस्य) और नासिका को पृथक् समझा गया है।

आभ्यन्तर प्रयत्न के पाँच भेद हैं—

१. **स्पृष्ट** (Contact)—'क' से 'म' तक के २५ वर्ण स्पृष्ट प्रयत्न के अन्तर्गत हैं, इनके उच्चारण में मुख के अन्तर्गत दो अवयवों का स्पर्श स्पष्ट रूप से हो जाता है। इसलिए इन वर्णों को 'स्पर्श' कहा गया है।

२. **ईषत्-स्पृष्ट** (Semi-contact)—अन्तःस्थ वर्णों (य र ल व) का उच्चारण करते समय ईषत्-स्पृष्ट प्रयत्न होता है। वागिन्द्रिय इस काल में कुछ-कुछ स्पर्श की ओर उन्मुख रहती हैं; न पूर्णतः स्पर्श ही होता है, न पूर्णतः विवृत स्थिति रहती है–ये अर्धस्वर हैं। व्यञ्जन और स्वर दोनों के बीच हैं।

३. **विवृत** (Open)—स्वरवर्णों के उच्चारण में विवृत प्रयत्न होता है। इस समय वागिन्द्रिय पूर्णतः खुली हुई (विवृत) रहती है। स्वरों के उच्चारण में यही प्रयत्न रहता है।

४. **ईषद्-विवृत** (Semi-open)—ऊष्म वर्णों (श ष स ह) के उच्चारण में यही प्रयत्न होता है क्योंकि वागिन्द्रिय खुलने की ओर उन्मुख रहती है, पूर्णतः विवृत नहीं हो जाती। उन्मुखता के आधार पर ईषत्-स्पृष्ट और ईषद्-विवृत का अन्तर होता है। **सिद्धान्तकौमुदी** में स्वरों के साथ ऊष्म वर्णों को भी विवृत ही कहा

गया है (विवृतमूष्मणां स्वराणां च)। इसलिए वहाँ चार ही आभ्यन्तर प्रयत्न कहे गये हैं।

५. **संवृत** (Closed)—ह्रस्व अकार के प्रयोग में संवृत प्रयत्न होता है।

बाह्य प्रयत्न

आभ्यन्तर प्रयत्न के क्षेत्र में भिन्न (कण्ठ काकल के भी नीचे या आस्य-सीमा से बाहर) होने वाले प्रयत्न बाह्य हैं। इनका सम्बन्ध मुख्यतः स्वरतन्त्रियों (Vocal chords) से होता है। ये स्वरतन्त्रियाँ गले में चिमटों के आकार की होती हैं जो सिकुड़ती और फैलती हैं। इनके बीच से वायु पार करती है। उनके ठीक सामने स्वरयन्त्र (Larynx) होता है। स्वरयन्त्र ही 'मानवीय ध्वनि-प्रसारण का केन्द्र' है, मानव इसी से भाषा-प्रयोग करता है। इन दोनों अवयवों को समझना बाह्य प्रयत्न के लिए आवश्यक है। स्वरतन्त्रियाँ रबर के दो पल्लों (Doors) के समान हैं जिन्हें पूरा बन्द, थोड़ा खुला, आधा खुला या पूरा खुला रख सकते हैं। इसी से फुसफुसाहट, नाद या श्वास-निःश्वास की क्रियाएँ होती हैं।

बाह्य प्रयत्न को वैयाकरणों ने ग्यारह प्रकार का कहा है। ये हैं–विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित। इनमें उदात्त (Accented), अनुदात्त (Unaccented) तथा स्वरित (Circumflex) केवल स्वरवर्णों के भेद हैं, सुर पर आश्रित हैं; इसलिए इन्हें संस्कृत में पारिभाषिक रूप में 'स्वर' कहा जाता है। वैदिक भाषा में इनका महत्त्व है जहाँ स्वर-भेद से अर्थ बदल जाता है। ये वस्तुतः बाह्य प्रयत्न नहीं हैं, पतञ्जलि ने इन्हें बाह्य प्रयत्नों में नहीं रखा है (उनकी दृष्टि में केवल आठ ही बाह्य प्रयत्न हैं)। पाणिनि ने तीनों को समझाया है–उच्चैरुदात्तः, नीचैरनुदात्तः, समाहारः स्वरितः (I.२.२९-३१) अर्थात् तालु आदि उच्चारण स्थानों में ऊपरी, निचले या मध्यभाग से उच्चरित स्वरों को क्रमशः उदात्त आदि कहते हैं। 'आस्य' के भीतर ही इनकी उच्चारण-प्रक्रिया समाविष्ट होने से इन्हें आभ्यन्तर ही मानना चाहिए।

(क) **विवार, श्वास और अघोष**—ये तीनों प्रायः पर्याय रूप हैं। इनके उच्चारण में स्वरतन्त्री के पल्ले खुले रहते हैं (विवार), जिससे अन्दर से आने वाली वायु किसी अवरोध के बिना मुक्त रूप से बाहर आती है (श्वास) तथा अवरोध के अभाव में कोई नाद या घोष नहीं होता (अघोष)। वर्गों के प्रथम और द्वितीय वर्ण (अर्थात् क ख, च छ, ट ठ, त थ तथा प फ) एवं श,ष,स, ये १३ वर्ण अघोष (Surd, Unvoiced) हैं। इनके उच्चारण में स्वाभाविक रूप से श्वास-वायु निकलती है। (खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च अर्थात् खर् प्रत्याहार में आने वाले व्यञ्जन विवार, श्वास और अघोष हैं)।

(ख) **संवार, नाद और घोष**—ये तीनों भी पर्याय हैं। इनके उच्चारण में स्वरतन्त्रियों के पल्ले बन्द रहते हैं जिन्हें बलपूर्वक खुलवाया जाता है (संवार), इससे जोर की

आवाज होती है (नाद), अन्दर से आने वाली वायु नाद या गूँज के साथ निकलती है। इसलिए उच्चरित ध्वनि को घोष (Voiced, Sonant) कहते हैं। वर्णों के तृतीय-चतुर्थ-पञ्चम (ग घ ङ इत्यादि) वर्ण, ह, य र ल व मुख्य रूप से घोष हैं। वायु को इनके उच्चारण में अवरोध का सामना करना पड़ता है। अपने दोनों कान और आँखें बन्द कर हम क और ग का उच्चारण करें तो भीतर ही भीतर अघोष और घोष का अन्तर समझ सकते हैं। (हशः संवारा नादा घोषाश्च-हश् प्रत्याहार के अन्तर्गत सभी वर्ण संवार, नाद तथा घोष हैं)। इस दृष्टि से अघोष और घोष व्यञ्जनों के ही भेद हैं।

(ग) **अल्पप्राण और महाप्राण**—अन्दर से आने वाली वायु (प्राण) की अल्पता और अधिकता के आधार पर ये दोनों भेद व्यञ्जनों की दृष्टि से ही हैं। जिनके उच्चारण में कम प्राणवायु अपेक्षित है, वे वर्ण अल्पप्राण (Inaspirate) हैं। दूसरी ओर जिन वर्णों के उच्चारण में अधिक प्राणवायु की अपेक्षा है, वे वर्ण महाप्राण (Aspirate) हैं। महाप्राण में अतिरिक्त वायु के कारण ह् की अतिरिक्त ध्वनि सुनाई पड़ती है। जैसे–क अल्पप्राण है तो उसी से जुड़ा ख (Kh) महाप्राण है। वर्णों के प्रथम (क च ट त प), तृतीय (ग ज ड द ब), पञ्चम (ङ ञ ण न म) एवं यण् (य व र ल)–ये १९ वर्ण अल्पप्राण हैं। वर्गों के द्वितीय (ख छ ठ थ फ), चतुर्थ (घ झ ढ ध भ) एवं शल् (श ष स ह)–ये १४ वर्ण महाप्राण हैं। रोमन लिपि में प्रायः सबमें ''h'' जोड़ना पड़ता है (जैसे–kh, th, ph)।

जिह्वामूलीय और उपध्मानीय

'क' या 'ख' के पूर्व विसर्ग के उच्चारण के समान उच्चारण को जिह्वामूलीय कहते हैं; इसी प्रकार 'प' या 'फ' के पूर्व ऐसा उच्चारण उपध्मानीय कहलाता है। दोनों को ≍ इसप्रकार चिह्नित किया जाता है। जैसे–कः करोति = क ≍ करोति, कः खादति = क ≍ खादति। ये दोनों ही जिह्वामूलीय हैं। कः पचति = क ≍ पचति, कः फलति = क ≍ फलति। ये दोनों उपध्मानीय हैं। वैदिक संहिताओं में इन उच्चारणों की महत्ता थी, आज ये विसर्ग मात्र हैं। कहीं-कहीं इन दोनों को 'अर्धविसर्ग' भी कहा गया है।

अयोगवाह

अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय और यम–इन पाँचों को अयोगवाह कहा जाता है। ये स्वतन्त्र रूप से नहीं रह सकते, किसी वर्ण से जुड़कर ही प्रयुक्त होते हैं (अकारादिना वर्णसमाम्नायेन संहिताः सन्तः ये वहन्ति आत्मलाभं ते अयोगवाहाः, वाज.प्राति. ८.१८ पर उवटभाष्य)। 'अ' के साथ अनुस्वार होने पर 'अं', विसर्ग होने पर 'अः' इत्यादि जुड़े प्रयोग होते हैं। अनुस्वार तथा विसर्ग स्वरवर्णों के बाद ही होते हैं (अचः परावनुस्वारविसर्गौ–**सिद्धान्तकौमुदी**)।

यम

प्रातिशाख्य-ग्रन्थों में इसकी चर्चा है। वर्गों के पञ्चमाक्षर के पूर्व किसी भी वर्गीय वर्ण की द्विरुक्ति होने पर बीच वाले वर्ण को 'यम' कहा जाता है। यम का मूल अर्थ है जुड़वाँ (Twin)। जुड़वें में दूसरा वर्ण यम है। जैसे–पलिक्क्नी में दूसरा क्। न पञ्चमाक्षर है, उसके पूर्व कवर्ग का क् दो बार आया है, दूसरा क् जो न के ठीक पूर्व है, यम है। इसी प्रकार चख्ख्नतुः–दूसरा ख्। अग्ग्निः–दूसरा ग्। जघ्घ्नतुः–दूसरा घ्। वैदिक उच्चारण में ही इसका उपयोग था। ऊपर कहा गया है कि यम भी अयोगवाह (Dependent letter) के अन्तर्गत था।

मात्रा

स्वर वर्णों के उच्चारण में मात्रा का महत्त्व है, जिससे उच्चारण में लगने वाले समय का बोध होता है। इसलिए स्वरों का कालगत भेद 'मात्रा' है। मात्रा की दृष्टि से स्वरों के तीन भेद हैं–ह्रस्व (एक मात्रा), दीर्घ (दो मात्राएँ) और प्लुत (तीन मात्राएँ)। इसी क्रम में व्यञ्जनों को अर्धमात्रिक कहा गया है। यह भी ज्ञातव्य है कि ह्रस्व को 'लघु' और दीर्घ को 'गुरु' भी कहते हैं। व्याकरण के सूत्रों तथा छन्दःशास्त्र में इन संज्ञाओं का विपुल प्रयोग हुआ है। अ,इ,उ,ऋ तथा ऌ ये पाँच वर्ण ह्रस्व (लघु) हैं। पुनः इनके दीर्घ रूप आ,ई,ऊ,ॠ होते हैं। ऌ का दीर्घ नहीं होता। ए,ऐ,ओ,औ–ये चारों भी दीर्घ (गुरु) हैं। यह ध्यातव्य है कि संयुक्त व्यञ्जन के पूर्व लघु अक्षर भी गुरु माना जाता है (संयोगे गुरु, पाणिनि १.४.११)। जैसे–'चक्र' में 'च' का 'अ' लघु होने पर भी 'क्र' के पूर्व होने से गुरु है, उसकी दो मात्राएँ मानी जाएँगी। अनुस्वार और विसर्ग भी जिसके साथ जुड़ते हैं, उसे गुरु कर देते हैं जैसे–रामं, रामः। 'म' का 'अ' दीर्घ नहीं होने पर भी गुरु है।

प्लुत—इस स्वर का प्रयोग दूर से पुकारने या एक स्वर पर ठहरे रहने की स्थिति में होता है। इसका कोई पृथक् संकेत-चिह्न नहीं होता। तीन मात्रा का स्वर लगने से स्वर के बाद ३ लिख देते हैं जैसे–राम३ अत्रागच्छ। वेदों में और संगीत में इसका प्रयोग होता है। प्लुत स्वर की सन्धि नहीं होती।

संयुक्त व्यञ्जन (संयोग, संयुक्ताक्षर)

जब दो या अधिक व्यञ्जनों के बीच कोई स्वरवर्ण नहीं रहता तो उसे 'संयोग' या संयुक्ताक्षर कहते हैं (हलोऽनन्तराः संयोगः, पाणिनिसूत्र १.१.७)। कुछ संयुक्त व्यञ्जनों में तो मिलने वाले व्यञ्जन स्पष्ट प्रतीत होते हैं (जैसे–क्ल, ध्म, म्न, च्य, श्ल इत्यादि) किन्तु लिपि-विज्ञान के कारण कुछ के रूप बदल जाते हैं जैसे–क्ष (क् + ष), त्र (त् + र), ज्ञ (ज् + ञ), श्र (श् + र), द्य (द् + य), प्र (प् + र), द्ध (द् + ध), र्प (र् + प), त्त (त् + त)–ध्यान रहे कि इन सभी उदाहरणों में 'अ' लगा हुआ है। वर्ण-विश्लेषण करते हुए उसे पृथक् किया जायेगा।

वर्ण-विश्लेषण

१. कर्तुम् – क् + अ + र् + त् + उ + म्
२. निर्मितिः – न् + इ + र् + म् + इ + त् + इ + विसर्ग
३. प्रभवितुम् – प् + र् + अ + भ् + अ + व् + इ + त् + उ + म्
४. श्रुतज्ञः – श् + र् + उ + त् + अ + ज् + ञ् + अ + विसर्ग

अभ्यास - १

१. प्रत्याहार किसे कहते हैं? इसकी रचना कैसे होती है?

२. निम्नांकित प्रत्याहारों में समाविष्ट वर्णों को लिखें—
अच्, हश्, खर्, शल्, यण्, अक्

३. वर्ण किसे कहते हैं? इसके भेदों को स्पष्ट करें।

४. स्वर और व्यञ्जन का सोदाहरण भेद लिखें।

५. इनमें भेद स्पष्ट करें–(क) अल्पप्राण-महाप्राण (ख) घोष-अघोष

६. आभ्यन्तर प्रयत्न का परिचय दें।

७. स्पर्श वर्णों का परिचय दें।

८. निम्नांकित शब्दों का वर्ण-विश्लेषण करें—
सिद्धान्तः, अञ्जलिः, व्यञ्जनम्, प्राच्याम्, गृहीतम्।

९. निम्नांकित संकेतों के वर्ण लिखें–
१. कण्ठ्य अघोष महाप्राण
२. मूर्धन्य घोष अल्पप्राण
३. ओष्ठ्य दीर्घ स्वर
४. तालव्य अघोष अल्पप्राण
५. दन्त्य घोष महाप्राण

१०. निम्नांकित वर्णों के उच्चारण स्थान, आभ्यन्तर प्रयत्न तथा बाह्य प्रयत्न लिखें—

	उच्चारण स्थान	आभ्यन्तर प्रयत्न	बाह्य प्रयत्न	
क्			१.	२.
फ्			१.	२.
य्			१.	२.
द्			१.	२.
श्			१.	२.
			१.	२.

*

२ पारिभाषिक शब्द
Technical terms

व्याकरण में दिये गये नियमों को समझने के लिये पारिभाषिक शब्दों को जानना आवश्यक है क्योंकि नियमों में इन शब्दों का प्रयोग संक्षिप्तता के लिए किया जाता है। पारिभाषिक शब्दों को व्याकरण में **'संज्ञा'** कहते हैं। पाणिनि ने कृत्रिम संज्ञाओं का भी प्रयोग किया है जैसे–टि, घु, भ, घ इत्यादि। ये परम्परा से रूढ़ हो गईं; अपने निर्दिष्ट अर्थों का बोध कराती हैं। अनेक संज्ञाएँ अकृत्रिम या सार्थक हैं जैसे–प्रातिपदिक, अव्यय, कारक, समास, सन्धि इत्यादि। बहुत-सी संज्ञाओं के लिए तो पाणिनि ने सूत्र दिये किन्तु अपने समय में सरलता से बोध्य कुछ संज्ञाओं के लक्षण उन्होंने नहीं दिये जैसे–कारक, समास, प्रत्यय इत्यादि। कभी-कभी कई संज्ञाएँ एक ही वस्तु का बोध कराती हैं जैसे–प्र आदि को प्रादि, उपसर्ग और गति भी कहा जाता है। कुछ संज्ञाएँ बाद में प्रचलित हुईं जैसे–आगम, आदेश (पूर्वरूप, पररूप एकादेश) इत्यादि। यहाँ केवल उपयोगी संज्ञा-शब्दों (पारिभाषिक शब्दों Technical terms) को समझाया गया है। कुछ अतिरिक्त शब्द तो उन प्रकरणों में भी आएँगे जहाँ उनका सीधा उपयोग है।

१. **अभ्यास** (Reduplication)—**पूर्वोऽभ्यासः** (पा.सू. ६.१.४)। धातु का द्वित्व होने पर पूर्ववर्ती अंश को 'अभ्यास' कहा जाता है। धातु का द्वित्व लिट् लकार में एवं सन् तथा यङ् प्रत्यय लगने पर होता है। जैसे–लिट् में पठ् पठ् + णल् (अ) होने पर पूर्व पठ् अभ्यास है। अभ्यास के कारण कई प्रकार के कार्य होते हैं जैसे–आदि हल् का शेष रहना, कवर्ग का चवर्ग होना (चकार, जगाम) इत्यादि।

२. **आगम** (Augment)—शब्द-रचना की प्रक्रिया में प्रकृति या प्रत्यय से जोड़ा जाने वाला शब्दांश 'आगम' कहलाता है। यह किसी को हटाता नहीं अतः 'मित्रवत् आगमः' माना जाता है। जिसमें यह जुड़ता है उसके पूर्व (यदि आगम टित् हो), बाद में (यदि आगम कित् हो) या उसके अन्तिम स्वर के बाद अर्थात् भीतर में (यदि आगम मित् हो) स्थापित होता है। पूर्व का उदाहरण–बालक + नुट् (न्) + आम् = बालकानाम्। यहाँ आम् (षष्ठी बहु.) को नुट् आगम हुआ है, जिसमें ट् अनुबन्ध (इत्) लगा है। वि + छेद = विच्छेद (त् आगम आया जो च् बन जाता है)। सम् + कृत = संस्कृत (स् आगम हुआ है)। त् (तुक्), स् (सुट्)– अपनी प्रकृति के अनुसार जुड़े हैं, उनके नियम हैं।

३. **आदेश** (Substitute)—एक के स्थान पर दूसरे का आना 'आदेश' है। वर्ण के स्थान पर वर्ण आता है या वर्ण-समुदाय के स्थान पर वर्ण-समुदाय आता है। जैसे–ब्रू धातु का वच् आदेश, अस् धातु का भू आदेश, इ का य् आदेश। जिसका मूल स्थान रहता है, उसे स्थानिन् (स्थानी) कहते हैं। आदेश सामान्यतः स्थानी के धर्म को धारण करते हैं (स्थानिवदादेशः) जैसे–क्त्वा प्रत्यय के स्थान पर ल्यप् आदेश होने से ल्यप् भी क्त्वा के कित्-धर्म को मानता है– प्र + हृ + क्त्वा (ल्यप् > य) = प्रहृत्य। सन्धि-प्रकरण पूर्णतः आदेश पर आश्रित है। वहाँ दो वर्णों का एकादेश भी होता है जिनमें वृद्धि, गुण, पूर्वरूप, पररूप जैसे एकादेश प्रसिद्ध हैं।

४. **उपधा** (Pen-ultimate)—**अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा** (पा.सू. १.१.६५) किसी शब्द के अन्तिम वर्ण के पूर्ववर्ती वर्ण को 'उपधा' कहते हैं। जैसे–राजन् के अन्तिम वर्ण न् के पहले 'अ' उपधा है। कभी-कभी इस उपधा का लोप होता है जैसे–राज्ञा, राज्ञाम्, राज्ञी में (राजन् + आ)। इसी प्रकार ह्रस्वोपध, दीर्घोपध, अकारोपध, लघूपध इत्यादि शब्दों में उपधा का उपयोग हुआ है।

५. **उपपद—तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्** (पा.सू. ३.१.९२)। कृत् प्रत्ययों के विधिसूत्रों में आये हुए सप्तम्यन्त पद के उदाहरण-रूप जो शब्द कृदन्त शब्दों के पूर्व में लगते हैं, वे 'उपपद' कहलाते हैं। जैसे–'कर्मण्यण्' एक विधिसूत्र है जिसमें 'कर्मणि' सप्तम्यन्त है, अण् प्रत्यय का विधान धातु से हुआ है। उदाहरण–कुम्भं करोति–कुम्भ + कृ + अण् = कुम्भकारः। यहाँ 'कर्मणि' का उदाहरण कुम्भ (कर्म) है, अतः वह उपपद है। कृ से अण् तभी लगेगा जब कोई कर्म उपपद हो (जैसे–काव्यकारः, स्वर्णकारः, मालाकारः) जलं ददाति = जल + दा + क = जलदः। 'जल' उपपद है। संक्षेप में, जब कोई कृदन्त शब्द तभी बने जब वह किसी पूर्व शब्द के रहने का उपबन्ध (शर्त) लगा दे तो वह पूर्व शब्द 'उपपद' है। 'सरसिजम्' में सरसि उपपद है। उपपद का समास परवर्ती कृदन्त के साथ होता है। (उपपद का अर्थ 'पद के समीप' है, कारकेतर सम्बन्ध से उपपद विभक्ति भी होती है।)

६. **उपसर्ग** (Prefix)—**उपसर्गाः क्रियायोगे** (पा.सू. १.४.५९)। धातुओं के पूर्व जुड़ने वाले प्र, परा, अप, सम् आदि अव्यय-रूप शब्द उपसर्ग कहलाते हैं। उपसर्ग स्वयं तो अर्थ नहीं रखते किन्तु उनसे जुड़ने वाले शब्द के अर्थ पर प्रभाव पड़ता है। जैसे–प्रहार, आहार, संहार, विहार, उपहार, परिहार के अर्थ उपसर्गों के कारण भिन्न हैं। उपसर्गों की संख्या बीस है (निस्-निर्, दुस्-दुर् को पृथक

मानने पर बाईस)। उपसर्ग कहीं धात्वर्थ का विरोधी होता है, कहीं उसका अनुगमन करता है और कहीं उसकी विशिष्टता प्रकट करता है।

७. **कृत्** (Primary suffix)—**कृदतिङ्** (पा.सू. ३.१.९३)। धातु से होने वाले तिङ् से भिन्न प्रत्ययों को 'कृत्' कहा जाता है। जैसे–पठ् + क्त = पठितम्। क्त, तुमुन्, क्त्वा, अण् आदि धातुविहित प्रत्यय कृत् हैं। कृत् के तीन भेद हैं–कृत्य, कृत् तथा उणादि। कृत्य कर्म और भाव अर्थ में होते हैं (जैसे–तेन पठितव्यम्), कृत् प्रत्यय सामान्यतः कर्ता अर्थ में (पठति इति पाठकः, पठ् + ण्वुल्), किन्तु अन्य अर्थों में भी होते हैं। वही स्थिति उणादि की भी है।

८. **कृत्य**—तव्यत्, तव्य, अनीयर्, यत्, क्यप् और ण्यत्–इन धातुविहित छह प्रत्ययों को 'कृत्य' कहते हैं। ये प्रत्यय कर्म और भाव का अर्थ देते हैं। सामान्यतः योग्यता का बोध इनसे होता है जैसे–पठितुं योग्यम् = पठनीयम् (अनीयर्), पठितव्यम् (तव्य), पाठ्यम् (ण्यत्)। तेनेदं पठनीयं पुस्तकम् (कर्मवाच्य), तेन सम्प्रति शयनीयम् (भाववाच्य)।

९. **गुण—अदेङ् गुणः** (पा.सू. १.१.२)। अ,ए,ओ इन तीन स्वरों को 'गुण' कहते हैं। स्वर-संधि के अन्तर्गत गुण एकादेश होने पर दो स्वरों के मेल से अ (र्), ए,ओ होता है जो गुणसन्धि कहा जाता है (आद् गुणः)। कृत्-प्रत्यय होने पर इ का ए,उ का ओ होना भी गुण है जैसे–लिख् + अनीयर् = लेखनीयम्। रुज् + घञ् = रोगः।

१०. **घि—शेषो घ्यसखि** (पा.सू. १.४.७९)। पति और सखि शब्दों को छोड़कर इकारान्त और उकारान्त शब्दों को 'घि' कहते हैं। मुनि, रवि, गुरु, साधु आदि घि-संज्ञक हैं जिनके रूपों में कुछ स्थितियों में गुण आदेश होता है–मुनेः, गुरोः। तृतीया एकवचन में 'ना' होता है।–मुनिना, गुरुणा।

११. **टि—अचोऽन्त्यादि टि** (पा.सू. १.१.६४)। किसी शब्द के अन्तिम स्वर को टि कहते हैं, यदि शब्द व्यञ्जनान्त है तो 'व्यञ्जनयुक्त अन्तिम स्वर' टि होता है। जैसे–राजन् में 'अन्' अंश टि है। कहीं-कहीं टि के लोप का विधान है जैसे–राजन् + य = राज्यम्। धर्म + यत् = धर्म्यम्।

१२. **तद्धित**—प्रातिपदिक से लगने वाले वे प्रत्यय जो सुप् तथा स्त्री-प्रत्यय से भिन्न हों 'तद्धित' कहलाते हैं। ये संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा अव्यय से लगते हैं। जैसे–शिव + अण् = शैवः, अस्मद् + छ (ईय) = अस्मदीयः, मधुर + ष्यञ् = माधुर्यम्, अत्र + त्यप् = अत्रत्यः। यहाँ अण्, छ, ष्यञ्, त्यप्–ये सभी तद्धित हैं। इन्हें Secondary suffix कहा जाता है।

१३. **द्वित्व** (Doubling)—जब व्याकरण की प्रक्रिया में धातु को दुहराया जाता है (दो बार प्रयोग होता है) तो इसे 'द्वित्व' कहते हैं। 'अभ्यास' के प्रसंग में यह बताया गया है कि लिट् लकार में तथा सन्-प्रत्यय और यङ्-प्रत्यय लगने पर धातु का द्वित्व होता है। लिट् लकार में–पठ् पठ् + णल् = पपाठ। सन्-प्रत्यय में–पठ् पठ् + सन् + लट् = पिपठिषति (पठितुम् इच्छति)। यङ् प्रत्यय में पठ् पठ् + यङ् + लट् = पापठ्यते (पुनः पुनः पठति)। द्वित्व पद के भीतर प्रक्रिया (पद-रचना) में होता है।

१४. **द्विरुक्ति (द्विर्वचन)**—पद का विशेष अर्थ के कारण दो बार प्रयोग होना द्विरुक्ति या द्विर्वचन है। जैसे–मधुरमधुरम् (मधुर-प्रकारेण), ग्रामे ग्रामे सभा भवति (वीप्सा या व्याप्ति का अर्थ, प्रत्येक गाँव में सभा हो रही है), स खादति खादति (नित्यता का अर्थ, वह खाये चला जा रहा है), श्रुत्वा श्रुत्वा मोदते (सुन-सुनकर प्रसन्न हो रहा है)। देखें–पा.सू.–प्रकारे गुणवचनस्य (८.१.१२), नित्यवीप्सयोः (८.१.४), यथास्वे यथायथम् (८.१.१४)। यथायथम् (ठीक-ठीक) जानाति। यह अव्ययीभाव समास है।

१५. **धातु** (Roots)—क्रिया-पद के मूल सार्थक एकांश (Unit) को 'धातु' कहते हैं। जैसे–गम्, पच्, धाव्, इत्यादि। इनसे तिङन्त-कृदन्त शब्द और प्रत्ययान्त धातु बनाये जाते हैं। धातु मौलिक भी होते हैं, प्रत्ययान्त भी। उपर्युक्त धातु मौलिक (मूल धातु) हैं। पाणिनि ने इनके लिए सूत्र दिया है–भूवादयो धातवः (१.३.१)। दूसरी ओर प्रत्ययान्त धातु वे हैं जिनमें सन्, क्यच्, क्यङ्, णिच्, यङ् आदि प्रत्यय लगे होते हैं–**सनाद्यन्ता धातवः** (पा.सू. ३.१.३२)। पठ् + सन् = पिपठिष, पुत्र + क्यच् = पुत्रीय, सिंह + क्यङ् = सिंहाय, गम् + णिच् = गमय्, पठ् + यङ् = पापठ्य–ये सब भी धातु होने के कारण तिङ् प्रत्यय ग्रहण करते हैं–पिपठिषति, पुत्रीयति, सिंहायते, गमयति, पापठ्यते।

१६. **निष्ठा—क्तक्तवतू निष्ठा** (पा.सू. १.१.२६)। क्त और क्तवतु इन दो भूतकालिक कृत् प्रत्ययों को पाणिनि ने 'निष्ठा' कहा है। इस संज्ञा का प्रयोग अनेक सूत्रों में मिलता है।

१७. **पद** (Term)—**सुप्तिङन्तं पदम्** (पा.सू. १.४.१४)। सुबन्त और तिङन्त को 'पद' कहते हैं जैसे–रामः, धावति, तस्य, अस्माकम्, अपठत् इत्यादि। गौतम ने न्यायसूत्र में 'विभक्त्यन्ताः पदम्' कहकर इसी का समर्थन किया है। वस्तुतः वाक्य में सीधे प्रयुक्त होने की क्षमता वाले शब्दों को 'पद' कहा गया है क्योंकि 'अपद' का वाक्य में प्रयोग नहीं होता (नापदं प्रयुञ्जीत)। अव्यय भी सुबन्त माने जाते हैं जिससे वाक्य में सीधे प्रयुक्त होते हैं। 'शब्द' बहुत व्यापक है, उसमें पद-

अपद दोनों हैं, वह ध्वन्यात्मक (कं टं चर्-मर् इत्यादि) और वर्णात्मक (सार्थक जैसे गज, मुनि) दोनों होता है।

१८. **प्रकृति**—विभक्ति से रहित मूल शब्द को 'प्रकृति' कहते हैं। इसके दो भेद हैं–धातु (तिङ् या कृत् प्रत्यय ग्रहण करने वाला) एवं प्रातिपादिक (सुप्, स्त्रीप्रत्यय या तद्धित प्रत्यय ग्रहण करने वाला)।

१९. **प्रत्यय**—प्रकृति (धातु या प्रातिपादिक) से जुड़ने वाले शब्दांश को 'प्रत्यय' कहते हैं। 'गजः' में गज प्रकृति है, सु (स् = :) प्रत्यय है। सुप्, तिङ्, कृत्, तद्धित, स्त्रीप्रत्यय, समासान्त, सन् आदि–ये सात प्रकार के प्रत्यय हैं। पाणिनि ने प्रत्यय के विषय में दो अधिकार-सूत्र दिये हैं–प्रत्ययः, परश्च (३.१.१-२) अर्थात् यहाँ से प्रत्यय-प्रकरण शुरू हुआ जो **अष्टाध्यायी** के पञ्चमाध्याय तक चलेगा; यह प्रत्यय प्रकृति के बाद लगता है।

२०. **प्रातिपदिक—अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्, कृत्तद्धितसमासाश्च** (पा.सू. १.२.४५-६) किसी ऐसे सार्थक शब्द को 'प्रातिपदिक' कहते हैं जिससे सुप् प्रत्यय, स्त्री-प्रत्यय और तद्धित-प्रत्यय लग सकें। जैसे–बालक, सखि, साधु, मातृ, वारि, अस्मद् इत्यादि। पाणिनि ने उपर्युक्त दो सूत्रों में इसका लक्षण दिया है। अव्युत्पन्न शब्दों की दृष्टि से पहला लक्षण है कि सार्थक शब्दमात्र (चाहे वे कहीं से संस्कृत में आये हों) प्रतिपादिक हैं जिनमें धातु, प्रत्यय और प्रत्ययान्त से भिन्न शब्द हों। गज, मीन, कन्दुक, चन्दन आदि बाहरी शब्दों का समावेश इसमें हो जाता है। पुनः व्युत्पन्न शब्दों की दृष्टि से दूसरा लक्षण है कि कृत्-प्रत्ययान्त, तद्धित-प्रत्ययान्त और समास भी प्रातिपदिक हैं जैसे–पाठ्य, शैव, राजपुरुष इत्यादि। सबसे सुप्-विभक्ति लगती है और पद बनता है।

२१. **विकरण**—उन प्रत्ययों को 'विकरण' कहा जाता है जो धातु एवं तिङ् के बीच में लगकर लकार या वाच्य का बोध कराते हैं। विविध धातु गणों का भी इनसे बोध होता है जैसे–भ्वादिगण में शप्, दिवादि में श्यन्, स्वादि में श्नु, तुदादि में श, रुधादि में श्नम्, तनादि में उ, क्र्यादि में श्ना विकरण हैं। अदादि में शप् का लोप एवं जुहोत्यादि में श्लु (द्वित्व का प्रयोजक) होता है। भाव-कर्म वाच्य में यक् (जैसे–गम्यते), प्रत्ययान्त लिट् लकार में आम् (जैसे–कथयामास), लृट् लकार में स्य (जैसे–गमिष्यति), लुट् लकार में तास् (जैसे–भविता), लुङ् लकार में च्लि तथा उसके विविध आदेश (सिच्, अङ्, चङ्, चिण्), लेट् लकार में सिप्–ये सब विकरण हैं।

२२. **विभक्ति**—सुप् के सु औ जस् इत्यादि तीनों वचनों के प्रत्यय तथा तिङ् के तीनों पुरुषों और वचनों के प्रत्यय 'विभक्ति' कहलाते हैं। भट्टोजिदीक्षित ने कहा है–सुप्

तिङौ विभक्तिसंज्ञौ स्तः। पा.सू.–विभक्तिश्च (१.४.१०४)। फिर भी इसका प्रयोग मुख्यतः सु औ जस् आदि सुप् प्रत्ययों के अर्थ में होता है जिन्हें उपपदविभक्ति और कारक विभक्ति इन दो भेदों में रखा जाता है। (देखें– **विभक्त्यर्थ-प्रकरण**)।

२३. **वृद्धि—वृद्धिरादैच्** (पा.सू. १.१.१)—आ,ऐ,औ–इन तीन स्वरों को 'वृद्धि' कहते हैं। ये स्वर किसी शब्द में मूलतः रह सकते हैं (जैसे–राष्ट्र में) या आदेश के रूप में उत्पन्न होते हैं जैसे–पठ् + घञ् = पाठः, ईश्वर + ष्यञ् = ऐश्वर्यम्, उपचार + ठक् (इक) = औपचारिकम्। स्वर-सन्धि के अन्तर्गत वृद्धि-एकादेश होता है, दो स्वरों की सन्धि से वृद्धि के अक्षर बनते हैं जैसे–एक + एकम् = एकैकम्, महा + ओषधिः = महौषधिः, दश + ऋणः = दशार्णः।

२४. **सन्धि** (Euphonic combination)—दो स्वरों या दो व्यञ्जनों या स्वर-व्यञ्जन के परस्पर मिलने से जो विकार उत्पन्न हो वह 'सन्धि' है। यह विकार कभी दोनों के **एकादेश** के रूप में (जैसे–रमा + ईश = रमेश, ते + अपि = तेऽपि, शक + अन्धु = शकन्धु), कभी **एक की ही विकृति** के रूप में (जैसे–यदि + अपि = यद्यपि, वाक् + ईशः = वागीशः) और कभी **दोनों की विकृति** के रूप में (जैसे–तत् + हितम् = तद्धितम्) होता है। सन्धि पद-निर्माण के क्रम में आन्तरिक (Internal) भी होती है। (जैसे–गो + ए = गवे, राम + सु =रामः, साधु + ङस् = साधोः) और पदान्त-पदादि के बीच बाह्यरूप (External) की भी होती है (जैसे–रामः + अपि = रामोऽपि, मुनिः + अस्ति = मुनिरस्ति)। दोनों स्थितियों में नियम एक ही हैं। **सिद्धान्तकौमुदी** में अच्सन्धि, प्रकृतिभाव, हल्सन्धि, विसर्गसन्धि और स्वादिसन्धि के रूप में 'पञ्चसन्धि' का विवेचन है।

२५. **समास—समसनम् एकपदीभवनं समासः**। दो या अधिक पदों का अर्थ सहित ऐसा मेल हो जाना 'समास' कहलाता है, जिसमें घटक पद एकपद के रूप में रहें। सम्बन्ध तथा घटक पदों के स्वरूप के आधार पर इसके भेद होते हैं। समास में विशेष शक्ति होती है। भाषा का संक्षेपण तथा प्रभाव बढ़ जाता है। इस पर व्याकरण-शास्त्र में बहुत गम्भीर विवेचन है। (विशेष समास-प्रकरण में देखें।)

२६. **सम्प्रसारण** (Vocalization)—**इग्यणः सम्प्रसारणम्** (पा.सू. १.१.४५)। यण् (य व र ल) के स्थान पर क्रमशः इक् (इ उ ऋ ऌ) हो जाना 'सम्प्रसारण' कहलाता है। यण् सन्धि का यह ठीक विपरीत है। य का इ-यज् का इष्ट, इज्या। व् का उ-स्वप् का सुप्त, वच् का उक्त। र का ऋ-ग्रह का गृहीत।

२७. **सवर्ण—तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्** (पा.सू. १.१.९)–उच्चारण स्थान तथा आभ्यन्तर प्रयत्न की दृष्टि से जो वर्ण जिस वर्ण के समान हो, वह उसका 'सवर्ण'

कहा जाता है। जैसे–अ आ का सवर्ण है, इ ई का सवर्ण है। इसी प्रकार द् ध् परस्पर सवर्ण हैं। अकः सवर्णे दीर्घः (६.१.१०१), झरो झरि सवर्णे (८.४.६५) इत्यादि सूत्रों में सवर्ण संज्ञा का प्रयोग है। स्वर तथा व्यञ्जन वर्ण परस्पर सवर्ण नहीं होते। स्वर का स्वर से और व्यञ्जन का व्यञ्जन से ही सावर्ण्य होता है।

२८. **स्त्रीप्रत्यय** (Feminine suffixes)—किसी प्रातिपदिक को स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए जो प्रत्यय लगाये जाते हैं, उन्हें 'स्त्री-प्रत्यय' कहते हैं। इनकी संख्या आठ हैं–टाप्, डाप्, चाप् (तीनों में आ बचता है), ङीप्, ङीष्, ङीन् (तीनों में ई बचता है), ऊङ् (ऊ) तथा ति। जैसे–अज + टाप् = अजा, सीमन् + डाप् = सीमा, सूर्य + चाप् = सूर्या। श्रीमत् + ङीप् = श्रीमती, नर्तक + ङीष् = नर्तकी, गौतम + ङीन् = गौतमी। पङ्गु + ऊङ् = पङ्गूः। युवन् + ति = युवतिः।

२९. **स्वार्थिक प्रत्यय**—जिन प्रत्ययों का कोई अर्थ-विशेष निर्दिष्ट न हो उन्हें 'स्वार्थिक' कहा जाता है (**महाभाष्य** ३.२.४ का वार्तिक–अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे भवन्ति)। प्रकृति के अर्थ में ये प्रत्यय कोई परिवर्तन नहीं करते, उसी का अर्थ स्पष्ट करते हैं। तद्धित प्रत्ययों के अन्तर्गत ये गिने गये हैं (**अष्टाध्यायी** ५.३.३६ से ५.४.६७ तक)। समासान्त प्रत्यय भी स्वार्थिक कहे जा सकते हैं। स्वार्थिक प्रत्यय प्रकृति के अनुरूप लिङ्ग और वचन का ग्रहण करते हैं। उदाहरण–बाल + क = बालकः, उच्चैः + अकच् (टि के पूर्व) = उच्चकैः, मया + अकच् = मयका (मेरे द्वारा)।

३०. **हल्**—व्यञ्जन वर्णों को हल् कहते हैं। यह एक प्रत्याहार है जो 'ह य व र ट्' के ह से लेकर 'हल्' के ल् तक के वर्णों का बोधक है जिसमें सभी व्यञ्जन समाविष्ट हैं। स्वरहीन व्यञ्जन को निर्दिष्ट करने के लिए जो नीचे (्) चिह्न लगाया जाता है, उसे हलन्त कहते हैं जैसे–क्, प्, स्, न्।

अभ्यास - २

१. कृत् प्रत्यय किसे कहते हैं? उसके भेदों का उल्लेख करें।

२. धातु के भेदों का परिचय दें।

३. द्वित्व और द्विरुक्ति का सोदाहरण अन्तर स्पष्ट करें।

४. निम्नलिखित पारिभाषिक पदों का सोदाहरण परिचय दें :
अभ्यास, आगम, आदेश, उपधा, प्रत्यय।

५. सन्धि और समास का स्वरूप बताकर उनमें अन्तर बतायें।

६. निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का सही उत्तर चुनें :

(क) औ वर्ण है—

i) गुण iii) टि

ii) वृद्धि iv) उपधा

(ख) राजन् में अन् है—

i) उपधा iii) प्रत्यय

ii) धातु iv) टि

(ग) गज है—

i) धातु iii) प्रत्यय

ii) प्रातिपदिक iv) निष्ठा

(घ) 'जलदः' शब्द में जल है—

i) प्रत्यय iii) उपपद

ii) प्रातिपदिक iv) गुण

(ङ) तव्य कैसा प्रत्यय है?

i) कृत्य iii) सुप्

ii) तद्धित iv) स्त्रीप्रत्यय

७. शब्द और पद में सोदाहरण अन्तर बतायें।

*

3 सन्धि-प्रकरण
Euphonic Combination

सन्धि को पाणिनि ने 'संहिता' कहकर इसका लक्षण दिया है–**परः संनिकर्षः संहिता** (१.४.१०९) अर्थात् वर्णों का अत्यधिक निकटवर्ती हो जाना 'संहिता' है। वेदों में एक पद का अन्तिम वर्ण दूसरे पद के प्रथम वर्ण के अत्यन्त समीप आकर शीघ्र उच्चारण के लिए उपयोगी होता था तो वह 'संहिता का पाठ' कहलाता था। पाणिनि से पहले प्रातिशाख्यों और निरुक्त में पद-पाठ के मौलिक रूप को 'संहिता' कहते थे (**पदप्रकृतिः संहिता**)। कुल मिलाकर संहिता में पदों की बाह्य सन्धि पर ही बल था। पद-रचना के विश्लेषण के क्रम में पाणिनि ने आन्तरिक सन्धि को भी समाविष्ट किया यद्यपि इसका नाम भी 'संहिता' ही दिया। वस्तुतः वर्णों के योग से कहीं पर भी (पद के भीतर या बाहर) **विकार** हो रहा हो तो वह 'सन्धि' है। सन्धि में विकार अनिवार्य है। विकार न होना 'वर्ण-सम्मेलन' या 'संहिता' मात्र है जैसे–अहम् + एव = अहमेव। यहाँ न म् बदला है न ए बल्कि लिपि के सौन्दर्य की दृष्टि से म् + ए = मे हो गया। अन् + उदारः = अनुदारः, तत् + त्वम् = तत्त्वम्, निर् + अक्षरः = निरक्षरः–ये कुछ उदाहरण हैं। किन्तु निः + अक्षरः से यदि निरक्षरः होता है तो सन्धि है क्योंकि विसर्ग का र् विकार हुआ है।

कुछ लोग भ्रमवश 'वर्ण-सम्मेलन' को सन्धि समझकर त्वमपि, त्वमेव, धनमस्ति इत्यादि अभिव्यक्तियाँ देकर यहाँ सन्धि-विच्छेद करने का प्रश्न देते हैं। यहाँ अधिकतम 'पद-विच्छेद' करने को कहा जा सकता है।

सन्धि और समास (अन्तर)

सन्धि 'वर्णविधि' है। अर्थ का महत्त्व रहने पर भी इसमें अर्थों की सम्बद्धता अनिवार्य नहीं, केवल वर्णों पर ध्यान रहता है। समास 'पदविधि' है, इसमें पदों के अर्थों की सम्बद्धता महत्त्व रखती है, उसके बिना समास नहीं होता। समास की स्थिति में सन्धि का अवसर हो तो वह अनिवार्य है। भानु और उदय का समास होने पर 'भानूदय' (दीर्घसन्धि) कहना आवश्यक है। वाक्य में सन्धि करना आवश्यक नहीं है जैसे–'दधि आनय' कहें या 'दध्यानय' भी कह सकते हैं। यह दूसरी बात है कि सन्धि से वाक्य का संक्षेपण (यहाँ पाँच अक्षरों का चार ही अक्षर होना) होता है और सौन्दर्य भी बढ़ता है। सन्धि से कहीं-कहीं अनुप्रास, यमक आदि अलंकार भी उत्पन्न होते हैं जैसे–विलसति **हरिरिह** सरसवसन्ते (**गीतगोविन्द**)। **शमरतेऽमरतेजसि** पार्थिवे (रघुवंश ९.४)।

सन्धि के भेद

सन्धि के तीन भेद हैं–**स्वरसन्धि** (स्वर का स्वर से योग होने पर विकार होना), **व्यञ्जनसन्धि** (व्यञ्जन के बाद स्वर या व्यञ्जन होने से व्यञ्जन में विकार होना) तथा **विसर्गसन्धि** (विसर्ग के बाद स्वर या व्यञ्जन होने से विसर्ग का परिवर्तन)। स्वरसन्धि के क्रम में '**प्रकृतिभाव**' (सन्धि का अभाव) भी होता है। इसमें जुड़ने वाले पद पूर्ववत् (प्रकृतिरूप में ही) रह जाते हैं।

स्वरसन्धि (Vowel Sandhi)

पूर्वशब्द के अन्त में तथा बाद के शब्द के आरम्भ में स्वरवर्ण रहें और उन स्वरों के मिलने से विकार उत्पन्न हो तो इसे 'स्वरसन्धि' कहते हैं। इसके निम्नलिखित सात भेद हैं—

१. **दीर्घसन्धि : अकः सवर्णे दीर्घः** (पा.सू. ६.१.१०१)

ह्रस्व या दीर्घ अ इ उ ऋ ऌ (अक् प्रत्याहार) के बाद सवर्ण ह्रस्व या दीर्घ स्वर हो दोनों का दीर्घ एकादेश होता है। जैसे—

अ + अ = आ	अद्य + अवधि = अद्यावधि
	देव + अर्चनम् = देवार्चनम्
अ + आ = आ	नर + आकृतिः = नराकृतिः
	देव + आलयः = देवालयः
आ + अ = आ	विद्या + अर्थी = विद्यार्थी
	तथा + अस्तु = तथास्तु
आ + आ = आ	शिक्षा + आयतनम् = शिक्षायतनम्
	महा + आत्मा = महात्मा
इ + इ = ई	गिरि + इन्द्रः = गिरीन्द्रः
इ + ई = ई	अधि + ईश्वरः = अधीश्वरः
ई + इ = ई	नदी + इव = नदीव
ई + ई = ई	मही + ईशः = महीशः
उ + उ = ऊ	भानु + उदयः = भानूदयः
उ + ऊ = ऊ	लघु + ऊर्मिः = लघूर्मिः
ऊ + ऊ = ऊ	भू + ऊर्ध्वम् = भूर्ध्वम्
ऋ + ऋ = ॠ	पितृ + ऋणम् = पितॄणम्

मिश्रित उदाहरण (अभ्यासार्थ)—रामायणम्, महत्त्वाकांक्षी, विद्यालयः, तत्रागतः, रत्नाकरः, परीक्षा, कपीशः, रजनीशः, लक्ष्मीश्वरः, देशान्तरः, गुरूपदेशः, धर्मार्थः, च + आसीत्, सेवा + अर्थः, न + अस्ति, न + आसीत्, च + अयम्, स्वादु + उदकम्, महती + इच्छा, लोक + अपवादः, महा + आशयः, कपि + ईश्वरः।

२. गुणसन्धि : आद्गुणः (पा.सू. ६.१.८७)

अ वर्ण (अ आ) के बाद इ या ई हो तो दोनों मिलकर 'ए', उ या ऊ हो तो दोनों का 'ओ' तथा ऋ हो तो दोनों का 'अर्' हो जाता है। अ,ए,ओ गुण के अक्षर हैं। ऋ का र् से सम्बन्ध है, अतः उसके कारण अ से र् लग जाता है तब अर् होता है। जैसे—

अ + इ = ए	तव + इदम् = तवेदम्
आ + इ = ए	तथा + इति = तथेति
अ + ई = ए	परम + ईश्वरः = परमेश्वरः
आ + ई = ए	महा + ईशः = महेशः
अ + उ = ओ	सूर्य + उदयः = सूर्योदयः
	तस्य + उपरि = तस्योपरि
आ + उ = ओ	तथा + उवाच = तथोवाच
अ + ऊ = ओ	समुद्र + ऊर्मिः = समुद्रोर्मिः
आ + ऊ = ओ	सदा + ऊर्ध्वम् = सदोर्ध्वम्
अ/आ + ऋ = अर्	परम + ऋषिः = परमर्षिः
	सप्त + ऋषिः = सप्तर्षिः
	उत्तम + ऋणः = उत्तमर्णः
	महा + ऋषिः = महर्षिः

मिश्रित उदाहरण (अभ्यासार्थ)—लम्बोदरः, नरेन्द्रः, यथेष्टम्, वर्षर्तुः, रमेशः, देवेशः, करभोरूः, महोद्योगः, हितोपदेशः, जलोपमम्, नीलोत्पलम्, गणेशः, देवर्षिः, लता + इयम्, महा + उदयः, वसन्त + ऋतुः, तथा + इदम्, गङ्गा + ऊर्मिः, अधम + ऋणः, चन्द्र + उज्ज्वलः, नर + ईशः।

३. वृद्धिसन्धि : वृद्धिरेचि (६.१.८८)

अ वर्ण (अ आ) के बाद एच् प्रत्याहार (ए,ओ,ऐ,औ) आये तो दोनों का वृद्धि एकादेश हो जाता है। वृद्धि के अक्षर आ ऐ और औ हैं। तदनुसार अ आ के बाद ए ऐ आये तो दोनों के स्थान में ऐकार, ओ औ आये तो दोनों के स्थान में औकार होता है। कुछ स्थितियों में अ आ के बाद ऋ आने से आर् भी होता है। जैसे—

अ + ए = ऐ	एक + एकम् = एकैकम्
आ + ए = ऐ	तथा + एव = तथैव
अ + ऐ = ऐ	मत + ऐक्यम् = मतैक्यम्
आ + ऐ = ऐ	महा + ऐश्वर्यम् = महैश्वर्यम्
अ + ओ = औ	जल + ओघः = जलौघः
	वन + ओकाः = वनौकाः (बन्दर)

आ + ओ = औ   महा + ओषधिः = महौषधिः
अ + औ = औ   तव + औदार्यम् = तवौदार्यम्
आ + औ = औ   महा + औषधम् = महौषधम्
अ + ऋ = आर्   शीत + ऋतः = शीतार्तः (शीतेन ऋतः)
(तृतीया तत्पुरुष समास में ही आर् होता है–ऋते च तृतीयासमासे)
              दुःख + ऋतः = दुःखार्तः (दुःख से पीड़ित)
आ + ऋ = आर्   क्षुधा + ऋतः = क्षुधार्तः (क्षुधया ऋतः)

मिश्रित उदाहरण (अभ्यासार्थ)—महौजः, ममैतत्, श्रुत्वैव, दिव्यौषधिः, अद्यैव, तत्रैव, सदैव, नैनम्, सा + एषा, हृदय + औदार्यम्, तव + ओष्ठः, गुण + ऐक्यम्, वित्त + एषणा, जल + ओकाः, मेघ + ओघः।

वृद्धि सन्धि की विचित्रताएँ

१. स्व के बाद ईर या ईरिन् होने से वृद्धि एकादेश होता है (स्वादीरेरिणोः)–स्व + ईरः = स्वैरः, स्व + ईरी = स्वैरी।

२. अकारान्त उपसर्ग के बाद ए से आरम्भ होने वाले इ धातु के (जैसे एति, एषि, एमि) रूप तथा एध् धातु के रूप हों तो वृद्धि एकादेश होता है। यथा–उप + एति = उपैति, अव + एमि = अवैमि, उप + एधते = उपैधते। किन्तु अव + आ + इहि = अवेहि। यहाँ धातु एकारादि नहीं है।

३. अक्ष के बाद ऊहिनी रहने से भी वृद्धि होती है, अक्ष + ऊहिनी = अक्षौहिणी।

४. अवर्णान्त उपसर्ग के बाद ऋकारादि धातु रहने से भी वृद्धि (आर्) होती है–प्र + ऋच्छति = प्रार्च्छति, उप + ऋच्छति = उपार्च्छति।

५. अकारान्त पूर्वपद के बाद समास का उत्तरपद ओतु (= मार्जार) और ओष्ठ हो तो विकल्प से ओ या औ एकादेश होता है–बिम्ब + ओष्ठः = बिम्बोष्ठः, बिम्बौष्ठः। स्थूल + ओतुः = स्थूलौतुः। समास न होने पर केवल वृद्धि होती है–तवौष्ठः, ममौष्ठः।

४. यण् सन्धि : इको यणचि (पा.सू. ६.१.७७)

इक् (इ उ ऋ ऌ) का क्रमशः यण् (य् व् र् ल्) हो जाता है यदि बाद में असवर्ण (विजातीय) स्वरवर्ण हो। यहाँ दीर्घ, गुण या वृद्धि के समान दो वर्णों का एकादेश नहीं है, केवल एक वर्ण का विकार (आदेश) है। जैसे—

इ/ई का य्   इति + अपि = इत्यपि, इति + आदि = इत्यादि, सुधी + उपास्यः = सुध्युपास्यः, नदी + अम्बु = नद्यम्बु, अति + आवश्यकः = अत्यावश्यकः, दधि + अत्र = दध्यत्र।

उ/ऊ का व्	मधु + अरिः = मध्वरिः, अनु + अयः = अन्वयः, अनु + एषणम् = अन्वेषणम्, जम्बू + आदिः = जम्ब्वादिः, वधू + आगमनम् = वध्वागमनम्, बहु + अपेक्षा = बह्वपेक्षा।
ऋ का र्	पितृ + अंशः = पित्रंशः, मातृ + आदेशः = मात्रादेशः, धातृ + अनुमतिः = धात्रनुमतिः, पितृ + औदार्यम् = पित्रौदार्यम्।
ऌ का ल्	ऌ + आकृतिः = लाकृतिः (नौ के अंक का आकार–ऌ और नौ का अंक एक समान लिखा जाता था)।

मिश्रित उदाहरण (अभ्यासार्थ)—अत्याचारः, सख्युक्तम्, अत्युक्तिः, स्वागतम्, साध्विदम्, इत्युक्त्वा, अभ्युदयः, साध्वाचारः, मातृ + अनुरागः, भ्रातृ + ऐश्वर्यम्, पितृ + अर्थम्, गति + अर्थकः, प्रति + अक्षरम्, पठतु + इयम्।

५. **अयादि सन्धि : एचोऽयवायावः** (पा.सू. ६.१.७८)

एच् प्रत्याहार के वर्णों (ए ओ ऐ औ) के स्थान में क्रमशः अय् अव् आय् आव् हो जाता है, यदि पर में कोई भी स्वरवर्ण हो। पद के भीतर यह सन्धि अनिवार्य है जिसका कोई विकल्प नहीं। उदाहरण—

ए का अय्	ने + अनम् = नयनम्, शे + अनम् = शयनम्, चे + अनम् = चयनम्, जे (जि) + अः = जयः।
ओ का अव्	भो + अनम् = भवनम्, पो + अनः = पवनः, भो (भू) + अः = भवः, लो (लू) + अनम् = लवनम् (काटना)।
ऐ का आय्	नै + अकः = नायकः, गै + अनम् = गायनम्, गै + अ + ति = गायति, गै + अकः = गायकः।
औ का आव्	पौ (पू) + अनः = पावनः, पौ + अकः = पावकः, भौ (भू) + उकः = भावुकः, भौ + अना = भावना।

पदान्त के उदाहरण (मिश्रित)—असौ + अत्र = असावत्र, तौ + अपि = तावपि, मुने + आगच्छ = मुनयागच्छ, श्रियै + उद्यतः = श्रियायुद्यतः। संस्कृत में औ का आव् होने के उदाहरण सर्वाधिक हैं–गताविमौ, अरावपि (अरौ + अपि), साधावागते (साधौ + आगते = साधु के आने पर)।

- पदान्त में य्, व् आये तो उसका वैकल्पिक लोप होता है (लोपः शाकल्यस्य ८.३.१९) जैसे–श्रियै + उद्यतः + श्रियायुद्यतः, श्रिया उद्यतः। सखे + इह = सखयिह, सखइह। हरे + इह = हरयिह, हर इह। ते + एव = तयेव, त एव। भानो + इह = भानविह, भान इह। औ का आव् होने पर व् के लोप के उदाहरण

अत्यल्प हैं जैसे–गुरौ + अपि = गुरावपि, गुराअपि नहीं देखा जाता। भानावुदिते, ताविह, वागर्थाविव, द्वावेव, पर्वताविव इत्यादि मानक प्रयोग हैं।

- **वान्तो यि प्रत्यये** (६.१.७९)—यकारादि प्रत्यय के पूर्व ओ-औ के स्थान में क्रमशः अव्-आव् हो जाते हैं। यहाँ पर में स्वरवर्ण नहीं होता। जैसे–गो + य (त्) = गव्यम्। गो + क्यच् (य) = गव्यति। नौ + य (त्) = नाव्यम् (नाव से पार होने योग्य)। 'गव्यूति' एक रूढ़ शब्द है जो दो कोस (प्राय छह कि.मी.) की दूरी के अर्थ में है।

६. **पूर्वरूप सन्धि : एङः पदान्तादति** (६.१.१०९)

पदान्त में ए-ओ हो और उसके बाद अकारादि पद हो तो पूर्वरूप एकादेश होता है अर्थात् ए + अ = ए, ओ + अ = ओ रह जाता है। सामान्यतः 'अ' की पूर्वस्थिति सूचित करने के लिए लुप्ताकार का चिह्न 'ऽ' लगा देते हैं। जैसे—

ए — अग्ने + अत्र = अग्नेऽत्र, रामे + अपि = रामेऽपि, गृहे + अस्ति गृहेऽस्ति।

ओ — प्रभो + अत्र = प्रभोऽत्र, को (कः) + अयम् = कोऽयम्, बालो + अहम् = बालोऽहम्, रामो + अस्मि = रामोऽस्मि (ये तीनों विसर्गसन्धि की प्रक्रिया से यहाँ आये हैं)। इसी प्रकार, सः + अवदत् = सोऽवदत्। जातः + अहम् = जातोऽहम्।

७. **पररूप सन्धि : एङि पररूपम्** (६.१.९४)

अ-आ से अन्त होने वाले उपसर्ग के बाद एङ् (ए ओ) से आरम्भ होने वाला धातुरूप आये तो पररूप एकादेश होता है अर्थात् अ + ए = ए, अ + ओ = ओ रह जाता है। जैसे–प्र + एजते = प्रेजते। उप + ओषति = उपोषति। प्र + एषयति = प्रेषयति।

- **शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्** (वार्तिक)—शकन्धुः आदि कुछ गिनाये गये शब्दों की सिद्धि भी पररूप एकादेश से होती है। जैसे–शक + अन्धुः = शकन्धुः (शकों का कुआँ)। कर्क + अन्धुः = कर्कन्धुः। शुद्ध + ओदनम् = शुद्धोदनम्। कुल + अटा = कुलटा। मनस् + ईषा = मनीषा। सीमन् + अन्तः = सीमन्तः (स्त्रियों के केश में माँग)। अन्य अर्थ हो तो, सीमान्तः। पतत् + अञ्जलिः = पतञ्जलिः।

स्वर सन्धि का निषेध (प्रकृतिभाव)
(Absence of Vowel Sandhi)

प्रकृतिभाव (यथास्थिति बनाये रखना) के रूप में स्वर सन्धि के निषेध या अभाव का निरूपण वैयाकरणों ने किया है। इसके लिए पाणिनि का सूत्र है–**प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्** (६.१.१२५)। इसके अनुसार प्लुत स्वर तथा प्रगृह्य-संज्ञक शब्द के बाद यदि दूसरे पद के

आरम्भ में स्वरवर्ण हो तो सन्धि के नियम नहीं लगते, प्रकृतिभाव होता है। यहाँ बाह्य सन्धि (पदान्त सन्धि) का विषय है। प्लुत स्वर तो दूर से पुकारने की स्थिति में होता है (दूराद्धूते च ८.२.८४) जिसमें तीन मात्राएँ होती हैं। इसकी सन्धि स्वभावतः नहीं हो सकती। **'प्रगृह्य'** एक पारिभाषिक शब्द है जो कई सूत्रों (१.१.११-१९) में निर्दिष्ट है। प्रमुख रूप से ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचन को प्रगृह्य कहते हैं (ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् १.१.११)। जैसे–मुनी, साधू, लते। इनके बाद स्वर आने से प्रकृतिभाव होता है। **प्लुत** का उदाहरण–राम३ इहागच्छ (गुणसन्धि का अभाव)। बालक३ अत्र ते माता (दीर्घ सन्धि का अभाव)। **प्रगृह्य** का उदाहरण–मुनी इमौ (दीर्घसन्धि का अभाव)। साधू एतौ (यण्सन्धि का अभाव)। लते इमे (अयादिसन्धि का अभाव)। गिरी एतौ, बन्धू आगतौ, पचेते इमौ, शयाते अत्र (पूर्वरूप सन्धि का अभाव) इत्यादि में भी अभाव का स्वरूप पहचान लें।

प्लुत के विषय में एक प्राचीन श्लोकार्ध प्रचलित है–दूराह्वाने च गाने च रोदने च प्लुतो मतः।

सन्धि के अभाव के कुछ अन्य उदाहरण देखें—

१. वत्से, **इमे अपि** प्रदेये **(शाकुन्तल)**।
२. **हे अम्ब,** मां त्रायस्व।
३. **वत्से इतः** सद्योहुताग्नीन् प्रदक्षिणीकुरुष्व।
४. यो ध्रुवाणि **परित्यज्य अध्रुवाणि** निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य **नश्यन्ति अध्रुवं** नष्टमेव हि।। **(हितोपदेश)**

- **अदसो मात्** (१.१.१२)—अदस् शब्द में द के स्थान में म हुआ हो तो उसके बाद के ईकार-ऊकार भी प्रगृह्य कहे जाते हैं, अतः सन्धि नहीं होती जैसे–अमी अश्वाः (यण् का अभाव)। अमी ईशाः (दीर्घ का अभाव)। अमू आसाते (यण् का अभाव)।
- **सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे** (१.१.१६)—शाकल्य के मत से संबोधन का एकवचन यदि ओकारान्त हो तो 'इति' शब्द के पूर्व वह भी 'प्रगृह्य' है, सन्धि नहीं होती। जैसे–विष्णो इति। किन्तु अन्य मत से–विष्णविति (अयादिसन्धि), विष्ण इति (व् का लोप करके)।

अभ्यास - ३

१. **इनका सन्धि-विच्छेद करें—**

पवित्रम्	....	इत्युक्त्वा	....
सदैव	....	वधूत्सवः	....
गृहेऽपि	....	मनीषा	....
तावपि	....		

२. **इनकी सन्धि करें—**

सखे	+ अर्पय	=	....	महा	+ ओजः	=	....
मम	+ एव	=	....	पुत्र	+ एषणा	=	....
पितृ	+ आदेशः	=	....	अति	+ उक्तिः	=	....
लम्ब	+ उदरः	=	....	वसन्त	+ ऋतुः	=	....
मुनी	+ इमौ	=	....				

३. **इन शब्दों में सन्धि का प्रकार बतायें—**

यथेष्टम्, दध्यत्र, तेऽपि, तथैव, नयनम्, भावुकः, नासीत्।

४. **इन पर सोदाहरण टिप्पणी लिखें—**

गुणसन्धि, पूर्वरूप सन्धि, वृद्धि सन्धि, अयादि सन्धि, प्रगृह्य।

व्यञ्जन-सन्धि

स्वर या व्यञ्जन वर्ण से मेल होने पर किसी व्यञ्जन में जो विकार या परिवर्तन आता है उसे **व्यञ्जन सन्धि** कहते हैं। सामान्यतः व्यञ्जन के बाद स्वर या व्यञ्जन इसमें आता है। इसके प्रमुख नियम हैं—

१. वर्ग के प्रथम वर्ण का तृतीय वर्ण (जश्त्व) होना–**झलां जशोऽन्ते** (८.२.३९) इसे **जश्त्व** कहते हैं।

(क) वर्ग का प्रथम वर्ण + स्वर = तृतीय वर्ण (१>३)

सम्यक्	+ उक्तम्	=	सम्यगुक्तम्
दिक्	+ अम्बरः	=	दिगम्बरः
वाक्	+ ईशः	=	वागीशः
अच्	+ अन्तः	=	अजन्तः
अच्	+ आदिः	=	अजादिः
षट्	+ एव	=	षडेव
षट्	+ आननः	=	षडाननः
जगत्	+ ईशः	=	जगदीशः
सुप्	+ अन्तः	=	सुबन्तः

(ख) वर्ग का प्रथम वर्ण + वर्ण का तृतीय-चतुर्थ वर्ण या य र ल व ह = तृतीय वर्ण (१>३)

दिक्	+ गजः	=	दिग्गजः
वाक्	+ दानम्	=	वाग्दानम्

तत् + रूपम् = तद्रूपम्
अप् + जम् = अब्जम्

(ग) वर्ग के प्रथम वर्ण की वैकल्पिक अनुनासिकता = तृतीय या पञ्चम वर्ण (१>३,५) होना **यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा** (८.४.४५)। (प्रायः अनुनासिक ही)।

दिक् + नागः = दिग्नागः, दिङ्नागः
उत् + नतिः = उन्नतिः
षट् + मुखः = षड्मुखः, षण्मुखः
प्राक् + मुखः = प्राग्मुखः, प्राङ्मुखः
जगत् + नाथः = जगद्नाथः, जगन्नाथः
सत् + मित्रम् = सन्मित्रम्

यद्यपि व्याकरण विकल्प देता है, किन्तु व्यवहार में द्वितीय रूप ही चलता है। (केवल पञ्चम)

वाक् + मयम् = वाङ्मयम्
चित् + मात्रम् = चिन्मात्रम्
षट् + नाम् = षण्णाम्
षट् + नवतिः = षण्णवतिः (९६)
षट् + नगर्यः = षण्णगर्यः (यहाँ केवल पञ्चम वर्ण ही शुद्ध है)।

२. (क) वर्ग का प्रथम वर्ण + ह = ह भी विकल्प से उस वर्ग के चतुर्थ वर्ण में बदल जाता है, प्रथम वर्ण तो तृतीय होगा ही (**झयो होऽन्यतरस्याम्** ८.४.६२)।

वाक् + हरिः = वाग्हरिः, वाग्घरिः
अच् + हलौ = अज्हलौ, अज्झलौ
तत् + हितः = तद्हितः, तद्धितः

(ख) वर्ग का प्रथम वर्ण + श = श विकल्प से छ बन जाता है (**शश्छोऽटि**)।

वाक् + शतम् = वाक्शतम्, वाक्छतम्

३. (क) तवर्ग + ल = तवर्ग का ल् होना (**तोर्लि** ८.४.६०)

तद् + लाभः = तल्लाभः
महत् + लक्षणम् = महल्लक्षणम्
महान् + लाभः = महाँल्लाभः (अनुनासिक न् का अनुनासिक ल्)।

(ख) तवर्ग + चवर्ग = तवर्ग का चवर्ग होना (**स्तोः श्चुना श्चुः** ८.४.४०)

महत् + चक्रम् = महच्चक्रम्
सत् + चरित्रः = सच्चरित्रः
उत् + चारणम् = उच्चारणम्
तद् + जलम् = तज्जलम्
उत् + ज्वलः = उज्ज्वलः
शत्रून् + जयति = शत्रूञ्जयति
विपद् + जालम् = विपज्जालम्
महान् + जयः = महाञ्जयः

(ग) चवर्ग + तवर्ग = तवर्ग का चवर्ग होना (**स्तोः श्चुना श्चुः**)

यज् + नः = यज्ञः (यज्ञः)
याच् + ना = याच्ञा (न चवर्ग का अनुनासिक वर्ण ञ बन गया)

(घ) तवर्ग + श = तवर्ग का चवर्ग होना (स्तोः श्चुना श्चुः) तथा श का छ में वैकल्पिक परिवर्तन (शश्छोऽटि)

तत् + शृणोति = तच्शृणोति (श का छ होने से तच्छृणोति)
तत् + शिवः = तच्शिवः (छ होने पर–तच्छिवः)
तत् + शास्त्रम् = तच्छास्त्रम्/तच्शास्त्रम्
तत् + शिल्पम् = तच्छिल्पम्/तच्शिल्पम्

(ङ) तवर्ग + टवर्ग = तवर्ग का टवर्ग होना (**ष्टुना ष्टुः** ८.४.४१)

तत् + टीका = तट्टीका
उत् + डीनः = उड्डीनः (उड़ गया)

(च) उत् के बाद स्था या स्तम्भ का प्रयोग हो तो स् का लोप हो जाता है (**उदः स्था-स्तम्भोः पूर्वस्य** ८.४.६१) जैसे—

उत् + स्थानम् = उत्थानम्
उत् + स्तम्भनम् = उत्तम्भनम्

४. (क) न् के बाद च् या छ् हो तो न् का अनुनासिक (ँ) या अनुस्वार (ं) होकर श् जुड़ जाता है—

हसन् + चलति = हसँश्चलति, हसंश्चलति
कस्मिन् + चित् = कस्मिँश्चित्, कस्मिंश्चित्
धावन् + छागः = धावँश्छागः, धावंश्छागः

इसी प्रकार न् के बाद त् थ् हो तो न् का अनुनासिक या अनुस्वार होकर स् जुड़ जाता है–पतन् + तत्र = पतँस्तत्र, पतंस्तत्र। न् के बाद ट् ठ् होने पर ष् जुड़ता है–महान् + टङ्कारः = महाँष्टङ्कारः, महांष्टङ्कारः। ये तीनों नियम **'नश्छव्यप्रशान्'** (८.३.७) के साथ **'स्तोः श्चुना श्चुः'** और **'ष्टुना ष्टुः'** (८.४.४०-१) में समाविष्ट हैं।

(ख) पदान्त न् के बाद श हो तो न् का ञ् और श का छ विकल्प से हो जाता है (न् + श् = ञ्छ) जैसे—

महान्	+	शब्दः	=	महाञ्शब्दः, महाञ्छब्दः
धावन्	+	शशः	=	धावञ्शशः, धावञ्छशः

(स्तोः श्चुना श्चुः, शश्छोऽटि)

५. (क) म् + व्यञ्जन = म् का अनुस्वार होना (**मोऽनुस्वारः** ८.३.२३) जैसे—

हरिम्	+	वन्दे	=	हरिं वन्दे
सम्	+	वादः	=	संवादः
प्रियम्	+	वदा	=	प्रियंवदा
शय्यायाम्	+	शेते	=	शय्यायां शेते

अन्य उदाहरण—संयोगः, संसारः, स्वयंवरः, संवत्, संहारः इत्यादि। वाक्य में इसका ध्यान रखें। स्वर के पूर्व कभी अनुस्वार नहीं होता। (अहं आगतः, विद्यां आप्नोति–ऐसे वाक्य अशुद्ध हैं इनमें म् ही रहेगा)। म् का अनुस्वार आन्तरिक सन्धि में भी होता है–क्रम् + लृट्–आक्रंस्यते सूर्यः (सूर्य उगेगा)।

(ख) म् के स्थान में आया अनुस्वार परवर्ती वर्गाक्षर के पञ्चम वर्ण में बदल जाता है (**अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः** ८.४.५८)। किन्तु पदान्त में यह वैकल्पिक है (**वा पदान्तस्य** ८.४.५९)। पद के भीतर विकल्प नहीं है, परसवर्ण ही होगा। अं + कितः = अङ्कितः। कुं + ठा = कुण्ठा। (सुविधा के लिए लोग यहाँ अनुस्वार लिखते हैं संस्कृत में परसवर्ण वाञ्छनीय है)। यहाँ पर के भीतर अनुस्वार है। पदान्त में विकल्प के उदाहरण–त्वम् + करोषि = त्वं करोषि, त्वङ्करोषि। कथम् + चलति = कथञ्चलति, कथं चलति। सम् + तापः = सन्तापः, संतापः। किन्तु कथम् + चित् = कथञ्चित् ही ठीक है क्योंकि पद के भीतर है। इसी प्रकार किञ्चित्, काञ्चित्, किञ्चन।

६. (क) **समः सुटि** (८.३.५)—सम् उपसर्ग के बाद कृ धातु से निष्पन्न कोई शब्द हो तो म् का अनुस्वार तथा स् (सुट्) का आगम होता है। जैसे–सम् + कारः = संस्कारः, सम् + कृतम् = संस्कृतम्, सम् + कृति = संस्कृतिः। वस्तुतः सम्, परि और उप इन तीन उपसर्गों के बाद कृ धातु को भूषण

(अलंकरण) अर्थ में सुट् (स्) का आगम होता है–संस्कारः, परिष्कारः, उपस्कारः (**संपर्युपेभ्यः करोतौ भूषणे** ६.१.१३७)। प्रस्तुत सूत्र से सुट् के पूर्व म् का रु आदेश होता है जिसका स् होकर दो स् बन जाते हैं–संस्स्कारः जैसा रूप भी होता है। रु के पूर्व अनुस्वार या अनुनासिक विहित है।

(ख) **अचो रहाभ्यां द्वे** (८.४.४६)—अच् (स्वरवर्ण) के बाद र् या ह् हो और उसके बाद ऊष्म वर्णों को छोड़कर कोई व्यञ्जन वर्ण हो तो उस व्यञ्जन का विकल्प से द्वित्व हो जाता है। जैसे–कार्यम्-कार्य्यम्। कर्म-कर्म्म। कर्ता-कर्त्ता। अर्धम्-अर्द्धम्। सार्धम्-सार्द्धम्। आचार्यः-आचार्य्यः। इनमें किसी एक को शुद्ध और दूसरे को अशुद्ध मानना भ्रम है। दोनों विकल्प ठीक हैं किन्तु लाघव (सुविधा) के लिए एक हल् वाला अधिक प्रचलित है। इस नियम को सरल रूप में ऐसे समझें कि जिस व्यञ्जन पर रेफ हो उसका विकल्प से द्वित्व होता है। गुप्त काल के संस्कृत अभिलेखों में दो व्यञ्जन वाले प्रयोग ही अधिक हैं–वर्म्म, धर्म्म, अर्क्क, अर्प्पण इत्यादि।

(ग) ह्रस्व स्वर के बाद छ आये तो उसके पूर्व तुक् (त् अर्थात् च्) जुड़ जाता है, आगम होता है। जैसे–गृह + छिद्रम् = गृहच्छिद्रम्। स्व + छाया = स्वच्छाया। इसी से इच्छ्, गच्छ्, यच्छ् धातु होते हैं। इसका सन्धि-सूत्र है–**छे च**। दीर्घ स्वर के बाद छ हो तो विकल्प से तुक् (च्) का आगम होता है जैसे–शाला + छादनम् = शालाच्छादनम्, शालाछादनम्। नदीच्छाया, नदीछाया। वधूच्छाया, वधूछाया। (**पदान्ताद्वा** ६.१.७६) किन्तु आ और माङ् के बाद तुक् अनिवार्य है–आच्छादयति। माच्छिदत्। (आङ्माङोश्च ६.१.७४)

७. ह्रस्व स्वर के बाद पदान्त ङ्, ण्, या न् हो तथा बाद में कोई स्वर (दूसरे पद में) आये तो एक अतिरिक्त ङ्, ण्, या न् लग जाता है (**ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम्** ८.३.३२)। वस्तुतः ङमुट् आगम होता है।

प्रत्यङ्	+	आत्मा	=	प्रत्यङ्ङात्मा
सुगण्	+	ईशः	=	सुगण्णीशः
धावन्	+	अश्वः	=	धावन्नश्वः
चिन्तयन्	+	इह	=	चिन्तयन्निह
पठन्	+	अस्ति	=	पठन्नस्ति
पतन्	+	इव	=	पतन्निव

न् वाला प्रयोग बहुत होता है।

यदि दीर्घ स्वर के बाद ये वर्ण हों तो आगम नहीं होता। जैसे—

महान् + आग्रहः = महानाग्रहः
साधून् + इव = साधूनिव

८. ष् के बाद त् थ् हो तो ये क्रमशः ट् ठ् में बदल जाते हैं। जैसे—

षष् + थः = षष्ठः
दृष् (दृश् का रूप) + त + दृष्टः
पृष् (प्रच्छ् का रूप) + तः = पृष्टः
पृष् + थम् = पृष्ठम्
उत् + कृष् + तः = उत्कृष्टः
प्रति + स्था (इ के बाद स् का ष् होकर थ का ठ) = प्रतिष्ठा
अधि + स्थानम् = अधिष्ठानम् (ऊपर की तरह) सूत्र है–**ष्टुना ष्टुः**।

अभ्यास - ४

१. व्यञ्जन सन्धि की परिभाषा देकर इसके किसी एक नियम को सोदाहरण समझाएँ।

२. सन्धि करें—

सम्	+ हारः	=	....	गच्छन्	+ अस्ति	=	....
किम्	+ चित्	=	....	दिक्	+ भ्रमः	=	....
जगत्	+ नाथः	=	....	तत्	+ शिवः	=	....
दूरात्	+ एव	=	....	वाक्	+ हरिः	=	....
एतत्	+ शिरः	=	....	तत्	+ चलति	=	....
उत्	+ ज्वलः	=	....	सम्	+ कारः	=	....
उत्	+ लसति	=	....	उत्	+ स्थानम्	=	....
तत्	+ शूलम्	=	....	पठन्	+ अपि	=	....
स्वयम्	+ वरः	=	....	उत्	+ हतः	=	....

३. सन्धि-विच्छेद करें—

षण्मुखः	=	....	+	....	संस्कृतिः	=	....	+	....
जगदीशः	=	....	+	....	वागाडम्बरः	=	....	+	....
उल्लंघनम्	=	....	+	....	शरच्चन्द्रः	=	....	+	....
भगवच्छरणम्	=	....	+	....	चलन्निह	=	....	+	....
उन्मुखः	=	....	+	....	दिगन्तः	=	....	+	....
संवादः	=	....	+	....	उद्धारः	=	....	+	....

सच्चिदानन्दः = ... + ... वृष्टः = ... + ...
हसँस्तिष्ठति = ... + ... षण्णवतिः = ... + ...

विसर्ग-सन्धि

विसर्ग (या विसर्जनीय) स्वतन्त्र ध्वनितत्त्व नहीं है, बिना किसी दूसरे वर्ण की सहायता लिये इसका उच्चारण नहीं होता; इसीलिए 'अयोगवाह' की श्रेणी में इसे रखा जाता है। स्वर वर्ण के बाद यह उच्चरित होकर (अं अः इत्यचः परावनुस्वार-विसर्गौ) उच्चारण का विसर्जन या समापन कर देता है। इसके उच्चारण में कण्ठ का योगदान है यद्यपि अ-आ (कण्ठ्य स्वर) के अतिरिक्त अन्य स्वरों के बाद भी इसका प्रयोग है। तब उच्चारण-स्थान तेजी से परिवर्तित होता है। स्वरूपतः यह व्यञ्जन है क्योंकि इसका सम्बन्ध, सन्धि की दृष्टि से र् और स् (इसके तीनों रूपों श ष स) से है, भले ही अपने मूल उच्चारण में यह 'ह्' जैसा लगता है।[१] वस्तुतः विसर्ग-सन्धि के प्रकरण में विसर्ग का आदान-प्रदान इन चारों व्यञ्जनों के साथ (र् श् ष् स्) ही चलता है।

पाणिनि ने इस प्रसंग में एक माध्यम (Mediator) के रूप में 'रु' (र्) को स्वीकार किया है जो विविध रूप लेता है। कभी स् का रु बनता है; तो रु का उकार होता है या यकार का रूप लेकर लुप्त भी हो जाता है। कहीं रु रकार रूप में ही स्थित रहता है। विसर्ग सन्धि में 'रु' की भूमिका पाणिनीय व्याकरण में महत्त्व रखती है। यहाँ कुछ सूत्रों द्वारा इस सन्धि के रूपों को समझाया जाता है।

विसर्ग सन्धि में विसर्ग के बाद स्वर या व्यञ्जन के आने पर विसर्ग में विकार होता है। जैसे—

मनः + रथः = मनोरथः
रामः + तथा = रामस्तथा
मुनिः + गच्छति = मुनिर्गच्छति

१. (क) **ससजुषो रुः** (८.२.६६)—पदान्त स् (तथा सजुष् शब्द) का 'रु' आदेश होता है। जैसे–शिवस् का शिव + रु। सन्धि की दृष्टि से इसमें र् बचता है। तदनुसार विसर्ग के र् का भी विधान इससे होता है। जब विसर्ग के पूर्व अ आ को छोड़कर कोई स्वर रहे (इ ई, उ ऊ, ए ओ, ऐ औ) और दूसरी ओर विसर्ग के बाद स्वर या घोष वर्ण (वर्णों का तृतीय-चतुर्थ-पञ्चम वर्ण, य,र,ल,व,ह) हो तो विसर्ग का र् होता है–जैसे—

---

१. तिरुपति के विद्वान् डॉ. श्रीमन्नारायणमूर्ति ने मुझे बताया था कि पाणिनि ने जो प्रत्याहार-सूत्र 'हयवरट्' में ह पढ़ा है वह इसका अन्तःस्थों की तरह अर्धस्वर रूप है, स्वर-व्यञ्जन के बीच रखा गया। 'हल्' सूत्र में जो ह है वह श ष स की तरह उसका ऊष्म रूप है।

स्वर—

मुनिः	+	अस्ति	=	मुनिरस्ति
लक्ष्मीः	+	इयम्	=	लक्ष्मीरियम्
साधुः	+	आगतः	=	साधुरागतः
गौः	+	एव	=	गौरेव
बन्धोः	+	अपि	=	बन्धोरपि
गिरेः	+	उपत्यका	=	गिरेरुपत्यका

बाद में घोष वर्ण आने पर र् का रेफ (ᐩ) हो जाता है—

व्यञ्जन—

पतिः	+	गतः	=	पतिर्गतः
निः	+	धनः	=	निर्धनः
गुरुः	+	जायते	=	गुरुर्जायते
साधोः	+	दृष्टिः	=	साधोर्दृष्टिः
बालकैः	+	गृहीतम्	=	बालकैर्गृहीतम्
गौः	+	याति	=	गौर्याति
धनुः	+	धरः	=	धनुर्धरः
कृषेः	+	हानिः	=	कृषेर्हानिः

(ख) **खरवसानयोर्विसर्जनीयः** (८.३.१५)—खर् प्रत्याहार का वर्ण (वर्गों का प्रथम-द्वितीय वर्ण तथा श ष स) पर में हो या विराम (अवसान) आ रहा हो तो रेफ (र्) का विसर्ग हो जाता है। जैसे—

रामस् (रु का र्)	+	करोति	=	रामः करोति।
मुनिस् (र्)	+	खादति	=	मुनिः खादति।
बालकस् (र्)	+	पठति	=	बालकः पठति।

अवसान में–बालकः। रामः। मुनिः। क-ख, प-फ के पूर्व सामान्यतः विसर्ग का परिवर्तन नहीं होता।

२. (क) **विसर्जनीयस्य सः** (८.३.३४)—खर् प्रत्याहार के पूर्व विसर्ग का स् हो जाता है किन्तु यह स् केवल त-थ के पूर्व ही होता है। च-छ के पूर्व स् का श् हो जाता है (**स्तोः श्चुना श्चुः**), ट-ठ के पूर्व स् का ष् होता है (**ष्टुना ष्टुः**) और क-ख, प-फ के पूर्व विसर्ग ही रहता है।

i) विसर्ग का स् (त थ के पूर्व)—

रामः	+	तिष्ठति	=	रामस्तिष्ठति
इतः	+	ततः	=	इतस्ततः

नद्याः + तीरम् = नद्यास्तीरम्
शिवः + तत्र = शिवस्तत्र

ii) विसर्ग का श् (च छ के पूर्व)—

पूर्णः + चन्द्रः = पूर्णश्चन्द्रः
रवेः + छविः = रवेश्छविः
वायुः + चलति = वायुश्चलति
गौः + च = गौश्च

iii) विसर्ग का ष् (ट ठ के पूर्व)—

धनुः + टंकारः = धनुष्टंकारः।

(ख) **वा शरि** (८.३.३६)—शर् प्रत्याहार (श ष स) पर में हो तो विसर्ग का विकल्प से स् होता है अर्थात् मूलतः विसर्ग भी रह सकता है। स् होने की स्थिति में श् के पूर्व इसका शकार और ष के पूर्व षकार भी होगा जैसे—

निः + शब्दः = निःशब्दः, निश्शब्दः
रामः + षष्ठः = रामः षष्ठः, रामष्षष्ठः
निः + सन्देहः = निःसन्देहः, निस्सन्देहः

(ग) **सोऽपदादौ** (८.३.३८)—पाश, कल्प, क और काम्य शब्द के पूर्व विसर्ग का स् होता है—

पयः + पाशम् = पयस्पाशम्
यशः + कल्पम् = यशस्कल्पम्
यशः + कम् = यशस्कम्
यशः + काम्यति = यशस्काम्यति

(घ) **इणः षः** (८.३.३९)—इण् प्रत्याहार के वर्ण के बाद उक्त शब्दों के पूर्व विसर्ग का ष् होता है—

सर्पिः + पाशम् = सर्पिष्पाशम्
सर्पिः + कल्पम् = सर्पिष्कल्पम्
सर्पिः + कम् = सर्पिष्कम्
सर्पिः + काम्यति = सर्पिष्काम्यति

(ङ) **नमः पुरसोर्गत्योः** (८.३.४०)—यदि नमस् और पुरस् गति-संज्ञक हों तो क-प के पूर्व विसर्ग का स् होता है—

नमः + करोति = नमस्करोति
पुरस् + करोति = पुरस्करोति

(च) **इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य** (८.३.४१)—इकारोपध और उकारोपध शब्दों के बाद विसर्ग का ष् हो जाता है, यदि पर में क ख, प फ हो किन्तु वह विसर्ग प्रत्यय (सु) का न हो। जैसे—

सर्पिः + पाशम् = सर्पिष्पाशम्
निः + प्रत्यूहम् = निष्प्रत्यूहम्
आविः+ कृतम् = आविष्कृतम्
दुः + कृतम् = दुष्कृतम्
निः + फलम् = निष्फलम्
चतुः + कोणम् = चतुष्कोणम्
बहि + कारः = बहिष्कारः

'अग्निः करोति' में विसर्ग सु-प्रत्यय का है, अतः ष् नहीं होगा।

३. **अतो रोरप्लुतादप्लुते** (६.१.११३)—अकार के बाद के 'रु' (स् या विसर्ग) का उकार हो जाता है, यदि बाद में अ आ रहा हो। जैसे–शिवस् (शिवः) + अर्च्यः = शिवउ + अर्च्यः। अ + उ का गुण (ओकार) होकर शिवो + अर्च्यः। पुनः 'एङः पदान्तादति' से पूर्वरूप एकादेश होकर–'शिवोऽर्च्यः' रूप बना। इसी प्रकार रामः + अस्ति = रामोऽस्ति। प्रथमः + अध्यायः = प्रथमोऽध्यायः। सः + अपठत् = सोऽपठत्। कः + असौ = कोऽसौ। बालः + अहम् = बालोऽहम्। सिंहः + अपि = सिंहोऽपि। इस प्रकार यह रूप प्रचलित तो बहुत है किन्तु इसमें विसर्ग सन्धि के साथ स्वर सन्धि का भी प्रचुर योगदान है।

४. **हशि च** (६.१.११४)—अकार के बाद के 'रु' (स् या विसर्ग) का उकार हो जाता है, यदि बाद में हश् प्रत्याहार का वर्ण (ह य व र ल तथा वर्गों का तृतीय-चतुर्थ-पञ्चम वर्ण) आ रहे हों। जैसे–मनः + रथः = मनउरथः = अउ का ओकार (गुण) होकर मनोरथः। सरः + वरः = सरोवरः। मनः + हरः = मनोहरः। तेजः + मयः = तेजोमयः। यशः + धनः = यशोधनः। यशः + दा = यशोदा। पुरः + हितः = पुरोहितः। पयः + दः = पयोदः। नमः + नमः = नमोनमः। रामः + गच्छति = रामो गच्छति (वाक्य होने से पदों को साथ लिखना नहीं है)। अन्य उदाहरण–बालको हसति, कालो याति, मनोरमा, तपोवनम्, श्लोको व्याख्यातः इत्यादि।

५. **भो भगो अघो अपूर्वस्य योऽशि** (८.३.१७)—भो भगो अघो तथा अ-आ के बाद रु (स् या विसर्ग) का 'य्' आदेश हो जाता है, यदि बाद में अश् प्रत्याहार का वर्ण (कोई स्वर, ह य व र ल, वर्गों का तृतीय-चतुर्थ-पञ्चम वर्ण) आये। यहाँ ध्यातव्य है कि विसर्ग के **पूर्व और पर** (दोनों ओर) अ होने पर यह लागू नहीं

होता। उसे तो 'अतो रोरप्लुता.' सूत्र से उ (ओ) हो जाता है। **पूर्व अथवा पर** में (केवल एक ओर) अ होने से आपत्ति नहीं। इस य का लोप हो जाता है। जैसे– अश्वः + आगतः = अश्व आगतः। देवाः + अनेके = देवा अनेके (अ केवल पूर्व में अथवा पर में है)। बालकाः + इह = बालका इह। छात्राः + गताः = छात्रा गताः। अजाः + इमाः = अजा इमाः। गावः + एताः = गाव एताः।

टिप्पणी—विसर्ग के बाद व्यञ्जन (हश्) रहने पर केवल आ के बाद का विसर्ग ही लुप्त होता है, अ के बाद का विसर्ग तो 'हशि च' से 'उ' बन जाता है–मनः + योग = मनोयोगः। गावः + धावन्ति = गावो धावन्ति। किन्तु बालकाः + धावन्ति = बालका धावन्ति। गजाः + विलसन्ति = गजा विलसन्ति। इसी प्रकार–भोः + अच्युत। भोः + गोविन्द।

ध्यान रहे कि इस सन्धि में विसर्ग-लोप होने पर आगे स्वर-सन्धि नहीं कर सकते हैं जैसे–'बालका इह' हो जाने पर आ + इ = ए (गुणसन्धि) करना निषिद्ध है। वस्तुतः यह केवल विसर्ग-लोप का विधान करने वाला सूत्र है। कहीं-कहीं य् का विकल्प रहता है–देवाः इह = देवायिह, देवा इह।

६. (क) **रो रि** (८.३.१४)—विसर्ग के स्थान में आये हुए र् का लोप हो जाता है, यदि बाद में भी 'र' हो। ऐसी स्थिति में विसर्ग के पूर्व के स्वर का दीर्घ हो जाता है (**ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः** ६.३.१११) जैसे—

निः + रवः = नीरवः
शम्भुः + राजते = शम्भू राजते
दाशरथिः + रामः = दाशरथी रामः
पुनः + रमते = पुनर् रमते = पुना रमते
निः + रोगः = निर् रोगः = नीरोगः

(ख) **रोऽसुपि** (८.२.६९)—अहन् शब्द के न् का र् हो जाता है, यदि पर में सुप्-विभक्ति न हो। नियमानुसार यह र् कहीं 'उ' भी होता है। जैसे—

अहन् + गणः = अहर्गणः
अहन् + अहः = अहरहः
अहन् + रात्रः (र् का उ, अ + उ = ओ) = अहोरात्रः

७. **एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि** (६.१.१३२)—एतद् और तद् के सु-प्रत्यय (एषः, सः के विसर्ग) का लोप हो जाता है, यदि पर में व्यञ्जन वर्ण अथवा अ को छोड़कर कोई स्वर हो। क-प्रत्यय लगने या नञ् समास होने पर ऐसा लोप नहीं होता। जैसे—

एषः + आगतः = एष आगतः
सः + इह = स इह
एषः + गतः = एष गतः
सः + तिष्ठति = स तिष्ठति

किन्तु अ पर में हो तो लोप नहीं होगा–एषोऽस्मि, सोऽहम्। क प्रत्यय लगने पर–एषकः, सकः। नञ् समास में–न एषः = अनेषः, न सः = असः।

अभ्यास - ५

१. विसर्ग सन्धि किसे कहते हैं? इसके किन्हीं दो नियमों को सोदाहरण समझाएँ।

२. विसर्ग का 'ओ' कहाँ होता है? उदाहरण से स्पष्ट करें।

३. सन्धि-विच्छेद करें—

ततश्च	= .... + ...	दुर्गमः	= .... + ...
मनोनयनम्	= .... + ...	पयोधिः	= .... + ...
सोऽयम्	= .... + ...	निश्चिन्तः	= .... + ...
कविरयम्	= .... + ...	रात्रिर्गता	= .... + ...
नमस्ते	= .... + ...	नीरोगः	= .... + ...
तपोधनः	= .... + ...	अहरहः	= .... + ...
निरुपायः	= .... + ...	सोऽवदत्	= .... + ...
एष राजा	= .... + ...	निर्भरः	= .... + ...
यशोधनः	= .... + ...	आविष्कारः	= .... + ...
मातू रोदनम्	= .... + ...		

४. सन्धि करें—

मुनेः + तपः	=	साधोः + गमनम्	= ....
अहन् + रात्रः	=	कः + चन	= ....
निः + रोगः	=	रामः + शेते	= ....
आयुः + कामः	=	भाः + करः	= ....
गङ्गायाः + जलम्	=	भीष्मः + उवाच	= ....
सः + अस्ति	=	लक्ष्मीः + उवाच	= ....
दूरस्थः + अपि	=	पतिः + आगतः	= ....

विविध सन्धियों के उदाहरण

१. स्वर सन्धि

उदाहरण	भेद	सूत्र या वार्तिक
सीमन् + अन्तः = सीमन्तः	पररूप	शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्
शक + अन्धुः = शकन्धुः	,,	,,
मनस् + ईषा = मनीषा	,,	,,
मार्त + अण्डः = मार्तण्डः	,,	,,
कुल + अटा = कुलटा	,,	,,
सार + अङ्गः = सारङ्गः	,,	,,
पतत् + अञ्जलिः = पतञ्जलिः	,,	,,
प्र + एषयति = प्रेषयति	,,	एङि पररूपम्
उप + ओषति = उपोषति	,,	,,
शिव + एहि = शिवेहि	पररूप	ओमाङोश्च
गो + अग्रम् = गवाग्रम्	अयादि + दीर्घ	अवङ् स्फोटायनस्य
गो + अग्रम् = गो अग्रम्	प्रकृतिभाव	सर्वत्र विभाषा गोः
गो + अक्षः = गवाक्षः	अयादि + दीर्घ	अवङ् स्फोटायनस्य
गो + इन्द्रः = गवेन्द्रः	अयादि + गुण	,,
स्व + ईरः = स्वैरः	वृद्धि	स्वादीरेरिणोः
स्व + ईरिणी = स्वैरिणी	,,	,,
स्व + ईरी = स्वैरी	,,	,,
अक्ष + ऊहिनी = अक्षौहिणी	,,	अक्षादूहिन्याम्
प्र + ऊढः = प्रौढः	,,	प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु
प्र + ऊढिः = प्रौढिः	(गुण का अपवाद)	
प्र + एषः = प्रैषः	वृद्धि (पररूप का	
प्र + एष्यः = प्रैष्यः	अपवाद)	
प्र + ऋणम् = प्रार्णम्	,,	,,
ऋण + ऋणम् = ऋणार्णम् (एक ऋण को लौटाने के लिए दूसरा ऋण)	वृद्धि ,,	प्रवत्सतर कम्बल. (वा.)
दश + ऋणः = दशार्णः (देशः)	,,	,,
उप + ऋच्छति = उपार्च्छति	,,	उपसर्गादृति धातौ
प्र + एजते = प्रेजते	पररूप	एङि पररूपम्
उप + ओषति = उपोषति		,,

शीत + ऋतः = शीतार्तः	वृद्धि	ऋते च तृतीयासमासे
दुःख + ऋतः = दुःखार्तः	,,	,,
उप + एधते = उपैधते	,,	एत्येधत्यूठ्सु
उप + एति = उपैति	वृद्धि	,,
अव + एमि = अवैमि	,,	,,
अद्य + एव = अद्यैव	,,	,,
एक + एकम् = एकैकम्	वृद्धि	वृद्धिरेचि
पुत्र + एषणा = पुत्रैषणा	,,	,,
जल + ओघः = जलौघः	,,	,,
गो + यम् = गव्यम्	अयादि	वान्तो यि प्रत्यये
नौ + यम् = नाव्यम्	,,	,,
गो + यूतिः = गव्यूतिः	,,	,,
ते + अपि = तेऽपि	पूर्वरूप	एङः पदान्तादति
सखे + अर्पय = सखेऽर्पय	,,	,,
प्रभो + अनुगृहाण = प्रभोऽनुगृहाण	,,	,,
अहो + अच्युत = अहो अच्युत	प्रकृतिभाव	प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्
आ + एवम् = आ एवम्	,,	,,
कवी + इमौ = कवी इमौ	,,	,,
साधू + एतौ = साधू एतौ	,,	,,
कन्ये + इमे = कन्ये इमे	,,	,,
अमी + ईशाः = अमी ईशाः	,,	,,
अमू + उपदेशौ = अमू उपदेशौ	,,	,,

२. व्यञ्जन सन्धि

हरिः + शेते = हरिश्शेते	श्चुत्व	स्तोः श्चुना श्चुः
रामः + चिनोति = रामश्चिनोति	,,	,,
सत् + चित् = सच्चित्	,,	,,
राजन् + जय = राजञ्जय	,,	,,
शत्रून् + जय = शत्रूञ्जय	,,	,,
हसन् + चलति = हसँश्चलति	अनुनासिक	,, नश्छव्यप्रशान्
महान् + ठक्कुर = महाँष्ठक्कुरः	ष्टुत्व, अनुनासिक	ष्टुना ष्टुः ,,
षट् + नवतिः = षण्णवतिः	ष्टुत्वअनाम्लवति.	
षट् + नगर्यः = षण्णगर्यः	,,	,,
राजन् + तत्र = राजँस्तत्र	अनुनासिक	नश्छव्यप्रशान्

वाक् + ईशः = वागीशः	जश्त्व	झलां जशोऽन्ते
चित् + रूपम् = चिद्रूपम्	”	
अप् + जम् = अब्जम्	”	
दिक् + नागः = दिङ्नागः	अनुनासिक	यरोऽनुनासिके.
तत् + मात्रम् = तन्मात्रम्	”	प्रत्यये भाषायां नित्यम्
चित् + मयम् = चिन्मयम्	”	”
तत् + लीनः = तल्लीनः	त् का ल्	तोर्लि
विद्वान् + लिखति = विद्वाँल्लिखति	”	”
उत् + स्थानम् = उत्थानम्	सलोप	उदः स्थास्तम्भोः
उत् + स्तम्भनम् = उत्तम्भनम्	सलोप	”
वाक् + हरिः = वाग्घरि	ह का पूर्वसवर्ण	झयो होऽन्यतरस्याम्
तत् + हितः = तद्धितः	जश्त्व	”
तत् + शिवः = तच्छिवः	श का छत्व	शश्छोऽटि
वृक्ष + छाया = वृक्षच्छाया	तुगागम	छे च
परि + छेदः = परिच्छेदः	”	”
पठन् + अपि = पठन्नपि	ङमुट् आगम	ङमो ह्रस्वादचि.
धावन् + इह = धावन्निह	”	”
सम् + कारः = संस्कारः	सुट् आगम, रुत्व,	समः सुटि
सम् + कृतम् = संस्कृतम्	अनुस्वार	”
पुम् + कोकिलः = पुंस्कोकिलः	अनुस्वार	पुमः खय्यम्परे
पुम् + चली = पुंश्चली	”	”

३. विसर्ग सन्धि

यशः + कल्पम् = यशस्कल्पम्	विसर्ग का स्	विसर्जनीयस्य सः
यशः + पाशम् = यशस्पाशम्	”	पाशकल्पक-काम्येषु
यशः + काम्यति = यशस्काम्यति	”	”
सर्पिः + कम् = सर्पिष्कम्	विसर्ग का ष्	” इणः षः
नमः + कारः = नमस्कारः	विसर्ग का स्	नमः पुरसोर्गत्योः
पुरः + कारः = पुरस्कारः	”	”
दुः + कृतम् = दुष्कृतम्	विसर्ग का ष्	इदुपधस्य चाप्रत्ययस्य
आविः + कारः = आविष्कारः	”	”
मुनिः + अस्ति = मुनिरस्ति	स् का रुत्व (र्)	ससजुषो रुः
मातुः + गृहम् = मातुर्गृहम्	”	”
शिवः + अयम् = शिवोऽयम्	रु का उकार	अतो रोरप्लुताद्.

शिवः + वन्द्यः	= शिवो वन्द्यः	”	हशि च
मनः + रमः	= मनोरमः	”	”
प्रातः + एव	= प्रातरेव	स् का रुत्व	ससजुषो रुः
पुनः + अपि	= पुनरपि	”	”
अधः + गति	= अधोगतिः	रु का उकार	हशि च
अहन् + अहः	= अहरहः	अहन् का रकार	रोऽसुपि
अहन् + गणः	= अहर्गणः	”	”
अहन् + रात्रः	= अहोरात्रः	”	” रूपरात्रि. रुत्वम्
देवाः + इह	= देवा इह, देवायिह	रु का य्, लोप	भोभगो. योऽशि
भोः + अच्युत	= भो अच्युत	”	”
छात्राः + गताः	= छात्रा गताः	”	”
निः + चयः	= निश्चयः	विसर्ग का स्, श्चुत्व	विसर्जनीयस्य सः
मुनेः + छाया	= मुनेश्छाया	”	स्तोः श्चुना.
कः + चित्	= कश्चित्	”	”

णत्व-षत्व विधान

किसी शब्द में पहले से ण या ष (जैसे–बाण, कोण, षट्, विष) हो सकता है किन्तु कभी-कभी कारण-विशेष से न का ण हो जाना **'णत्व'** और स का ष हो जाना **'षत्व'** कहा जाता है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी के अष्टम अध्याय के तृतीयपाद में विस्तार से षत्व की और चतुर्थ पाद के आरम्भ में णत्व की स्थितियों का वर्णन किया है। यहाँ हम कुछ प्रमुख नियमों को देखें—

१. णत्व-विधान

i) **रषाभ्यां नो णः समानपदे** (८.४.१)—र, ऋ और ष के बाद न का ण हो जाता है, यदि कारण (र ऋ ष) और कार्य (ण) दोनों एक पद में हों। यह ध्यान रखें र ऋ ष ये तीन वर्ण ही णत्व के कारण या निमित्त कहे जाते हैं। र के बाद–संकीर्णम्, चतुर्णाम्, कर्णः, वर्णः। ऋ के बाद–तिसृणाम्, आवृणोति, पितृणाम्। ष के बाद–कृष्णः, विष्णुः, पुष्णाति, अक्ष्णा। एक पद न होने से–गतिर्नास्ति, दुर्नीतिः, नर-नाथः, राम-नाम इत्यादि में णत्व नहीं हुआ।

ii) **अट्-कुप्वाङ्-नुम्-व्यवायेऽपि** (८.४.२)—किसी स्वरवर्ण, ह,य,व, कवर्ग, पवर्ग, आङ् तथा अनुस्वार का व्यवधान निमित्त (ऋ र ष) और कार्य (ण) के बीच रहने पर भी न का ण हो जाता है। **स्वर-व्यवधान**–वृक्षेण (व् + ऋ +

क् + ष् + ए + ण् + अ)। वृषेण, ऋषिणा, करणम्, भीषणम्। **ह से व्यवधान**–गृह्णाति, गृहेण। **य से व्यवधान**–आर्येण, कार्याणाम्। **व से व्यवधान**–कुर्वाणः, करवाणि, भारविणा। **कवर्ग से व्यवधान**–अर्केण, मूर्खेण, गर्गेण, अर्घाणाम्, शृङ्गाणाम्। **पवर्ग से व्यवधान**–दर्पेण, रेफेण, दर्भाणाम्, कर्माणि। **आङ् तथा अनुस्वार** से व्यवधान-पर्याणयति, बृंहणम्। इन वर्णों से भिन्न वर्णों का व्यवधान णत्व का बाधक है, जैसे–रोचनम्, दर्शनम्, कृष्णेन, तीर्थानि।

iii) **पूर्वपदात् संज्ञायामगः** (८.४.३)—पूर्वपद् में निमित्त वर्ण (ऋ र ष) हों तो नाम-विशेष बोध होने पर उत्तरपद के न का ण होता है, किन्तु ग से व्यवधान नहीं होना चाहिए। जैसे–शूर्पणखा, नारायणः, उत्तरायणम्, रामायणम्, पारायणम्, आग्रहायणः, अक्षौहिणी। ये सब संज्ञाएँ (Proper names) हैं। ग के व्यवधान का अपवाद–ऋक् + अयनम् = ऋगयनम्।

iv) **अह्नोऽदन्तात्** (८.४.७)—अकारान्त पूर्वपद में निमित्त वर्ण हों तो उत्तर पद में अहन् के न का ण होता है, जैसे–पूर्व + अह्न = पूर्वाह्णः। अपराह्णः। सर्वाह्णः।

v) **कुमति च** (८.४.१३)—समास से पूर्वपदस्थ निमित्त वर्ण के बाद उत्तर पद कवर्ग युक्त हो तो उसके न का ण होता है। जैसे–हरिकामिणः, हरिकामेण, वृकमुखेण, वर्षभोग्येण।

vi) **उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य** (८.४.१४)—उपसर्ग में णत्व का निमित्त वर्ण (र्) हो और ऐसी धातु का उसके बाद प्रयोग हो जिसे धातुपाठ में ण से पढ़ा गया हो तो वहाँ न का ण होता है (चाहे समास हो, न हो) जैसे–प्र + नामः = प्रणामः। परिणामः, प्रणवः, निर्णयः। इन्हें भी देखें–प्रणिगदति, प्रणिधानम्, प्रयाणम्, परिमाणम्, प्रहीणः।

यह ध्यान रखें कि पदान्त न् का णत्व नहीं होता–रामान्, सर्वान्, ऋषीन् (पदान्तस्य न)।

२. षत्व-विधान

i) **इण्कोः** (८.३.५७)—इण् (इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ ह य व र ल) और कवर्ग ही षत्व के निमित्त वर्ण हैं। अर्थात् अ-आ को छोड़कर किसी अन्य स्वरवर्ण के बाद, र तथा कवर्ग के बाद ही स का ष होता है। सभी नियमों में यह अनिवार्य है। कविषु, साधुषु, भ्रातृषु गोषु, गीर्षु, दिक्षु (द् + इ + क् + ष् + उ) इनमें देखें। राजसु-लतासु में स ही रहता है।

ii) **नुम्-विसर्जनीय-शर्व्यवायेऽपि** (८.३.५८)—यदि निमित्त और षत्व के बीच अनुस्वार (नुम् का आदेश), विसर्ग और श ष स का व्यवधान भी हो तो षत्व हो जाता है। जैसे–हवींषि, हविःषु, बर्हिःषु, हविष्षु।

iii) **आदेश-प्रत्यययोः** (८.३.५९)—उपर्युक्त निमित्त के बाद आदेश या प्रत्यय के स का ष हो जाता है। जैसे–सुष्वाप (ष्वप धातु के ष् का स् आदेश हुआ था, उ के बाद वह ष हो गया)। एषः (यहाँ भी द् का स आदेश हुआ था)। प्रत्यय का उदाहरण–मुनिषु, साधुषु, पितृषु इत्यादि।

iv) पदान्त स् का ष् नहीं होता जैसे–मतिस् + तत्र = मतिस्तत्र (अपदान्तस्य मूर्धन्यः)। उपसर्ग में निमित्त वर्ण हो (जैसे–अधि, परि, अति, ति) तो कुछ गिनायी गई धातुओं में स् का ष् होता है (८.३.६५)। जैसे–अभिष्टौति, अधिष्ठानम्, प्रतिष्ठा, निषेधः, अभिषेकः, अभिषङ्गः (पराभवः)। प्रति को छोड़कर अन्य उपसर्ग के बाद सद् धातु के स का भी ष होता है (**सदिरप्रतेः** ८.३.६६)। जैसे–निषीदति, विषादः, विषण्णः। प्रतिसादः में नहीं हुआ। इण् कवर्ग के बाद ही षत्व होता है अतः प्रसादः, अवसादः।

v) **मातृ-पितृभ्यां स्वसा** (८.३.८४)—मातृ और पितृ के बाद स्वसा के स् का ष् होता है–मातृष्वसा (मौसी), पितृष्वसा (बुआ, फूआ, पीसी)। मातुः और पितुः के बाद स्वसा के षत्व का विकल्प है–मातुःष्वसा, मातुःस्वसा। पितुःष्वसा, पितुःस्वसा।

vi) **नि-नदीभ्यां स्नातेः कौशले** (८.३.८९)—नि तथा नदी शब्द के बाद स्ना धातु का प्रयोग कुशलता के अर्थ में हो तो स् का ष् होता है। जैसे–नि + स्नातः (ष् के कारण 'ष्टुना ष्टुः' से न का ण) = निष्णातः। नदी + स्नः (स्ना + क-प्रत्यय) = नदीष्णः। दोनों का अर्थ है कुशल। जैसे–नदीष्णः या निष्णातः आचार्यः (कुशल आचार्य)। किन्तु–प्रतिस्नातः (फिर से नहाया हुआ)।

कुछ अन्य शब्द–गविष्ठिरः (शिव, वृषवाहन), युधिष्ठिरः, अम्बष्ठः, गोष्ठः (गोशाला), गोष्ठी (सभा), भूमिष्ठः, कुष्ठः, परमेष्ठी।

अभ्यास - ६

१. णत्व-विधान से क्या समझते हैं? इसके किन्हीं दो नियमों को सोदाहरण समझाएँ।

२. षत्व-विधान के निमित्त वर्ण कौन-से हैं? उदाहरण दें।

३. न का ण कहाँ होता है? कुछ उदाहरणों से स्पष्ट करें।

४. निम्नलिखित शब्दों को जोड़कर लिखें—

i) पुष् + ना + ति = ...	iv) प्र + नमति = ...
ii) अग्र + नीः = ...	v) प्र + हीनः = ...
iii) वर्ष + भोग्येन = ...	vi) वृक + मुखेन = ...

५. अशुद्ध शब्दों का संशोधन करें—

आचार्येन, सरलेण, परिनामः, साधुसु, गोसु, लताषु

६. रामायणम् में णत्व के कारण की व्याख्या करें।

७. इन उदाहरणों में णत्व या षत्व क्यों नहीं हुआ? समझाएँ।

(क) दुर्नीतिः, नरनाथः, दर्शनम्, ऋषीन्।

(ख) लतासु, प्रसादः, मतिस्तत्र, प्रतिस्नातः।

८. इन सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या करें—

(क) रषाभ्यां नो णः समानपदे

(ख) पूर्वपदात् संज्ञायामगः

(ग) कुमति च

(घ) इण्कोः

(ङ) आदेशप्रत्यययोः

(च) निनदीभ्यां स्नातेः कौशले

*

४ सुबन्त-प्रकरण (शब्द-रूपावली)
Declension

संस्कृत भाषा के वाक्यों में दो प्रकार के शब्द आवश्यक हैं–सुबन्त और तिङन्त। 'बालकः पठति' एक वाक्य है जिसमें 'बालकः' सुबन्त है, 'पठति' तिङन्त है। अमरकोश में सुबन्त और तिङन्त के (परस्पर जुड़े हुए) समूह को वाक्य कहा गया है–**सुप्तिङन्तचयो वाक्यम्**। प्रथमा, द्वितीया आदि विभक्तियों से बने हुए पद सुबन्त हैं। जैसे–देवः, बालकस्य, अहम्, राज्ञः, कर्मणः इत्यादि। दूसरी ओर प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष आदि के विविध लकारों में जो धातुरूप हैं वे तिङन्त हैं जैसे–पठन्ति, खेलामि, अखादन्, गमिष्यति, पठेत् इत्यादि। सामान्यतः सुबन्त शब्दों को **शब्दरूप** (Declension) और तिङन्त शब्दों को **धातुरूप** (Conjugation) कहा जाता है। सुबन्त शब्दों में सुप्-प्रत्यय लगे हुए रहते हैं (सुप् + अन्त)। इनकी संख्या २१ है (७ विभक्तियाँ × ३ वचन)। तिङन्त शब्दों में तिङ्-प्रत्यय लगे रहते हैं (तिङ् + अन्त)। इनकी संख्या १८ है (३ पुरुष × ३ वचन × २ परस्मैपद तथा आत्मनेपद)। इनका विचार बाद में होगा।

सुप् प्रत्ययों की संख्या २१ है क्योंकि प्रथमा आदि आत विभक्तियों के तीन-तीन वचन होते हैं–एकवचन (Singular), द्विवचन (Dual), बहुवचन (Plural)। सुप् एक प्रत्याहार है जो इक्कीसों प्रत्ययों को समाविष्ट करता है। इनके आरम्भ में सु और अन्त में प् होने से सुप् प्रत्याहार बन जाता है। मूल रूप में इन्हें जान लेना चाहिए। विविध शब्दरूपों में इनकी विकृतियाँ होती हैं जिन्हें पाणिनि ने अपने सूत्रों में निर्दिष्ट किया है।

सुप्-विभक्तियाँ (Sup-endings)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	सु (स्)	औ	जस् (अस्)
द्वितीया	अम्	औट्	शस् (अस्)
तृतीया	टा (आ)	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे (ए)	भ्याम्	भ्यस्
पंचमी	ङसि (अस्)	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	ङस् (अस्)	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि (इ)	ओस्	सुप्

सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है, केवल एकवचन (जिसे सम्बुद्धि कहते हैं) में कुछ अन्तर होता है।

उपर्युक्त सुप्-प्रत्यय प्रातिपदिक शब्द के बाद लगते हैं जैसे–देव, लता, राजन्, अस्मद्, तद् इत्यादि। शब्दरूपों को जानने के लिए प्रातिपदिकों को छह भागों में विभक्त किया गया है—

१. अजन्त पुंल्लिङ्ग–देव, मुनि, साधु, गो आदि।
२. अजन्त स्त्रीलिङ्ग–लता, मति, नदी, वधू, मातृ आदि।
३. अजन्त नपुंसकलिङ्ग–फल, वारि, मधु आदि।
४. हलन्त पुंल्लिङ्ग–राजन्, विद्वस्, गुणिन् आदि।
५. हलन्त स्त्रीलिङ्ग–वाच्, दिश्, अप् आदि।
६. हलन्त नपुंसकलिङ्ग–कर्मन्, अहन्, जगत्, पयस् आदि।

आधुनिक संस्कृत व्याकरण में सर्वनाम (अस्मद्, युष्मद्, तद्, यद्, किम् अदस् आदि) शब्दों के रूपों को पृथक् रखा जाता है।

यहाँ प्रत्येक वर्ग से प्रतिनिधि शब्दों के रूप दिये जाते हैं। प्रथम रूप 'देव' को अर्थ-सहित रखा जा रहा है जिससे अन्य शब्दों के अर्थ भी समझ सकते हैं।

१. अजन्त पुंल्लिङ्ग

अकारान्त 'देव' शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति और मुख्य अर्थ	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा (कर्ता) ने, शून्य	देवः (एक देवता)	देवौ (दो देवता)	देवाः (बहुत देवता)
द्वितीया (कर्म) को	देवम् (देवता को)	देवौ (दो देवताओं को)	देवान् (देवताओं को)
तृतीया (करण) से, के द्वारा	देवेन (देवता से)	देवाभ्याम् (दो देवताओं से)	देवैः (देवताओं से)
चतुर्थी (संप्रदान) के लिए	देवाय (देवता के लिए)	देवाभ्याम् (दो देवताओं के लिये)	देवेभ्यः (देवताओं के लिये)
पंचमी (अपादान) से अलग	देवात् (देवता से)	देवाभ्याम् (दो देवताओं से)	देवेभ्यः (देवताओं से)
षष्ठी (सम्बन्ध) का,के,की,	देवस्य (देवता का)	देवयोः (दो देवताओं का)	देवानाम् (देवताओं का)

सप्तमी (अधिकरण) में, पर	देवे (देवता में)	देवयोः (दो देवताओं में)	देवेषु (देवताओं में)
सम्बोधन	हे देव! (हे देवता)	हे देवौ! (हे दो देवताओं)	हे देवाः! (हे देवताओं)

इस शब्दरूप में द्विवचन के रूप केवल तीन हैं–प्रथमा-द्वितीया-संबोधन में **देवौ**, तृतीया-चतुर्थी-पञ्चमी में **देवाभ्याम्** तथा षष्ठी-सप्तमी में **देवयोः**। द्विवचन शब्दरूपों की संस्कृत में यही स्थिति है। इनकी आवश्यकता कम ही पड़ती है। इसीलिए सरल बनाने के लिए कुछ लोगों ने प्रातिपदिक में 'द्वय' शब्द जोड़कर विभक्तियों के एकवचन से काम लेना शुरू कर दिया है जैसे–देवद्वयम्, देवद्वयेन, देवद्वयाय, देवद्वयस्य, देवद्वये, हे देवद्वय! इत्यादि।

सभी अकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के रूप देव के समान होते हैं। कुछ शब्द दिये जाते हैं–बालक, मानव, मनुष्य*, नर*, सूर्य*, चन्द्र*, राम*, समुद्र*, सागर*, ग्राम*, छात्र*, पर्वत, किरण, दास-भृत्य-सेवक, हस्त-कर* (हाथ), चरण-पाद, कलश-घट, खग (पक्षी), हंस, काक, शुक, बक (बगुला), कुक्कुर*, अश्व, व्याघ्र*, सिंह, मृग*-हरिण, मेघ-पयोद (बादल), नृप*, वृष*, कृषक*, पवन, सर्प*, ओदन, वानर*, तण्डुल, पट, पितामह, मातामह, अग्रज (बड़ा भाई), अनुज (छोटा भाई), कूप, सरोवर*, मन्त्र* इत्यादि।

इनमें जो तारांकित शब्द हैं वे णत्व-विधान के अनुसार तृतीया-एकवचन और षष्ठी-बहुवचन में न के स्थान पर ण ग्रहण करेंगे–नरेण-नराणाम्; छात्रेण-छात्राणाम्, वानरेण-वानराणाम् इत्यादि।

आकारान्त 'विश्वपा' शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विश्वपाः	विश्वपौ	विश्वपाः
द्वितीया	विश्वपाम्	विश्वपौ	विश्वपः
तृतीया	विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभिः
चतुर्थी	विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
पंचमी	विश्वपः	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्यः
षष्ठी	विश्वपः	विश्वपोः	विश्वपाम्
सप्तमी	विश्वपि	विश्वपोः	विश्वपासु
संबोधन	हे विश्वपाः!	हे विश्वपौ!	हे विश्वपाः!

इकारान्त 'मुनि' शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मुनिः	मुनी	मुनयः
द्वितीया	मुनिम्	मुनी	मुनीन्
तृतीया	मुनिना	मुनिभ्याम्	मुनिभिः
चतुर्थी	मुनये	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः
पंचमी	मुनेः	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः
षष्ठी	मुनेः	मुन्योः	मुनीनाम्
सप्तमी	मुनौ	मुन्योः	मुनिषु
संबोधन	हे मुने!	हे मुनी!	हे मुनयः!

सखि और पति को छोड़कर सभी इकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के रूप इसी प्रकार चलते हैं। कुछ शब्द दिये जाते हैं–कवि, हरि*, ऋषि*, रवि*, विधि (नियम या ब्रह्मा), अग्नि, सन्धि, निधि, कपि (बन्दर), अहि (साँप), असि (तलवार), अरि* (शत्रु), रश्मि (किरण), जलधि-जलनिधि-वारिधि-उदधि (समुद्र), गिरि* (पर्वत), अतिथि, मणि, पाणि, अलि (भौंरा), किरि* (सुअर), व्याधि (शरीर का रोग), आधि (मानस रोग), पति से अन्त होने वाले शब्द जैसे भूपति, गृहपति, दलपति, राष्ट्रपति, नृपति, नरपति इत्यादि। यहाँ भी तारांकित शब्दों का तृतीया और षष्ठी में णत्व होगा–हरिणा, ऋषीणाम् इत्यादि।

इकारान्त 'सखि' शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः
द्वितीया	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृतीया	सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः
चतुर्थी	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पंचमी	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
षष्ठी	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	सख्योः	सखिषु
संबोधन	हे सखे!	हे सखायौ!	हे सखायः!

इकारान्त 'पति' शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पतिः	पती	पतयः
द्वितीया	पतिम्	पती	पतीन्

तृतीया	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः
चतुर्थी	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पंचमी	पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
षष्ठी	पत्युः	पत्योः	पतीनाम्
सप्तमी	पत्यौ	पत्योः	पतिषु
संबोधन	हे पते!	हे पती!	हे पतयः!

इन दोनों शब्दों के रूपों में कुछ स्थलों में विलक्षणता है। सखि शब्द का प्रथमा द्वितीया विभक्तियों में और पति शब्द का तृतीया से सप्तमी–तक के एकवचन में अन्तर होता है। इन विभक्तियों में (तृतीया से सप्तमी तक) दोनों के रूप समान रहते हैं। पति शब्द जब समास के उत्तर पद में रहता है तब 'मुनि' के समान रूप चलता है।

ईकारान्त 'सुधी' (बुद्धिमान्) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
द्वितीया	सुधियम्	सुधियौ	सुधियः
तृतीया	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
चतुर्थी	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
पंचमी	सुधियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
षष्ठी	सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्
सप्तमी	सुधियि	सुधियोः	सुधीषु
संबोधन	हे सुधीः!	हे सुधियौ!	हे सुधियः!

उकारान्त 'साधु' शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	साधुः	साधू	साधवः
द्वितीया	साधुम्	साधू	साधून्
तृतीया	साधुना	साधुभ्याम्	साधुभिः
चतुर्थी	साधवे	साधुभ्याम्	साधुभ्यः
पंचमी	साधोः	साधुभ्याम्	साधुभ्यः
षष्ठी	साधोः	साध्वोः	साधूनाम्
सप्तमी	साधौ	साध्वोः	साधुषु
संबोधन	हे साधो!	हे साधू!	हे साधवः!

समान रूप वाले शब्द—गुरु* (शिक्षक, बड़ा), लघु (छोटा), भिक्षु*, मृत्यु, रिपु*, शत्रु*, वायु, भानु, पशु, शम्भु, विभु (व्यापक), बन्धु, सिन्धु, सूनु (पुत्र), तरु*, प्रभु*, विधु-इन्दु (चन्द्रमा), हेतु (कारण), धातु (द्रव्य, क्रियावाचक), सेतु (पुल, बाँध), दयालु, अंशु (किरण), बाहु, बहु (बहुत), सक्तु (सत्तू, केवल बहुवचन में), आखु (चूहा), असु (प्राण, केवल बहुवचन में), इषु* (बाण), बिन्दु, कृशानु (अग्नि) इत्यादि। तारांकित शब्दों से तृतीया और षष्ठी में न का ण होगा–गुरुणा, गुरूणाम्।

ऋकारान्त 'दातृ' (देनेवाला) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दाता	दातारौ	दातारः
द्वितीया	दातारम्	दातारौ	दातॄन्
तृतीया	दात्रा	दातृभ्याम्	दातृभिः
चतुर्थी	दात्रे	दातृभ्याम्	दातृभ्यः
पंचमी	दातुः	दातृभ्याम्	दातृभ्यः
षष्ठी	दातुः	दात्रोः	दातॄणाम्
सप्तमी	दातरि	दात्रोः	दातृषु
संबोधन	हे दातः!	हे दातारौ!	हे दातारः!

तृच् (तथा तृन्) प्रत्यय से बने शब्दों का रूप 'दातृ' के समान होता है जैसे–कर्तृ, श्रोतृ, धातृ, विजेतृ, लब्धृ (पानेवाला), ग्रहीतृ, द्रष्टृ इत्यादि। किन्तु जामातृ, देवृ (देवर), नृ (मनुष्य), आदि पुंल्लिङ्ग शब्दों के रूप नीचे दिये गये शब्द के समान होते हैं।

ऋकारान्त 'भ्रातृ' (भाई) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भ्राता	भ्रातरौ	भ्रातरः
द्वितीया	भ्रातरम्	भ्रातरौ	भ्रातॄन्
तृतीया	भ्रात्रा	भ्रातृभ्याम्	भ्रातृभिः
चतुर्थी	भ्रात्रे	भ्रातृभ्याम्	भ्रातृभ्यः
पंचमी	भ्रातुः	भ्रातृभ्याम्	भ्रातृभ्यः
षष्ठी	भ्रातुः	भ्रात्रोः	भ्रातॄणाम्
सप्तमी	भ्रातरि	भ्रात्रोः	भ्रातृषु
संबोधन	हे भ्रातः!	हे भ्रातरौ!	हे भ्रातरः!

यद्यपि भ्रातृ शब्द के समान ही 'नृ' का रूप भी होता है किन्तु भ्रम के निवारण के लिए इसका रूप पृथक् दिया जा रहा है—

ऋकारान्त 'नृ' (मनुष्य) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ना	नरौ	नरः
द्वितीया	नरम्	नरौ	नॄन्
तृतीया	न्रा	नृभ्याम्	नृभिः
चतुर्थी	न्रे	नृभ्याम्	नृभ्यः
पंचमी	नुः	नृभ्याम्	नृभ्यः
षष्ठी	नुः	न्रोः	नृणाम् (नॄणाम्)
सप्तमी	नरि	न्रोः	नृषु
संबोधन	हे नः!	हे नरौ!	हे नरः!

ओकारान्त 'गो' (गाय, बैल) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गौः	गावौ	गावः
द्वितीया	गाम्	गावौ	गाः
तृतीया	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
चतुर्थी	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पंचमी	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
षष्ठी	गोः	गवोः	गवाम्
सप्तमी	गवि	गवोः	गोषु
संबोधन	हे गौः!	हे गावौ!	हे गावः!

'गो' शब्द पुंल्लिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग दोनों में प्रयुक्त होता है। जैसे–इमे गावः, इमाः गावः। अयं गौः, इयं गौः। अतः पुंल्लिङ्ग रूप से भ्रम में न रहें। ओकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द 'द्यो' (आकाश, स्वर्ग) का रूप 'गो' के ही समान होता है।

२. अजन्त स्त्रीलिङ्ग

आकारान्त 'लता' शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	लता	लते	लताः
द्वितीया	लताम्	लते	लताः
तृतीया	लतया	लताभ्याम्	लताभिः
चतुर्थी	लतायै	लताभ्याम्	लताभ्यः
पंचमी	लतायाः	लताभ्याम्	लताभ्यः

षष्ठी	लतायाः	लतयोः	लतानाम्
सप्तमी	लतायाम्	लतयोः	लतासु
संबोधन	हे लते!	हे लते!	हे लताः!

समान रूप वाले शब्द—बाला-बालिका, कन्या, सुता, भार्या*, खट्वा, सन्ध्या, क्षपा*-यामा-निशा (रात्रि), सभा, कला, कृपा*, अजा, पिपीलिका (चींटी), यूका (जूँ), मक्षिका*, नासिका, सिता (चीनी), शर्करा*, अर्चना-पूजा, आज्ञा, इच्छा, शय्या, तारा*, पत्रिका*, वसुधा-वसुन्धरा*-धरा* (पृथ्वी), द्राक्षा* (अंगूर), महिला, मदिरा*-सुरा*, मुक्ता (मोती), मृत्तिका, मुद्रा* (रुपया-पैसा), सुधा (अमृत), पादुका, शिला, ग्रीवा* (गर्दन), रोटिका, गुहा, मुद्रिका* (अँगूठी), छाया, कथा, कविता, कारा* (जेल), कशा (चाबुक), रथ्या (गली), वार्ता (बातचीत, समाचार), क्षुधा (भूख), पिपासा, सिकता (बालू, बहुवचन में), प्रभा* (प्रकाश), वाटिका (फुलवारी), माला, शाला, शाखा, इष्टका (ईंट), कुण्डलिका (जलेबी), स्त्रियों के आकारान्त नाम-वीणा, सुनीता, प्रभा, राधा, मञ्जुबाला, मधुबाला इत्यादि। तारांकित शब्दों के षष्ठी-बहुवचन में ण होगा।

इकारान्त 'मति' (बुद्धि) शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मतिः	मती	मतयः
द्वितीया	मतिम्	मती	मतीः
तृतीया	मत्या	मतिभ्याम्	मतिभिः
चतुर्थी	मत्यै, मतये	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
पंचमी	मत्याः, मतेः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
षष्ठी	मत्याः, मतेः	मत्योः	मतीनाम्
सप्तमी	मत्याम्, मतौ	मत्योः	मतिषु
संबोधन	हे मते!	हे मती!	हे मतयः!

समान रूप वाले शब्द—रुचि (इच्छा, कान्ति), भूमि, धूलि, पंक्ति, बुद्धि, शुद्धि, सिद्धि, रूढि (परम्परा), जाति, कृषि*, व्रतति (लता), तति (समूह), भित्ति (दीवार, नींव), मूर्ति, शान्ति, कान्ति, दीप्ति (प्रखर प्रकाश), वर्ति (बत्ती), गति, नति-प्रणति (नमस्कार), कटि, मुष्टि (मुट्ठी), अङ्गुलि, शक्ति, भक्ति, हानि, श्रुति (वेद, सुनना), विपत्ति, सम्पत्ति, उन्नति, कीर्ति, युवति, वृत्ति (जीविका, व्यवहार), प्रवृत्ति (झुकाव, समाचार), रात्रि*, प्रकृति (स्वभाव), छवि (स्वरूप, सुन्दरता), मुक्ति (छुटकारा), तिथि, स्मृति (स्मरण, धर्मग्रन्थ), वृष्टि, सृष्टि, क्षिति (पृथ्वी), युक्ति (उपाय) इत्यादि। तारांकित शब्दों के षष्ठी-बहुवचन में णत्व होगा।

ईकारान्त 'नदी' शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वितीया	नदीम्	नद्यौ	नदीः
तृतीया	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
चतुर्थी	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
पंचमी	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
षष्ठी	नद्याः	नद्योः	नदीनाम्
सप्तमी	नद्याम्	नद्योः	नदीषु
संबोधन	हे नदि!	हे नद्यौ!	हे नद्यः!

समान रूपवाले शब्द—लेखनी (कलम), जननी (माता), सौदामनी (बिजली), विभावरी*-रजनी (रात्रि), दासी (सेविका), स्थाली (बटलोही), शाटी (साड़ी), मसी (स्याही), कदली (केला), पुष्करिणी (तालाब), पृथिवी-मेदिनी-धरित्री* (पृथ्वी), प्राची (पूर्व), प्रतीची (पश्चिम), उदीची (उत्तर), अवाची (दक्षिण), श्रीमती, गुणवती, कर्तरी (कैंची)*, पुरी*-नगरी* (शहर), भगिनी (बहन), पत्नी, राज्ञी (रानी), स्वामिनी, पल्ली (छोटा गाँव, छिपकिली) वापी (छोटा तालाब), कौमुदी, गच्छन्ती (जाती हुई), दौहित्री (नातिन), पौत्री* (पोती), मातामही (नानी), पितामही (दादी), कुमारी*, किशोरी*, पुत्री*, पठन्ती इत्यादि। स्त्रियों के ईकारान्त नाम भी इसी श्रेणी के हैं–रागिनी, मालती, शालिनी, मोहिनी, कामिनी, सुमुखी, माधवी इत्यादि। तारांकित शब्दों के षष्ठी-बहुवचन में णत्व होगा।

'लक्ष्मी' शब्द भी नदी के समान होता है किन्तु प्रथमा-एकवचन में 'लक्ष्मीः' होता है।

श्री, धी, स्त्री जैसे एकस्वरीय ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप भिन्न होते हैं। इन्हें पृथक् दिया गया है। इनका प्रयोग बहुत अधिक मिलता है।

ईकारान्त 'श्री' (शोभा, लक्ष्मी) शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	श्रीः	श्रियौ	श्रियः
द्वितीया	श्रियम्	श्रियौ	श्रियः
तृतीया	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः
चतुर्थी	श्रियै, श्रिये	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
पंचमी	श्रियाः, श्रियः	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
षष्ठी	श्रियाः, श्रियः	श्रियोः	श्रीणाम्, श्रियाम्
सप्तमी	श्रियाम्, श्रियि	श्रियोः	श्रीषु
संबोधन	हे श्रीः!	हे श्रियौ!	हे श्रियः!

ईकारान्त 'धी' (बुद्धि) शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धीः	धियौ	धियः
द्वितीया	धियम्	धियौ	धियः
तृतीया	धिया	धीभ्याम्	धीभिः
चतुर्थी	धियै	धीभ्याम्	धीभ्यः
पंचमी	धियाः	धीभ्याम्	धीभ्यः
षष्ठी	धियाः	धियोः	धियाम्
सप्तमी	धियाम्, धियि	धियोः	धीषु
संबोधन	हे धीः!	हे धियौ!	हे धियः!

ईकारान्त 'स्त्री' (नारी) शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः
द्वितीया	स्त्रियम्, स्त्रीम्	स्त्रियौ	स्त्रियः, स्त्रीः
तृतीया	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः
चतुर्थी	स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
पंचमी	स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
षष्ठी	स्त्रियाः	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
सप्तमी	स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रीषु
संबोधन	हे स्त्रि!	हे स्त्रियौ!	हे स्त्रियः!

उकारान्त धेनु (दूध देनेवाली गाय) शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धेनुः	धेनू	धेनवः
द्वितीया	धेनुम्	धेनू	धेनूः
तृतीया	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
चतुर्थी	धेन्वै, धेनवे	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
पंचमी	धेन्वाः, धेनोः	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
षष्ठी	धेन्वाः, धेनोः	धेन्वोः	धेनूनाम्
सप्तमी	धेन्वाम्, धेनौ	धेन्वोः	धेनुषु
संबोधन	हे धेनो!	हे धेनू!	हे धेनवः!

'धेनु' के समान रज्जु (रस्सी), तनु (शरीर), रेणु (धूलि) आदि उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं।

ऊकारान्त 'वधू' (बहू) शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वधूः	वध्वौ	वध्वः
द्वितीया	वधूम्	वध्वौ	वधूः
तृतीया	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
चतुर्थी	वध्वै	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
पंचमी	वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
षष्ठी	वध्वाः	वध्वोः	वधूनाम्
सप्तमी	वध्वाम्	वध्वोः	वधूषु
संबोधन	हे वधु!	हे वध्वौ!	हे वध्वः!

'वधू' के समान जम्बू (जामुन का वृक्ष), चमू (सेना), चम्पू (गद्य पद्य मिश्रित काव्य), श्वश्रू (सास), कर्कन्धू (बेर), प्रसू (उत्पन्न करनेवाली), वामोरू (सुन्दर ऊरु वाली) इत्यादि ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप होते हैं। 'भू' शब्द एक स्वर वाला है अतः इसका भिन्न रूप चलता है, उसी प्रकार 'भ्रू' (भौंह) का भी रूप होता है।

उकारान्त 'भू' (पृथ्वी) शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भूः	भुवौ	भुवः
द्वितीया	भुवम्	भुवौ	भुवः
तृतीया	भुवा	भूभ्याम्	भूभिः
चतुर्थी	भुवे	भूभ्याम्	भूभ्यः
पंचमी	भुवः	भूभ्याम्	भूभ्यः
षष्ठी	भुवः	भुवोः	भुवाम्
सप्तमी	भुवि	भुवोः	भूषु
संबोधन	हे भूः!	हे भुवौ!	हे भुवः!

ऋकारान्त 'मातृ' (माता) शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	माता	मातरौ	मातरः
द्वितीया	मातरम्	मातरौ	मातृः
तृतीया	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः

चतुर्थी	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
पंचमी	मातुः	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
षष्ठी	मातुः	मात्रोः	मातृणाम्
सप्तमी	मातरि	मात्रोः	मातृषु
संबोधन	हे मातः!	हे मातरौ!	हे मातरः!

द्रष्टव्य है कि मातृ का रूप पितृ के समान ही होता है, केवल द्वितीया बहुवचन में अन्तर है–पितॄन्। मातॄः। मातृ के ही समान दुहितृ (बेटी), यातृ (देवरानी) और ननान्दृ (ननद = पति की बहन) के रूप होते हैं। स्वसृ (बहन) के रूप में प्रथमा-द्वितीया में भिन्नता है—

प्रथमा	स्वसा	स्वसारौ	स्वसारः
द्वितीया	स्वसारम्	स्वसारौ	स्वसॄः

शेष रूप मातृ के समान होते हैं।

औकारान्त 'नौ' (नाव) शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नौः	नावौ	नावः
द्वितीया	नावम्	नावौ	नावः
तृतीया	नावा	नौभ्याम्	नौभिः
चतुर्थी	नावे	नौभ्याम्	नौभ्यः
पंचमी	नावः	नौभ्याम्	नौभ्यः
षष्ठी	नावः	नावोः	नावाम्
सप्तमी	नावि	नावोः	नौषु
संबोधन	हे नौः!	हे नावौ!	हे नावः!

३. अजन्त नपुंसकलिङ्ग

अकारान्त 'फल' शब्द (नपुंसकलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	फलम्	फले	फलानि
द्वितीया	फलम्	फले	फलानि
तृतीया	फलेन	फलाभ्याम्	फलैः
चतुर्थी	फलाय	फलाभ्याम्	फलेभ्यः
पंचमी	फलात्	फलाभ्याम्	फलेभ्यः
षष्ठी	फलस्य	फलयोः	फलानाम्
सप्तमी	फले	फलयोः	फलेषु
संबोधन	हे फल!	हे फले!	हे फलानि!

द्रष्टव्य है कि प्रथमा-द्वितीया-संबोधन को छोड़कर अन्यत्र यह पुंल्लिङ्ग 'देव' के समान ही होता है। अकारान्त नपुंसक लिङ्ग के शब्दों के रूप 'फल' के समान ही होते हैं। कुछ शब्द दिये जाते हैं–जलं-सलिलं-पानीयं (पानी), वनं-काननम् अरण्यं (जंगल), भूषणम् (अलंकार), पुष्पं-कुसुमं (फूल), पत्रं-पर्णं (पत्ता), मस्तकं (सिर), पुस्तकं (किताब), शरीरम्-अङ्गम्, गृहं-भवनं-गेहं (घर), नेत्रं-नयनं-लोचनम् (आँख), वस्त्रं-वसनं (कपड़ा), घृतं (घी), तैलं (तेल), भोजनं, स्नानं, दानं, सुखं-दुःखं, बलम् (शक्ति), क्षेत्रं, बीजम्, उदरम् (पेट) उपधानम् (तकिया), ऋणम् (कर्ज), कुलम् कुशलम्, चक्रम्, काव्यं-गद्यं-पद्यं-नाटकम्, साहित्यं-व्याकरणं-दर्शनम्, मिष्टान्नम्, मुखम्-आननम् (मुँह), भक्तम् (भात), मांसम्, रक्तं-रुधिरम्, इन्धनं (जलावन), कमलं-वारिजं-नीरजं-सरसिजं-पङ्कजं-पद्मम् (कमल), आसनम्, उपवनम्, तृणम्, दिनं, दुग्धं, द्वारं, छत्रम्-आतपत्रम् (छाता), पात्रं-भाजनं (बर्तन), वेतनम्, स्वर्णं-कनकं-हिरण्यम् (सोना), रजतं, रूप्यं (चाँदी), द्रव्यम् (वस्तु, सामान), पृष्ठम्, सोपानम् (सीढ़ी) इत्यादि। पुंल्लिङ्ग के साथ भ्रम होने के कारण, इन्हें पृथक् करने के लिए प्रथमा-एकवचन में अनुस्वार या म् के साथ दिया गया है।

इकारान्त 'वारि' (जल) शब्द (नपुंसकलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वितीया	वारि	वारिणी	वारीणि
तृतीया	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभिः
चतुर्थी	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
पंचमी	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
षष्ठी	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
सप्तमी	वारिणि	वारिणोः	वारिषु
संबोधन	हे वारे, वारि!	हे वारिणी!	हे वारीणि!

इकारान्त 'दधि' (दही) शब्द (नपुंसकलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दधि	दधिनी	दधीनि
द्वितीया	दधि	दधिनी	दधीनि
तृतीया	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः
चतुर्थी	दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
पंचमी	दध्नः	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
षष्ठी	दध्नः	दध्नोः	दध्नाम्

सप्तमी	दधनि, दध्नि	दध्नोः	दधिषु
संबोधन	हे दधि, दधे!	हे दधिनी!	हे दधीनि!

इसी प्रकार अस्थि (हड्डी), सक्थि (जाँघ) और अक्षि (आँख) के रूप होते हैं। अक्षि में न का ण हो जाता है। स्पष्टता के लिए इसे पृथक् दे दिया जाता है।

इकारान्त 'अक्षि' (आँख) शब्द (नपुंसकलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
द्वितीया	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
तृतीया	अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभिः
चतुर्थी	अक्ष्णे	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
पंचमी	अक्ष्णः	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
षष्ठी	अक्ष्णः	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्
सप्तमी	अक्षिण, अक्षणि	अक्ष्णोः	अक्षिषु
संबोधन	हे अक्षि!	हे अक्षिणी!	हे अक्षीणि!

उकारान्त 'मधु' (शहद, मदिरा) शब्द (नपुंसकलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वितीया	मधु	मधुनी	मधूनि
तृतीया	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
चतुर्थी	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
पंचमी	मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
षष्ठी	मधुनः	मधुनोः	मधूनाम्
सप्तमी	मधुनि	मधुनोः	मधुषु
संबोधन	हे मधो, हे मधु!	हे मधुनी!	हे मधूनि!

समान रूप वाले शब्द—अम्बु (जल), अश्रु* (आँसू), जतु (लाह Wax), जत्रु* (कंधे की हड्डियाँ, स्कन्धास्थि), तालु (दाँतों की पीछे मुख की छत), त्रपु* (सीसा, राँगा), दारु* (लकड़ी), वसु (धन), वस्तु (पदार्थ, चीज), श्मश्रु* (दाढ़ी-मूँछ)। तारांकित शब्दों में न का णत्व होगा–अश्रूणि, श्मश्रूणि।

४. हलन्त शब्दों के रूप (पुंल्लिङ्ग)

हलन्त पुंल्लिङ्ग शब्दों के प्रसंग में मुख्य शब्दरूप ही यहाँ देना संभव है। इन्हें शब्द के अन्तिम हल् के आधार पर क्रमशः रखा जाता है। जकारान्त (वणिज्, सम्राज्), तकारान्त

(भूभृत्, श्रीमत्, धावत्, महत्), दकारान्त (सुहृद्), नकारान्त (राजन्, पथिन्, महिमन्, मघवन्, युवन्, श्वन्, आत्मन्, गुणिन्), शकारान्त (विश्) और सकारान्त (वेधस्, विद्वस्)–इन्हीं शब्दों (१८) के रूप यहाँ क्रमशः दिये जाते हैं। कौमुदी-ग्रन्थों में सर्वनाम शब्दों को भी हलन्त रूपों में रखा गया है किन्तु आधुनिक ग्रन्थ इनका निरूपण पृथक् करते हैं अतः यहाँ भी यही पद्धति अपनायी जायेगी।

१. जकारान्त वणिज् (व्यापारी–Merchant) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वणिक्	वणिजौ	वणिजः
द्वितीया	वणिजम्	वणिजौ	वणिजः
तृतीया	वणिजा	वणिग्भ्याम्	वणिग्भिः
चतुर्थी	वणिजे	वणिग्भ्याम्	वणिग्भ्यः
पंचमी	वणिजः	वणिग्भ्याम्	वणिग्भ्यः
षष्ठी	वणिजः	वणिजोः	वणिजाम्
सप्तमी	वणिजि	वणिजोः	वणिक्षु
संबोधन	हे वणिक्!	हे वणिजौ!	हे वणिजः!

समान शब्दरूप–भूभुज् (राजा), भिषज् (वैद्य, चिकित्सक), ऋत्विज् (यज्ञ कराने वाला), हुतभुज् (अग्नि), रुज् (रोग Disease), स्रज् (माला, किन्तु यह स्त्रीलिङ्ग है)।

२. जकारान्त 'सम्राज्' (बड़ा राजा–Emperor) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सम्राट्	सम्राजौ	सम्राजः
द्वितीया	सम्राजम्	सम्राजौ	सम्राजः
तृतीया	सम्राजा	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भिः
चतुर्थी	सम्राजे	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भ्यः
पंचमी	सम्राजः	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भ्यः
षष्ठी	सम्राजः	सम्राजोः	सम्राजाम्
सप्तमी	सम्राजि	सम्राजोः	सम्राट्सु
संबोधन	हे सम्राट्!	हे सम्राजौ!	हे सम्राजः!

३. तकारान्त 'भूभृत्' (राजा, पर्वत) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भूभृत्	भूभृतौ	भूभृतः
द्वितीया	भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृतः
तृतीया	भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भिः

चतुर्थी	भूभृते	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
पंचमी	भूभृतः	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्यः
षष्ठी	भूभृतः	भूभृतोः	भूभृताम्
सप्तमी	भूभृति	भूभृतोः	भूभृत्सु
संबोधन	हे भूभृत्!	हे भूभृतौ!	हे भूभृतः!

४. तकारान्त 'श्रीमत्' (धनी, सुन्दर) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	श्रीमान्	श्रीमन्तौ	श्रीमन्तः
द्वितीया	श्रीमन्तम्	श्रीमन्तौ	श्रीमतः
तृतीया	श्रीमता	श्रीमद्भ्याम्	श्रीमद्भिः
चतुर्थी	श्रीमते	श्रीमद्भ्याम्	श्रीमद्भ्यः
पंचमी	श्रीमतः	श्रीमद्भ्याम्	श्रीमद्भ्यः
षष्ठी	श्रीमतः	श्रीमतोः	श्रीमताम्
सप्तमी	श्रीमति	श्रीमतोः	श्रीमत्सु
संबोधन	हे श्रीमन्!	हे श्रीमन्तौ!	हे श्रीमन्तः!

टिप्पणी—ऊपर श्रीमत् के पुंल्लिङ्ग में शब्दरूप दिये गये हैं। इसका स्त्रीलिङ्ग में श्रीमती हो जाता है जिसका रूप 'नदी' के समान चलता है। नपुंसक लिङ्ग में तृतीया से सप्तमी तक पुंल्लिङ्ग जैसे ही शब्द रूप होते हैं किन्तु प्रथमा-द्वितीया-संबोधन में ये रूप हैं—श्रीमत् (एकव.)—श्रीमती (द्विव.)—श्रीमन्ति (बहुव.)। इसी के समान मतुप्-प्रत्ययान्त, क्तवतु-प्रत्ययान्त तथा वतुप्-प्रत्ययान्त शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में होते हैं—

(क) **मतुप्-प्रत्ययान्त शब्द**—मतिमत्, बुद्धिमत्, मूर्तिमत्, आयुष्मत्, गुणवत्, धनवत्, ज्ञानवत् आदि।

(ख) **क्तवतु-प्रत्ययान्त शब्द**—कृतवत्, दृष्टवत्, श्रुतवत्, गतवत्, पठितवत् आदि।

(ग) **वतुप्-प्रत्ययान्त शब्द**—तावत्, एतावत्, कियत् इत्यादि।

कुछ उदाहरण लें–गुणवान् (पुं.), गुणवती (स्त्री.), गुणवत् (नपुं.)। कृतवान् (पुं.), कृतवती (स्त्री.), कृतवत् (नपुं.)। तावान् (पुं. = उतना), तावती (स्त्री. = उतनी), तावत् (नपुं.)। कियान् (पुं. = कितना), कियती (स्त्री. = कितनी), कियत् (नपुं.) जलम्?

५. तकारान्त 'धावत्' (दौड़ता हुआ–Running) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धावन्	धावन्तौ	धावन्तः
द्वितीया	धावन्तम्	धावन्तौ	धावतः

तृतीया	धावता	धावद्भ्याम्	धावद्भिः
चतुर्थी	धावते	धावद्भ्याम्	धावद्भ्यः
पंचमी	धावतः	धावद्भ्याम्	धावद्भ्यः
षष्ठी	धावतः	धावतोः	धावताम्
सप्तमी	धावति	धावतोः	धावत्सु
संबोधन	हे धावन्!	हे धावन्तौ!	हे धावन्तः!

टिप्पणी—यह शतृ प्रत्यय से बना शब्द है, लट् और लृट् लकारों में यह प्रत्यय धातु से होता है जैसे–गम् + लट् (शतृ) = गच्छत्। गम् + लृट् (शतृ) = गमिष्यत्। इससे स्त्रीलिङ्ग में ङीप्–प्रत्यय लगकर–धावन्ती, गच्छन्ती, गमिष्यन्ती–जैसे रूप होते हैं। उसका रूप 'नदी' के समान होता है। यह शब्द विशेषण का काम करता है जैसे–धावन्तं बालकं पश्य। धावन्तीनां बालिकानाम् = दौड़ती हुई लड़कियों का। गृहं गमिष्यन् बालकः = घर जाने की तैयारी वाला लड़का। सभी शतृ-प्रत्ययान्त (ददत् इत्यादि कुछ शब्दों को छोड़कर) शब्दों के रूप ऐसे ही होते हैं। जैसे–गच्छत्, तिष्ठत्, पिबत्, इच्छत्, कुर्वत्, नृत्यत्, गमिष्यत् करिष्यत्, पठिष्यत् इत्यादि।

६. तकारान्त 'महत्' (बड़ा) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	महान्	महान्तौ	महान्तः
द्वितीया	महान्तम्	महान्तौ	महतः
तृतीया	महता	महद्भ्याम्	महद्भिः
चतुर्थी	महते	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
पंचमी	महतः	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
षष्ठी	महतः	महतोः	महताम्
सप्तमी	महति	महतोः	महत्सु
संबोधन	हे महन्!	हे महान्तौ!	हे महान्तः!

इसका स्त्रीलिङ्ग में 'महती' (नदी के समान रूप) होता है। नपुंसकलिङ्ग में तृतीया से सप्तमी तक ये पुंल्लिङ्ग रूप ही होते हैं। केवल प्रथमा-द्वितीया-संबोधन में-महत्-महती-महान्ति-ये रूप तीन वचनों के हैं।

७. दकारान्त 'सुहृद्' (मित्र—Friend) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुहृत्	सुहृदौ	सुहृदः
द्वितीया	सुहृदम्	सुहृदौ	सुहृदः
तृतीया	सुहृदा	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भिः

चतुर्थी	सुहृदे	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भ्यः
पंचमी	सुहृदः	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भ्यः
षष्ठी	सुहृदः	सुहृदोः	सुहृदाम्
सप्तमी	सुहृदि	सुहृदोः	सुहृत्सु
संबोधन	हे सुहृत् (द्)!	हे सुहृदौ!	हे सुहृदः!

सुहृत् के समान ही दकारान्त पुंल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग शब्दों के भी रूप चलते हैं। पुंल्लिङ्ग शास्त्रविद्, सभासद्, गोत्रभिद् (इन्द्र) आदि एवं स्त्रीलिङ्ग परिषद्, संसद्, आपद्, विपद्, सम्पद्, संविद् (समझौता, चेतना), उपनिषद्, मृद् (मिट्टी) आदि शब्द हैं।

८. नकारान्त 'राजन्' (राजा–King) शब्द का रूप (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	राजा	राजानौ	राजानः
द्वितीया	राजानम्	राजानौ	राज्ञः
तृतीया	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
चतुर्थी	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
पंचमी	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
षष्ठी	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
सप्तमी	राज्ञि, राजनि	राज्ञोः	राजसु
संबोधन	हे राजन्!	हे राजानौ!	हे राजानः!

राजन् के समान मूर्धन् (सिर), प्रेमन् (प्रेम), सीमन् (सीमा Boundary), महिमन्, गरिमन्, लघिमन् इत्यादि पुंल्लिङ्ग नकारान्त शब्दों का रूप चलता है। जब ये नपुंसकलिङ्ग में किसी कारण से आते हैं तो 'नामन्' के समान होंगे। आत्मन्, श्वन्, मघवन् इत्यादि कुछ नकारान्त शब्दों के पृथक् रूप होते हैं जिन्हें हम आगे देंगे। महिमन् का रूप राजन् के समान होने पर भी सुविधा के लिए पृथक् देते हैं क्योंकि राजन् में ज् + न् (ज्ञ्) के मिलाने से जो 'ज्ञ' बनता है, वह महिमन् आदि में म् + न् = म्न होने से भ्रम उत्पन्न करता है (यद्यपि कुल मिलाकर स्थिति वही है)।

९. नकारान्त 'पथिन्' (मार्ग–Path) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः
द्वितीया	पन्थानम्	पन्थानौ	पथः
तृतीया	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
चतुर्थी	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
पंचमी	पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः

षष्ठी	पथः	पथोः	पथाम्
सप्तमी	पथि	पथोः	पथिषु
संबोधन	हे पन्थाः!	हे पन्थानौ!	हे पन्थानः!

१०. नकारान्त 'महिमन्' (महत्त्व—Grandeur) शब्द

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	महिमा	महिमानौ	महिमानः
द्वितीया	महिमानम्	महिमानौ	महिम्नः
तृतीया	महिम्ना	महिमभ्याम्	महिमभिः
चतुर्थी	महिम्ने	महिमभ्याम्	महिमभ्यः
पंचमी	महिम्नः	महिमभ्याम्	महिमभ्यः
षष्ठी	महिम्नः	महिम्नोः	महिम्नाम्
सप्तमी	महिम्नि, महिमनि	महिम्नोः	महिमसु
संबोधन	हे महिमन्!	हे महिमानौ!	हे महिमानः!

टिप्पणी—महिमन् शब्द तद्धित इमनिच् प्रत्यय (महत् + इमनिच्) से बना है जो भाव अर्थ में होता है (महतः भावः महिमा)। इसी प्रकार गरिमन्* (गुरु से), प्रेमन्* (प्रिय से), लघिमन् (लघु से), अणिमन् (अणु से), स्थेमन् (स्थिरता, स्थिर से) इत्यादि शब्दों के रूप होते हैं। प्रेमन् और गरिमन् णत्व ग्रहण करता है (न के स्थलों में ण होता है–प्रेम्णा)।

११. नकारान्त 'मघवन्' (इन्द्र) शब्द

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	मघवा	मघवानौ	मघवानः
द्वितीया	मघवानम्	मघवानौ	मघोनः
तृतीया	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः
चतुर्थी	मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
पंचमी	मघोनः	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
षष्ठी	मघोनः	मघोनोः	मघोनाम्
सप्तमी	मघोनि	मघोनोः	मघवसु
संबोधन	हे मघवन्!	हे मघवानौ!	हे मघवानः!

१२. नकारान्त 'युवन्' (युवक) शब्द

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	युवा	युवानौ	युवानः
द्वितीया	युवानम्	युवानौ	यूनः

तृतीया	यूना	युवभ्याम्	युवभिः
चतुर्थी	यूने	युवभ्याम्	युवभ्यः
पंचमी	यूनः	युवभ्याम्	युवभ्यः
षष्ठी	यूनः	यूनोः	यूनाम्
सप्तमी	यूनि	यूनोः	युवसु
संबोधन	हे युवन्!	हे युवानौ!	हे युवानः!

१३. नकारान्त 'श्वन्' (कुत्ता–Dog) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	श्वा	श्वानौ	श्वानः
द्वितीया	श्वानम्	श्वानौ	शुनः
तृतीया	शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः
चतुर्थी	शुने	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
पंचमी	शुनः	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
षष्ठी	शुनः	शुनोः	शुनाम्
सप्तमी	शुनि	शुनोः	श्वसु
संबोधन	हे श्वन्!	हे श्वानौ!	हे श्वानः!

टिप्पणी—श्वन्, युवन् और मघवन् शब्दों का अजादि-प्रत्ययों के पूर्व (भ संज्ञा में) सम्प्रसारण (व का उ) होने का विधान पाणिनि ने एक सूत्र में किया है–श्व-युव-मघोनामतद्धिते (६.४.१३३)। इसी से द्वितीया बहुवचन से आगे शुनः, यूनः, मघोनः जैसे रूप होते हैं। इस पर एक विनोदपूर्ण सुभाषित पद्य है—

काचं मणिं काञ्चनमेकसूत्रे, ग्रथ्नासि बाले किमिदं विचित्रम्?
विचारवान् पाणिनिरेकसूत्रे, श्वानं युवानं मघवानमाह।।

माला गूँथने वाली किसी बाला से प्रश्न किया गया कि तुम काँच (शीशा), मणि और स्वर्ण को एक ही धागे (सूत्र) में क्यों गूँथती हो, ये असमान हैं? उसने उत्तर दिया कि मैं तो मूर्ख (बाला) हूँ, पाणिनि तो विवेकी थे–उन्होंने श्वन्, युवन्, मघवन् जैसी–असमान वस्तुओं को एक ही सूत्र में गूँथने की नासमझी कैसे कर दी?

१४. नकारान्त 'आत्मन्' शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः
द्वितीया	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मनः
तृतीया	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः

चतुर्थी	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
पंचमी	आत्मनः	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
षष्ठी	आत्मनः	आत्मनोः	आत्मनाम्
सप्तमी	आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु
संबोधन	हे आत्मन्!	हे आत्मानौ!	हे आत्मानः!

समान रूप वाले शब्द—ब्रह्मन् (पु.), अश्मन् (पत्थर), यज्वन् (यज्ञकर्ता), अर्वन्, (अश्व), अध्वन् (मार्ग), द्विजन्मन्, अग्रजन्मन् (बड़ा भाई, ब्राह्मण), पुष्पधन्वन् (कामदेव) इत्यादि। ब्रह्मन् तथा अर्वन् के रूपों में न का ण होगा।

१५. नकारान्त 'गुणिन्' (गुणी मनुष्य–Virtuous) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	गुणी	गुणिनौ	गुणिनः
द्वितीया	गुणिनम्	गुणिनौ	गुणिनः
तृतीया	गुणिना	गुणिभ्याम्	गुणिभिः
चतुर्थी	गुणिने	गुणिभ्याम्	गुणिभ्यः
पंचमी	गुणिनः	गुणिभ्याम्	गुणिभ्यः
षष्ठी	गुणिनः	गुणिनोः	गुणिनाम्
सप्तमी	गुणिनि	गुणिनोः	गुणिषु
संबोधन	हे गुणिन्!	हे गुणिनौ!	हे गुणिनः!

समान रूप वाले शब्द—पथिन् छोड़कर सभी इन् और इनि प्रत्ययान्त शब्दों का रूप गुणिन् के ही समान होता है जैसे–ज्ञानिन्, धनिन्, अनुजीविन्, अन्तेवासिन् (शिष्य), अनुयायिन् (पीछे चलने वाला), उपयोगिन्, एकाकिन् (अकेला), करिन्* (हाथी), कामिन् (कामुक, इच्छुक), कृतिन् (पण्डित), क्रोधिन्, गृहिन्* (गृहस्थ), तपस्विन्, यशस्विन्, दण्डिन् (दण्डधर), दन्तिन् (हाथी), निवासिन्, पक्षिन्*, परदेशिन्–विदेशिन्, प्रवासिन्, प्राणिन् (प्राणी), फलिन् (फलवाला वृक्ष), बलिन्-बलशालिन् (बलवान्), ब्रह्मचारिन्*, मनस्विन्, मन्त्रिन्*, कारिन्* (करनेवाला), गामिन् (जानेवाला), रोगिन्*, लोभिन्, वनवासिन् (वन में रहनेवाला), योगिन्, वैरिन्* (शत्रु), वियोगिन्, मेधाविन् (बुद्धिमान्), व्यापिन् (व्यापक), शिल्पिन् (कारीगर), सञ्चारिन्* (चलनेवाला), साक्षिन्* (गवाह), स्वामिन्, हस्तिन् (हाथी), हितैषिन्* (भला चाहने वाला) इत्यादि। तारांकित शब्दों में यथास्थान णत्व होगा। ध्यान रहे कि इन् से अन्त होने वाले शब्दों का षष्ठी बहुवचन में दीर्घ नहीं होता–करिणाम्, धनिनाम्, रोगिणाम् इत्यादि; मुनीनाम्-कवीनाम् के समान नहीं। केवल प्रथमा एकवचन (सु-प्रत्यय) में ही ये दीर्घ होते हैं (करी, धनी, रोगी, गुणी), अन्यत्र कहीं नहीं।

१६. शकारान्त 'विश्' (मनुष्य, वैश्य) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विट् (विड्)	विशौ	विशः
द्वितीया	विशम्	विशौ	विशः
तृतीया	विशा	विड्भ्याम्	विड्भिः
चतुर्थी	विशे	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
पंचमी	विशः	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
षष्ठी	विशः	विशोः	विशाम्
सप्तमी	विशि	विशोः	विट्सु
संबोधन	हे विट् (ड्)!	हे विशौ!	हे विशः!

षकारान्त द्विष् (शत्रु) शब्द का रूप भी इसी प्रकार चलता है। (श > ष)

१७. सकारान्त 'वेधस्' (ब्रह्मा–Creator) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वेधाः	वेधसौ	वेधसः
द्वितीया	वेधसम्	वेधसौ	वेधसः
तृतीया	वेधसा	वेधोभ्याम्	वेधोभिः
चतुर्थी	वेधसे	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
पंचमी	वेधसः	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
षष्ठी	वेधसः	वेधसोः	वेधसाम्
सप्तमी	वेधसि	वेधसोः	वेधस्सु
संबोधन	हे वेधः!	हे वेधसौ!	हे वेधसः!

१८. सकारान्त 'विद्वस्' (विद्वान्–Scholar) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
द्वितीया	विद्वांसम्	विद्वांसौ	विदुषः
तृतीया	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
चतुर्थी	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
पंचमी	विदुषः	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
षष्ठी	विदुषः	विदुषोः	विदुषाम्
सप्तमी	विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु
संबोधन	हे विद्वन्!	हे विद्वांसौ!	हे विद्वांसः!

विद्वस् (विद् + वसु) वसु-प्रत्ययान्त शब्द है। जिन शब्दों में क्वसु (वसु-वस्) लगा हो उनके रूप इसी प्रकार होते हैं जैसे–तस्थिवस् (स्था, बैठ चुका), सेदिवस् (सद्, जा चुका), प्रसेदिवस् (प्र + सद्, प्रसन्न हो चुका), निषेदिवस् (नि + सद्, बैठ चुका), उपेयिवस् (उप + इ, पा चुका) इत्यादि। इनसे स्त्रीलिङ्ग में ङीप् लगता है, नदी के समान रूप होता है–विदुषी, निषेदुषी, उपेयुषी, प्रसेदुषी इत्यादि।

५. हलन्त शब्दों के रूप (स्त्रीलिङ्ग)

इस प्रसंग में भी कुछ मुख्य शब्दों के ही रूप दिये जाते हैं जो अन्त्य व्यञ्जन के अनुसार इस प्रकार हैं–चकारान्त (वाच्), जकारान्त (स्रज्), तकारान्त (सरित्), रकारान्त (गिर्, पुर्), वकारान्त (दिव्), शकारान्त (दिश्), सकारान्त (आशिस्) और हकारान्त (उपानह्)। इनमें स्रज् का रूप तो पुंल्लिङ्ग वणिज् के समान होता है, यह कहा जा चुका है। शेष आठ शब्दों के रूप दिये जाते हैं।

१. चकारान्त 'वाच्' (वाणी–Speech) (स्त्रीलिङ्ग) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वाक्, वाग्	वाचौ	वाचः
द्वितीया	वाचम्	वाचौ	वाचः
तृतीया	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
चतुर्थी	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
पंचमी	वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
षष्ठी	वाचः	वाचोः	वाचाम्
सप्तमी	वाचि	वाचोः	वाक्षु
संबोधन	हे वाक्, वाग्!	हे वाचौ!	हे वाचः!

रुच्, ऋच्, त्वच्, शुच् (शोक) के रूप वाच् जैसे ही होते हैं। वाच् का आकारान्त रूप 'वाचा' भी होता है जिसका रूप लता-जैसा होगा।

२. तकारान्त 'सरित्' (नदी–River) (स्त्रीलिङ्ग) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सरित्	सरितौ	सरितः
द्वितीया	सरितम्	सरितौ	सरितः
तृतीया	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः
चतुर्थी	सरिते	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
पंचमी	सरितः	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
षष्ठी	सरितः	सरितोः	सरिताम्

सप्तमी	सरिति	सरितोः	सरित्सु
संबोधन	हे सरित्!	हे सरितौ!	हे सरितः!

समान रूप वाले शब्द—हरित्, विद्युत्, तडित्, योषित् (स्त्री.)। पुंल्लिङ्ग में भूभृत्, महीभृत्, दिनकृत् (सूर्य) तथा अन्य क्विप्-प्रत्ययान्त शब्दों के रूप भी इसी प्रकार चलते हैं।

३. रकारान्त 'गिर्' (वाणी–Speech) (स्त्रीलिङ्ग) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गीः	गिरौ	गिरः
द्वितीया	गिरम्	गिरौ	गिरः
तृतीया	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः
चतुर्थी	गिरे	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
पंचमी	गिरः	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
षष्ठी	गिरः	गिरोः	गिराम्
सप्तमी	गिरि	गिरोः	गीर्षु
संबोधन	हे गीः!	हे गिरौ!	हे गिरः!

इसके रूपों में ह्रस्व तथा दीर्घ के अन्तर पर ध्यान दें।

४. रकारान्त 'पुर्' (नगर–Town) (स्त्रीलिङ्ग) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पूः	पुरौ	पुरः
द्वितीया	पुरम्	पुरौ	पुरः
तृतीया	पुरा	पूर्भ्याम्	पूर्भिः
चतुर्थी	पुरे	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
पंचमी	पुरः	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
षष्ठी	पुरः	पुरोः	पुराम्
सप्तमी	पुरि	पुरोः	पूर्षु
संबोधन	हे पूः!	हे पुरौ!	हे पुरः!

इसके रूपों में भी ह्रस्व और दीर्घ का अन्तर ध्यान से देखें।

५. वकारान्त 'दिव्' (स्वर्ग, आकाश–Heaven) (स्त्रीलिङ्ग) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्यौः	दिवौ	दिवः
द्वितीया	दिवम्	दिवौ	दिवः

तृतीया	दिवा	द्युभ्याम्	द्युभिः
चतुर्थी	दिवे	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
पंचमी	दिवः	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
षष्ठी	दिवः	दिवोः	दिवाम्
सप्तमी	दिवि	दिवोः	द्युषु
संबोधन	हे द्यौः!	हे दिवौ!	हे दिवः!

६. शकारान्त 'दिश्' (दिशा—Direction) (स्त्रीलिङ्ग) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दिक्, दिग्	दिशौ	दिशः
द्वितीया	दिशम्	दिशौ	दिशः
तृतीया	दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः
चतुर्थी	दिशे	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
पंचमी	दिशः	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
षष्ठी	दिशः	दिशोः	दिशाम्
सप्तमी	दिशि	दिशोः	दिक्षु
संबोधन	हे दिक्, दिग्!	हे दिशौ!	हे दिशः!

टिप्पणी—तादृश्, एतादृश्, ईदृश् (इसके समान), यादृश् (जैसा), कीदृश् (कैसा), मादृश् (मुझ सा), त्वादृश् (तुम सा), अस्मादृश् (हमारे जैसा), युष्मादृश्-इन क्विन्-प्रत्ययान्त शब्दों का रूप भी इसी प्रकार का होता है, भले ही वे पुंल्लिङ्ग हों। दिश् का आबन्त रूप 'दिशा' भी है जिसका लता के समान रूप चलता है।

७. सकारान्त 'आशिस्' (आशीर्वाद—Blessing) (स्त्रीलिङ्ग) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	आशीः	आशिषौ	आशिषः
द्वितीया	आशिषम्	आशिषौ	आशिषः
तृतीया	आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भिः
चतुर्थी	आशिषे	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
पंचमी	आशिषः	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
षष्ठी	आशिषः	आशिषोः	आशिषाम्
सप्तमी	आशिषि	आशिषोः	आशीषु
संबोधन	हे आशीः!	हे आशिषौ!	हे आशिषः!

स्वरादि प्रत्ययों (औ, अः, आ, आम् आदि) के पूर्व स का षत्व हो जाता है। इसी से मूल शब्द आशिष् भी कहते हैं।

८. हकारान्त 'उपानह्' (जूता–Shoe) (स्त्रीलिङ्ग) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	उपानत्-उपानद्	उपानहौ	उपानहः
द्वितीया	उपानहम्	उपानहौ	उपानहः
तृतीया	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
चतुर्थी	उपानहे	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
पंचमी	उपानहः	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
षष्ठी	उपानहः	उपानहोः	उपानहाम्
सप्तमी	उपानहि	उपानहोः	उपानत्सु
संबोधन	हे उपानत्-द्!	हे उपानहौ!	हे उपानहः!

६. हलन्त शब्दों के रूप (नपुंसकलिङ्ग)

इस प्रसंग में केवल आठ शब्द रूप दिये जा रहे हैं–तकारान्त (जगत्), नकारान्त (कर्मन्, नामन्, अहन्, स्थायिन्), सकारान्त (पयस्, हविस्, धनुस्)।

१. तकारान्त 'जगत्' (संसार) (नपुंसकलिङ्ग) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	जगत्	जगती	जगन्ति
द्वितीया	जगत्	जगती	जगन्ति
तृतीया	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भिः
चतुर्थी	जगते	जगद्भ्याम्	जगद्भ्यः
पंचमी	जगतः	जगद्भ्याम्	जगद्भ्यः
षष्ठी	जगतः	जगतोः	जगताम्
सप्तमी	जगति	जगतोः	जगत्सु
संबोधन	हे जगत्!	हे जगती!	हे जगन्ति!

नपुंसकलिङ्ग के गच्छत्, पतत्, नृत्यत् आदि शतृ-प्रत्ययान्त; श्रीमत्, गुणवत् आदि मतुप्-प्रत्ययान्त; कृतवत्, गतवत् आदि क्तवतु प्रत्ययान्त शब्दों के रूप जगत् के समान ही होते हैं। महत् शब्द भी ऐसा ही है किन्तु प्रथमा-द्वितीया बहुवचन में इसका रूप 'महान्ति' (महन्ति नहीं) होता है।

२. नकारान्त 'कर्मन्' (नपुंसकलिङ्ग) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कर्म	कर्मणी	कर्माणि
द्वितीया	कर्म	कर्मणी	कर्माणि

तृतीया	कर्मणा	कर्मभ्याम्	कर्मभिः
चतुर्थी	कर्मणे	कर्मभ्याम्	कर्मभ्यः
पंचमी	कर्मणः	कर्मभ्याम्	कर्मभ्यः
षष्ठी	कर्मणः	कर्मणोः	कर्मणाम्
सप्तमी	कर्मणि	कर्मणोः	कर्मसु
संबोधन	हे कर्म!	हे कर्मणी!	हे कर्माणि!

शर्मन्, छद्मन् (प्रपंच, षड्यन्त्र), वेश्मन् (घर), जन्मन्, सद्मन् (घर) आदि के रूप ऐसे ही होते हैं। ध्यान रखना है कि सब में णत्व नहीं होता। उपर्युक्त शब्दों में केवल शर्मन् में णत्व होगा, अन्य में नहीं जैसे–जन्म-जन्मनी-जन्मानि।

३. नकारान्त 'नामन्' (नाम–Name) (नपुंसकलिङ्ग) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
द्वितीया	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
तृतीया	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभिः
चतुर्थी	नाम्ने	नामभ्याम्	नामभ्यः
पंचमी	नाम्नः	नामभ्याम्	नामभ्यः
षष्ठी	नाम्नः	नाम्नोः	नाम्नाम्
सप्तमी	नाम्नि, नामनि	नाम्नोः	नामसु
संबोधन	हे नाम, नामन्!	हे नाम्नी, नामनी!	हे नामानि!

प्रेमन्, धामन्, सामन्, व्योमन् (आकाश) के रूप नामन्–जैसे होते है। प्रेमन् में णत्व होगा।

४. नकारान्त 'अहन्' (दिन–Day) (नपुंसकलिङ्ग) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहः	अहनी, अह्नी	अहानि
द्वितीया	अहः	अहनी, अह्नी	अहानि
तृतीया	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः
चतुर्थी	अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
पंचमी	अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
षष्ठी	अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्
सप्तमी	अहनि, अह्नि	अह्नोः	अहःसु, अहस्सु
संबोधन	हे अहः!	हे अहनी, अह्नी!	हे अहानि!

५. नकारान्त 'स्थायिन्' (स्थिर–Static) (नपुंसकलिङ्ग) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्थायि	स्थायिनी	स्थायीनि
द्वितीया	स्थायि	स्थायिनी	स्थायीनि
तृतीया	स्थायिना	स्थायिभ्याम्	स्थायिभिः
चतुर्थी	स्थायिने	स्थायिभ्याम्	स्थायिभ्यः
पंचमी	स्थायिनः	स्थायिभ्याम्	स्थायिभ्यः
षष्ठी	स्थायिनः	स्थायिनोः	स्थायिनाम्
सप्तमी	स्थायिनि	स्थायिनोः	स्थायिषु
संबोधन	हे स्थायि!	हे स्थायिनी!	हे स्थायीनि!

टिप्पणी—स्थायिन् (स्था + णिनि) वस्तुतः इनि-प्रत्यय वाले शब्दों के समान है। नपुंसकलिङ्ग में 'वारि' के समान ही यह है, केवल संबोधन एकवचन में इसका एक ही रूप 'स्थायि' होता है, षष्ठी बहुवचन में दीर्घ नहीं होता। इसी प्रकार णिनि और इनि प्रत्यय वाले शब्दों के नपुंसक लिङ्ग में रूप होते हैं। णत्व यथास्थान होगा यदि उसके निमित्त वर्ण मूल शब्द में होंगे यथा–कारि-कारिणी-कारीणि।

६. सकारान्त 'पयस्' (दूध, जल–Milk, Water) (नपुंसकलिङ्ग) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पयः	पयसी	पयांसि
द्वितीया	पयः	पयसी	पयांसि
तृतीया	पयसा	पयोभ्याम्	पयोभिः
चतुर्थी	पयसे	पयोभ्याम्	पयोभ्यः
पंचमी	पयसः	पयोभ्याम्	पयोभ्यः
षष्ठी	पयसः	पयसोः	पयसाम्
सप्तमी	पयसि	पयसोः	पयःसु, पयस्सु
संबोधन	हे पयः!	हे पयसी!	हे पयांसि!

समान रूपवाले शब्द-वचस् (वचन), रहस् (एकान्त स्थान), नभस् (आकाश), तेजस्–वर्चस् (शक्ति), सरस् (तालाब), चेतस्–मनस्, वयस् (उम्र, पक्षी) इत्यादि।

७. सकारान्त 'हविस्' (हवन की सामग्री) (नपुंसकलिङ्ग) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	हविः	हविषी	हवींषि
द्वितीया	हविः	हविषी	हवींषि

तृतीया	हविषा	हविर्भ्याम्	हविर्भिः
चतुर्थी	हविषे	हविर्भ्याम्	हविर्भ्यः
पंचमी	हविषः	हविर्भ्याम्	हविर्भ्यः
षष्ठी	हविषः	हविषोः	हविषाम्
सप्तमी	हविषि	हविषोः	हविःषु
संबोधन	हे हविः!	हे हविषी!	हे हवींषि!

इसी प्रकार सर्पिस् (घृत), ज्योतिस् (प्रकाश), अर्चिस् (प्रकाश) इत्यादि के रूप होते हैं। वस्तुतः आगे आनेवाला 'धनुस्' भी इसी कोटि का शब्द है। स्पष्टता के लिए पृथक् दिया जाता है।

८. सकारान्त 'धनुस्' (धनुष—Bow) (नपुंसकलिङ्ग) शब्द

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	धनुः	धनुषी	धनूंषि
द्वितीया	धनुः	धनुषी	धनूंषि
तृतीया	धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः
चतुर्थी	धनुषे	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
पंचमी	धनुषः	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
षष्ठी	धनुषः	धनुषोः	धनुषाम्
सप्तमी	धनुषि	धनुषोः	धनुःषु
संबोधन	हे धनुः!	हे धनुषी!	हे धनूंषि!

वपुस् (शरीर), चक्षुस् (आँख), यजुस् (गद्यमन्त्र), जनुस् (जन्म), अरुस् (मर्म) आदि के रूप इसी श्रेणी के हैं।

सर्वनाम शब्द

सामान्यतः **सर्वनाम** (Pronoun) का अर्थ ऐसा शब्द होता है जो संज्ञा-शब्द के स्थान में प्रयुक्त होता है। किन्तु पाणिनीय व्याकरण में यह एक ऐसा पारिभाषिक शब्द (Technical term) है जो कुछ निश्चित शब्दों को ही समेटता है, यह शब्दों का गण (Collection) है जिसमें कुछ विशेषण–जैसे शब्द भी संकलित हैं। इस विषय में पाणिनि का प्रसिद्ध सूत्र है–**सर्वादीनि सर्वनामानि** (पा.सू. १.१.२६)–सर्व आदि पैंतीस शब्द-स्वरूपों को 'सर्वनाम' कहा गया है। इन शब्दों में कुछ विशेषताएँ हैं जिनका परिचय दिया जाता है।

सर्व, विश्व, सम, सिम—ये चारों 'सब' (All) के अर्थ में ही सर्वनाम हैं; तब इनका रूप पृथक् (सर्व के समान) चलता है। दूसरे अर्थों में ये अकारान्त देव के समान हैं। **पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर** और **अधर**—ये दिशा, समय या देश की व्यवस्था के अर्थ में

सर्वनाम हैं। संज्ञा अर्थ हो तो इनका रूप देव या लता के समान होगा। **'स्व'** शब्द सम्बन्धी या धन का बोध न कराये तो सर्वनाम है। अन्य अर्थों में देव, लता या फल के समान रूप होगा। **उभ** (दो, दोनों) केवल द्विवचन होता है; **उभय** (दोनों) का एकवचन और बहुवचन में प्रयोग होता है, द्विवचन में नहीं–उभयी प्रकृतिः, उभये देवासुराः। **अन्य, पर, अपर, इतर** 'दूसरे' या 'भिन्न' का अर्थ देते हैं। **'अन्यतर'** तो सर्वनाम है, किन्तु 'अन्यतम' नहीं (देखें– अन्यतरस्मै देहि = दोनों में से किसी एक को दो; अन्यतमाय बालकाय = इनमें किसी एक लड़के को)। **अन्योन्य** तथा **इतरेतर** (आपस में दोनों) केवल एकवचन में होते हैं, सर्व के समान पुंल्लिङ्ग में रूप होता है। इसी अर्थ में 'परस्पर' शब्द भी एकवचन ही रहता है– परस्परस्मात्, अन्योन्यस्मात्, इतरेतरस्मात् (एक दूसरे से)।

'एक' शब्द 'कुछ' का अर्थ देने पर बहुवचन रहता है–एके वदन्ति (केचित् वदन्ति = कुछ लोग कहते हैं)। **'अन्तर'** शब्द बाहर या ऊपरी वस्त्र के अर्थ में सर्वनाम होता है (अन्तरं बहिर्योगोपसंव्यानयोः)। भिन्नता के अर्थ में फल के समान रूप चलता है। **अस्मद्** और **युष्मद्** के रूप तीनों लिङ्गों में एक समान होते हैं किन्तु इनके विशेषण का यथोचित लिङ्ग होता है जैसे–त्वं भाग्यवती असि, वयं न श्रीमन्तः स्मः। इनके वैकल्पिक लघुरूपों (मा मे नौ नः, त्वा ते वाम् वः) का प्रयोग वाक्यादि में, छन्द के पादादि में तथा संबोधन के तुरन्त बाद में नहीं होता। **भवत्** (आप) अर्थ में मध्यम पुरुष का रहने पर भी केवल प्रथम पुरुष में आता है–भवान् गच्छति, भवती तिष्ठतु। भवत् के पूर्व अत्र और तत्र का प्रयोग पूज्य-बोध के लिये होता है–अत्रभवान्, तत्रभवान् कालिदासः।

तद् का प्रयोग विशेषण (That) के अर्थ में भी होता है–स पुरुषः, सा नगरी, तानि पुष्पाणि। दुहराये जाने पर यह 'विभिन्न' (Diverse) का अर्थ देता है–तां तामवस्थाम्, ते ते ग्रन्थाः, तानि तानि नगराणि गतोऽहम्। एव के जुड़ने पर 'वही' का अर्थ देता है–तदेव वनम्, सा एव सखी, स एव रामः। किसी सर्वनाम के पूर्व यह (तद्) उसे बल देता है–स त्वं गच्छ। **'एतद्'** निकटता का बोधक है–एतत् तद् गृहम्। पुरुषवाचक सर्वनाम पर यह बल भी देता है–एष अहमुपस्थितः। **यद्** सम्बन्ध का बोधक सर्वनाम है, सदा तद् के साथ जुड़ता है (यत्तदोर्नित्यः सम्बन्धः)। यद् और तद् से निर्दिष्ट शब्दों में वचन, पुरुष एवं लिङ्ग की भिन्नता होती हो तो निकटवर्ती से साम्य रहता है–शैत्यं हि यत्, सा प्रकृतिर्जलस्य। 'यद्' की आवृत्ति हो तो 'जिस किसी' का अर्थ आता है–यं यं भावं स्मरन् शरीरं त्यजति, तं तं प्राप्नोति।

'इदम्' (यह) निकटता का बोधक सर्वनाम है, जो विशेषण का भी काम करता है–इदं शरीरम्, इयं पाठशाला, अयं सरोवरः। इसके कुछ रूपों में अन्वादेश (एन) होता है। द्वितीया के सभी वचनों में, तृतीया-एकवचन में तथा षष्ठी-सप्तमी के द्विवचन में एतद् तथा इदम् का 'एन' हो जाता है यदि उसी व्यक्ति या पदार्थ की आवृत्ति करनी हो (एनम्-एनौ-एनान्; एनेन; एनयोः)। जैसे–अनेन व्याकरणमधीतम्, एनं छन्दोऽध्यापय। **नेम** अर्धार्थक है। **डतर-डतम** ये दो प्रत्यय हैं जो किम्, यद्, तद् और एक इन चारों सर्वनामों से लगकर आठ शब्द बनाते

हैं–कतर-कतम, यतर-यतम, ततर-ततम, एकतर-एकतम ('प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहण्'–यह परिभाषा यहाँ लागू होती है)। **एक** और **द्वि** संख्यावाचक हैं। **अदस्** दूरवर्ती पदार्थ का बोध कराता है जैसे–असौ बालकः।

किम् प्रश्नवाचक है किन्तु इसके बाद चित्, चन, अपि जुड़ने से अनिश्चय का बोध होता है। जैसे–कश्चित्, कस्मिन्नपि, कस्याञ्चित्। इसमें सन्धि अनिवार्य है–कस्मिन्चित् कहना अशुद्ध है, कस्मिंश्चित् शुद्ध है। **अस्मद्, युष्मद्** तथा **भवत्** वास्तविक सर्वनाम (Pronoun) हैं, शेष तो प्रायः विशेषण के समान प्रयुक्त होते हैं अतः विशेष्य के अनुसार उनके लिङ्ग, वचन पर ध्यान देना चाहिए।

यहाँ मुख्यतः सर्व, तद्, एतद्, यद्, किम्, इदम्, अदस्, भवत्, अस्मद् और युष्मद् के रूप दिये जाते हैं। प्रथम आठ तो तीनों लिङ्गों में पृथक्-पृथक् होते हैं किन्तु अस्मद्-युष्मद् का एक ही रूप सभी लिङ्गों में रहता है।

१. अकारान्त सर्वनाम 'सर्व' (सभी–All) (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पंचमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

सर्व (स्त्रीलिङ्ग-सर्वा) शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
द्वितीया	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
तृतीया	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः
चतुर्थी	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
पंचमी	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
षष्ठी	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
सप्तमी	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु

नपुंसकलिङ्ग में प्रथमा-द्वितीया में सर्वम् (ए.व.)–सर्वे (द्विव.)–सर्वाणि (बहुव.) होता है, तृतीया से सप्तमी तक के रूप पुंल्लिङ्ग के ही होते हैं। किसी सर्वनाम का संबोधन रूप नहीं होता।

२. तद् (वह–That) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सः	तौ	ते
द्वितीया	तम्	तौ	तान्
तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
पंचमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

तद् (वह) शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सा	ते	ताः
द्वितीया	ताम्	ते	ताः
तृतीया	तया	ताभ्याम्	ताभिः
चतुर्थी	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः
पंचमी	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
षष्ठी	तस्याः	तयोः	तासाम्
सप्तमी	तस्याम्	तयोः	तासु

नपुंसकलिङ्ग में प्रथमा-द्वितीया में 'तत् (एकव.)–ते (द्विव.)–तानि (बहुव.)' होता है। शेष रूप पुंल्लिङ्ग के ही होते हैं।

३. एतद् (यह–This) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एषः	एतौ	एते
द्वितीया	एतम्, एनम्	एतौ, एनौ	एतान्
तृतीया	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः
चतुर्थी	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पंचमी	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
षष्ठी	एतस्य	एतयोः, एनयोः	एतेषाम्
सप्तमी	एतस्मिन्	एतयोः, एनयोः	एतेषु

एतद् (यह) शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एषा	एते	एताः
द्वितीया	एताम्, एनाम्	एते	एताः
तृतीया	एतया, एनया	एताभ्याम्	एताभिः
चतुर्थी	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः
पंचमी	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
षष्ठी	एतस्याः	एतयोः, एनयोः	एतासाम्
सप्तमी	एतस्याम्	एतयोः, एनयोः	एतासु

नपुंसकलिङ्ग में प्रथमा-द्वितीया में एतत्-एते-एतानि' रूप होते हैं। शेष पुंल्लिङ्ग के ही रूप होते हैं।

४. यद् (जो–Who, That) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यः	यौ	ये
द्वितीया	यम्	यौ	यान्
तृतीया	येन	याभ्याम्	यैः
चतुर्थी	यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः
पंचमी	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
षष्ठी	यस्य	ययोः	येषाम्
सप्तमी	यस्मिन्	ययोः	येषु

यद् (जो) शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	या	ये	याः
द्वितीया	याम्	ये	याः
तृतीया	यया	याभ्याम्	याभिः
चतुर्थी	यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः
पंचमी	यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः
षष्ठी	यस्याः	ययोः	यासाम्
सप्तमी	यस्याम्	ययोः	यासु

नपुंसकलिङ्ग में प्रथमा-द्वितीया में 'यत्-ये-यानि' रूप होते हैं। शेष रूप पुंल्लिङ्ग के समान होते हैं।

५. किम् (कौन, क्या—Who) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कः	कौ	के
द्वितीया	कम्	कौ	कान्
तृतीया	केन	काभ्याम्	कैः
चतुर्थी	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पंचमी	कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
षष्ठी	कस्य	कयोः	केषाम्
सप्तमी	कस्मिन्	कयोः	केषु

किम् (कौन, क्या) शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	का	के	काः
द्वितीया	काम्	के	काः
तृतीया	कया	काभ्याम्	काभिः
चतुर्थी	कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः
पंचमी	कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः
षष्ठी	कस्याः	कयोः	कासाम्
सप्तमी	कस्याम्	कयोः	कासु

नपुंसकलिङ्ग में प्रथमा-द्वितीया में 'किम्-के-कानि' रूप होते हैं। शेष पुंल्लिङ्ग के ही रूप होते हैं।

६. इदम् (यह—This) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अयम्	इमौ	इमे
द्वितीया	इमम्, एनम्	इमौ	इमान्, एनान्
तृतीया	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पंचमी	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
षष्ठी	अस्य	अनयोः, एनयोः	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयोः, एनयोः	एषु

इदम् (यह) शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	इयम्	इमे	इमाः
द्वितीया	इमाम्, एनाम्	इमे	इमाः, एनाः
तृतीया	अनया, एनया	आभ्याम्	आभिः
चतुर्थी	अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः
पंचमी	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
षष्ठी	अस्याः	अनयोः, एनयोः	आसाम्
सप्तमी	अस्याम्	अनयोः, एनयोः	आसु

नपुंसकलिङ्ग में प्रथमा-द्वितीया में 'इदम्-इमे-इमानि' रूप होता है, तृतीया से सप्तमी तक पुंल्लिङ्ग जैसे ही रूप होते हैं।

७. अदस् (वह–That) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	असौ	अमू	अमी
द्वितीया	अमुम्	अमू	अमून्
तृतीया	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः
चतुर्थी	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
पंचमी	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
षष्ठी	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
सप्तमी	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु

अदस् (वह) शब्द (स्त्रीलिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	असौ	अमू	अमूः
द्वितीया	अमुम्	अमू	अमूः
तृतीया	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
चतुर्थी	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
पंचमी	अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
षष्ठी	अमुष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
सप्तमी	अमुष्याम्	अमुयोः	अमूषु

८. भवत् (आप–Your honour) शब्द (पुंल्लिङ्ग)

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भवान्	भवन्तौ	भवन्तः
द्वितीया	भवन्तम्	भवन्तौ	भवतः
तृतीया	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः
चतुर्थी	भवते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
पंचमी	भवतः	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
षष्ठी	भवतः	भवतोः	भवताम्
सप्तमी	भवति	भवतोः	भवत्सु

इसका स्त्रीलिङ्ग टाप्-प्रत्यय लगकर 'भवती' होता है जिसका रूप नदी के समान होता है।

९. अस्मद् (मैं, हम–I, We) शब्द-उत्तम पुरुष

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, नः
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
चतुर्थी	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, नः
पंचमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
षष्ठी	मम, मे	आवयोः, नौ	अस्माकम्, नः
सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु

१०. युष्मद् (तुम–You) शब्द-मध्यम पुरुष

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, वः
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
चतुर्थी	तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम्, वाम्	युष्मभ्यम्, वः
पंचमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
षष्ठी	तव, ते	युवयोः, वाम्	युष्माकम्, वः
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

टिप्पणी—सर्वनाम शब्दों में 'सर्व' एक आधार है जिसके ढाँचे पर अधिसंख्य सर्वनामों के रूप ढले होते हैं। प्रथमा बहुवचन में जस् का ई होकर 'सर्वे' होना, चतुर्थी एकवचन में (ङे का) स्मै होना, पञ्चमी-एकवचन स्मात्, सप्तमी-एकवचन में स्मिन्–ये पुंल्लिङ्ग की

विशिष्टताएँ हैं। पूर्व आदि नौ शब्दों (पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व तथा अन्तर) के विषय में कहा गया है कि इनसे स्मात् और स्मिन् आदेश विकल्प से होते हैं– पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा (पा.सू. ७.१.१६)। अतः पञ्चमी में पूर्वात्-पूर्वस्मात् तथा सप्तमी में पूर्वे-पूर्वस्मिन् दोनों रूप सम्भव हैं। शेष सर्व के समान ही हैं।

अभ्यास - ७

१. अधोमुद्रित शब्दों के रूप दी गई विभक्ति और वचन में लिखें—

(क) वारि–प्रथमा बहुवचन
(ख) पथिन्–सप्तमी द्विवचन
(ग) पति–तृतीया एकवचन
(घ) पति–सप्तमी एकवचन
(ङ) नदी–षष्ठी एकवचन
(च) हरि–षष्ठी एकवचन
(छ) मातृ–पञ्चमी एकवचन
(ज) अस्मद्–चतुर्थी एकवचन
(झ) दातृ–षष्ठी द्विवचन
(ञ) साधु–तृतीया एकवचन
(ट) पयस्–चतुर्थी एकवचन
(ठ) तद् (पुं.)–षष्ठी बहुवचन
(ड) किम् (स्त्री.)–पञ्चमी एकवचन
(ढ) सर्व (पुं.)–सप्तमी एकवचन
(ण) युष्मद्–सप्तमी बहुवचन
(त) मधु–द्वितीया बहुवचन
(थ) सखि–प्रथमा बहुवचन
(द) राजन्–षष्ठी बहुवचन
(ध) इदम् (पुं.)–प्रथमा एकवचन
(न) लता–तृतीया एकवचन

२. अधोमुद्रित शब्दों के रूप तृतीया एकवचन में लिखें—

सखि, इदम् (पुं.), वणिज्, पयस्, एक (पुं.), मति, मुनि।

३. इन पदों के मूल शब्द, उनके लिङ्ग, वचन और विभक्ति का निर्देश करें—

इयम्, सर्वान्, राज्ञः, मतीः, आत्मनः, देवानाम्, नद्यः, केषाम्, तस्मिन्, अस्माकम्, युवयोः।

४. निम्नांकित पदों को एकवचन से बहुवचन में और बहुवचन से एकवचन में परिवर्तित करें—

(क) सर्वस्मिन् ....
(ख) युष्माभिः ....
(ग) येषु ....
(घ) अस्माकम् ....
(ङ) भवते ....
(च) तस्य ....
(छ) कस्यै ....
(ज) जगताम् ....
(झ) वणिजि ....
(ञ) महत्सु ....

५. निम्नांकित शब्दों के रूप तीनों वचनों में लिखें—

(क) गो (षष्ठी)
(ख) स्त्री (सप्तमी)
(ग) विद्वस् (द्वितीया)
(घ) राजन् (सप्तमी)

(ङ) भ्रातृ (सप्तमी)
(च) धेनु (सप्तमी)
(छ) मुनि (सप्तमी)
(ज) पयस् (सप्तमी)
(झ) उपानह् (सप्तमी)
(ञ) कर्मन् (सप्तमी)

६. **इनका संस्कृत में रूपान्तर करें—**

(क) तुम दोनों में
(ख) हमलोगों का
(ग) राजाओं के लिए
(घ) नदियों में
(ङ) दौड़ते हुए को
(च) कर्म में
(छ) दिशाओं से
(ज) वाणी में
(झ) गुणी द्वारा
(ञ) स्त्रियों का

७. **इन पदों का हिन्दी में अर्थ लिखें—**

(क) विदुषे
(ख) शुनाम्
(ग) महिमानम्
(घ) श्रीमता
(ङ) अक्ष्णे
(च) भुवाम्
(छ) गुणिभिः
(ज) आत्मनि
(झ) केषाम्
(ञ) एतस्मात्

*

५ संख्यावाचक शब्द
Numerals

संख्या का महत्त्व वस्तुओं की शुद्ध गणना (Counting) के लिए है। सभी प्राचीन सभ्यताओं में किसी न किसी प्रकार की गणना-पद्धति थी, कहीं चार के गुणक में, कहीं पाँच या दस के गुणक में तो कहीं सोलह के गुणक में। भारत में दस का गुणक सबसे पहले चला जिसे दशमलव (Decimal) पद्धति कहते हैं। संख्याओं को दो प्रकार से प्रकट करते हैं– अंकों द्वारा (Figures) या शब्दों (Word) द्वारा। १,२,३ आदि अंकों के स्थान पर जो शब्द आते हैं वे 'संख्यावाचक शब्द' कहलाते हैं। भारत में 'एक' से लेकर 'परार्ध' तक संख्याएँ मानी गयी थीं जो क्रमशः दसगुनी होती गयी हैं—

एक-दश-शत-सहस्रायुत-लक्ष-प्रयुत-कोटयः क्रमशः।
अर्बुदमब्जं खर्व-निखर्व-महापद्म-शंकवस्तस्मात्॥
जलधिश्चान्तं मध्यं परार्धमिति दशगुणोत्तराः संज्ञाः।
संख्यायाः स्थानानां व्यवहारार्थं कृताः पूर्वैः॥

इससे हमारे देश के गणितशास्त्र का उत्कर्ष ज्ञात होता है। कुछ आरम्भिक संख्याओं के विषय में हम यहाँ चर्चा करें।

१. संख्यावाचक 'एक' शब्द एकवचन में ही होता है। इसका रूप 'सर्व' के समान पुंल्लिङ्ग में एकः (= एकः बालकः); स्त्रीलिङ्ग में एका (= एका बालिका) और नपुंसकलिङ्ग में एकम् (= एकं फलम्) होता है। अन्य विभक्तियों में तदनुसार– एकम्, एकेन, एकस्मै, एकस्मात्, एकस्य, एकस्मिन् (पुं.); एकाम्, एकया, एकस्यै, एकस्याः, एकस्या; एकस्याम् (स्त्री.) रूप होते हैं। 'कुछ या कोई' अर्थ हो तो एक शब्द बहुवचन भी होता है जैसे–एके मन्यन्ते (कुछ लोग मानते हैं), एकेषां विचारः अस्ति (कुछ लोगों का विचार है)।

२. संख्यावाचक 'द्वि' शब्द सदा द्विवचन में होता है। पुंल्लिङ्ग में विभक्तिक्रम से–**द्वौ** (प्रथमा-द्वितीया), **द्वाभ्याम्** (तृ.च.पं.), **द्वयोः** (ष.स.)। स्त्रीलिङ्ग तथा नपु. में– **द्वे** (प्र.द्वि.), **द्वाभ्याम्** (तृ.च.पं.), **द्वयोः** (ष.स.)। उदाहरण–द्वौ बालकौ, द्वे बालिके, द्वे फले। द्वयोः बालकयोः, बालिकयोः, फलयोः इत्यादि।

३. संख्यावाचक 'त्रि' शब्द केवल बहुवचन में रहता है। इसके रूप तीनों लिङ्गों में इस प्रकार होते हैं—

	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
प्रथमा	त्रयः (बालकाः)	तिस्रः (बालिकाः)	त्रीणि (फलानि)
द्वितीया	त्रीन् (देवान्)	तिस्रः (नगरीः)	त्रीणि (पुस्तकानि)
तृतीया	त्रिभिः (देवैः)	तिसृभिः (रेखाभिः)	त्रिभिः (फलैः)
चतुर्थी	त्रिभ्यः (शिक्षकेभ्यः)	तिसृभ्यः (देवीभ्यः)	त्रिभ्यः (फलेभ्यः)
पंचमी	त्रिभ्यः (ग्रामेभ्यः)	तिसृभ्यः (पुरीभ्यः)	त्रिभ्यः (वनेभ्यः)
षष्ठी	त्रयाणाम् (छात्राणाम्)	तिसृणाम् (नारीणाम्)	त्रयाणाम् (वनानाम्)
सप्तमी	त्रिषु (लोकेषु)	तिसृषु (नगरीषु)	त्रिषु (पुस्तकेषु)

४. संख्यावाचक 'चतुर्' (चार) का रूप भी बहुवचन होता है—

	पुंल्लिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	नपुंसकलिङ्ग
प्रथमा	चत्वारः (ग्रामाः)	चतस्रः (दिशः)	चत्वारि (फलानि)
द्वितीया	चतुरः (छात्रान्)	चतस्रः (पुरीः)	चत्वारि (गृहाणि)
तृतीया	चतुर्भिः (ग्रन्थैः)	चतसृभिः (रेखाभिः)	चतुर्भिः (कमलैः)
चतुर्थी	चतुर्भ्यः (विद्वद्भ्यः)	चतसृभ्यः (स्त्रीभ्यः)	चतुर्भ्यः (पुष्पेभ्यः)
पंचमी	चतुर्भ्यः (ग्रामेभ्यः)	चतसृभ्यः (नदीभ्यः)	चतुर्भ्यः (पुरेभ्यः)
षष्ठी	चतुर्णाम् (आश्रमाणाम्)	चतसृणाम् (पुत्रीणाम्)	चतुर्णाम् (काष्ठानाम्)
सप्तमी	चतुर्षु (वेदेषु)	चतसृषु (दिक्षु)	चतुर्षु (काव्येषु)

५. चार के बाद की संख्याओं के रूप सभी लिङ्गों में एक समान होते हैं। वे बहुवचन तो होते ही हैं। विभक्तियों का अन्तर अवश्य रहता है। देखें—

प्रथमा—पञ्च (बालकाः, बालिकाः, फलानि), षट्, सप्त, अष्ट, नव, दश, एकादश, द्वादश......... अष्टादश......... ऊनविंशतिः.........

द्वितीया—पञ्च (बालकान्, नदीः, फलानि), षट्, सप्त, अष्ट.........

तृतीया—पञ्चभिः (बालकैः, बालिकाभिः, फलैः), षड्भिः, सप्तभिः.........

चतुर्थी-पञ्चमी—पञ्चभ्यः (छात्रेभ्यः, छात्राभ्यः, वनेभ्यः), षड्भ्यः, सप्तभ्यः.........

षष्ठी—पञ्चानां (पर्वतानाम्, नदीनाम्, नगराणाम्), षण्णाम् (षट् + नाम्), सप्तानाम्, अष्टानाम्.........

सप्तमी—पञ्चसु (छात्रेषु, नदीषु, पुष्पेषु), षट्सु (षट्त्सु), सप्तसु.........

उदाहरण—नौ लड़कों को = नव बालकान्। दस नदियाँ = दश नद्यः। सात भुवनों में = सप्तसु भुवनेषु। आठ शिक्षकों के लिए = अष्टाभ्यः (अष्टभ्यः) शिक्षकेभ्यः। ग्यारह नदियों में = एकादशसु नदीषु। दस पण्डितों का = दशानां विदुषाम्।

पूरणी संख्या (Ordinals)

संख्यावाचक शब्द दो प्रकार के हैं–मूल संख्या (Cardinals) तथा पूरणी संख्या (Ordinals)। मूल संख्या एक, द्वि, त्रि आदि है जिसमें चतुर् (चार) तक लिङ्गगत भेद होता है जैसा कि ऊपर हम देख चुके हैं। पञ्चन् से आगे इसमें कहीं भी लिङ्ग के कारण भेद नहीं होता। पूरणी संख्या क्रम बताती है–प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि। इसमें सर्वत्र लिङ्ग के अनुसार अन्तर होता है। प्रथमः द्वितीयः आदि पुंल्लिङ्ग है। प्रथमा द्वितीया आदि स्त्रीलिङ्ग है, प्रथमम् द्वितीयम् आदि नपुंसक लिङ्ग है। प्रथमः छात्रः, प्रथमा नगरी, प्रथमं पुष्पम्–इस रूप में प्रयोग होंगे। यहाँ मूल संख्याओं के साथ पूरणी संख्याओं को लिखा जाता है। यह स्मरण रखें कि संस्कृत के संख्यावाचक शब्दों से भारतीय भाषाओं में संख्याओं के बोधक शब्दों की उत्पत्ति हुई है।

अंक	मूल संख्यावाचक	पूरणी संख्या[१]
१.	एक (एकः, एका, एकम्)	प्रथमः, प्रथमा, प्रथमम् (पहला, पहली)
२.	द्वि (द्वौ, द्वे, द्वे)	द्वितीयः, या, यम् (दूसरा, दूसरी)
३.	त्रि (त्रयः, तिस्रः, त्रीणि)	तृतीयः, या, यम् (तीसरा)
४.	चतुर् (चत्वारः, चतस्रः, चत्वारि)	चतुर्थः, र्थी, र्थम् (चौथा, चौथी)
५.	पञ्चन् (पञ्च)	पञ्चमः, मी, मम् (पाँचवाँ, पाँचवीं)
६.	षष् (षट्)	षष्ठः, षष्ठी, षष्ठम् (छठा, छठी)
७.	सप्तन् (सप्त)	सप्तमः, सप्तमी, सप्तमम् (सातवाँ, सातवीं)
८.	अष्टन् (अष्ट/अष्टौ)	अष्टमः, अष्टमी, अष्टमम् (आठवाँ, आठवीं)
९.	नवन् (नव)	नवमः, नवमी, नवमम् (नौवाँ, नौवीं)
१०.	दशन् (दश)	दशमः, दशमी, दशमम् (दसवाँ, दसवीं)
११.	एकादश	एकादशः, शी, शम्
१२.	द्वादश	द्वादशः, शी, शम्
१३.	त्रयोदश	त्रयोदशः, शी, शम्
१४.	चतुर्दश	चतुर्दशः, शी, शम्

१. पूरणी संख्या का बोध कराने के लिए मूल संख्या शब्द से डट्-प्रत्यय लगता है–**तस्य पूरणे डट्** (५.२.४८)। उसका नकारान्त संख्याओं के बाद मट् आदेश होता है (पञ्चन्+मट् = पञ्चमः, पञ्चमी), किन्तु पूर्व में संख्या रहने पर डट् ही होता है (एकादशन्+डट् = एकादशः। डट् में अ बचता है किन्तु यह शब्द के टि–अंश का लोप कर देता है। चतुर् एवं षष् के बाद डट् का थुक् (थ) आगम होने से चतुर्थ और षष्ठ बनते हैं। विंशति आदि के बाद डट् का विकल्प से तमट् आगम होता है। इसीलिए विंशः (डट्), विंशतितमः (तमट्) हुए हैं।

१५.	पञ्चदश	पञ्चदशः, शी, शम्
१६.	षोडश	षोडशः, शी, शम्
१७.	सप्तदश	सप्तदशः, शी, शम्
१८.	अष्टादश	अष्टादशः, शी, शम्
१९.	नवदश/एकोनविंशतिः/ऊनविंशतिः/ एकान्नविंशतिः	नवदशः, शी, शम् एकोनविंशतितमः, तमी; तमम्; अन्य शब्दों में भी तमः, तमी' तमम्
२०.	विंशतिः (स्त्रीलिङ्ग है)	विंशः, विंशी, विंशम्/विंशतितमः, तमा, तमम्
२१.	एकविंशतिः (स्त्रीलिङ्ग है)	एकविंशः, शी/एकविंशतितमः; मी
२२.	द्वाविंशतिः (स्त्रीलिङ्ग है)	द्वाविंशः, शी/द्वाविंशतितमः, मी
२३.	त्रयोविंशतिः (स्त्रीलिङ्ग है)	त्रयोविंशः, शी/त्रयोविंशतितमः, मी
२४.	चतुर्विंशतिः (स्त्रीलिङ्ग है)	चतुर्विंशः, शी/चतुर्विंशतितमः, मी
२५.	पञ्चविंशतिः (स्त्रीलिङ्ग है)	पञ्चविंशः, शी/पञ्चविंशतितमः, मी
२६.	षड्विंशतिः (स्त्रीलिङ्ग है)	षड्विंशः, शी/षड्विंशतितमः, मी
२७.	सप्तविंशतिः (स्त्रीलिङ्ग है)	सप्तविंशः, शी/सप्तविंशतितमः, मी
२८.	अष्टाविंशतिः (स्त्रीलिङ्ग है)	अष्टाविंशः, शी/ अष्टाविंशतितमः, मी
२९.	नवविंशतिः/एकोनत्रिंशत्/ऊनत्रिंशत्/ एकान्नत्रिंशत्	नवविंशः, शी/नवविंशतितमः, मी एकोनत्रिंशत्तमः; मी/ऊनत्रिंशत्तमः मी एकान्नत्रिंशत्तमः, मी
३०.	त्रिंशत् (स्त्रीलिङ्ग है)	त्रिंशः, शी; शम्/त्रिंशत्तमः; मी; मम्
३१.	एकत्रिंशत् (स्त्रीलिङ्ग है)	एकत्रिंशः शी/एकत्रिंशत्तमः; मी; मम्
३२.	द्वात्रिंशत् (स्त्रीलिङ्ग है)	द्वात्रिंशः, शी/द्वात्रिंशत्तमः; मी; मम्
३३.	त्रयस्त्रिंशत् (स्त्रीलिङ्ग है)	त्रयस्त्रिंशः शी/त्रयस्त्रिंशत्तमः, मी
३४.	चतुस्त्रिंशत् (स्त्रीलिङ्ग है)	चतुस्त्रिंशः शी/ चतुस्त्रिंशत्तमः, मी
३५.	पञ्चत्रिंशत् (स्त्रीलिङ्ग है)	पञ्चत्रिंशः शी/पञ्चत्रिंशत्तमः, मी
३६.	षट्त्रिंशत् (स्त्रीलिङ्ग है)	षट्त्रिंशः शी/षट्त्रिंशत्तमः, मी
३७.	सप्तत्रिंशत् (स्त्रीलिङ्ग है)	सप्तत्रिंशः शी/सप्तत्रिंशत्तमः, मी
३८.	अष्टात्रिंशत् (स्त्रीलिङ्ग है)	अष्टात्रिंशः शी/अष्टात्रिंशत्तमः, मी
३९.	नवत्रिंशत्/एकोनचत्वारिंशत्/ ऊनचत्वारिंशत्/एकान्नचत्वारिंशत्	नवत्रिंशः; शी/एकोनचत्वारिंशत्तमः, मी ऊनचत्वारिंशः, शी/इत्यादि
४०.	चत्वारिंशत् (स्त्रीलिङ्ग)	चत्वारिंशः शी/चत्वारिंशत्तमः, तमी. तमम्
४१.	एकचत्वारिंशत् (स्त्रीलिङ्ग)	एकचत्वारिंशः शी/तमः, तमी; तमम्
४२.	द्वा (द्वि) चत्वारिंशत्	द्वा (द्वि) चत्वारिंशः शी/द्वा (द्वि) चत्वारिंशत्तमः, मी

४३.	त्रयश्चत्वारिंशत् (स्त्रीलिङ्ग) त्रिचत्वारिंशत्	त्रयश्चत्वारिंशः, शी/तमः, तमी; तमम् त्रिचत्वारिंशः, शी/तमः, तमी; तमम्
४४.	चतुश्चत्वारिंशत् (स्त्रीलिङ्ग)	चतुश्चत्वारिंशः शी/तमः, तमी; तमम्
४५.	पञ्चचत्वारिंशत् (स्त्रीलिङ्ग)	पञ्चचत्वारिंशः शी/तमः, तमी; तमम्
४६.	षट्चत्वारिंशत् (स्त्रीलिङ्ग)	षट्चत्वारिंशः शी/षट्चत्वारिंशत्तमः, मी
४७.	सप्तचत्वारिंशत् (स्त्रीलिङ्ग)	सप्तचत्वारिंशः शी/तमः, मी, मम्
४८.	अष्ट (अष्टा) चत्वारिंशत्[१]	अष्ट (अष्टा) चत्वारिंशः शी/तमः, मी, मम्
४९.	नवचत्वारिंशत्/एकोनपञ्चाशत् इत्यादि	नवचत्वारिंशः, शी/नवचत्वारिंशत्तमः, मी इत्यादि
५०.	पञ्चाशत् (स्त्रीलिङ्ग)	पञ्चाशः, शी/पञ्चाशत्तमः; मी, मम्
५१.	एकपञ्चाशत् (स्त्रीलिङ्ग)	एकपञ्चाशः, शी/तमः, मी, मम्
५२.	द्वा (द्वि) पञ्चाशत् (स्त्रीलिङ्ग)	द्वा (द्वि) पञ्चाशः, शी/तमः, मी, मम्
५३.	त्रि (त्रयः) पञ्चाशत् (स्त्रीलिङ्ग)	त्रि (त्रयः) पञ्चाशः, शी/तमः, मी, मम्
५४.	चतुःपञ्चाशत् (स्त्रीलिङ्ग)	चतुः पञ्चाशः, शी/तमः, मी, मम्
५५.	पञ्चपञ्चाशत् (स्त्रीलिङ्ग)	पञ्चपञ्चाशः, शी/तमः, मी, मम्
५६.	षट्पञ्चाशत् (स्त्रीलिङ्ग)	षट्पञ्चाशः, शी/तमः, मी, मम्
५७.	सप्तपञ्चाशत् (स्त्रीलिङ्ग)	सप्तपञ्चाशः, शी/तमः, मी, मम्
५८.	अष्ट (अष्टा) पञ्चाशत्	अष्ट (अष्टा) पञ्चाशः, शी/तमः, मी, मम्
५९.	नवपञ्चाशत्/एकोनषष्टिः इत्यादि	नवपञ्चाशः, शी/एकोनषष्टितमः, मी, मम् इत्यादि
६०.	षष्टिः (स्त्रीलिङ्ग)	षष्टितमः, षष्टितमी, षष्टितमम्
६१.	एकषष्टिः (स्त्रीलिङ्ग)	एकषष्टितमः, मी, मम्
६२.	द्वा (द्वि) षष्टिः (स्त्रीलिङ्ग)	द्वा (द्वि) षष्टितमः, मी, मम्
६३.	त्रयः (त्रि) षष्टिः (स्त्रीलिङ्ग)	त्रयः (त्रि) षष्टितमः, मी, मम्
६४.	चतुःषष्टिः (स्त्रीलिङ्ग)	चतुःषष्टितमः, मी, मम्
६५.	पञ्चषष्टिः (स्त्रीलिङ्ग)	पञ्चषष्टितमः, मी, मम्
६६.	षट्षष्टिः (स्त्रीलिङ्ग)	षट्षष्टितमः, मी, मम्
६७.	सप्तषष्टिः (स्त्रीलिङ्ग)	सप्तषष्टितमः, मी, मम्
६८.	अष्ट (अष्टा) षष्टिः	अष्ट (अष्टा) षष्टितमः, मी, मम्

१. पाणिनि ने चत्वारिंशत् से आगे (अशीति ८० को छोड़कर) की संख्याओं के पूर्व विकल्प से द्वि का द्वा, त्रि का त्रयः और अष्टन् का अष्टा करने का विधान किया है। इसीलिए ४२,५२,६२,७२,९२ के दो-दो रूप द्वि (द्वा) होते हैं; इसी प्रकार ४३,५३,६३,७३,९३ के भी त्रि (त्रयः) एवं ४८,५८,६८,७८,९८ के भी अष्ट (अष्टा) से बने दो-दो रूप होते हैं– **विभाषा चत्वारिंशत्प्रभृतौ सर्वेषाम्** (६.३.४९)।

६९.	नवषष्टिः/एकोनसप्ततिः ऊनसप्ततिः/एकान्नसप्ततिः	नवषष्टितमः, मी, मम्/एकोनसप्ततितमः, मी इत्यादि
७०.	सप्ततिः (स्त्रीलिङ्ग)	सप्ततितमः, मी, मम्
७१.	एकसप्ततिः (स्त्रीलिङ्ग)	एकसप्ततितमः, मी, मम्
७२.	द्वा (द्वि) सप्ततिः (स्त्रीलिङ्ग)	द्वा (द्वि) सप्ततितमः, मी, मम्
७३.	त्रयः (त्रि) सप्ततिः (स्त्रीलिङ्ग)	त्रयः (त्रि) सप्ततितमः, मी, मम्
७४.	चतुःसप्ततिः (स्त्रीलिङ्ग)	चतुःसप्ततितमः, मी, मम्
७५.	पञ्चसप्ततिः (स्त्रीलिङ्ग)	पञ्चसप्ततितमः, मी, मम्
७६.	षट्सप्ततिः (स्त्रीलिङ्ग)	षट्सप्ततितमः, मी, मम्
७७.	सप्तसप्ततिः (स्त्रीलिङ्ग)	सप्तसप्ततितमः, मी, मम्
७८.	अष्ट (अष्टा) सप्ततिः	अष्ट (अष्टा) सप्ततितमः, मी, मम्
७९.	नवसप्ततिः/एकोनाशीतिः ऊनाशीतिः/एकान्नाशीतिः	नवसप्ततितमः, मी, मम्/एकोनाशीतितमः इत्यादि
८०.	अशीतिः (स्त्रीलिङ्ग)	अशीतितमः, मी, मम्
८१.	एकाशीतिः (स्त्रीलिङ्ग)	एकाशीतितमः, मी, मम्
८२.	द्व्यशीतिः (स्त्रीलिङ्ग)	द्व्यशीतितमः, मी, मम्
८३.	त्र्यशीतिः (स्त्रीलिङ्ग)	त्र्यशीतितमः, मी, मम्
८४.	चतुरशीतिः (स्त्रीलिङ्ग)	चतुरशीतितमः, मी, मम्
८५.	पञ्चाशीतिः (स्त्रीलिङ्ग)	पञ्चाशीतितमः, मी, मम्
८६.	षडशीतिः (स्त्रीलिङ्ग)	षडशीतितमः, मी, मम्
८७.	सप्ताशीतिः (स्त्रीलिङ्ग)	सप्ताशीतितमः, मी, मम्
८८.	अष्टाशीतिः (स्त्रीलिङ्ग)	अष्टाशीतितमः, मी, मम्
८९.	नवाशीतिः/एकोननवतिः ऊननवतिः/एकान्ननवतिः	नवाशीतितमः, मी, मम्/इत्यादि
९०.	नवतिः (स्त्रीलिङ्ग)	नवतितमः, मी, मम्
९१.	एकनवतिः (स्त्रीलिङ्ग)	एकनवतितमः, मी, मम्
९२.	द्वा (द्वि) नवतिः (स्त्रीलिङ्ग)	द्वा (द्वि) नवतितमः, मी, मम्
९३.	त्रि (त्रयो) नवतिः (स्त्रीलिङ्ग)	त्रि (त्रयो) नवतितमः, मी, मम्
९४.	चतुर्नवतिः (स्त्रीलिङ्ग)	चतुर्नवतितमः, मी, मम्
९५.	पञ्चनवतिः (स्त्रीलिङ्ग)	पञ्चनवतितमः, मी, मम्
९६.	षण्णवतिः (स्त्रीलिङ्ग)	षण्णवतितमः, मी, मम्
९७.	सप्तनवतिः (स्त्रीलिङ्ग)	सप्तनवतितमः, मी, मम्
९८.	अष्टा (अष्ट) नवतिः	अष्टा (अष्ट) नवतितमः, मी, मम्
९९.	नवनवतिः/एकोनशतम् ऊनशतम्/एकान्नशतम्	नवनवतितमः......../ एकोनशततमः......../इत्यादि

१००.	शतम् (नपुंसकलिङ्ग)	शततमः, मी, मम्
२००.	द्विशतम्/द्वे शते	द्विशततमः, मी, मम्
३००.	त्रिशतम्/त्रीणि शतानि	त्रिशततमः, मी, मम्
१०००.	सहस्रम्/दशशतम् (नपुं.)	सहस्रतमः, मी, मम्/दशशततमः
१००००.	अयुतम् (नपुं.)	
१०००००.	लक्षम् (नपुं.)	

इसी प्रकार प्रयुतम् (नपुं., दस लाख A million), कोटिः (स्त्री., एक करोड़), अर्बुदम् (नपुं., दस करोड़), अब्जम् (नपुं., एक अरब), खर्वः, खर्वम् (पुं., नपुं., दस अरब), निखर्वः, निखर्वम् (पुं., नपुं. खरब), महापद्मः (पुं., दस खरब), शंकुः (पुं.), जलधिः (पुं.) अन्त्यम् (नपुं.), मध्यम् (नपुं.), परार्धम् (नपुं.)—ये क्रमशः दस गुना होती गई संख्याएँ हैं।

मूल संख्याओं को एक सौ और दो सौ, दो सौ और तीन सौ इत्यादि के बीच प्रकट करने के लिए संख्या शब्द से 'अधिक' लगाकर उसे बड़ी संख्या के पूर्व रखते हैं जैसे–१०१ के लिए 'एकाधिकं शतम्' या 'एकाधिकशतम्' कहते हैं, ११२ के लिए 'द्वादशाधिकं शतम्' या 'द्वादशाधिकशतम्', १७० के लिए 'सप्तत्यधिकं शतम्' या 'सप्तत्यधिकशतम्' कहेंगे। सन्धि अवश्य करनी होगी क्योंकि इसमें समास आता है और समास में सन्धि अनिवार्य है। एक हजार के बाद 'अधिक' शब्द कई बार आएगा। जैसे–द्वानवत्यधिकनवशताधिकं सहस्रम् (१९९२), एकादशाधिकद्विसहस्रम् (२०११), एकोनचत्वारिंशदधिक-षट्शताधिक-सप्तसप्तति-सहस्राधिकं लक्षम् (१,७७,६३९) इत्यादि। 'अधिक' के स्थान पर 'उत्तर' शब्द भी जोड़ा जाता है जैसे–द्विसप्तत्युत्तरम् अष्टशतम् (८७२)। इसे 'च' के द्वारा भी व्यक्त करते हैं–सप्त च सहस्राणि एकविंशतिश्च (७०२१)।

ऊनविंशति से लेकर नवनवति तक मूल संख्या के वाचक शब्द स्त्रीलिङ्ग हैं। शत, सहस्र आदि नपुंसकलिङ्ग हैं। इनका एकवचन ही होता है। विशेषण रहने पर भी एकवचन ही होंगे, विशेष्य चाहे किसी वचन में हो जैसे–**एकाधिकशतेन नरैः/स्त्रीभिः इदं सम्पन्नम्** = एक सौ एक पुरुषों (या स्त्रियों) द्वारा यह पूरा हुआ। **पञ्चविंशतिः वृक्षाः** = पच्चीस वृक्ष। किन्तु गणना के निर्धारित मानदण्ड का प्रयोग होने पर संख्यावाचक उपर्युक्त शब्द द्विवचन या बहुवचन में आ सकते हैं–**वृक्षाणां विंशतयः** = बीस-बीस वृक्षों के अनेक वर्ग। **त्रीणि शतानि पुस्तकानाम्** = सौ-सौ पुस्तकों के तीन ढेर या समूह।

अभ्यास - ८

(अ) कोष्ठक से सही संख्या शब्द चुनकर रिक्त स्थान भरें—

१. (क) वेदाः......... सन्ति। (चत्वारः/चत्वारि)

(ख) .... बालिके आगच्छतः। (द्वौ/द्वे)

(ग) .... वृक्षाः उद्याने सन्ति। (विंशतिः/विंशतयः)
(घ) सरोवरे .... कमलपुष्पाणि दृश्यन्ते। (दशाः/दश)

२. (क) सभायां .... गायकाः आगताः। (त्रीणि/त्रयः/तिस्रः)
(ख) गीतायाम् .... अध्यायाः सन्ति। (अष्टादश/अष्टादशाः)
(ग) इह .... अपि पुस्तकं नास्ति। (एकम्/एका/एकः)
(घ) सा .... फलानि नयति। (त्रयः/तिस्रः/त्रीणि)

३. (क) रावणस्य .... मुखानि आसन्। (दश/दशाः/दशानि)
(ख) पक्षे .... दिनानि भवन्ति। (पञ्चदशानि/पञ्चदश)
(ग) मासे .... दिवसाः सन्ति। (त्रिंशताः/त्रिंशत्)
(घ) वर्षे .... मासाः भवन्ति। (द्वादश/द्वादशाः)

(आ) १. **इन संख्या-शब्दों को संस्कृत में लिखें—**

१८, २५, ३०, ३२, ४१, ५४

२. **संस्कृत में अनुवाद करें—**

(क) विद्यालय में छह कमरे हैं। (ग) इस कक्षा में पैंतालिस छात्र हैं।
(ख) यह सात कमरों का घर है। (घ) सात लड़कियाँ जा रही हैं।

३. **संस्कृत में अनुवाद करें—**

(क) वह आठवें वर्ग में पढ़ता है। (ग) राम सोलहवाँ छात्र है।
(ख) आज तुम्हारा सातवाँ दिन है। (घ) तुमलोगों में छठा कौन है?

(इ) १. **कोष्ठों में दिये अंकों के स्थान पर संस्कृत में संख्या-शब्द भरें—**

(क) अस्मिन् वर्गे (५०) .... छात्राः सन्ति।
(ख) तेषु (२०) .... बालिकाः, (३०) .... बालकाः सन्ति।
(ग) अद्य (४६) .... उपस्थिताः सन्ति।
(घ) किन्तु (४) .... बालकाः न आगताः।

२. **इन अंकों को संस्कृत में लिखकर उनके सामने उनकी पूरणी संख्या केवल पुंल्लिङ्ग में लिखें—**

(क) ३० .... (ग) २८ ....
(ख) २५ .... (घ) ५२ ....

*

६ तिङन्त-प्रकरण
Conjugation of Verbal Roots

मूलभूत तथ्य (Basic facts)

क्रिया का वाक्य में प्रमुख स्थान रहता है। इसे 'साध्य' अर्थात् सम्पन्न होनेवाली भी कहते हैं। गच्छति, अगच्छत्, गमिष्यति आदि में गमन-क्रिया के सम्पन्न होने का अर्थ निहित है। क्रिया में काल, पुरुष, वचन के कारण अन्तर होता है। गच्छति और अगच्छत् में कालगत अन्तर है, गच्छति और गच्छसि में पुरुष का अन्तर है तो गच्छति और गच्छन्ति में वचन का अन्तर है। तिङन्त रूपों में लिङ्ग के कारण अन्तर नहीं होता। लड़का जाए या लड़की जाए, हम 'गच्छति' का ही प्रयोग करेंगे–बालकः गच्छति, बालिका गच्छति।

क्रिया का मूल रूप 'धातु' है। भू, गम्, पच् आदि धातु हैं। इनसे तिङ् प्रत्यय लगते हैं तो तिङन्त शब्द बनते हैं। निम्नांकित कारणों से तिङन्त शब्दों का वैविध्य संस्कृत भाषा को जटिल बना देता है—

(क) धातुगणों की व्यवस्था
(ख) लकारों का प्राचुर्य
(ग) आत्मनेपद-परस्मैपद की भिन्नता
(घ) सेट् और अनिट् धातुओं की व्यवस्था
(ङ) सकर्मक और अकर्मक धातुओं का भेद
(च) वाच्य का भेद

कुल मिलाकर शब्द-पक्ष (रूपावली Formal Aspect) और अर्थ-पक्ष (क्रिया का दर्शन Semantic aspect) दोनों ही दृष्टियों से तिङन्त एवं क्रिया का प्रकरण व्याकरण में क्लिष्टता का पर्याय बन गया है। यहाँ उपर्युक्त कारणों का संक्षिप्त विवेचन किया जाता है।

(क) धातुगणों की व्यवस्था (Root-groups)

तिप्, तस्, झि (अन्ति) आदि तिङ् प्रत्यय लगने पर भी सभी धातुओं के रूप एक समान नहीं होते क्योंकि धातु और तिप् आदि प्रत्ययों के बीच एक प्रकार का प्रत्ययांश लगता है जिसे 'विकरण' कहते हैं। संस्कृत की सभी धातुओं को विकरणों के भेद से १० वर्गों या गणों (Groups) में बाँटा गया है–भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि। इन्हें इस श्लोक में देखें—

भ्वाद्यदादी जुहोत्यादिर्दिवादिः स्वादिरेव च।
तुदादिश्च रुधादिश्च तन-क्र्यादि-चुरादयः॥

इनका स्वरूप इनके विकरणों के साथ जान लेने पर तिङन्त रूपों को समझने में सुविधा होती है।

१. **भ्वादि**—इन धातुओं से लट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् लकारों में (ये चारों लकार 'सार्वधातुक' लकार कहलाते हैं, अन्य लकार 'आर्धधातुक' हैं) शप् विकरण लगता है–**कर्तरि शप्** (३.१.६८)। शप् में 'अ' बचता है। जैसे–पठ् + शप् (अ) + ति = पठति। शप् के कारण धातु के स्वरूप में भी कुछ परिवर्तन होता है जैसे–गम् का गच्छ्, दृश् का पश्य, पा का पिब् इत्यादि। भ्वादिगण में १०९५ धातुएँ पाणिनि ने धातुपाठ में दी हैं।

२. **अदादि**—अद्, अस, हन्, वा आदि धातुएँ इस गण में है जिनकी संख्या ७२ है। इस गण की धातुओं से कोई विकरण नहीं लगता। पाणिनि ने शप् के लोप का विधान किया है–**अदिप्रभृतिभ्यः शपः** (२.४.७२)। धातु से सीधे तिङ् प्रत्यय लगते हैं जैसे–अद् + ति = अत्ति। हन् + ति = हन्ति। अस् + ति = अस्ति। या + ति = याति।

३. **जुहोत्यादि**—इस गण में हु, दा, धा इत्यादि २४ धातुएँ गिनायी गयी हैं जिनमें 'श्लु' विकरण लगता है–**जुहोत्यादिभ्यः श्लुः** (२.४.७५)। इस श्लु का लोप हो जाता है किन्तु यह धातु का द्वित्व कर देता है। हु + हु + ति = जुहोति। दा + दा + ति = ददाति। धा + धा + ति = दधाति। द्वित्व होने पर पूर्व अंश (अभ्यास) में कुछ कार्य होते हैं।

४. **दिवादि**—इस गण में पाणिनि ने १३८ धातुओं को रखा है जिनमें विकरण के रूप में श्यन् (य) लगता है–**दिवादिभ्यः श्यन्** (३.१.६९)। दिव् + श्यन् (य) + ति = दीव्यति। इस धातु में उपधा का दीर्घ हुआ है, सर्वत्र ऐसा नहीं होता जैसे–कुप्यति, नृत्यति, क्रुध्यति, द्रुह्यति, अस्यति (फेंकता है), बुध्यते, युध्यते, शुष्यति, सिध्यति, विध्यति, मन्यते इत्यादि। शम् आदि धातु का दीर्घ होता है–शाम्यति, भ्राम्यति, श्राम्यति, माद्यति (गलती करता है)।

५. **स्वादि**—सु आदि ४० धातुएँ इस गण में पठित हैं जिनसे श्नु (नु) विकरण लगता है। उसका तिप्, सिप्, मिप् के पूर्व गुण (ओकार) हो जाता है। सु + श्नु + तिप् = सुनोति, शृणोति, दुनोति। अन्य प्रत्ययों में यह नु ही रहता है–सुनुतः, सुनु + अन्ति = सुन्वन्ति। **स्वादिभ्यः श्नुः** (३.१.७१)। आप् (आप्नोति), वृ (वृणोति, वृणुते), शक् (शक्नोति), अश् (अश्नुते = फैलता है) इत्यादि स्वादिगणीय धातुओं के रूप हैं।

६. **तुदादि**—इस गण में १५८ धातुएँ हैं जिनसे 'श' (अ) विकरण लगता है–**तुदादिभ्यः शः** (३.१.७७)। यह शप् के समान ही है किन्तु इसमें धातु का गुणादेश नहीं होता। तुद् (कष्ट देना) + श + ति = तुदति। इष्–इच्छति। कृत्–कृन्तति। कृ (बिखेरना)–किरति। प्रच्छ्–पृच्छति। मुच्–मुञ्चति, ते। लिप्–लिम्पति, ते। विद् (पाना)–विन्दति, ते। सिच्–सिञ्चति, ते।

७. **रुधादि**—इस गण में २५ धातुएँ पढ़ी गई हैं जिनसे 'श्नम्' विकरण लगता है। 'श्नम्' में न बचता है जो धातु के स्वर वर्ण तथा अन्त्य व्यञ्जन के बीच लगता है **रुधादिभ्यः श्नम्** (३.१.७८)। आधुनिक विद्वान् इसे मध्यगत प्रत्यय (Infix) कहते हैं। जैसे–रुध् + श्नम् + ति = रुनध्ति = (सन्धि के नियमों से) रुणद्धि। भिद्–भिनत्ति। छिद्–छिनत्ति। भुज् (रक्षा करना–परस्मैपदी, खाना–आत्मनेपदी)–भुनक्ति, भङ्क्ते। युज्–युनक्ति, युङ्क्ते (जोड़ता है)। रिच् (खाली करना)–रिणक्ति। हिंस्–हिनस्ति।

८. **तनादि**—इस गण में केवल दस धातुएँ पठित हैं। इसमें 'उ' विकरण लगता है–**तनादिकृञ्भ्यः उः** (३.१.७९)। इस उ का तिप्, सिप्, मिप् के पूर्व गुण आदेश (ओकार) हो जाता है; व्, म् के पूर्व लोप भी होता है (जैसा कि स्वादि गण में भी होता है)। तन् + उ (ओ) + तिप् = तनोति। तनुतः, तन्वन्ति में उ ही रहा। कृ धातु का कर् (तिप्, सिप्, मिप् के पूर्व) और कुर्–रूप (अन्य प्रत्ययों के पूर्व) हो जाता है–करोति, कुरुतः, कुर्वन्ति।

९. **क्र्यादि**—क्री, ज्ञा, प्री, ग्रह, बन्ध्, पुष्, पू (पवित्र करना) इत्यादि ६५ धातुएँ क्र्यादि गण में पठित हैं जिनसे श्ना विकरण लगता है–**क्र्यादिभ्यः श्ना** (३.१.८१)। इसमें 'ना' बचता है जो अपित् प्रत्ययों (तिप्, सिप्, मिप् से भिन्न) के पूर्व 'नी' हो जाता है–क्री + श्ना + ति = क्रीणाति। किन्तु क्रीणीतः। ज्ञा धातु का जा आदेश होकर जानाति, जानीतः जानन्ति। बन्ध्–बध्नाति, ग्रह्–गृह्णाति। पुष्–पुष्णाति। पू–पुनाति। प्री–प्रीणाति (प्रसन्न करता है)।

१०. **चुरादि**—इस गण में मिश्रित रूप की ४११ धातुएँ पढ़ी गई हैं। इस गण में भ्वादि के समान विकरण तो शप् ही लगता है किन्तु उसके पूर्व प्रेरणार्थक क्रिया में लगने वाला णिच् प्रत्यय स्वार्थ में ही लगता है। जैसे चुर् + णिच् (इ-य) + शप् (अ) + ति = चोरयति (धातु का गुणादेश होकर)। कथ्–कथयति। पीड्–पीडयति। गण्–गणयति। रच्–रचयति। स्पृह्–स्पृहयति (इच्छा करता है)। स्फुट्–स्फुटयति। अर्थ् (प्रार्थना करना)–अर्थयते। मृग् (खोजना)–मृगयते। वञ्च् (धोखा देना)–वञ्चयते। (कुल धातु संख्या–२०३८)।

यह स्मरणीय है कि प्रत्येक गण में धातुओं के अर्थ के साथ ही उनके परस्मैपदी, आत्मनेपदी या उभयपदी होने का संकेत धातुपाठ में दिया गया है।

(ख) लकारों का प्राचुर्य (Tenses and Moods)

संस्कृत व्याकरण में धातु के रूप दस लकारों में चलते हैं। इतना वैविध्य किसी अन्य भाषा में नहीं है कि एकात्मक शब्द (Single word) ही विभिन्न कालों और दशाओं का निरूपण अपने वचन और पुरुष के अतिरिक्त कर सके। 'पठिष्यति' कहने से प्रथम पुरुष, एकवचन और भविष्यत् काल इन तीनों का बोध होता है। संस्कृत में दस लकार स्वीकृत हैं जिनके रूप पृथक् होते हैं–लट् (वर्तमान), लिट् (परोक्ष भूत), लुट् (अनद्यतन भविष्यत्), लृट् (भविष्यत्), लेट् (विध्यर्थक, केवल वेद की भाषा में प्रयुक्त), लोट् (अनुज्ञा Imperative mood), लङ् (अनद्यतन भूत), लिङ् (विधि और आशी : दो प्रकार का), लुङ् (सामान्य भूत) तथा लृङ् (क्रियातिपत्ति Conditional mood)।

इन लकारों में वर्तमान काल (लट्), भूतकाल (लङ् लुङ् लिट्) और भविष्यत्काल (लुट्, लृट्) के बोधक लकार छह हैं। सामान्य भूत में लुङ् का प्रयोग व्यापक था किन्तु इसका प्रयोग कुछ कठिन था। लिट् का प्रयोग परोक्षभूत में (जिस घटना को वक्ता ने नहीं देखा) होता है, इसके रूप भी कठिन हैं। लङ् सार्वधातुक लकार होने से आज लोकप्रिय है। वस्तुतः प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के विकास से भूतकाल के रूपों के स्थान पर कृदन्त क्रियाएँ (क्त-क्तवतु प्रत्यय से बनी) चलने लगीं–गतः गतवान् इत्यादि। किन्तु इनमें लिङ्गगत रूपभेद होता है। तिङन्त लकारों में यह भिन्नता नहीं है। भविष्यत् काल में लृट् के रूप सरल हैं, लट् से मिलते-जुलते हैं यद्यपि यह आर्धधातुक लकार है (दृश्-द्रक्ष्यति, पा-पास्यति)। 'पश्यति' और 'पिबति' जैसा रूप नहीं।

शेष चार लकार 'दशा' (Mood) के बोधक हैं। लोट् से आज्ञा या अनुज्ञा का बोध होता है–मैं पढ़ूं (अहं पठानि)। वह जाए (स गच्छतु)। 'उसे जाने दो' (Let him go) इसमें भी आज्ञा निहित है अतः लोट् लकार ही होगा–स गच्छतु। लिङ् लकार के दो रूप हैं– विधिलिङ् (Injunctive mood) तथा आशीर्लिङ् (Optative mood)। दोनों के रूप पृथक्-पृथक् होते हैं। विधिलिङ् में विधान, निमन्त्रण (Invitation), आमन्त्रण (अनुमति Permission), अधीष्ट (विनम्र वचन Polite expression), संप्रश्न (Question), प्रार्थना (Prayer), इच्छा (Desire) इत्यादि अर्थों की अभिव्यक्ति होती है। आशीर्लिङ् का प्रयोग किसी की कल्याण-कामना (Good wishes) के अर्थ में होता है। वैदिक भाषा में लेट् लकार का प्रयोग लिङ् के अर्थ में ही था (लिङर्थे लेट्) किन्तु इसके रूपों में इतना वैविध्य था कि इसे छोड़ना आवश्यक हो गया।

लृङ् लकार वस्तुतः लृट् और लङ् के मिश्रण का संकेत देता है, यद्यपि यह क्रियातिपत्ति (शर्त, अनुबन्ध, Condition) दिखाने का अर्थ देता है–'अभविष्यत्' लृङ् का रूप है

(= यदि ऐसा होता या हो जाए)। इसमें स्पष्टतः भविष्यति और अभवत् के आधार पर रूप बना है। कुछ प्रतिष्ठित शिक्षकों ने पाठ्यक्रम में इसके समावेश की प्रबल अनुशंसा की है। इसका उदाहरण है–**यदि स अपठिष्यत् तदा अवश्यमेव उत्तीर्णः अभविष्यत्** (यदि वह पढ़ता/पढ़े, तो अवश्य ही उत्तीर्ण होता/होगा)। भूत और भविष्यत् दोनों कालों में इसका प्रयोग संभव है। एक प्रकार का यह हेतुहेतुमद् भाव है।

इन लकारों में लङ्, लुङ् तथा लृङ्–इन तीनों में धातु के पूर्व अट् (अ) का आगम होता है जैसे–अभवत् (लङ्), अभूत् (लुङ्), अभविष्यत् (लृङ्)। अगच्छत् (लङ्), अगमत् (लुङ्), अगमिष्यत् (लृङ्)। इसे पाणिनि ने सूत्रबद्ध किया है–**लुङ्-लङ्-लृङ्क्ष्वडुदात्तः** (६.४.७१)। यदि धातु का आरम्भ स्वरवर्ण से हो तो अट् नहीं, आट् आगम होता है–**आडजादीनाम्**।

प्रत्येक लकार के प्रथम पुरुष एकवचन का रूप यहाँ दिया जाता है–लट् (**पठति**), लिट् (**पपाठ**), लुट् (**पठिता**), लृट् (**पठिष्यति**), लेट् (**पाठिषत्**), लोट् (**पठतु**), लङ् (**अपठत्**), विधिलिङ् (**पठेत्**), आशीर्लिङ् (**पठ्यात्**), लुङ् (**अपाठीत्**), लृङ् (**अपठिष्यत्**)। तदनुसार ही आत्मनेपद पुरुषों और वचनों में रूपों के वैविध्य का अनुमान हो सकता है।

(ग) आत्मनेपद-परस्मैपद की भिन्नता

तिङ् एक प्रत्याहार है जिसमें १८ प्रत्ययों का समाहार है। ये हैं–तिप्, तस्, झि; सिप्, थस्, थ; मिप्, वस्, मस्; त, आताम् झ; थास्, आथाम्, ध्वम्; इट्, वहि, महिङ्। आरम्भिक ति से अन्तिम ङ् तक मिलकर तिङ् प्रत्याहार बनता है। सभी तिङन्त शब्दों में इनमें से कोई न कोई प्रत्यय लगा होता है वह चाहे जिस रूप में बदला हुआ हो। इनमें प्रथम नौ **परस्मैपद** कहलाते हैं, अन्तिम नौ (तङ्–प्रत्याहार) को **आत्मनेपद** कहते हैं (तङानावात्मनेपदम्)। इनमें तीन-तीन का समूह पुरुषों के आधार पर–प्रथम, मध्यम, उत्तम पुरुष–बना हुआ है। समूहों में एकवचन, द्विवचन, बहुवचन की तीन-तीन विभक्तियाँ हैं।

जिन धातुओं से केवल परस्मैपद प्रत्यय होते हैं उन्हें परस्मैपदी धातु कहते हैं जैसे–भू, गम्, दिव्, नृत्, अद् इत्यादि। जिन धातुओं से केवल आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं, उन्हें **आत्मनेपदी धातु** कहते हैं जैसे–एध्, सेव्, ईक्ष्, बुध्, शी (सोना), आस् (बैठना) इत्यादि। जिन धातुओं से दोनों प्रकार के प्रत्यय लगते हैं उन्हें **उभयपदी धातु** कहते हैं जैसे–कृ, रुध्, भुज, क्री, ज्ञा, ब्रू, स्तु इत्यादि। दोनों पदों की स्थितियों में अर्थगत अन्तर (Semantic difference) अवश्य रहता है। कुछ विशेष स्थितियों में परस्मैपदी धातु से भी आत्मनेपद प्रत्यय लगते हैं तथा इसके विपरीत आत्मनेपदी से भी परस्मैपद प्रत्यय लगते हैं। इनका विधान 'आत्मनेपद-परस्मैपद प्रकरण' में पाणिनि के सूत्रों में हुआ है। वैसे धातुपाठ में सभी

धातुओं के मूल स्वरूप (आत्मनेपदी, परस्मैपदी या उभयपदी होने) तथा अर्थों का निरूपण किया गया है। पाणिनीय धातुपाठ इस दृष्टि से अवलोकनीय है।

(घ) सेट् और अनिट् धातुओं की व्यवस्था

आर्धधातुक प्रत्यय के पूर्व इट् का आगम होता है यदि प्रत्यय य छोड़कर किसी अन्य व्यञ्जनवर्ण से आरम्भ होता हो (**आर्धधातुकस्येड् वलादेः** ७.२.३५)। तिङन्त पदों के सन्दर्भ में हम लृट्, लुट् और लृङ् लकारों में इसे देख सकते हैं जैसे–भविष्यति (स्य आर्धधातुक है), भविता (लुट्, तास्), अभविष्यत् (लृङ्)। लृट्-लृङ् में स्य विकरण और लुट् में तास् विकरण हैं। ये आर्धधातुक हैं। इनके पूर्व इट् लगा है, जो आगम है। इस प्रकार इट् ग्रहण करने वाली धातुओं को 'सेट्' कहा जाता है। इसके विपरीत कुछ ऐसी धातुएँ हैं जो इन स्थितियों में भी इट् ग्रहण नहीं करतीं। इन्हें 'अनिट्' कहते हैं जैसे–दा धातु से **दास्यति,** (लृट्), **दाता** (लुट्), **अदास्यत्** (लृङ्)। काशिका और **सिद्धान्तकौमुदी** में अनिट् धातुओं को श्लोकों में दिखाया गया है। कुल १०२ अनुदात्त स्वरवाली धातुओं की सूची दी गई है। कृत् के अन्तर्गत आर्धधातुक प्रत्ययों के पूर्व भी इट् लगता है जैसे–पठितम्, पठितवान्, पठित्वा, पठितुम्।

(ङ) सकर्मक और अकर्मक धातुओं का भेद (Transitive and Intransitive verbs)

जिन धातुओं का फल और व्यापार एक ही स्थान पर, केवल कर्ता में, स्थित हो उन्हें 'अकर्मक' कहते हैं। जैसे-**बालकः शेते**। शयन-क्रिया का फल (चित्त की शान्ति, विश्राम) और व्यापार (शरीर का शिथिल करना) एक ही बालक में स्थित है। अतः शी-धातु अकर्मक है। इसी प्रकार अस्, स्था, जागृ, वृध् इत्यादि धातुएँ अकर्मक हैं। दूसरी ओर, जब धातु का फल और व्यापार भिन्न वस्तुओं में हो तो वह 'सकर्मक' होती है। इसमें व्यापार कर्ता में और फल कर्म में रहता है। जैसे–**छात्रः ओदनं पचति**। पाक-क्रिया का व्यापार चावल धोना, बटलोही में जल डालना इत्यादि कर्ता में है, फल (अन्न का कोमल होना) कर्म (ओदन) में है, इसलिए पच्-धातु सकर्मक है। यह भेद किसी धातु के रूप को प्रभावित नहीं करता, केवल अर्थगत भेद है कि क्रिया का अन्तः स्वरूप क्या है। कर्ता और कर्म के स्वरूप का भी निरूपण इससे होता है–क्रियाव्यापाराश्रयः कर्ता, क्रियाफलाश्रयः कर्म।

(च) वाच्य का भेद (Voices)

संस्कृत में तीन प्रकार के वाच्य हैं जिनसे कर्ता या कर्म या स्वतन्त्र रूप से क्रिया की प्रधानता का बोध होता है। इन वाच्यों के कारण क्रिया का रूप प्रभावित होता है। जिन तिङन्त रूपों को हम धातुरूपों में पढ़ते हैं वे कर्तृवाच्य के होते हैं चाहे वे परस्मैपदी या आत्मनेपदी क्रियाएँ हों। उनमें, वाक्य में प्रयुक्त होने पर, कर्ता की प्रधानता रहती है जैसे–रामः पठति,

ददाति, तनोति, अत्ति, दीव्यति इत्यादि। कर्मवाच्य में कर्म की और भाववाच्य में स्वयं क्रिया की प्रधानता हो जाती है। इन दोनों में धातुरूप बदलते हैं। लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् इन चार सार्वधातुक लकारों में सभी धातुगणों में 'यक्' विकरण होता है (**सार्वधातुके यक्** ३.१.६७)। जैसे–पठ्यते, पठ्यताम्, अपठ्यत, पठ्येत। अन्य लकारों में विविध प्रक्रियाएँ अपनायी जाती हैं। यह भी ज्ञातव्य है कि कर्मवाच्य और भाववाच्य में सदा आत्मनेपद प्रत्यय ही होते हैं चाहे मूल धातु कैसी भी हो (**भावकर्मणोः** १.३.१३)। वाच्य पर हम अलग विस्तार से विचार करेंगे।

धातुरूपावली (Conjugation)

भ्वादि, दिवादि, तुदादि और चुरादि गण की धातुओं के रूप अकारान्त विकरण के कारण सरल हैं। इन्हें भाषिक दृष्टि से सविकरण (Thematic) कहा जाता है। अन्य गणों की धातुएँ भिन्न प्रकार से रूप ग्रहण करती हैं। यहाँ तिङ् प्रत्ययों का मूल रूप दुहरा देना प्रासंगिक है—

परस्मैपद

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	तिप्	तस्	झि (अन्ति)
मध्यम पुरुष	सिप्	थस्	थ
उत्तम पुरुष	मिप्	वस्	मस्

आत्मनेपद

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	त	आताम्	झ
मध्यम पुरुष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तम पुरुष	इट्	वहि	महिङ्

इन प्रत्ययों के रूप लकार के अनुसार कुछ परिवर्तित होते हैं जिन्हें पाणिनि ने सूत्रों में बताया है किन्तु रूपावली को स्मरण रखना आजकल सरल समझा जाता है, यद्यपि लघुकौमुदी-स्तर की पुस्तकों से रूप बनाना सीख लेने में कठिनाई नहीं है।

(i) भ्वादिगणीय धातुओं के रूप

१. भू धातु (होना–To become) परस्मैपद

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	भवति	भवतः	भवन्ति

मध्यम पुरुष	भवसि	भवथः	भवथ
उत्तम पुरुष	भवामि	भवावः	भवामः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
मध्यम पुरुष	अभवः	अभवतम्	अभवत
उत्तम पुरुष	अभवम्	अभवाव	अभवाम

लृट् लकार (सामान्य भविष्यत्–Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
मध्यम पुरुष	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ
उत्तम पुरुष	भविष्यामि	भविष्यावः	भविष्यामः

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भवतु	भवताम्	भवन्तु
मध्यम पुरुष	भव	भवतम्	भवत
उत्तम पुरुष	भवानि	भवाव	भवाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
मध्यम पुरुष	भवेः	भवेतम्	भवेत
उत्तम पुरुष	भवेयम्	भवेव	भवेम

लङ् (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
मध्यम पुरुष	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
उत्तम पुरुष	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

२. गम् धातु (जाना–To go) परस्मैपदी
(इसका सार्वधातुक लकारों में 'गच्छ्' ऐसा रूप होता है)

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति
मध्यम पुरुष	गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ
उत्तम पुरुष	गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्
मध्यम पुरुष	अगच्छः	अगच्छतम्	अगच्छत
उत्तम पुरुष	अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम

लृट् लकार (सामान्य भविष्यत्–Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	गमिष्यसि	गमिष्यथः	गमिष्यथ
उत्तम पुरुष	गमिष्यामि	गमिष्यावः	गमिष्यामः

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु
मध्यम पुरुष	गच्छ	गच्छतम्	गच्छत
उत्तम पुरुष	गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः
मध्यम पुरुष	गच्छेः	गच्छेतम्	गच्छेत
उत्तम पुरुष	गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम

लृङ् लकार (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्

मध्यम पुरुष	अगमिष्यः	अगमिष्यतम्	अगमिष्यत
उत्तम पुरुष	अगमिष्यम्	अगमिष्याव	अगमिष्याम

३. दृश् धातु (देखना—To see) परस्मैपदी

(इसका सार्वधातुक लकारों में 'पश्य' यह रूप होता है)

लट् लकार (वर्तमानकाल—Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
मध्यम पुरुष	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
उत्तम पुरुष	पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल—Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यन्
मध्यम पुरुष	अपश्यः	अपश्यतम्	अपश्यत
उत्तम पुरुष	अपश्यम्	अपश्याव	अपश्याम

लृट् लकार (सामान्य भविष्यत्—Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
मध्यम पुरुष	द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ
उत्तम पुरुष	द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः

लोट् लकार (अनुज्ञा—Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पश्यतु	पश्यताम्	पश्यन्तु
मध्यम पुरुष	पश्य	गच्छतम्	पश्यत
उत्तम पुरुष	पश्यानि	पश्याव	पश्याम

विधिलिङ् (चाहिए—Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
मध्यम पुरुष	पश्येः	पश्येतम्	पश्येत
उत्तम पुरुष	पश्येयम्	पश्येव	पश्येम

लृङ् लकार (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अद्रक्ष्यत्	अद्रक्ष्यताम्	अद्रक्ष्यन्
मध्यम पुरुष	अद्रक्ष्यः	अद्रक्ष्यतम्	अद्रक्ष्यत
उत्तम पुरुष	अद्रक्ष्यम्	अद्रक्ष्याव	अद्रक्ष्याम

४. स्था धातु (ठहरना–To stay) परस्मैपदी

(सार्वधातुक लकारों में 'तिष्ठ' यह रूप होता है)

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति
मध्यम पुरुष	तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ
उत्तम पुरुष	तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्
मध्यम पुरुष	अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत
उत्तम पुरुष	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम

लृट् लकार (सामान्य भविष्यत्–Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति
मध्यम पुरुष	स्थास्यसि	स्थास्यथः	स्थास्यथ
उत्तम पुरुष	स्थास्यामि	स्थास्यावः	स्थास्यामः

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तिष्ठतु	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
मध्यम पुरुष	तिष्ठ	तिष्ठतम्	तिष्ठत
उत्तम पुरुष	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः

मध्यम पुरुष	तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत
उत्तम पुरुष	तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम

लृङ् लकार (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अस्थास्यत्	अस्थास्यताम्	अस्थास्यन्
मध्यम पुरुष	अस्थास्यः	अस्थास्यतम्	अस्थास्यत
उत्तम पुरुष	अस्थास्यम्	अस्थास्याव	अस्थास्याम

५. नी धातु (ले जाना–To take away) परस्मैपदी

(इसका गुण आदेश–नी का ने और तब शप् के पूर्व अयादेश होता है) नी + शप् + तिप् = ने + अ + ति = नय् + अ + ति = नयति। इसी प्रकार जि धातु से जयति। भू से 'भवति' में भी यही प्रक्रिया है–भू + शप् + तिप् = भो + अ + ति = भव् + अ + ति = भवति। उ का गुण ओ, तब अवादेश)।

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	नयति	नयतः	नयन्ति
मध्यम पुरुष	नयसि	नयथः	नयथ
उत्तम पुरुष	नयामि	नयावः	नयामः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अनयत्	अनयताम्	अनयन्
मध्यम पुरुष	अनयः	अनयतम्	अनयत
उत्तम पुरुष	अनयम्	अनयाव	अनयाम

लृट् लकार (सामान्य भविष्यत्–Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति
मध्यम पुरुष	नेष्यसि	नेष्यथः	नेष्यथ
उत्तम पुरुष	नेष्यामि	नेष्यावः	नेष्यामः

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	नयतु	नयताम्	नयन्तु

मध्यम पुरुष	नय	नयतम्	नयत
उत्तम पुरुष	नयानि	नयाव	नयाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	नयेत्	नयेताम्	नयेयुः
मध्यम पुरुष	नयेः	नयेतम्	नयेत
उत्तम पुरुष	नयेयम्	नयेव	नयेम

ऌङ् लकार (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्
मध्यम पुरुष	अनेष्यः	अनेष्यतम्	अनेष्यत
उत्तम पुरुष	अनेष्यम्	अनेष्याव	अनेष्याम

६. दाण् (यच्छ्) धातु (देना–To give) परस्मैपदी

(इस धातु का सार्वधातुक लकारों में 'यच्छ्' आदेश होता है)

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	यच्छति	यच्छतः	यच्छन्ति
मध्यम पुरुष	यच्छसि	यच्छथः	यच्छथ
उत्तम पुरुष	यच्छामि	यच्छावः	यच्छामः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अयच्छत्	अयच्छताम्	अयच्छन्
मध्यम पुरुष	अयच्छः	अनयतम्	अयच्छत
उत्तम पुरुष	अयच्छम्	अयच्छाव	अयच्छाम

ऌट् लकार (सामान्य भविष्यत्–Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति
मध्यम पुरुष	दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ
उत्तम पुरुष	दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	यच्छतु	यच्छताम्	यच्छन्तु
मध्यम पुरुष	यच्छ	यच्छतम्	यच्छत
उत्तम पुरुष	यच्छानि	यच्छाव	यच्छाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	यच्छेत्	यच्छेताम्	यच्छेयुः
मध्यम पुरुष	यच्छेः	यच्छेतम्	यच्छेत
उत्तम पुरुष	यच्छेयम्	यच्छेव	यच्छेम

लृङ् लकार (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अदास्यत्	अदास्यताम्	अदास्यन्
मध्यम पुरुष	अदास्यः	अदास्यतम्	अदास्यत
उत्तम पुरुष	अदास्यम्	अदास्याव	अदास्याम

७. लभ् धातु (पाना–To obtain) आत्मनेपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	लभते	लभेते	लभन्ते
मध्यम पुरुष	लभसे	लभेथे	लभध्वे
उत्तम पुरुष	लभे	लभावहे	लभामहे

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अलभत	अलभेताम्	अलभन्त
मध्यम पुरुष	अलभथाः	अलभेथाम्	अलभध्वम्
उत्तम पुरुष	अलभे	अलभावहि	अलभामहि

लृट् लकार (सामान्य भविष्यत्–Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते

मध्यम पुरुष	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उत्तम पुरुष	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
मध्यम पुरुष	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
उत्तम पुरुष	लभै	लभावहै	लभामहै

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्
मध्यम पुरुष	लभेथाः	लभेयाथाम्	लभेध्वम्
उत्तम पुरुष	लभेय	लभेवहि	लभेमहि

ऌङ् लकार (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अलप्स्यत	अलप्स्येताम्	अलप्स्यन्त
मध्यम पुरुष	अलप्स्यथाः	अलप्स्येथाम्	अलप्स्यध्वम्
उत्तम पुरुष	अलप्स्ये	अलप्स्यावहि	अलप्स्यामहि

८. सेव् धातु (सेवा करना–To serve) आत्मनेपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सेवते	सेवेते	सेवन्ते
मध्यम पुरुष	सेवसे	सेवेथे	सेवध्वे
उत्तम पुरुष	सेवे	सेवावहे	सेवामहे

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	असेवत	असेवेताम्	असेवन्त
मध्यम पुरुष	असेवथाः	असेवेथाम्	असेवध्वम्
उत्तम पुरुष	असेवे	असेवावहि	असेवामहि

लृट् लकार (सामान्य भविष्यत्—Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सेविष्यते	सेविष्येते	सेविष्यन्ते
मध्यम पुरुष	सेविष्यसे	सेविष्येथे	सेविष्यध्वे
उत्तम पुरुष	सेविष्ये	सेविष्यावहे	सेविष्यामहे

लोट् लकार (अनुज्ञा—Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सेवताम्	सेवेताम्	सेवन्ताम्
मध्यम पुरुष	सेवस्व	सेवेथाम्	सेवध्वम्
उत्तम पुरुष	सेवै	सेवावहै	सेवामहै

विधिलिङ् (चाहिए—Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सेवेत	सेवेयाताम्	सेवेरन्
मध्यम पुरुष	सेवेथाः	सेवेयाथाम्	सेवेध्वम्
उत्तम पुरुष	सेवेय	सेवेवहि	सेवेमहि

लृङ् लकार (हेतुहेतुमद्भाव—Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	असेविष्यत	असेविष्येताम्	असेविष्यन्त
मध्यम पुरुष	असेविष्यथाः	असेविष्येथाम्	असेविष्यध्वम्
उत्तम पुरुष	असेविष्ये	असेविष्यावहि	असेविष्यामहि

९. वृत् धातु (वर्तमान रहना—To exist) आत्मनेपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल—Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	वर्तते	वर्तेते	वर्तन्ते
मध्यम पुरुष	वर्तसे	वर्तेथे	वर्तध्वे
उत्तम पुरुष	वर्ते	वर्तावहे	वर्तामहे

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल—Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अवर्तत	अवर्तेताम्	अवर्तन्त

मध्यम पुरुष	अवर्तथाः	अवर्तेथाम्	अवर्तध्वम्
उत्तम पुरुष	अवर्ते	अवर्तावहि	अवर्तामहि

लृट् लकार (सामान्य भविष्यत्–Future)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	वर्तिष्यते	वर्तिष्येते	वर्तिष्यन्ते
मध्यम पुरुष	वर्तिष्यसे	वर्तिष्येथे	वर्तिष्यध्वे
उत्तम पुरुष	वर्तिष्ये	वर्तिष्यावहे	वर्तिष्यामहे

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	वर्तताम्	वर्तेताम्	वर्तन्ताम्
मध्यम पुरुष	वर्तस्व	वर्तेथाम्	वर्तध्वम्
उत्तम पुरुष	वर्तै	वर्तावहै	वर्तामहै

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	वर्तेत	वर्तेयाताम्	वर्तेरन्
मध्यम पुरुष	वर्तेथाः	वर्तेयाथाम्	वर्तेध्वम्
उत्तम पुरुष	वर्तेय	वर्तेवहि	वर्तेमहि

लृङ् लकार (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	अवर्तिष्यत	अवर्तिष्येताम्	अवर्तिष्यन्त
मध्यम पुरुष	अवर्तिष्यथाः	अवर्तिष्येथाम्	अवर्तिष्यध्वम्
उत्तम पुरुष	अवर्तिष्ये	अवर्तिष्यावहि	अवर्तिष्यामहि

(ii) अदादिगणीय धातुओं के रूप (विकरण-लोप)

१. अद् (खाना–To eat) धातु परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	अत्ति	अत्तः	अदन्ति
मध्यम पुरुष	अत्सि	अत्थः	अत्थ
उत्तम पुरुष	अद्मि	अद्वः	अद्मः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल—Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	आदत्	आत्ताम्	आदन्
मध्यम पुरुष	आदः	आत्तम्	आत्त
उत्तम पुरुष	आदम्	आद्व	आद्म

लृट् लकार (सामान्य भविष्यत्—Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अत्स्यति	अत्स्यतः	अत्स्यन्ति
मध्यम पुरुष	अत्स्यसि	अत्स्यथः	अत्स्यथ
उत्तम पुरुष	अत्स्यामि	अत्स्यावः	अत्स्यामः

लोट् लकार (अनुज्ञा—Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अत्तु	अत्ताम्	अदन्तु
मध्यम पुरुष	अद्धि	अत्तम्	अत्त
उत्तम पुरुष	अदानि	अदाव	अदाम

विधिलिङ् (चाहिए—Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
मध्यम पुरुष	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
उत्तम पुरुष	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

लृङ् (हेतुहेतुमद्भाव—Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	आत्स्यत्	आत्स्यताम्	आत्स्यन्
मध्यम पुरुष	आत्स्यः	आत्स्यतम्	आत्स्यत
उत्तम पुरुष	आत्स्यम्	आत्स्याव	आत्स्याम

२. हन् धातु (मारना—To kill) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल—Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	हन्ति	हतः	घ्नन्ति

मध्यम पुरुष	हंसि	हथः	हथ
उत्तम पुरुष	हन्मि	हन्वः	हन्मः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल—Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अहन्	अहताम्	अघ्नन्
मध्यम पुरुष	अहन्	अहतम्	अहत
उत्तम पुरुष	अहनम्	अहन्व	अहन्म

लृट् लकार (सामान्य भविष्यत्—Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	हनिष्यति	हनिष्यतः	हनिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	हनिष्यसि	हनिष्यथः	हनिष्यथ
उत्तम पुरुष	हनिष्यामि	हनिष्यावः	हनिष्यामः

लोट् लकार (अनुज्ञा—Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	हन्तु	हताम्	घ्नन्तु
मध्यम पुरुष	जहि	हतम्	हत
उत्तम पुरुष	हनानि	हनाव	हनाम

विधिलिङ् (चाहिए—Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः
मध्यम पुरुष	हन्याः	हन्यातम्	हन्यात
उत्तम पुरुष	हन्याम्	हन्याव	हन्याम

लृङ् (हेतुहेतुमद्भाव—Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अहनिष्यत्	अहनिष्यताम्	अहनिष्यन्
मध्यम पुरुष	अहनिष्यः	अहनिष्यतम्	अहनिष्यत
उत्तम पुरुष	अहनिष्यम्	अहनिष्याव	अहनिष्याम

मध्यम पुरुष	अभविष्यः	अभविष्यतम्	अभविष्यत
उत्तम पुरुष	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

४. शास् धातु (शासन करना—To rule) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल—Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शास्ति	शिष्टः	शासति
मध्यम पुरुष	शास्सि	शिष्ठः	शिष्ठ
उत्तम पुरुष	शास्मि	शिष्वः	शिष्मः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल—Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अशात्	अशिष्टाम्	अशासुः
मध्यम पुरुष	अशाः	अशिष्टम्	अशिष्ट
उत्तम पुरुष	अशासम्	अशिष्व	अशिष्म

लृट् लकार (सामान्य भविष्यत्—Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शासिष्यति	शासिष्यतः	शासिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	शासिष्यसि	शासिष्यथः	शासिष्यथ
उत्तम पुरुष	शासिष्यामि	शासिष्यावः	शासिष्यामः

लोट् लकार (अनुज्ञा—Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शास्तु	शिष्टाम्	शासतु
मध्यम पुरुष	शाधि	शिष्टम्	शिष्ट
उत्तम पुरुष	शासानि	शासाव	शासाम

विधिलिङ् (चाहिए—Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्युः
मध्यम पुरुष	शिष्याः	शिष्यातम्	शिष्यात
उत्तम पुरुष	शिष्याम्	शिष्याव	शिष्याम

लृङ् (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अशासिष्यत्	अशासिष्यताम्	अशासिष्यन्
मध्यम पुरुष	अशासिष्यः	अशासिष्यतम्	अशासिष्यत
उत्तम पुरुष	अशासिष्यम्	अशासिष्याव	अशासिष्याम

५. या धातु (जाना–To go) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	याति	यातः	यान्ति
मध्यम पुरुष	यासि	याथः	याथ
उत्तम पुरुष	यामि	यावः	यामः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अयात्	अयाताम्	अयुः
मध्यम पुरुष	अयाः	अयातम्	अयात
उत्तम पुरुष	अयाम्	अयाव	अयाम

लृट् लकार (सामान्य भविष्यत्–Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	यास्यति	यास्यतः	यास्यन्ति
मध्यम पुरुष	यास्यसि	यास्यथः	यास्यथ
उत्तम पुरुष	यास्यामि	यास्यावः	यास्यामः

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	यातु	याताम्	यान्तु
मध्यम पुरुष	याहि	यातम्	यात
उत्तम पुरुष	यानि	याव	याम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	यायात्	यायाताम्	यायुः

मध्यम पुरुष	यायाः	यायातम्	यायात
उत्तम पुरुष	यायाम्	यायाव	यायाम

ऌङ् (हेतुहेतुमद्भाव—Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अयास्यत्	अयास्यताम्	अयास्यन्
मध्यम पुरुष	अयास्यः	अयास्यतम्	अयास्यत
उत्तम पुरुष	अयास्यम्	अयास्याव	अयास्याम

६. विद् धातु (जानना—To know) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल—Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	वेत्ति (वेद)	वित्तः	विदन्ति (विदुः)
मध्यम पुरुष	वेत्सि	वित्थः	वित्थ
उत्तम पुरुष	वेद्मि	विद्वः	विद्मः

लोट् लकार (अनुज्ञा—Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	वेत्तु	वित्ताम्	विदन्तु
मध्यम पुरुष	विद्धि	वित्तम्	वित्त
उत्तम पुरुष	वेदानि	वेदाव	वेदाम

टिप्पणी—विद् धातु से लोट लकार में 'विदाङ्करोतु' जैसा वैकल्पिक रूप भी होता है। यह लिट् लकार का 'आम्' लगकर दुहरा रूप जैसा है। भवान् वेत्तु (विदाङ्करोतु), भवन्तो विदाङ्कुर्वन्तु (विदन्तु)–आप जानें, जान लें। अन्य पुरुषों में यह दुर्लभ है। अतः प्रथमपुरुष का ही प्राधान्य है।

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल—Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अवेत्	अवित्ताम्	अविदुः
मध्यम पुरुष	अवेः	अवित्तम्	अवित्त
उत्तम पुरुष	अवेदम्	अविद्व	अविद्म

ऌट् लकार (सामान्य भविष्यत्—Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	वेदिष्यति	वेदिष्यतः	वेदिष्यन्ति

मध्यम पुरुष	वेदिष्यसि	वेदिष्यथः	वेदिष्यथ
उत्तम पुरुष	वेदिष्यामि	वेदिष्यावः	वेदिष्यामः

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	विद्यात्	विद्याताम्	विद्युः
मध्यम पुरुष	विद्याः	विद्यातम्	विद्यात
उत्तम पुरुष	विद्याम्	विद्याव	विद्याम

लृङ् (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अवेदिष्यत्	अवेदिष्यताम्	अवेदिष्यन्
मध्यम पुरुष	अवेदिष्यः	अवेदिष्यतम्	अवेदिष्यत
उत्तम पुरुष	अवेदिष्यम्	अवेदिष्याव	अवेदिष्याम

अदादिगणीय रुद् (रोना), ब्रू (बोलना), स्वप् (सोना), जागृ (जागना), स्तु (स्तुति करना), इ (जाना)–इन धातुओं के रूपों में कई विकृतियाँ होती हैं। उन्हें ध्यान से देखें।

७. रुद् धातु (रोना–To weep, cry) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	रोदिति	रुदितः	रुदन्ति
मध्यम पुरुष	रोदिषि	रुदिथः	रुदिथ
उत्तम पुरुष	रोदिमि	रुदिवः	रुदिमः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अरोदीत्, अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्
मध्यम पुरुष	अरोदीः, अरोदः	अरुदितम्	अरुदित
उत्तम पुरुष	अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम

लृट् लकार (सामान्य भविष्यत्–Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	रोदिष्यति	रोदिष्यतः	रोदिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	रोदिष्यसि	रोदिष्यथः	रोदिष्यथ
उत्तम पुरुष	रोदिष्यामि	रोदिष्यावः	रोदिष्यामः

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	रोदितु	रुदिताम्	रुदन्तु
मध्यम पुरुष	रुदिहि	रुदितम्	रुदित
उत्तम पुरुष	रोदानि	रोदाव	रोदाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः
मध्यम पुरुष	रुद्याः	रुद्यातम्	रुद्यात
उत्तम पुरुष	रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम

ऌङ् (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अरोदिष्यत्	अरोदिष्यताम्	अरोदिष्यन्
मध्यम पुरुष	अरोदिष्यः	अरोदिष्यतम्	अरोदिष्यत
उत्तम पुरुष	अरोदिष्यम्	अरोदिष्याव	अरोदिष्याम

८. ब्रू धातु (बोलना–To speak) परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present) परस्मैपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ब्रवीति	ब्रूतः	ब्रुवन्ति
मध्यम पुरुष	ब्रवीषि	ब्रूथः	ब्रूथ
उत्तम पुरुष	ब्रवीमि	ब्रूवः	ब्रूमः

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present) आत्मनेपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
मध्यम पुरुष	ब्रूषे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
उत्तम पुरुष	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

इस धातु के लट् (परस्मै.) के प्रथम पाँच रूपों में क्रमशः आह-आहतुः-आहुः-आत्थ-आहथुः-ये रूप भी होते हैं। ये लिट् लकार जैसे रूप हैं (ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः ३.४.८४)।

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative) परस्मैपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ब्रवीतु	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु
मध्यम पुरुष	ब्रूहि	ब्रूतम्	ब्रूत
उत्तम पुरुष	ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative) आत्मनेपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ब्रूताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
मध्यम पुरुष	ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्
उत्तम पुरुष	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past) परस्मैपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अब्रवीत्	अब्रूताम्	अब्रुवन्
मध्यम पुरुष	अब्रवीः	अब्रूतम्	अब्रूत
उत्तम पुरुष	अब्रवम्	अब्रूव	अब्रूम

आत्मनेपद में लङ् में अब्रूत-अब्रुवाताम्-अब्रुवत ऐसा रूप होगा। विधिलिङ् में ब्रुवीत-ब्रुवीयाताम्-ब्रुवीरन् ऐसा रूप होता है। ये प्रथमपुरुष के रूप हैं। लृट् लकार में वक्ष्यति और लृङ् में 'अवक्ष्यत्' के आधार पर रूप होते हैं।

९. स्वप् धातु (सोना–To sleep) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स्वपिति	स्वपितः	स्वपन्ति
मध्यम पुरुष	स्वपिषि	स्वपिथः	स्वपिथ
उत्तम पुरुष	स्वपिमि	स्वपिवः	स्वपिमः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अस्वपीत् अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
मध्यम पुरुष	अस्वपीः अस्वपः	अस्वपितम्	अस्वपित
उत्तम पुरुष	अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स्वपितु	स्वपिताम्	स्वपन्तु
मध्यम पुरुष	स्वपिहि	स्वपितम्	स्वपित
उत्तम पुरुष	स्वपानि	स्वपाव	स्वपाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्युः
मध्यम पुरुष	स्वप्याः	स्वप्यातम्	स्वप्यात
उत्तम पुरुष	स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

लृट् में 'स्वप्स्यति' और लृङ् में 'अस्वप्स्यत्' के आधार पर रूप चलेंगे।

१०. जागृ धातु (जागना–To awake) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जागर्ति	जागृतः	जाग्रति
मध्यम पुरुष	जागर्षि	जागृथः	जागृथ
उत्तम पुरुष	जागर्मि	जागृवः	जागृमः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अजागः	अजागृताम्	अजागरुः
मध्यम पुरुष	अजागः	अजागृतम्	अजागृत
उत्तम पुरुष	अजागरम्	अजागृव	अजागृम

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जागर्तु	जागृताम्	जाग्रतु
मध्यम पुरुष	जागृहि	जागृतम्	जागृत
उत्तम पुरुष	जागराणि	जागराव	जागराम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जागृयात्	जागृयाताम्	जागृयुः

मध्यम पुरुष	जागृयाः	जागृयातम्	जागृयात
उत्तम पुरुष	जागृयाम्	जागृयाव	जागृयाम

लृट् में इसका रूप 'जागरिष्यति' और लृङ् में 'अजागरिष्यत्' के आधार पर होगा।

११. स्तु धातु (स्तुति करना–To praise) परस्मैपदी

(कुछ स्थानों में इसके दो-दो रूप होते हैं)

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	स्तौति स्तवीति	स्तुतः स्तुवीतः	स्तुवन्ति
मध्यम पुरुष	स्तौषि स्तवीषि	स्तुथः स्तुवीथः	स्तुथ स्तुवीथ
उत्तम पुरुष	स्तौमि स्तवीमि	स्तुवः स्तुवीवः	स्तुमः स्तुवीमः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	अस्तौत्, अस्तवीत्	अस्तुताम्, अस्तुवीताम्	अस्तुवन्
मध्यम पुरुष	अस्तौः, अस्तवीः	अस्तुतम्, अस्तुवीतम्	अस्तुत, अस्तुवीत
उत्तम पुरुष	अस्तवम्	अस्तुव, अस्तुवीव	अस्तुम, अस्तुवीम

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	स्तौतु, स्तवीतु	स्तुताम्, स्तुवीताम्	स्तुवन्तु
मध्यम पुरुष	स्तुहि, स्तवीहि	स्तुतम्, स्तुवीतम्	स्तुत, स्तुवीत
उत्तम पुरुष	स्तवानि	स्तवाव	स्तवाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	स्तुयात्, स्तुवीयात्	स्तुयाताम्, स्तुवीयाताम्	स्तुयुः, स्तुवीयुः
मध्यम पुरुष	स्तुयाः, स्तुवीयाः	स्तुयातम्, स्तुवीयातम्	स्तुयात, स्तुवीयात
उत्तम पुरुष	स्तुयाम्, स्तुवीयाम्	स्तुयाव, स्तुवीयाव	स्तुयाम स्तुवीयाम

लृट् लकार में 'स्तोष्यति' और लृङ् में 'अस्तोष्यत्' के आधार पर इसके रूप सरल हैं। इस धातु का आत्मनेपदी रूप भी होता है।

१२. इण् धातु (जाना–To go) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	एति	इतः	यन्ति
मध्यम पुरुष	एषि	इथः	इथ
उत्तम पुरुष	एमि	इवः	इमः

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	एतु	इताम्	यन्तु
मध्यम पुरुष	इहि	इतम्	इत
उत्तम पुरुष	अयानि	अयाव	अयाम

लङ् लकार में ऐत्, विधिलिङ् में इयात्, लृट् में एष्यति, लृङ् में ऐष्यत् के आधार पर रूप बनते हैं।

१३. शीङ् धातु (सोना–To sleep) आत्मनेपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शेते	शयाते	शेरते
मध्यम पुरुष	शेषे	शयाथे	शेध्वे
उत्तम पुरुष	शये	शेवहे	शेमहे

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अशेत	अशयाताम्	अशेरत
मध्यम पुरुष	अशेथाः	अशयाथाम्	अशेध्वम्
उत्तम पुरुष	अशयि	अशेवहि	अशेमहि

लृट् लकार (भविष्यत्–Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शयिष्यते	शयिष्येते	शयिष्यन्ते
मध्यम पुरुष	शयिष्यसे	शयिष्येथे	शयिष्यध्वे
उत्तम पुरुष	शयिष्ये	शयिष्यावहे	शयिष्यामहे

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्
मध्यम पुरुष	शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्
उत्तम पुरुष	शयै	शयावहै	शयामहै

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्
मध्यम पुरुष	शयीथाः	शयीयाथाम्	शयीध्वम्
उत्तम पुरुष	शयीय	शयीवहि	शयीमहि

ऌङ् (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अशयिष्यत	अशयिष्येताम्	अशयिष्यन्त
मध्यम पुरुष	अशयिष्यथाः	अशयिष्येथाम्	अशयिष्यध्वम्
उत्तम पुरुष	अशयिष्ये	अशयिष्यावहि	अशयिष्यामहि

१४. आस् धातु (बैठना–To sit, to exist) आत्मनेपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	आस्ते	आसाते	आसते
मध्यम पुरुष	आस्से	आसाथे	आध्वे
उत्तम पुरुष	आसे	आस्वहे	आस्महे

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	आस्त	आसाताम्	आसत
मध्यम पुरुष	आस्थाः	आसाथाम्	आध्वम्
उत्तम पुरुष	आसि	आस्वहि	आस्महि

ऌट् लकार (भविष्यत्–Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	आसिष्यते	आसिष्येते	आसिष्यन्ते

मध्यम पुरुष	आसिष्यसे	आसिष्येथे	आसिष्यध्वे
उत्तम पुरुष	आसिष्ये	आसिष्यावहे	आसिष्यामहे

लोट् लकार (अनुज्ञा—Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्
मध्यम पुरुष	आस्स्व	आसाथाम्	आध्वम्
उत्तम पुरुष	आसै	आसावहै	आसामहै

विधिलिङ् (चाहिए—Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	आसीत	आसीयाताम्	आसीरन्
मध्यम पुरुष	आसीथाः	आसीयाथाम्	आसीध्वम्
उत्तम पुरुष	आसीय	आसीवहि	आसीमहि

१५. अधि + इ धातु (पढ़ना—To study) आत्मनेपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल—Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अधीते	अधीयाते	अधीयते
मध्यम पुरुष	अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे
उत्तम पुरुष	अधीये	अधीवहे	अधीमहे

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल—Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
मध्यम पुरुष	अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्
उत्तम पुरुष	अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

लृट् लकार (भविष्यत्—Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
मध्यम पुरुष	अध्येष्यसे	अध्येष्येथे	अध्येष्यध्वे
उत्तम पुरुष	अध्येष्ये	अध्येष्यावहे	अध्येष्यामहे

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
मध्यम पुरुष	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्
उत्तम पुरुष	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
मध्यम पुरुष	अधीयीथाः	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्
उत्तम पुरुष	अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि

लृङ् (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अध्यैष्यत	अध्यैष्येताम्	अध्यैष्यन्त
मध्यम पुरुष	अध्यैष्यथाः	अध्यैष्येथाम्	अध्यैष्यध्वम्
उत्तम पुरुष	अध्यैष्ये	अध्यैष्यावहि	अध्यैष्यामहि

(iii) जुहोत्यादिगणीय धातुओं के रूप (श्लु-विकरण)

१. हु धातु (हवन करना–To offer oblation) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जुहोति	जुहुतः	जुह्वति
मध्यम पुरुष	जुहोषि	जुहुथः	जुहुथ
उत्तम पुरुष	जुहोमि	जुहुवः	जुहुमः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुहवुः
मध्यम पुरुष	अजुहोः	अजुहुतम्	अजुहुत
उत्तम पुरुष	अजुहवम्	अजुहुव	अजुहुम

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जुहोतु	जुहुताम्	जुह्वतु
मध्यम पुरुष	जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत
उत्तम पुरुष	जुहवानि	जुहवाव	जुहवाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयुः
मध्यम पुरुष	जुहुयाः	जुहुयातम्	जुहुयात
उत्तम पुरुष	जुहुयाम्	जुहुयाव	जुहुयाम

इसके लृट् लकार में 'होष्यति' के अनुसार और लृङ् लकार में 'अहोष्यत् के अनुसार रूप चलते हैं।

२. भी धातु (डरना–To fear) परस्मैपदी

इसके जिन रूपों में 'भी' रहता है उनका विकल्प से ह्रस्व (भि) भी होता है। यह नियम सभी लकारों में है। भियोऽन्यतरस्याम् (६.४.११५)।

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	बिभेति	बिभीतः, बिभितः	बिभ्यति
मध्यम पुरुष	बिभेषि	बिभीथः, बिभिथः	बिभीथ, बिभिथ
उत्तम पुरुष	बिभेमि	बिभीवः, बिभिवः	बिभीमः, बिभिमः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अबिभेत्	अबिभीताम्, अबिभिताम्	अबिभयुः
मध्यम पुरुष	अबिभेः	अबिभीतम्, अबिभितम्	अबिभीत, अबिभित
उत्तम पुरुष	अबिभयम्	अबिभीव, अबिभिव	अबिभीम, अबिभिम

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	बिभेतु	बिभीताम्, बिभिताम्	बिभ्यतु
मध्यम पुरुष	बिभीहि, बिभिहि	बिभीतम्, बिभितम्	बिभीत, बिभित
उत्तम पुरुष	बिभयानि	बिभयाव	बिभयाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	बिभीयात्, बिभियात्	बिभीयाताम्, बिभियाताम्	बिभीयुः, बिभियुः
मध्यम पुरुष	बिभीयाः, बिभियाः	बिभीयातम्, बिभियातम्	बिभीयात, बिभियात
उत्तम पुरुष	बिभीयाम्, बिभियाम्	बिभीयाव, बिभियाव	बिभीयाम, बिभियाम

इसके लृट् लकार में 'भेष्यति' के अनुसार और लृङ् लकार में 'अभेष्यत्' के अनुसार सरल रूप हैं।

३. दा धातु (देना–To give) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ददाति	दत्तः	ददति
मध्यम पुरुष	ददासि	दत्थः	दत्थ
उत्तम पुरुष	ददामि	दद्वः	दद्मः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अददात्	अदत्ताम्	अददुः
मध्यम पुरुष	अददाः	अदत्तम्	अदत्त
उत्तम पुरुष	अददाम्	अदद्व	अदद्म

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ददातु	दत्ताम्	ददतु
मध्यम पुरुष	देहि	दत्तम्	दत्त
उत्तम पुरुष	ददानि	ददाव	ददाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः
मध्यम पुरुष	दद्याः	दद्यातम्	दद्यात
उत्तम पुरुष	दद्याम्	दद्याव	दद्याम

लृट् लकार में 'दास्यति' तथा लृङ् लकार में 'अदास्यत्' के आधार पर इसका रूप चलता है। यहाँ इसके केवल परस्मैपदी रूप दिये गये हैं।

(iv) दिवादिगणीय धातुओं के रूप (श्यन्-विकरण)

१. दिव् (खेलना–To play) परस्मैपदी

हलादि प्रत्यय (जैसे श्यन् = य) के पूर्व रकारान्त-वकारान्त धातु की उपधा में स्थित इ,उ,ऋ का दीर्घ हो जाता है–हलि च (८.२.७७)। इसीलिए दिव् धातु का श्यन् विकरण के पूर्व 'दीव्य' ऐसा रूप होता है।

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	दीव्यति	दीव्यतः	दीव्यन्ति
मध्यम पुरुष	दीव्यसि	दीव्यथः	दीव्यथ
उत्तम पुरुष	दीव्यामि	दीव्यावः	दीव्यामः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्
मध्यम पुरुष	अदीव्यः	अदीव्यतम्	अदीव्यत
उत्तम पुरुष	अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	दीव्यतु	दीव्यताम्	दीव्यन्तु
मध्यम पुरुष	दीव्य	दीव्यतम्	दीव्यत
उत्तम पुरुष	दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः
मध्यम पुरुष	दीव्येः	दीव्येतम्	दीव्येत
उत्तम पुरुष	दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम

लृट लकार में 'देविष्यति' और लृङ् लकार में 'अदेविष्यत्' के आधार पर रूप होगा।

टिप्पणी—इस गण की धातुओं के रूप 'य' (श्यन्) लगकर भ्वादिगण के समान ही होते हैं। जैसे-क्रम् (चलना–to go)–**क्राम्यति** (लट्), **क्राम्यतु** (लोट्), **अक्राम्यत्** (लङ्), **क्राम्येत्** (विधिलिङ्), **क्रमिष्यति** (लृट्), **अक्रमिष्यत्** (लृङ्)। शम् (शान्त होना–to be pacific)–**शाम्यति** (लट्), **शाम्यतु** (लोट्), **अशाम्यत्** (लङ्), **शाम्येत्**

(विधिलिङ्), **शमिष्यति** (लृट्), **अशमिष्यत्** (लृङ्)। मद् (नशे में आना–to be intoxicated)–माद्यति-माद्यतु-अमाद्यत्-माद्येत्-मदिष्यति-अमदिष्यत्। शम् आदि आठ धातुओं (शम्, तम्, दम्, श्रम्, भ्रम्, क्षम्, क्लम् तथा मद्) की उपधा का श्यन् के पूर्व दीर्घ होता है। अस् (फेंकना–to throw)–अस्यति-अस्यतु-आस्यत्-अस्येत्-असिष्यति-आसिष्यत्। क्रुध्-क्रुध्यति। कुप्-कुप्यति। अनु + इष् = अन्विष्यति (खोजता है)। पुष्-पुष्यति (लट्)-पोक्ष्यति (लृट्)।

२. जन् (जन्म लेना, होना–To be born, to become) आत्मनेपदी

जन् और ज्ञा धातु के स्थान में 'जा' आदेश होता है यदि श्यन् और श्ना विकरण हो। अतः जायते और जानाति रूप बनते हैं। ज्ञाजनोर्जा (७.३.७९)।

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जायते	जायेते	जायन्ते
मध्यम पुरुष	जायसे	जायेथे	जायध्वे
उत्तम पुरुष	जाये	जायावहे	जायामहे

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त
मध्यम पुरुष	अजायथाः	अजायेथाम्	अजायध्वम्
उत्तम पुरुष	अजाये	अजायावहि	अजायामहि

लृट् लकार (भविष्यत्–Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते
मध्यम पुरुष	जनिष्यसे	जनिष्येथे	जनिष्यध्वे
उत्तम पुरुष	जनिष्ये	जनिष्यावहे	जनिष्यामहे

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
मध्यम पुरुष	जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्
उत्तम पुरुष	जायै	जायावहै	जायामहै

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्
मध्यम पुरुष	जायेथाः	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
उत्तम पुरुष	जायेय	जायेवहि	जायेमहि

ऌङ् लकार (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अजनिष्यत	अजनिष्येताम्	अजनिष्यन्त
मध्यम पुरुष	अजनिष्यथाः	अजनिष्येथाम्	अजनिष्यध्वम्
उत्तम पुरुष	अजनिष्ये	अजनिष्यावहि	अजनिष्यामहि

इसी प्रकार तप् (दुःखी होना) से तप्यते-तप्यताम्-अतप्यत-तप्येत-तप्स्यते-अतप्स्यत। बुध् (समझना) से बुध्यते-बुध्यताम्-अबुध्यत-बुध्येत-भोत्स्यते-अभोत्स्यत। युध् (लड़ाई करना–to fight) से युध्यते-युध्यताम्-अयुध्यत-युध्येत-योत्स्यते-अयोत्स्यत। मन् (चिन्तन करना–to think) से मन्यते-मन्यताम्-अमन्यत-मन्येत-मंस्यते-अमंस्यत। युज् (समाधि लगाना–to meditate) से युज्यते-युज्यताम्-अयुज्यत-युज्येत-योक्ष्यते-अयोक्ष्यत। दीप् (चमकना–to shine) से दीप्यते-दीप्यताम्-अदीप्यत-दीप्येत-दीपिष्यते-अदीपिष्यत।

(v) स्वादिगणीय धातुओं के रूप (श्नु-विकरण)

१. सु (रस निकालना, नहाना–To make juice, to bathe) परस्मैपदी

(यह धातु उभयपदी है किन्तु परस्मैपद के रूप दिये जाते हैं)

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सुनोति	सुनुतः	सुन्वन्ति
मध्यम पुरुष	सुनोषि	सुनुथः	सुनुथ
उत्तम पुरुष	सुनोमि	सुनुवः, सुन्वः	सुनुमः, सुन्मः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	असुनोत्	असुनुताम्	असुन्वन्
मध्यम पुरुष	असुनोः	असुनुतम्	असुनुत
उत्तम पुरुष	असुनवम्	असुनुव, असुन्व	असुनुम, असुन्म

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सुनोतु	सुनुताम्	सुन्वन्तु
मध्यम पुरुष	सुनु	सुनुतम्	सुनुत
उत्तम पुरुष	सुनवानि	सुनवाव	सुनवाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सुनुयात्	सुनुयाताम्	सुनुयुः
मध्यम पुरुष	सुनुयाः	सुनुयातम्	सुनुयात
उत्तम पुरुष	सुनुयाम्	सुनुयाव	सुनुयाम

इसके लृट् लकार में 'सोष्यति' के आधार पर रूप होंगे।

लृङ् लकार (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	असोष्यत्	असोष्यताम्	असोष्यन्
मध्यम पुरुष	असोष्यः	असोष्यतम्	असोष्यत
उत्तम पुरुष	असोष्यम्	असोष्याव	असोष्याम

२. श्रु धातु (सुनना–To hear) परस्मैपदी

(टिप्पणी—विकरण लगने से श्रु का शृ हो जाता है)

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति
मध्यम पुरुष	शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ
उत्तम पुरुष	शृणोमि	शृणुवः, शृण्वः	शृणुमः, शृण्मः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्
मध्यम पुरुष	अशृणोः	अशृणुतम्	अशृणुत
उत्तम पुरुष	अशृणवम्	अशृणुव, अशृण्व	अशृणुम, अशृण्म

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु
मध्यम पुरुष	शृणु	शृणुतम्	शृणुत
उत्तम पुरुष	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयुः
मध्यम पुरुष	शृणुयाः	शृणुयातम्	शृणुयात
उत्तम पुरुष	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

लृङ् लकार (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अश्रोष्यत्	अश्रोष्यताम्	अश्रोष्यन्
मध्यम पुरुष	अश्रोष्यः	अश्रोष्यतम्	अश्रोष्यत
उत्तम पुरुष	अश्रोष्यम्	अश्रोष्याव	अश्रोष्याम

लृट् लकार (Future) में 'श्रोष्यति' के आधार पर रूप होते हैं।

३. आप् धातु (पाना–To obtain) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	आप्नोति	आप्नुतः	आप्नुवन्ति
मध्यम पुरुष	आप्नोषि	आप्नुथः	आप्नुथ
उत्तम पुरुष	आप्नोमि	आप्नुवः	आप्नुमः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्नुवन्
मध्यम पुरुष	आप्नोः	आप्नुतम्	आप्नुत
उत्तम पुरुष	आप्नवम्	आप्नुव	आप्नुम

लृट् लकार (भविष्यत्–Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	आप्स्यति	आप्स्यतः	आप्स्यन्ति

मध्यम पुरुष	आप्स्यसि	आप्स्यथः	आप्स्यथ
उत्तम पुरुष	आप्स्यामि	आप्स्यावः	आप्स्यामः

लोट् लकार (अनुज्ञा—Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	आप्नोतु	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु
मध्यम पुरुष	आप्नुहि	आप्नुतम्	आप्नुत
उत्तम पुरुष	आप्नवानि	आप्नवाव	आप्नवाम

विधिलिङ् (चाहिए—Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	आप्नुयात्	आप्नुयाताम्	आप्नुयुः
मध्यम पुरुष	आप्नुयाः	आप्नुयातम्	आप्नुयात
उत्तम पुरुष	आप्नुयाम्	आप्नुयाव	आप्नुयाम

लृङ् लकार (हेतुहेतुमद्भाव—Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	आप्स्यत्	आप्स्यताम्	आप्स्यन्
मध्यम पुरुष	आप्स्यः	आपस्यतम्	आप्स्यत
उत्तम पुरुष	आप्स्यम्	आप्स्याव	आप्स्याम

४. चि धातु (चुनना, संकलित करना—To pluck, to collect) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल—Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चिनोति	चिनुतः	चिन्वन्ति
मध्यम पुरुष	चिनोषि	चिनुथः	चिनुथ
उत्तम पुरुष	चिनोमि	चिनुवः, चिन्वः	चिनुमः, चिन्मः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल—Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्
मध्यम पुरुष	अचिनोः	अचिनुतम्	अचिनुत
उत्तम पुरुष	अचिनवम्	अचिनुव, अचिन्व	अचिनुम, अचिन्म

ऌट लकार (भविष्यत्—Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चेष्यति	चेष्यतः	चेष्यन्ति
मध्यम पुरुष	चेष्यसि	चेष्यथः	चेष्यथ
उत्तम पुरुष	चेष्यामि	चेष्यावः	चेष्यामः

लोट् लकार (अनुज्ञा—Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चिनोतु	चिनुताम्	चिन्वन्तु
मध्यम पुरुष	चिनु	चिनुतम्	चिनुत
उत्तम पुरुष	चिनवानि	चिनवाव	चिनवाम

विधिलिङ् (चाहिए—Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयुः
मध्यम पुरुष	चिनुयाः	चिनुयातम्	चिनुयात
उत्तम पुरुष	चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम

ऌङ् लकार (हेतुहेतुमद्भाव—Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अचेष्यत्	अचेष्यताम्	अचेष्यन्
मध्यम पुरुष	अचेष्यः	अचेष्यतम्	अचेष्यत
उत्तम पुरुष	अचेष्यम्	अचेष्याव	अचेष्याम

५. शक् धातु (समर्थ होना—To be able) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल—Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शक्नोति	शक्नुतः	शक्नुवन्ति
मध्यम पुरुष	शक्नोषि	शक्नुथः	शक्नुथ
उत्तम पुरुष	शक्नोमि	शक्नुवः	शक्नुमः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल—Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अशक्नुवन्

मध्यम पुरुष	अशक्नोः	अशक्नुतम्	अशक्नुत
उत्तम पुरुष	अशक्नवम्	अशक्नुव	अशक्नुम

लृट लकार (भविष्यत्–Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शक्ष्यति	शक्ष्यतः	शक्ष्यन्ति
मध्यम पुरुष	शक्ष्यसि	शक्ष्यथः	शक्ष्यथ
उत्तम पुरुष	शक्ष्यामि	शक्ष्यावः	शक्ष्यामः

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शक्नोतु	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु
मध्यम पुरुष	शक्नुहि	शक्नुतम्	शक्नुत
उत्तम पुरुष	शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शक्नुयात्	शक्नुयाताम्	शक्नुयुः
मध्यम पुरुष	शक्नुयाः	शक्नुयातम्	शक्नुयात
उत्तम पुरुष	शक्नुयाम्	शक्नुयाव	शक्नुयाम

लृङ् लकार (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अशक्ष्यत्	अशक्ष्यताम्	अशक्ष्यन्
मध्यम पुरुष	अशक्ष्यः	अशक्ष्यतम्	अशक्ष्यत
उत्तम पुरुष	अशक्ष्यम्	अशक्ष्याव	अशक्ष्याम

टिप्पणी—श्नु-विकरण लगने से इसका कहीं 'नु', कहीं 'नो' (नियमानुसार) होता है, नो होने पर अवादेश से 'आप्नवानि' जैसा रूप होता है। णत्व भी नियमानुसार होता है।

(vi) तुदादिगणीय धातुओं के रूप (श-विकरण)

इस धातुगण के रूप प्रायः भ्वादिगणीय के समान होते हैं। धातु का गुण आदेश नहीं होता। कुछ धातुओं के वास्तविक रूप बदल जाते हैं जैसे–इष् (इच्छति), कृत् (कृन्तति), प्रच्छ (पृच्छति), मस्ज् (मज्जति), कृ (किरति), मुच् (मुञ्चति-ते), लिप् (लिम्पति-ते), विद्

(पाना, विन्दति-ते)[१], सिच् (सिञ्चति)। अन्य धातु हैं–सृज् (उत्पन्न करना, छोड़ना, सृजति), क्षिप् (फेंकना, क्षिपति), दिश् (देना, दिशति, ते), विश् (प्रवेश करना, विशति) इत्यादि। यहाँ इसकी प्रथम तुद् धातु (कष्ट देना, तुदति) का रूप न देकर प्रमुख धातुओं के रूप दिये जाते हैं।

१. इष् (इच्छ्, इच्छा करना–To wish) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	इच्छति	इच्छतः	इच्छन्ति
मध्यम पुरुष	इच्छसि	इच्छथः	इच्छथ
उत्तम पुरुष	इच्छामि	इच्छावः	इच्छामः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्
मध्यम पुरुष	ऐच्छः	ऐच्छतम्	ऐच्छत
उत्तम पुरुष	ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम

लृट् लकार (भविष्यत्–Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	एषिष्यति	एषिष्यतः	एषिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	एषिष्यसि	एषिष्यथः	एषिष्यथ
उत्तम पुरुष	एषिष्यामि	एषिष्यावः	एषिष्यामः

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	इच्छतु	इच्छताम्	इच्छन्तु
मध्यम पुरुष	इच्छ	इच्छतम्	इच्छत
उत्तम पुरुष	इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम

---

१. विद् धातु अनेक गणों की है, गणों के अनुसार कुछ अर्थ भी बदल जाते हैं–सत्ता अर्थ में **विद्यते** (श्यन्), ज्ञान अर्थ में **वेत्ति** (अदादि), विचार करने के अर्थ में **विन्ते** (रुधादि), प्राप्ति अर्थ में **विन्दति-ते** (तुदादि)। इनके अलावा अनुभव करने में **वेदयते** (चुरादि) भी है। इससे सम्बद्ध एक कारिका है—

सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे।
विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्-लुक्-श्नम्-शेष्विदं क्रमात्॥

विधिलिङ् (चाहिए—Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः
मध्यम पुरुष	इच्छेः	इच्छेतम्	इच्छेत
उत्तम पुरुष	इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम

लृङ् लकार (हेतुहेतुमद्भाव—Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ऐषिष्यत्	ऐषिष्यताम्	ऐषिष्यन्
मध्यम पुरुष	ऐषिष्यः	ऐषिष्यतम्	ऐषिष्यत
उत्तम पुरुष	ऐषिष्यम्	ऐषिष्याव	ऐषिष्याम

२. प्रच्छ् (पृच्छ्, पूछना—To ask) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल—Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पृच्छति	पृच्छतः	पृच्छन्ति
मध्यम पुरुष	पृच्छसि	पृच्छथः	पृच्छथ
उत्तम पुरुष	पृच्छामि	पृच्छावः	पृच्छामः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल—Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अपृच्छत्	अपृच्छताम्	अपृच्छन्
मध्यम पुरुष	अपृच्छः	अपृच्छतम्	अपृच्छत
उत्तम पुरुष	अपृच्छम्	अपृच्छाव	अपृच्छाम

लृट् लकार (भविष्यत्—Future)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	प्रक्ष्यति	प्रक्ष्यतः	प्रक्ष्यन्ति
मध्यम पुरुष	प्रक्ष्यसि	प्रक्ष्यथः	प्रक्ष्यथ
उत्तम पुरुष	प्रक्ष्यामि	प्रक्ष्यावः	प्रक्ष्यामः

लोट् लकार (अनुज्ञा—Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पृच्छतु	पृच्छताम्	पृच्छन्तु

मध्यम पुरुष	पृच्छ	पृच्छतम्	पृच्छत
उत्तम पुरुष	पृच्छानि	पृच्छाव	पृच्छाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पृच्छेत्	पृच्छेताम्	पृच्छेयुः
मध्यम पुरुष	पृच्छेः	पृच्छेतम्	पृच्छेत
उत्तम पुरुष	पृच्छेयम्	पृच्छेव	पृच्छेम

लृङ् लकार (हेतुहेतुमद्भाव–Conditional)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अप्रक्ष्यत्	अप्रक्ष्यताम्	अप्रक्ष्यन्
मध्यम पुरुष	अप्रक्ष्यः	अप्रक्ष्यतम्	अप्रक्ष्यत
उत्तम पुरुष	अप्रक्ष्यम्	अप्रक्ष्याव	अप्रक्ष्याम

३. मृ (मरना–To die) आत्मनेपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	म्रियते	म्रियेते	म्रियन्ते
मध्यम पुरुष	म्रियसे	म्रियेथे	म्रियध्वे
उत्तम पुरुष	म्रिये	म्रियावहे	म्रियामहे

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अम्रियत	अम्रियेताम्	अम्रियन्त
मध्यम पुरुष	अम्रियथाः	अम्रियेथाम्	अम्रियध्वम्
उत्तम पुरुष	अम्रिये	अम्रियावहि	अम्रियामहि

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	म्रियताम्	म्रियेताम्	म्रियन्ताम्
मध्यम पुरुष	म्रियस्व	म्रियेथाम्	म्रियध्वम्
उत्तम पुरुष	म्रियै	म्रियावहै	म्रियामहै

विधिलिङ् (चाहिए—Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	म्रियेत	म्रियेयाताम्	म्रियेरन्
मध्यम पुरुष	म्रियेथाः	म्रियेयाथाम्	म्रियेध्वम्
उत्तम पुरुष	म्रियेय	म्रियेवहि	म्रियेमहि

मृ धातु का लृट् लकार में परस्मैपद रूप हो जाता है—**मरिष्यति** (रूप भविष्यति के समान)। लृङ् लकार में भी इसीलिए **अमरिष्यत्** होता है (अभविष्यत् के समान)। अन्य धातुओं के लृट्–लृङ् रूप इस प्रकार होंगे—कृत्-कर्तिष्यति, अकर्तिष्यत्। **मस्ज्** (नहाना, डूबना)—मंक्ष्यति, अमंक्ष्यत्। **कॄ** (छितराना—to scatter)—करिष्यति, अकरिष्यत्। **मुच्** (छोड़ना)—मोक्ष्यति–ते, अमोक्ष्यत्–त। **लिप् (लीपना)—लेप्स्यति–ते, अलेप्स्यत्–त।** **विद्** (पाना)—वेदिष्यति–ते, अवेदिष्यत्–त। **सिच्**—सेक्ष्यति–ते, असेक्ष्यत्–त। **सृज्**-स्रक्ष्यति, अस्रक्ष्यत्। **क्षिप्**—क्षेप्स्यति–ते, अक्षेप्स्यत्–त। **दिश्**—देक्ष्यति–ते, अदेक्ष्यत्–त। **विश्**—वेक्ष्यति–अवेक्ष्यत्। इनके आधार पर सभी रूप बना लें।

(vii) रुधादिगणीय धातुओं के रूप (श्नम्-विकरण)

इस गण की धातुओं के सार्वधातुक लकारों (लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्) में धातु के स्वर तथा अन्तिम व्यञ्जनवर्ण के बीच में 'न' लगता है जो कुछ स्थानों में 'न्' हो जाता है तथा उसकी व्यञ्जन-सन्धि हो जाती है (अर्थात् न् > ञ्, न् > अनुस्वार इत्यादि)। आर्धधातुक लकारों में (लृट् आदि में) यह विकरण नहीं होता। रुध्–धातु से तिप् लगने पर रुनध् + ति-णत्व से रुणध् + धि = रुणद्धि। किन्तु तस् में–रुन्ध् + तः = रुन्द्धः। यद्यपि सारी प्रक्रिया नियमानुसार है किन्तु आरम्भिक छात्रों को यह गण जटिल लग सकता है।

इस गण की मुख्य धातुएँ इस प्रकार हैं—रुध् (रोकना—to obstruct)—रुणद्धि–रुन्द्धः-रुन्धन्ति। **भुज्** (पालन करना परस्मैपदी, खाना आत्मनेपदी)—भुनक्ति–भुङ्क्तः–भुञ्जन्ति। भुङ्क्ते–भुञ्जाते–भुञ्जते। **छिद्** (काटना—to cut)—छिनत्ति–छिन्तः–छिन्दन्ति। **भिद्** (तोड़ना—to break)—भिनत्ति–भिन्तः–भिन्दन्ति। **पिष्** (पीसना—to grind)—पिनष्टि-पिंष्टः–पिंषन्ति। **युज्** (जोड़ना—to join)—युनक्ति–युङ्क्तः–युञ्जन्ति। युङ्क्ते–युञ्जाते-युञ्जते। **रिच्** (खाली करना—to vacate)—रिणक्ति–रिंक्तः–रिञ्चन्ति। **हिंस्** (मारना—to kill)—हिनस्ति–हिंस्तः–हिंसन्ति।

१. भुज् धातु (पालन करना—To protect) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल—Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भुनक्ति	भुङ्क्तः	भुञ्जन्ति

मध्यम पुरुष	भुनक्षि	भुङ्क्थः	भुङ्क्थ
उत्तम पुरुष	भुनज्मि	भुञ्ज्वः	भुञ्ज्मः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अभुनक्	अभुङ्क्ताम्	अभुञ्जन्
मध्यम पुरुष	अभुनक्	अभुङ्क्तम्	अभुङ्क्त
उत्तम पुरुष	अभुनजम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्ज्म

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भुनक्तु	भुङ्क्ताम्	भुञ्जन्तु
मध्यम पुरुष	भुङ्क्षि	भुङ्क्तम्	भुङ्क्त
उत्तम पुरुष	भुनजानि	भुञ्जाव	भुञ्जाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भुञ्ज्यात्	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्युः
मध्यम पुरुष	भुञ्ज्याः	भुञ्ज्यातम्	भुञ्ज्यात
उत्तम पुरुष	भुञ्ज्याम्	भुञ्ज्याव	भुञ्ज्याम

लृट् लकार में 'भोक्ष्यति' तथा लृङ् लकार में 'अभोक्ष्यत्' के आधार पर रूप बन सकते हैं।

१(अ). भुज् धातु (खाना–To eat) आत्मनेपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भुङ्क्ते	भुञ्जाते	भुञ्जते
मध्यम पुरुष	भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
उत्तम पुरुष	भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्ज्महे

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
मध्यम पुरुष	अभुङ्क्थाः	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ग्ध्वम्
उत्तम पुरुष	अभुञ्जि	अभुञ्ज्वहि	अभुञ्ज्महि

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भुङ्क्ताम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
मध्यम पुरुष	भुङ्क्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
उत्तम पुरुष	भुनजै	भुनजावहै	भुनजामहै

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्
मध्यम पुरुष	भुञ्जीथाः	भुञ्ज्यायाथाम्	भुञ्जीध्वम्
उत्तम पुरुष	भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि

लृट् लकार में क्रमशः परस्मैपद–आत्मनेपद में भोक्ष्यति–भोक्ष्यते के आधार पर तथा लृङ् लकार में क्रमशः अभोक्ष्यत्–अभोक्ष्यत के आधार पर अन्य रूप बनते हैं।

भुज् धातु के ही समान 'युज्' धातु के रूप भी परस्मैपद–आत्मनेपद में चलते हैं। इसका अर्थ है–मिलना, जोड़ना (to join)।

२. छिद् धातु (काटना–To cut) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	छिनत्ति	छिन्तः	छिन्दन्ति
मध्यम पुरुष	छिनत्सि	छिन्त्थः	छिन्त्थ
उत्तम पुरुष	छिनद्मि	छिन्द्वः	छिन्द्मः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अच्छिनत्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्
मध्यम पुरुष	अच्छिनः, अच्छिनत्	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त
उत्तम पुरुष	अच्छिनदम्	अच्छिन्द्व	अच्छिन्द्म

छ के पूर्व ह्रस्व स्वर आने पर एक आगम होता है–तुक् (त्) जो सन्धि-नियम से च बन जाता है। इसीलिए अच्छिनत्, अच्छेत्स्यत् इत्यादि रूप बनते हैं।

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	छिनत्तु	छिन्ताम्	छिन्दन्तु

मध्यम पुरुष	छिन्धि	छिन्तम्	छिन्त
उत्तम पुरुष	छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	छिन्द्यात्	छिन्द्याताम्	छिन्द्युः
मध्यम पुरुष	छिन्द्याः	छिन्द्यातम्	छिन्द्यात
उत्तम पुरुष	छिन्द्याम्	छिन्द्याव	छिन्द्याम

इसके लृट् लकार में 'छेत्स्यति' तथा लृङ् में 'अच्छेत्स्यत्' के आधार पर सरल रूप हैं। छिद् के समान भिद् (विदारण) के भी रूप होते हैं। ये दोनों धातु उभयपदी हैं, यहाँ केवल परस्मैपदी रूप दिये गये हैं।

(viii) तनादिगणीय धातुओं के रूप (उ-विकरण)

इस गण की धातुओं से सार्वधातुक लकारों में 'उ' विकरण लगता है जो नियमानुसार कहीं (तिप्, सिप्, मिप् के पूर्व) 'ओ' हो जाता है। व, म प्रत्ययों के पूर्व इसका विकल्प से लोप भी हो जाता है जैसे–तनुवः, तन्वः। तनुमः, तन्मः।

१. तन् धातु (विस्तार, फैलाना–To spread) उभयपदी परस्मैपदी रूप

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तनोति	तनुतः	तन्वन्ति
मध्यम पुरुष	तनोषि	तनुथः	तनुथ
उत्तम पुरुष	तनोमि	तनुवः, तन्वः	तनुमः, तन्मः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्
मध्यम पुरुष	अतनोः	अतनुतम्	अतनुत
उत्तम पुरुष	अतनवम्	अतनुव, अतन्व	अतनुम, अतन्म

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तनोतु	तनुताम्	तन्वन्तु
मध्यम पुरुष	तनु	तनुतम्	तनुत
उत्तम पुरुष	तनवानि	तनवाव	तनवाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयुः
मध्यम पुरुष	तनुयाः	तनुयातम्	तनुयात
उत्तम पुरुष	तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम

लृट् लकार में 'तनिष्यति' तथा लृङ् लकार में 'अतनिष्यत्' के आधार पर अन्य रूप बनते हैं।

तन्-धातु का आत्मनेपदी रूप

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तनुते	तन्वाते	तन्वते
मध्यम पुरुष	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे
उत्तम पुरुष	तन्वे	तनुवहे, तन्वहे	तनुमहे, तन्महे

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
मध्यम पुरुष	अतनुथाः	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्
उत्तम पुरुष	अतन्वि	अतनुवहि, अतन्वहि	अतनुमहि, अतन्महि

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वताम्
मध्यम पुरुष	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्
उत्तम पुरुष	तनवै	तनवावहै	तनवामहै

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तन्वीत	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्
मध्यम पुरुष	तन्वीथाः	तन्वीयाथाम्	तन्वीध्वम्
उत्तम पुरुष	तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमहि

लृट् लकार में 'तनिष्यते' तथा लृङ् लकार में 'अतनिष्यत' के आधार पर आत्मनेपद रूप होते हैं।

२. कृ धातु (करना—To do) उभयपदी

इस धातु के रूपों में कुछ विकृतियाँ मिलती हैं। तिप्, सिप्, मिप् के पूर्व इसका गुणादेश होकर 'कर्' तो होता ही है, इसका 'अ' भी अन्य स्थलों में 'उ' में बदल कर इसे 'कुर्' कर देता है (अत उत्सार्वधातुके ६.४.११०)। यहाँ इसके परस्मैपदी और आत्मनेपदी रूप पृथक्–पृथक् दिये जाते हैं।

परस्मैपदी रूप

लट् लकार (वर्तमानकाल—Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
मध्यम पुरुष	करोषि	कुरुथः	कुरुथ
उत्तम पुरुष	करोमि	कुर्वः	कुर्मः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल—Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
मध्यम पुरुष	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
उत्तम पुरुष	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

लोट् लकार (अनुज्ञा—Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु
मध्यम पुरुष	कुरु	कुरुतम्	कुरुत
उत्तम पुरुष	करवाणि	करवाव	करवाम

विधिलिङ् (चाहिए—Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
मध्यम पुरुष	कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
उत्तम पुरुष	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

इसके लृट् लकार में 'करिष्यति' और लृङ् लकार में 'अकरिष्यत्' के आधार पर अन्य रूप चलते हैं।

आत्मनेपदी रूप

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
मध्यम पुरुष	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
उत्तम पुरुष	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
मध्यम पुरुष	अकुरुथाः	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
उत्तम पुरुष	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
मध्यम पुरुष	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उत्तम पुरुष	करवै	करवावहै	करवामहै

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
मध्यम पुरुष	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
उत्तम पुरुष	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

इसका लृट् लकार में 'करिष्यते' और लृङ् लकार में 'अकरिष्यत' के आधार पर रूप चलते हैं।

(ix) क्र्यादिगणीय धातुओं के रूप (श्ना-विकरण)

इस गण की धातुओं से श्ना (ना) विकरण होता है जो तिप्, सिप्, मिप् के पूर्व तो ना (या णा) ही रहता है किन्तु अन्य स्थलों में नी (णी) हो जाता है (ई हल्यघोः ६.४.११७)। हलन्त धातुओं के बाद लोट् मध्यमपुरुष एकवचन में श्ना का 'आन' आदेश हो जाता है जैसे–ग्रह से गृहाण, मुष् से मुषाण, अश् से अशान, मृद् से मृदान (चूर कर दो)। पू (पवित्र करना), लू (काटना) इत्यादि धातुओं का श्ना विकरण के कारण ह्रस्व हो जाता है–पुनाति-पुनीते। लुनाति-लुनीते।

१. क्री धातु (खरीदना–To buy) उभयपदी

परस्मैपदी रूप

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति
मध्यम पुरुष	क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ
उत्तम पुरुष	क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
मध्यम पुरुष	अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
उत्तम पुरुष	अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	क्रीणातु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु
मध्यम पुरुष	क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत
उत्तम पुरुष	क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः
मध्यम पुरुष	क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात
उत्तम पुरुष	क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम

लृट् लकार में 'क्रेष्यति' तथा लृङ् में 'अक्रेष्यत्' के आधार पर परस्मैपदी क्री धातु के रूप होते हैं।

२. ज्ञा धातु (जानना–To know) उभयपदी

परस्मैपदी रूप

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जानाति	जानीतः	जानन्ति

मध्यम पुरुष	जानासि	जानीथः	जानीथ
उत्तम पुरुष	जानामि	जानीवः	जानीमः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अजानात्	अजानीताम्	अजानन्
मध्यम पुरुष	अजानाः	अजानीतम्	अजानीत
उत्तम पुरुष	अजानाम्	अजानीव	अजानीम

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जानातु	जानीताम्	जानन्तु
मध्यम पुरुष	जानीहि	जानीतम्	जानीत
उत्तम पुरुष	जानानि	जानाव	जानाम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः
मध्यम पुरुष	जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात
उत्तम पुरुष	जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम

लृट् लकार में 'ज्ञास्यति' तथा लृङ् में 'अज्ञास्यत्' के आधार पर रूप होते हैं।

आत्मनेपदी रूप

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जानीते	जानाते	जानते
मध्यम पुरुष	जानीषे	जानाथे	जानीध्वे
उत्तम पुरुष	जाने	जानीवहे	जानीमहे

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अजानीत	अजानाताम्	अजानत
मध्यम पुरुष	अजानीथाः	अजानाथाम्	अजानीध्वम्
उत्तम पुरुष	अजानि	अजानीवहि	अजानीमहि

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जानीताम्	जानाताम्	जानताम्
मध्यम पुरुष	जानीष्व	जानाथाम्	जानीध्वम्
उत्तम पुरुष	जानै	जानावहै	जानामहै

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्
मध्यम पुरुष	जानीथाः	जानीयाथाम्	जानीध्वम्
उत्तम पुरुष	जानीय	जानीवहि	जानीमहि

लृट लकार में 'ज्ञास्यते' और लृङ् लकार में 'अज्ञास्यत' के आधार पर रूप होते हैं।

३. ग्रह् धातु (लेना–To take) परस्मैपदी

सार्वधातुक लकारों में इस धातु का संप्रसारण (र का ऋ) होकर गृह् हो जाता है।

लट् लकार (वर्तमानकाल–Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गृह्णाति	गृह्णीतः	गृह्णन्ति
मध्यम पुरुष	गृह्णासि	गृह्णीथः	गृह्णीथ
उत्तम पुरुष	गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीमः

लोट् लकार (अनुज्ञा–Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गृह्णातु	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु
मध्यम पुरुष	गृहाण	गृह्णीतम्	गृह्णीत
उत्तम पुरुष	गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल–Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्
मध्यम पुरुष	अगृह्णाः	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत
उत्तम पुरुष	अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम

विधिलिङ् (चाहिए–Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयुः
मध्यम पुरुष	गृह्णीयाः	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात
उत्तम पुरुष	गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम

लृट् लकार में 'ग्रहीष्यति' तथा लृङ् में 'अग्रहीष्यत्' के आधार पर रूप होंगे।

टिप्पणी—इन्हीं धातुओं के आधार पर निम्नलिखित क्र्यादिगणीय धातुओं के रूप होते हैं–**अश्** (खाना–to eat)[१]–अश्नाति। **बन्ध्** (बाँधना–to bind)–बध्नाति। **पुष्** (पालन करना–to nourish)–पुष्णाति। **क्लिश्** (दुःख देना–to torment)–क्लिश्नाति। **मृद्** (मर्दन करना, चूर-चूर करना–to crush)–मृद्नाति। ये सभी हलन्त धातु हैं। अजन्त धातुओं के रूप क्री या ज्ञा के आधार पर होंगे। **प्री** (तर्पणे, प्रसन्न करना–to please)–प्रीणाति। **पू** (पवित्र करना–to purify)–पुनाति। **लू** (काटना, to cut)–लुनाति।

(x) चुरादिगणीय धातुओं के रूप (णिच् + शप्)

इस धातुगण में अनिवार्य रूप से णिच् प्रत्यय लगने से इसे प्रत्ययान्त धातु का रूप मिला है (सत्यापपाश.....चुरादिभ्यो णिच् ३.१.२५)। अतः इसका रूप कुल मिलाकर भ्वादिगणीय धातुओं के समान ही है। अन्य धातुओं से णिच् मुख्यतः प्रेरणा अर्थ में होता है, चुरादि से स्वार्थ में (अर्थात् धातु से प्रकट होने वाले मूल अर्थ में) ही होता है। जैसे–चोरयति (चुराता है), कथयति (कहता है), गणयति (गिनता है), पूजयति (पूजा करता है)। णिच् लगने पर क्रियाफल यदि कर्ता को मिल रहा हो तो आत्मनेपद होता है (णिचश्च १.३.७४)। जैसे–चोरयते (अपने स्वार्थ के लिए चुराता है), कथयते (कहने का फल स्वयं प्राप्त करना चाहता है)।

णिच् लगने पर धातु की उपधा में गुण (चुर् से चोर्) होता है, उपधा में अ रहने पर वृद्धि भी होती है जैसे–तड् (आघाते) से ताडयति, क्षल् (स्वच्छ करना) से क्षालयति, ग्रस्-ग्रासयति, त्रस्-त्रासयति, तप्-तापयति। किन्तु कुछ धातुओं से ऐसा नहीं होता। जैसे–कथ्-कथयति, गण्-गणयति, क्षप् (बिताना)-क्षपयति, रच्-रचयति, कल् (जाना, गिनना)-कलयति इत्यादि। णिजन्त का आधार बन जाने पर भ्वादिगणीय रूप होंगे।

णिच् में 'इ' रहता है जिसका शप् (अ) के पूर्व गुणादेश (=ए) और अय् होता है। जैसे–चुर् + णिच् (इ) + शप् (अ) + तिप् (ति)। धातु का गुण होकर चोर् + इ (> ए > अय्) + अ + ति = चोरय् + अति = चोरयति।

---

१. फैलना, व्याप्त करना के अर्थ में अश् धातु स्वादिगणीय आत्मनेपदी है–अश्नुते अध्वानम् इति अश्वः।

१. चुर् धातु (चोरी करना—To steal) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल—Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति
मध्यम पुरुष	चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ
उत्तम पुरुष	चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल—Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्
मध्यम पुरुष	अचोरयः	अचोरयतम्	अचोरयत
उत्तम पुरुष	अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम

लोट् लकार (अनुज्ञा—Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु
मध्यम पुरुष	चोरय	चोरयतम्	चोरयत
उत्तम पुरुष	चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम

विधिलिङ् (चाहिए—Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयुः
मध्यम पुरुष	चोरयेः	चोरयेतम्	चोरयेत
उत्तम पुरुष	चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम

लृट् लकार में 'चोरयिष्यति' तथा लृङ् में 'अचोरयिष्यत्' के आधार पर रूप होते हैं।

२. चिन्त् धातु (विचार करना—To think) परस्मैपदी

लट् लकार (वर्तमानकाल—Present)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चिन्तयति	चिन्तयतः	चिन्तयन्ति
मध्यम पुरुष	चिन्तयसि	चिन्तयथः	चिन्तयथ
उत्तम पुरुष	चिन्तयामि	चिन्तयावः	चिन्तयामः

लङ् लकार (अनद्यतन भूतकाल—Past)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अचिन्तयत्	अचिन्तयताम्	अचिन्तयन्
मध्यम पुरुष	अचितयः	अचिन्तयतम्	अचिन्तयत
उत्तम पुरुष	अचिन्तयम्	अचिन्तयाव	अचिन्तयाम

लोट् लकार (अनुज्ञा—Imperative)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चिन्तयतु	चिन्तयताम्	चिन्तयन्तु
मध्यम पुरुष	चिन्तय	चिन्तयतम्	चिन्तयत
उत्तम पुरुष	चिन्तयानि	चिन्तयाव	चिन्तयाम

विधिलिङ् (चाहिए—Injunctive)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चिन्तयेत्	चिन्तयेताम्	चिन्तयेयुः
मध्यम पुरुष	चिन्तयेः	चिन्तयेतम्	चिन्तयेत
उत्तम पुरुष	चिन्तयेयम्	चिन्तयेव	चिन्तयेम

लृट् लकार में 'चिन्तयिष्यति' तथा लृङ् में 'अचिन्तयिष्यत्' के आधार पर इसके रूप होंगे। कुछ चुरादि धातुओं के विविध लकारों के प्रथम पुरुष एकवचन के रूप दिये जाते हैं जो अन्य रूपों को बनाने में सहायक होंगे—

कथ्—कथयति (लट्), कथयतु (लोट्), अकथयत् (लङ्), कथयेत् (विधिलिङ्) कथयिष्यति (लृट्), अकथयिष्यत् (लृङ्)।

गण्—गणयति (लट्), गणयतु (लोट्), अगणयत् (लङ्), गणयेत् (विधिलिङ्) गणयिष्यति (लृट्), अगणयिष्यत् (लृङ्)।

पूज्—पूजयति (लट्), पूजयतु (लोट्), अपूजयत् (लङ्), पूजयेत् (विधिलिङ्) पूजयिष्यति (लृट्), अपूजयिष्यत् (लृङ्)।

रच्—रचयति (लट्), रचयतु (लोट्), अरचयत् (लङ्), रचयेत् (विधिलिङ्) रचयिष्यति (लृट्), अरचयिष्यत् (लृङ्)।

इस गण की कुछ धातुओं का रूप सदा आत्मनेपदी ही होता है, क्रियाफल कर्ता को मिले या नहीं। जैसे-अर्थ (प्रार्थना करना, चाहना–to request)–**अर्थयते**। चित् (सचेत होना, सोचना–to perceive)–**चेतयते**। मन्त्र् (मन्त्रणा करना–to consult)–**मन्त्रयते**। मृग् (खोजना–to seek)–**मृगयते**। लल् (इच्छा करना, प्यार करना–to fondle)–

लालयते। कुत्स् (निन्दा करना–to abuse)–**कुत्सयते**। **वञ्च्** (धोखा देना–to cheat)–**वञ्चयते**। विद् (अनुभव करना, समझना, बताना, रहना, चेतनाख्याननिवासेषु–to feel)–**वेदयते** इत्यादि। भ्वादिगणीय सेव्–धातु के समान ये सभी आत्मनेपदी रूप होते हैं।

अभ्यास - ९

१. **निम्नलिखित धातुओं के रूप निर्दिष्ट लकार, पुरुष और वचन में लिखें—**

(क) **सेव्** – लट्, उत्तमपुरुष, एकवचन
दृश् – लट्, मध्यमपुरुष, बहुवचन
गम् – लङ्, प्रथमपुरुष, द्विवचन

(ख) **लभ्** – लोट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन
पठ् – लङ्, उत्तमपुरुष, एकवचन
स्था – लृट्, मध्यमपुरुष, एकवचन

(ग) **नम्** – लट्, मध्यमपुरुष, द्विवचन
कृ – लोट्, प्रथमपुरुष, एकवचन
दिव् – लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन

(घ) **दा** – लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन
श्रु – लृट्, प्रथमपुरुष, द्विवचन
इष् – लट्, उत्तमपुरुष, बहुवचन

२. **निम्नलिखित पदों का परिचय (धातु, लकार, पुरुष, वचन) लिखें—**
जागर्ति, आसीत्, हन्ति, लभे, गृहाण, वदिष्यामि, शृणुमः, पश्यन्ति।

३. **निम्नलिखित धातुओं के रूप निर्दिष्ट लकार, पुरुष और वचन में दें—**

(क) **शीङ्** – लट्, प्रथमपुरुष, एकवचन
लोट्, मध्यमपुरुष, बहुवचन
लृट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन

(ख) **कृ** – लृट्, प्रथमपुरुष, एकवचन
विधिलिङ्, उत्तमपुरुष, एकवचन
लङ्, प्रथमपुरुष, बहुवचन

(ग) **हन्** – लट्, मध्यमपुरुष, एकवचन
लृट्, प्रथमपुरुष, एकवचन
लोट्, मध्यमपुरुष, एकवचन

(घ) **नी** – लृट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन
लङ्, प्रथमपुरुष, एकवचन
लोट्, उत्तमपुरुष, एकवचन

(ङ) **गम्** – लोट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन
विधिलिङ्, उत्तमपुरुष, एकवचन
लृट्, उत्तमपुरुष, बहुवचन

(च) **पा** – लट्, उत्तमपुरुष, बहुवचन
लृट्, उत्तमपुरुष, एकवचन
विधिलिङ्, प्रथमपुरुष, बहुवचन

(छ) **अस्** – लट्, प्रथमपुरुष, बहुवचन
लङ्, उत्तमपुरुष, एकवचन
लृट्, प्रथमपुरुष, एकवचन

(ज) **भू** – लोट्, उत्तमपुरुष, एकवचन
लङ्, मध्यमपुरुष, द्विवचन
विधिलिङ्, उत्तमपुरुष, एकवचन

४. (क) 'ऐच्छत्' में कौन धातु है?
(ख) 'पिबन्तु' किस लकार का रूप है?
(ग) 'घ्नन्तु' में कौन धातु है?
(घ) 'स्याः' किस लकार का रूप है?
(ङ) 'हन्ति' में कौन वचन है?

५. **संस्कृत में अनुवाद करें—**

१. (क) वह इसे सोच ले।
(ख) तुम्हें जानना चाहिए।
(ग) यह लड़का कल रो रहा था।
(घ) उसने मेरी किताब चुरा ली थी।
(ङ) हमलोग उद्यान में फूल चुनेंगे।

२. (क) यदि लड़के प्रश्न पूछ लेते तो यह स्थिति नहीं होती।
(ख) क्या तुम अपने शिक्षक से (शिक्षकात्) डरते हो?
(ग) वह दिन में कभी नहीं सोता।
(घ) धूप (आतपः) दिन भर ठहरेगी।
(ङ) तुम परीक्षा-शुल्क कब दोगे?

*

७ प्रत्ययान्त धातु तथा अन्य लकार
Derivative Roots and other Lakāras

(i) प्रत्ययान्त धातु (Derivative Roots)

कुछ संज्ञा-शब्दों तथा धातुओं से प्रत्यय लगाकर जो धातुएँ बनती हैं तथा जिनसे पुनः तिङ् प्रत्यय या कृत् प्रत्यय लगते हैं, उन्हें प्रत्ययान्त धातु कहते हैं। इनकी धातु-संज्ञा निम्नांकित सूत्र से होती है—**सनाद्यन्ता धातवः** (३.१.३२)। सन्, क्यच्, क्यङ्, णिच्, णिङ्, यङ् आदि प्रत्यय हैं जो इस क्रम में आये हैं। इनमें कुछ संज्ञा-शब्दों में लगकर उन्हें 'नामधातु' बनाते हैं। कुछ धातुओं में लगकर विशेष अर्थ देते हैं। ये प्रत्ययान्त धातुएँ संस्कृत भाषा को सौन्दर्य तथा समावेशी क्षमता प्रदान करती हैं। प्रत्ययान्त धातुओं को कई वर्गों में रखा जाता है।

(क) **सन्नन्त (इच्छार्थक—Desiderative)**

धातोः कर्मणः समानकर्तकादिच्छायां वा। (पा.सू. ३.१.७)

सन् प्रत्यय इष् (इच्छ्) धातु के कर्म-रूप में स्थित धातु से लगता है जब उस धातु और इष्-धातु का कर्ता एक ही हो। जैसे—गन्तुम् इच्छति = गम् + सन्। सन् लगने पर धातु का द्वित्व होता है तथा अभ्यास-कार्य होते हैं। तदनुसार जिगमिष् ऐसा स्वरूप मिलने पर शप् + तिप् लगकर **'जिगमिषति'** (he wants to go) ऐसा पद होता है। यहाँ गम्-धातु इष्-धातु का कर्म है, दोनों का कर्ता समान है, इसलिए गम् से सन् लगा। इसी प्रकार पठितुमिच्छति = **पिपठिषति**। सामान्यतः सन् लगने पर प्रत्ययान्त धातु से पूर्व (मूल) धातु के अनुसार ही परस्मैपद या आत्मनेपद होता है (**पूर्ववत्सनः** १.३.६२)। जैसे—अत्तुमिच्छति = **जिघत्सति** (खाना चाहता है), आप्तुमिच्छति = **ईप्सति** (पाना चाहता है)। लभ् (आत्मनेपदी)—लब्धुमिच्छति = **लिप्सते** (पाना चाहता है)। सेवितुमिच्छति = **सिसेविषते**। किन्तु ज्ञा, श्रु, स्मृ और दृश् धातुओं से सन् लगने पर केवल आत्मनेपद ही होता है—ज्ञातुमिच्छति = **जिज्ञासते**, श्रोतुमिच्छति = **शुश्रूषते**, स्मर्तुमिच्छति = **सुस्मूर्षते** (याद करना चाहता है); द्रष्टुमिच्छति = **दिदृक्षते** (देखना चाहता है)।

कुछ सन्नन्त रूप – **लट् प्रथम पुरुष एकवचन में**

(अ) **स्वार्थे सन्—**

गुप् + सन् (स्वार्थे) – जुगुप्सते (निन्दा करता है)

तिज् + सन् (स्वार्थे)	–	तितिक्षते (सहता है)
कित् + सन् (स्वार्थे)	–	चिकित्सति (रोग निवारण करता है)
मान् + सन् (स्वार्थे)	–	मीमांसते (जिज्ञासा, विचार करता है)
बध् + सन् (स्वार्थे)	–	बीभत्सते (घृणा करता है)
दान् + सन् (स्वार्थे)	–	दीदांसते-ति (सीधा रहता है)
शान् + सन् (स्वार्थे)	–	शीशांसते-ति (धार तेज करता है)

उपर्युक्त सातों **स्वार्थ सन्** कहलाते हैं–इच्छा से भिन्न अर्थ में हैं।

(आ) **इच्छार्थक सन्–**

कृ + सन्	–	कर्तुमिच्छति	–	चिकीर्षति (करना चाहता है)
हृ + सन्	–	हर्तुमिच्छति	–	जिहीर्षति (हरण करना चाहता है)
भुज् + सन्	–	भोक्तुमिच्छति	–	बुभुक्षते (खाना चाहता है)
भू + सन्	–	भवितुमिच्छति	–	बुभूषति (होना चाहता है)
विद् + सन्	–	वेदितुमिच्छति	–	विविदिषति (जानना चाहता है)
ग्रह् + सन्	–	ग्रहीतुमिच्छति	–	जिघृक्षति (पकड़ना चाहता है)
जि + सन्	–	जेतुमिच्छति	–	जिगीषति (जीतना चाहता है)
पा + सन्	–	पातुमिच्छति	–	पिपासति (पीना चाहता है)
नृत् + सन्	–	नर्तितुमिच्छति	–	निनर्तिषति, निनृत्सति (नाचना चाहता है)
भी + सन्	–	भेतुमिच्छति	–	बिभीषति (डरना चाहता है)
दा + सन्	–	दातुमिच्छति	–	दित्सति (देना चाहता है)
स्था + सन्	–	स्थातुमिच्छति	–	तिष्ठासति (ठहरना चाहता है)
हन् + सन्	–	हन्तुमिच्छति	–	जिघांसति (मारना चहता है)
मुच् + सन्	–	मोक्तुमिच्छति	–	मोक्षते, मुमुक्षते (मुक्त होना चाहता है)
मुच् + सन्	–	मोक्तुमिच्छति	–	मुमुक्षति (मुक्त करना चाहता है)
शीङ् + सन्	–	शयितुमिच्छति	–	शिशयिषते (सोना चाहता है)
वच् + सन्	–	वक्तुमिच्छति	–	विवक्षति (बोलना चाहता है)
वह् + सन्	–	वोढुमिच्छति	–	विवक्षति (ढोना चाहता है)

इनके आधार पर ही सभी लकारों में पठ् या सेव् के समान रूप होंगे।

(ख) णिजन्त (प्रेरणार्थक–Causative)

हेतुमति च। (पा.सू. ३.१.२६)

किसी गण की किसी धातु से प्रेरणा के अर्थ में णिच्-प्रत्यय लगता है और उसका रूप चुरादिगणीय धातुओं के समान होता है। प्रयोजक कर्ता को 'हेतु' कहते हैं। प्रयोजक कर्ता (हेतु) से युक्त अर्थ होने पर, प्रेरणा या नियोग के अर्थ में, णिच्-प्रत्ययान्त क्रिया का प्रयोग

होता है। जैसे-हरिः गच्छति, रामः तं गच्छन्तं हरिं प्रेरयति = रामः हरिं **गमयति** (गम् + णिच्)। राम हरि को जाने की प्रेरणा देता है।

सामान्यतः णिजन्त धातु परस्मैपदी रहती है किन्तु क्रियाफल के कर्ता को मिलने का अर्थ हो तो यह आत्मनेपदी हो जाती है। इसे पाठयति-पाठयते, दर्शयति-दर्शयते, कारयति-कारयते के सूक्ष्म अर्थभेद से देखा जा सकता है। चुरादिगण के प्रसंग में यह दिखाया गया है। सामान्यतः णिच् (इ) लगने पर अकारोपध धातु की वृद्धि (अ का आ) तथा उपधा में इ उ ऋ का गुण (ए ओ अर्) होता है–पठ् + णिच् = **पाठयति**। लिख्-**लेखयति**, बुध्-**बोधयति**, तृप्-**तर्पयति**। इ-उ-ऋवर्णान्त धातु की वृद्धि होती है–कृ-**कारयति**। आकारान्त धातुओं, ऋ, ह्री, री आदि धातुओं से णिच् लगने पर पुक् (प) लग जाता है–दा-**दापयति** (देने के लिए प्रेरित करता है, दिलाता है), गै (गा)-**गापयति** (गाने को प्रेरित करता है)। ह्री-**ह्रेपयति** (लजवाता है)। ऋ-**अर्पयति** (अर्पित करता है)। इसी प्रकार कुछ अन्य धातुओं से भी पुक् लगता है तथा ह्रस्व भी हो जाता है–**ज्ञापयति-ज्ञपयति** (सूचित करता है)। **स्नापयति-स्नपयति** (नहलाता है)। **ग्लापयति-ग्लपयति** (क्षीण करता है)। जभ्, रध्, रभ्, लभ् धातुओं से नुम् भी लगता है–**जम्भयति** (अँगड़ाई लिवाता है), **रन्धयति** (भोजन पकवाता है, घात करवाता है), **रम्भयति** (शुरू करवाता है), **लम्भयति** (प्राप्त कराता है)। णिजन्त धातु सकर्मक हो जाती है।

कुछ प्रमुख धातुओं के णिजन्त रूप

भू – भावि + शप् + तिप् = भावयति (होने की प्रेरणा देता है, भवन्तं प्रेरयति)
श्रु – श्रावि – श्रावयति (सुनाता है, शृण्वन्तं प्रेरयति)
पू (पवित्र करना) – पावि – पावयति (पवित्र करता है)
द्रु (पिघलना) – द्रावि – द्रावयति (पिघलाता है, द्रवन्तं प्रेरयति)
शीङ् (सोना) – शायि – शाययति (सुलाता है, शयितुं प्रेरयति)
पा – (पीना) – पायि (युक्) –पाययति (पिलाता है)
भुज् (भोजन करना) – भोजि – भोजयति (खिलाता है)
पा (रक्षा करना) –पालि – पालयति (पालता है)
अधि + इ (पढ़ना) – अध्यापि – अध्यापयति (पढ़ाता है, अध्येतुं प्रेरयति)
स्मृ (याद करना) – स्मारि – स्मारयति (स्मरण दिलाता है, स्मर्तुं/स्मरन्तं प्रेरयति)
चल् (चलना) – चालि – चालयति (चलाता है)
स्था (ठहरना) – स्थापि – स्थापयति (स्थिर/स्थापित करता है)
दीप् (चमकना) – दीपि – दीपयति (चमकाता/जलाता है)
गुह् (छिपाना) – गूहि – गूहयति (छिपाने को प्रेरित करता है)
दुष् (दोषी होना) – दूषि – दूषयति (दोष लगाता है, निन्दा करता है)
प्री (प्रसन्न होना) – प्रीणि – प्रीणयति (प्रसन्न करता है)

भी (डरना) – भायि – भाययति (डरवाता है गर्जनेन भाययति)
भापयते, भीषयते (डर उत्पन्न करता है)

रुह् (उत्पन्न होना) रोहि, रोपि – रोहयति/रोपयति (उगवाता/बढ़ाता है)

सिध् (पूरा होना) – सेधि/साधि सेधयति/साधयति (पूरा करता है) (सेधयति तापसं तपः, गृहकार्यं साधयति)

स्फुर (काँपना, चमकना) – स्फोरि/स्फारि – स्फोरयति/स्फारयति (कँपाता या चमकाता है)

हन् (मारना) – घाति – घातयति (मारने की प्रेरणा देता है)

(ग) यङन्त (समभिहारार्थक–Intensive)

धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्। (पा.सू. ३.१.२३)

हलादि एकस्वर वाली धातुओं से क्रिया-समभिहार (क्रिया का बार-बार होना या अत्यधिक होना) अर्थ में यङ् प्रत्यय लगता है। स्वभावतः (ङ् रहने के कारण) यह धातु आत्मनेपदी हो जाती है। इसमें सन् प्रत्यय के समान धातु का द्वित्व होता है (सन्यङोः ६.१.९)। क्रियासमभिहार का अर्थ है–पुनः पुनः होना या खूब होना (पौनःपुन्यं भृशार्थश्च क्रियासमभिहारः–**सिद्धान्तकौमुदी**)। कभी-कभी अन्य अर्थों में भी यङ् प्रत्यय लगता है। भू–अतिशयेन पुनः पुनः वा भवति = **बोभूयते** (बार-बार या बहुत होता है)। दा-**देदीयते** (पुनः पुनः अतिशयेन वा ददाति)। नी-**नेनीयते**। स्मृ-**सास्मर्यते**। कृ-**चेक्रीयते** (पुनः पुनः अतिशयेन वा करोति)। लभ्-**लालभ्यते**। पच्-**पापच्यते**। स्वप्-**सोषुप्यते**। बन्ध्-**बाबध्यते**। घ्रा-**जेघ्रीयते**। ज्ञा-**जाज्ञायते**। रम्-**रंरम्यते**। जन्-**जञ्जन्यते**। नम्-**नंनम्यते**। ज्वल्-**जाज्वल्यते**। वह्-**वावह्यते**। ब्रू-**वावच्यते**। बुध्-**बोबुध्यते**। प्रच्छ्-**परीपृच्छ्यते** (बार-बार या बहुत अधिक पूछता है)। नृत्-**नरीनृत्यते**। ग्रह्-**जरीगृह्यते**। पत्-**पनीपत्यते**। वञ्च् (ठगना)-**वनीवञ्च्यते**।

गत्यर्थक धातुओं से कुटिल गति के अर्थ में यङ् प्रत्यय होता है। जैसे-कुटिलं व्रजति-**वाव्रज्यते**। कुटिलं गच्छति = **जङ्गम्यते** (कुटिल गति से जाता है)। कुटिलं क्रामति-**चङ्क्रम्यते**। इसी से गोलाकार भ्रमण को 'चंक्रमण' कहते हैं। लुप्, सद्, चर्, जप्, जभ् (अँगड़ाई लेता), दह्, दश् (दाँत काटना, डँसना) और **गॄ** धातु से क्रिया की निन्दा के अर्थ में (भावगर्हायाम्) यङ् लगता है (३.१.२४-२५)। लुप्-**लोलुप्यते** (जैसे-तैसे काटता है)। दह्-**दन्दह्यते** (जहाँ-तहाँ जला देता है)। सद्-**सासद्यते** (जैसे-तैसे बैठता है)। चर्-**चञ्चूर्यते** (गलत व्यवहार करता है)।

प्रत्यय के अर्थ को रखते हुए ही, कभी-कभी यङ् का लोप होकर परस्मैपदी रूप हो जाता है जिसे व्याकरण में **'यङ्लुक्'** कहते हैं। जैसे–भू-बोभोति/बोभवीति। खन्-चंखनीति। दा-दादाति। वृत्-वर्वर्ति, वरिवर्ति। कृ-चर्कर्ति, चर्करीति, चरिकर्ति, चरीकर्ति। ये रूप प्रदर्शनकारी कवियों और पण्डितों में बहुधा प्रचलित थे। अम्बिकादत्त व्यास ने

'शिवराजविजय' गद्यकाव्य के आरम्भ में सूर्य का वर्णन करते हुए लिखा है–असावेव चर्कर्ति बर्भर्ति जर्हर्ति जगत् (अर्थात् यह सूर्य ही जगत् को बार-बार उत्पन्न करता है, भरण-पोषण करता है और संहरण भी करता है)। कृ + यङ् लुक् + लट्लकार = चर्कर्ति। भृ-बर्भर्ति। हृ-जर्हर्ति।

यङ्लुक् के प्रयोग का एक सुन्दर आशीर्वादात्मक पद्य मैंने अपने परिवार में सुना था जिसमें लोट्लकार में प्रथम पुरुष एकवचन में धातुओं का प्रयोग है—

चरीकर्तु भव्यं सदा ते रमेशो, गणेशो जरीहर्तु विघ्नं त्वदीयम्।
नरीनर्तु वाणी मुखे ते सुपाणिः, दरीदर्तु ते सप्त वर्गान् महेशः ॥

इसके चार चरणों में क्रमशः कृ, हृ, नृत् और दृ (विदारणे) धातु यङ्लुक् में हैं।

(घ) नामधातु (Nominal Verbs)

संज्ञा शब्दों से (नामों से) प्रत्यय लगकर जब धातु बनती है तब उसे 'नामधातु' कहते हैं। मूल संज्ञाशब्दों के अर्थ में कुछ विशिष्टता आती है, उसे क्रिया का रूप मिल जाता है, तिङ् प्रत्यय या कृत् प्रत्यय लगने की क्षमता हो जाती है। नामधातु बनाने वाले प्रत्यय हैं–क्यच्, काम्यच्, क्विप्, क्यङ्, क्यष्, णिच् (णिङ्) तथा यक्।

१. **सुप आत्मनः क्यच्** (३.१.८)—इष्-धातु के सुबन्तरूप कर्मकारक के शब्द से, इच्छा करने वाले व्यक्ति की 'अपनी इच्छा' के अर्थ में (आत्मसम्बन्धिनः सुबन्ताद् इच्छायामर्थे) क्यच् (य) प्रत्यय होता है। क्यच् में 'य' बचता है। अकारान्त शब्द का ईकार हो जाता है–आत्मनः पुत्रमिच्छति–पुत्रम् + क्यच् – **पुत्रीयति**। आत्मनः कविमिच्छति–**कवीयति**। आत्मनः गामिच्छति = **गव्यति**। आत्मनः राजानमिच्छति = **राजीयति**। लालसा (तीव्र इच्छा) होने पर स् या अस् भी लगता है–आत्मार्थे अत्यन्तं दधि इच्छति = **दधिस्यति** या **दध्यस्यति** (अपने लिए दही की तीव्र इच्छा करता है)। **मधु-मधुस्यति, मध्वस्यति**। क्षीर और लवण से लालसा में तो स् लगता है, अन्यथा नहीं। **क्षीरस्यति** शिशुः (बच्चे को दूध की लालसा है), **क्षीरीयति** गृहस्थः। **लवणस्यति** उष्ट्रः (ऊँट को नमक की लालसा है), **लवणीयति** (नमक चाहता है)। अशन-**अशनायति** (खाने की इच्छा है), **अशनीयति** (भोजन रखना चाहता है)। उदक-**उदन्यति** (पानी पीने की इच्छा है), **उदकीयति** (जल रखना चाहता है)।

इच्छा अर्थ में क्यच् के स्थान पर **काम्यच्** प्रत्यय भी होता है–जैसे–आत्मनः पुत्र-मिच्छति = **पुत्रकाम्यति**। आत्मनो यशः इच्छति = **यशस्काम्यति**।

२. **उपमानादाचारे** (३.१.१०)—उपमान के रूप में स्थित सुबन्त कर्मकारक के शब्द से 'आचरण' अर्थ में भी क्यच् होता है। जैसे–पुत्रमिव आचरति छात्रम् =

पुत्रीयति छात्रम् (छात्र से पुत्र जैसा व्यवहार करता है)। देवमिव आचरति गुरुम् = **देवीयति** गुरुम् (गुरु को देवता जैसा मानता है)। उपमान-रूप में अधिकरण कारक के शब्द से भी क्यच्-प्रत्यय होता है। जैसे–प्रासादे इवाचरति = **प्रासादीयति** कुट्यां भिक्षुः (भिक्षुक अपनी कुटी को प्रासाद समझता है)। कुट्यामिव आचरति प्रासादे जनकः = **कुटीयति** प्रासादे (राजा जनक महल को भी कुटी समझकर वहाँ रहते हैं)। **ग्रामीयति** नगरे। **नगरीयति** ग्रामे।

३. **कर्तुः क्यङ् सलोपश्च** (३.१.११)—उपमान के रूप में स्थित सुबन्त कर्ता कारक के शब्द से 'आचरण' अर्थ में क्यङ् (य) प्रत्यय होता है। ङ् के कारण यह प्रत्ययान्त धातु आत्मनेपदी होती है। यदि प्रातिपदिक स् से अन्त होता हो तो स् का लोप हो जाता है। उदाहरण–सिंहः इव आचरति = सिंह + क्यङ् (य)–दीर्घादेश होकर–**सिंहायते**। **शिशूयते** वृद्धः (बूढ़ा शिशु के समान आचरण करता है, शिशुरिवाचरति)। एरण्डोऽपि **द्रुमायते** (रेंड़ भी वृक्ष प्रतीत होता है)। काकोऽपि **गरुडायते** (गरुड इवाचरति)। **शिष्यायते** (शिष्य-सा व्यवहार करता है)। **गव्यते** (गौरिवाचरति)। सलोप का उदाहरण–**ओजायते** (ओजस्वी इवाचरति)। **अप्सरायते** (अप्सरस् + क्यङ्, अप्सरा इव आचरति)। स्त्रीलिङ्ग शब्द का पुंवद्भाव हो जाता है–कुमारी इवाचरति = **कुमारायते**। बाला **तरुणायते** (तरुणी इवाचरति)।

उपमान के कारण निम्नलिखित श्लोक में रशनोपमा का प्रयोग करते हुए क्यङ् प्रत्यय के चार उदाहरण हैं—

चन्द्रायते शुक्लरुचापि हंसो, हंसायते चारुगतेन कान्ता।
कान्तायते स्पर्शसुखेन वारि, वारीयते स्वच्छतया विहायः॥

(सा.द. १०.२५)

(हंस धवलकान्ति के कारण चन्द्र-सा लग रहा है, कान्ता सुन्दर गति से हंस-सी लग रही है, वारि (जल) स्पर्श-सुख के कारण कान्ता-सा है तो आकाश निर्मलता के कारण वारि-सा है।)

४. भृश आदि शब्दों से अभूत-तद्भाव (जो वैसा नहीं, उसका वैसा हो जाना) के अर्थ क्यङ् प्रत्यय होता है। जैसे–अभृशः भृशः भवति = **भृशायते**। अनुत्सुकः उत्सुकः भवति = **उत्सुकायते**। अदुर्मनाः दुर्मनाः भवति = **दुर्मनायते**। अपण्डितः पण्डितो भवति = **पण्डितायते**। शीघ्रायते, चपलायते, भद्रायते इत्यादि।

५. कुछ अन्य उदाहरण–कष्टाय क्रामति = **कष्टायते**। शब्दं करोति = **शब्दायते**। कलहं करोति = **कलहायते**। वैरं करोति = **वैरायते**। रोमन्थं वर्तयति (= अभ्यस्यति) = **रोमन्थायते** (पागुर करता है)। तपश्चरति = **तपस्यति** (परस्मैपद)। आत्मनः सुखमनुभवति = **सुखायते**।

६. **लोहितादि-डाज्भ्यः क्यष्** (३.१.१३)—अभूत-तद्भाव अर्थ में, लोहितादि शब्दों से तथा डाच्-प्रत्यय वाले शब्दों से नामधातु बनाने के लिए क्यष् प्रत्यय लगता है। इसमें आत्मनेपद तथा परस्मैपद दोनों का प्रयोग होता है। अव्यक्त ध्वनि के अनुकरण में डाच् प्रत्यय लगता है जैसे–पट-पट करना, गड़-गड़ करना इत्यादि। उदाहरण–अलोहितो लोहितो भवति = **लोहितायते-लोहितायति**। अमन्दो मन्दो भवति = **मन्दायते-मन्दायति**। **तरुणायते-तरुणायति**। डाच् का उदाहरण–पटत्-पटत् इति भवति = **पटपटायते-ति**। कुक्कुरः **गुर्गुरायते-ति**। **धमधमायते-ति**।

७. मुण्ड, मिश्र, लवण, व्रत, वस्त्र इत्यादि शब्दों से 'करोति' के अर्थ में णिच् प्रत्यय होता है। इनका रूप चुरादिगणीय धातुओं के समान होता है। जैसे–मुण्डं करोति = **मुण्डयति**। व्रतं करोति = **व्रतयति**। वस्त्रं करोति = **वस्त्रयति** (कपड़े जैसा समझकर प्रयोग करता है)।

८. कण्डू आदि शब्दों से यक् प्रत्यय होता है (३.१.२७)। कण्डू (खाज)– **कण्डूयते-कण्डूयति** (खुजलाता है Scratches)। असूया + यक् = **असूयति-ते** (ईर्ष्या करता है)। भिषज् + यक् = **भिषज्यति** (चिकित्सा करता है)। **महीयते** (सम्मानित होता है)। **हृणीयते** (कुपित या लज्जित होता है)।

९. सभी प्रातिपदिकों से आचरण अर्थ में क्विप् प्रत्यय होकर भी नामधातु बनती है (सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विप् वा वक्तव्यः-वार्तिक)। जैसे–कृष्ण इवाचरति = **कृष्णति**। माला इवाचरति = **मालाति**। पितेवाचरति = **पितरति**। विधुरिवाचरति = **विधवति** (चन्द्र जैसा लगता है)। राजेवाचरति = **राजानति** (राजा के समान आचरण करता है)। पथिन्–**पथीनति** (मार्ग की तरह लगता है)।

(ii) अन्य लकारों का विवेचन (Other lakāras)

यद्यपि आरम्भिक छात्रों के लिए धातुओं के विगत अध्याय में दिये गए छह लकार पर्याप्त हैं तथापि संस्कृत के विशाल वाङ्मय में समागत अन्य लकार रूपों को उनके समुचित परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए उनका परिचय आवश्यक है। यहाँ मुख्य रूप से लिट् लकार और लुङ् लकार का विवेचन किया जाता है।

१. लिट् लकार (Past Perfect)

प्राचीन संस्कृत में लङ् से भी अधिक प्रचलित लिट् और लुङ् लकार रहे हैं किन्तु इनकी जटिलता के कारण आधुनिक संस्कृत शिक्षा में लङ् की लोकप्रियता बढ़ गई है। लिट् लकार परोक्ष भूतकाल का लकार है अर्थात् वक्ता को क्रिया का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है किन्तु क्रिया अतीतकाल में हो चुकी है जैसे–रामो रावणं जघान (हन्-धातु)। ऋषिरुवाच (वच्-धातु)। स्पष्टतः उत्तम पुरुष में लिट् का प्रयोग नहीं हो सकता क्योंकि वक्ता का परोक्ष भूत संभव

नहीं। फिर भी दो स्थितियों में उत्तम पुरुष में भी लिट् लकार के प्रयोग का समर्थन वैयाकरणों ने किया है—

(अ) **उत्तमपुरुषे चित्तविक्षेपादिना पारोक्ष्यम्** (सि.कौ.)–चित्तविक्षेप (अचेतनावस्था में या बिना सोचे समझे बोलना) की स्थिति में उत्तम पुरुष में लिट् हो सकता है जैसे–सुप्तोऽहं किल विललाप (वि + लप् + लिट्) = मैं सोया-सोया बड़बड़ा रहा था। प्रमत्तोऽहं विचचार (वि + चर् + लिट्) = मैं विक्षिप्त बनकर घूमता था।

(आ) **अत्यन्तापह्नवे**–जब वक्ता बलपूर्वक किसी क्रिया को अस्वीकार करे जैसे-किं त्वं कलिङ्गान् गतोऽसि? नाहं कलिङ्गान् जगाम (गम् + लिट्) = क्या तुम कलिंग गए हो? नहीं, नहीं, मैं कभी कलिंग नहीं गया।

व्याकरण में तो सभी पुरुषों में लिट् लकार के रूप विहित हैं किन्तु साहित्यिक प्रयोग की दृष्टि से प्रथम पुरुष ही अधिक उपयोगी है। लिट् लकार में परस्मैपद के ९ प्रत्ययों के स्थान में ये आदेश होते हैं—

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	णल् (अ)	अतुस्	उस्
मध्यम पुरुष	थल् (थ)	अथुस्	अ
उत्तम पुरुष	णल् (अ)	व	म

इस लकार में धातु का द्वित्व (Doubling) हो जाता है जैसे–पठ् का णल् प्रत्यय लगने पर पठ् पठ् णल् = **पपाठ**। पूर्व रूप में केवल प्रथम व्यंजन बचता है (हलादिः शेषः)।

आत्मनेपद के प्रत्यय में 'त' (प्रथमपुरुष एकवचन) का 'ए' और 'झ' (प्र.पु., बहुवचन) का 'इरे' आदेश हो जाता है–**लिटस्तझयोरेशिरेच्** (३.४.८१), अन्य पूर्ववत् हैं। आदर्श रूप में लिट् के रूप यहाँ दिये जाते हैं—

भू धातु (होना–To be) परस्मैपदी

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
मध्यम पुरुष	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
उत्तम पुरुष	बभूव	बभूविव	बभूविम

लभ् धातु (पाना–To obtain) आत्मनेपदी

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	लेभे	लेभाते	लेभिरे
मध्यम पुरुष	लेभिषे	लेभाथे	लेभिध्वे
उत्तम पुरुष	लेभे	लेभिवहे	लेभिमहे

गम् धातु (जाना–To go) परस्मैपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जगाम	जग्मतुः	जग्मुः
मध्यम पुरुष	जग्मिथ	जग्मथुः	जग्म
उत्तम पुरुष	जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम

दृश् धातु (देखना–To see) परस्मैपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ददर्श	ददृशतुः	ददृशुः
मध्यम पुरुष	ददर्शिथ	ददृशथुः	ददृश
उत्तम पुरुष	ददर्श	ददृशिव	ददृशिम

हन् धातु (मारना–To kill) परस्मैपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	जघान	जघ्नतुः	जघ्नुः
मध्यम पुरुष	जघ्निथ, जघन्थ	जघ्नथुः	जघ्न
उत्तम पुरुष	जघान, जघन	जघ्निव	जघ्निम

सेव् धातु (सेवा करना–To serve) आत्मनेपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	सिषेवे	सिषेवाते	सिषेविरे
मध्यम पुरुष	सिषेविथे	सिषेवाथे	सिषेविध्वे
उत्तम पुरुष	सिषेवे	सिषेविवहे	सिषेविमहे

स्था धातु (ठहरना–To stay) परस्मैपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तस्थौ	तस्थतुः	तस्थुः
मध्यम पुरुष	तस्थिथ, तस्थाथ	तस्थथुः	तस्थ
उत्तम पुरुष	तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम

शीङ् धातु (सोना–To sleep) आत्मनेपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शिश्ये	शिश्याते	शिश्यिरे
मध्यम पुरुष	शिश्यिषे	शिश्याथे	शिश्यिध्वे
उत्तम पुरुष	शिश्ये	शिश्यिवहे	शिश्यिमहे

केवल प्रथम पुरुष के रूप

१. अद् (खाना)	आद	आदतुः	आदुः
२. आप् (पाना)	आप	आपतुः	आपुः
३. इ (जाना)	इयाय	ईयतुः	ईयुः
४. इष् (चाहना)	इयेष	ईषतुः	ईषुः
५. कृ (करना)	चकार	चक्रतुः	चक्रुः
६. कृष् (जोतना)	चकर्ष	चकृषतुः	चकृषुः
७. गद् (बोलना)	जगाद	जगदतुः	जगदुः
८. ग्रह (पकड़ना)	जग्राह	जगृहतुः	जगृहुः
९. जन् (उत्पन्न होना)	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे (आत्मने.)
१०. जि (जितना)	जिगाय	जिग्यतुः	जिग्युः
११. ज्ञा (जानना)	जज्ञौ	जज्ञतुः	जज्ञुः
१२. दा (देना)	ददौ	ददतुः	ददुः
१३. नी (ले जाना)	निनाय	निन्यतुः	निन्युः
१४. पठ् (पढ़ना)	पपाठ	पेठतुः	पेठुः
१५. वच् (बोलना)	उवाच	ऊचतुः	ऊचुः
१६. वस् (रहना)	उवास	ऊषतुः	ऊषुः
१७. बुध् (जानना)	बुबुधे	बुबुधाते	बुबुधिरे (आत्मने.)
१८. मन् (मानना)	मेने	मेनाते	मेनिरे (आत्मने.)
१९. रुद् (रोना)	रुरोद	रुरुदतुः	रुरुदुः
२०. श्रु (सुनना)	शुश्राव	शुश्रुवतुः	शुश्रुवुः
२१. सह् (सहना)	सेहे	सेहाते	सेहिरे (आत्मने.)
२२. हृ (हरण करना)	जहार	जह्रतुः	जह्रुः

टिप्पणी—लिट् का एक दुहरा रूप भी संस्कृत में होता है जिसमें धातु से 'आम्' प्रत्यय लगाकर, तब कृ, भू या अस् धातु के लिट् रूपों का अनुप्रयोग होता है। प्रत्ययान्त धातुओं का लिट् रूप ऐसा ही होता है जैसे–**श्रावयाञ्चकार, श्रावयामास** (= सुनाया)। **गणयामास** (गिना)। **पातयाम्बभूव** (गिरवाया)। **पुत्रीयामास** (पुत्र पाने की इच्छा की)। अनुप्रयुक्त धातु से वचन-पुरुष होंगे। जिन धातुओं का आरम्भ इच् प्रत्याहार के वर्ण से (= अ छोड़कर कोई स्वरवर्ण) हो तथा जिसमें गुरु अक्षर हो उससे भी यही प्रक्रिया होती है। जैसे–**ईक्षाञ्चक्रे**। **एधाम्बभूवे**। **ईहामासे** (प्रयास किया)।

२. लुङ् लकार (सामान्य भूत–Aorist)

यह लकार भूत सामान्य में होता है तथा लङ्, लृङ् के समान इसमें धातु के पूर्व अट् लगता है (**लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः** ६.४.७१)। प्रत्यय प्रायः लङ्-लृङ् के समान ही होते

हैं (त्-ताम्-उस्, स्-तम्-त, अम्-व-म), केवल प्रथम पुरुष बहुवचन में झि का अन् न होकर उस् हो जाता है। उस् के पूर्व धातु के आ का लोप होता है–अस्थात्-अस्थाताम्-अस्थुः। कुछ धातुओं (भू, सृ, वच्, सिच् आदि) से यह उस् नहीं, अपितु अन् ही रहता है। लुङ् लकार के वैविध्य के कारण पाश्चात्य संस्कृतज्ञों ने तथा काले आदि ने सुविधा की दृष्टि से इसे अनेक भेदों में रखा है। यहाँ कुछ धातुओं के लुङ् लकार के रूप दिये जाते हैं।

स्था धातु (ठहरना–To stay) परस्मैपदी

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थुः
मध्यम पुरुष	अस्थाः	अस्थातम्	अस्थात
उत्तम पुरुष	अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम

कृ धातु (करना–To do) परस्मैपदी

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः
मध्यम पुरुष	अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
उत्तम पुरुष	अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म

जि धातु (जीतना–To win) परस्मैपदी

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	अजैषीत्	अजैष्टाम्	अजैषुः
मध्यम पुरुष	अजैषीः	अजैष्टम्	अजैष्ट
उत्तम पुरुष	अजैषम्	अजैष्व	अजैष्म

अधि+इ (अध्ययन करना–To study) आत्मनेपदी

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	अध्यैष्ट	अध्यैषाताम्	अध्यैषत
मध्यम पुरुष	अध्यैष्ठाः	अध्यैषाथाम्	अध्यैढ्वम्
उत्तम पुरुष	अध्यैषि	अध्यैष्वहि	अध्यैष्महि

इसका एक वैकल्पिक रूप होता है जिसमें इ धातु का 'गा' आदेश होकर अध्यगीष्ट-अध्यगीषाताम्-अध्यगीषत रूप होता है।

भू धातु (होना–To be) परस्मैपदी

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरुष	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्

मध्यम पुरुष	अभूः	अभूतम्	अभूत
उत्तम पुरुष	अभूवम्	अभूव	अभूम

जन् धातु (जनमना–To be born) आत्मनेपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अजनिष्ट	अजनिषाताम्	अजनिषत
मध्यम पुरुष	अजनिष्ठाः	अजनिषाथाम्	अजनिध्वम्
उत्तम पुरुष	अजनिषि	अजनिष्वहि	अजनिष्महि

कृ धातु (करना–To do) आत्मनेपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
मध्यम पुरुष	अकृथाः	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
उत्तम पुरुष	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि

वद् धातु (बोलना–To speak) परस्मैपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	अवादीत्	अवादिष्टाम्	अवादिषुः
मध्यम पुरुष	अवादीः	अवादिष्टम्	अवादिष्ट
उत्तम पुरुष	अवादिषम्	अवादिष्व	अवादिष्म

(पठ् धातु का रूप भी इसी ढाँचे पर होता है)

कुछ धातुओं के प्रथम पुरुष एकवचन रूप

इण्-अगात्। इष्-ऐषीत्। गम्-अगमत्। ज्ञा-अज्ञासीत्। दा-अदात्। दृश्-अद्राक्षीत्। नी-अनैषीत्। प्रच्छ्-अप्राक्षीत्। बुध्-अबोधि। ब्रू-अवोचत्। भी-अभैषीत्। रुद्-अरोदीत्। मन्-अमंस्त। लभ्-अलब्ध। शक्-अशकत्। श्रु-अश्रौषीत्। स्वप्-अस्वाप्सीत्। हन्-अवधीत् (लुङ् लकार में हन् का वध् आदेश होता है)।

३. लुट् लकार (अनद्यतन भविष्यत्–Periphrastic future)

यह लकार ऐसे भविष्यत् काल का बोधक है जो आज न हो (अनद्यतने लुट् ३.३.१५)। इसमें तास् प्रत्यय (विकरण) लगता है। इसके प्रथम पुरुष का रूप तो दातृ शब्द की प्रथमा विभक्ति का ही होता है। शेष पुरुषों में अस् धातु का रूप जोड़ा गया जैसा लगता है। देखें—

भू धातु (होना—To be) परस्मैपदी (सेट्)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भविता	भवितारौ	भवितारः
मध्यम पुरुष	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
उत्तम पुरुष	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः

दा धातु (देना—To give) परस्मैपदी (अनिट्)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	दाता	दातारौ	दातारः
मध्यम पुरुष	दातासि	दातास्थः	दातास्थ
उत्तम पुरुष	दातास्मि	दातास्वः	दातास्मः

ईक्ष् धातु (देखना—To look) आत्मनेपदी (सेट्)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ईक्षिता	ईक्षितारौ	ईक्षितारः
मध्यम पुरुष	ईक्षितासे	ईक्षितासाथे	ईक्षिताध्वे
उत्तम पुरुष	ईक्षिताहे	ईक्षितास्वहे	ईक्षितास्महे

लभ् धातु (पाना—To obtain) आत्मनेपदी (अनिट्)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	लब्धा	लब्धारौ	लब्धारः
मध्यम पुरुष	लब्धासे	लब्धासाथे	लब्धाध्वे
उत्तम पुरुष	लब्धाहे	लब्धास्वहे	लब्धास्महे

४. आशीर्लिङ् (Benedictive)

आशीर्वाद देने के अर्थ में इस लकार का प्रयोग होता है जैसे–त्वं चिरञ्जीवी **भूयाः**। भवान् राजा **भूयात्**। स्वभावतः इसका नियंत्रित प्रयोग होता है। परस्मैपद में इसमें धातु के बाद 'यास्' तथा आत्मनेपद में 'सीय्' लगकर रूप बनते हैं। कुछ उदाहरण देखें—

भू धातु (होना—To be) परस्मैपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
मध्यम पुरुष	भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त
उत्तम पुरुष	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

कृ धातु (करना—To do) परस्मैपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासुः
मध्यम पुरुष	क्रियाः	क्रियास्तम्	क्रियास्त
उत्तम पुरुष	क्रियासम्	क्रियास्व	क्रियास्व

शीङ् धातु (सोना—To sleep) आत्मनेपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्	शयिषीरन्
मध्यम पुरुष	शयिषीष्ठाः	शयिषीयास्थाम्	शयिषीध्वम्
उत्तम पुरुष	शयिषीय	शयिषीवहि	शयिषीमहि

कृ धातु (करना—To do) आत्मनेपदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	कृषीरन्
मध्यम पुरुष	कृषीष्ठाः	कृषीयास्थाम्	कृषीढ्वम्
उत्तम पुरुष	कृषीय	कृषीवहि	कृषीमहि

अभ्यास - १०

१. निम्नांकित वाक्यों के स्थान पर एक तिङन्त शब्द लिखें—

(क) भोक्तुमिच्छति .... जेतुमिच्छति .... ज्ञातुमिच्छति ....
द्रष्टुमिच्छति .... हन्तुमिच्छति ....

(ख) भवन्तं प्रेरयति .... द्रवन्तं प्रेरयति ....
स्मर्तुं प्रेरयति .... स्थातुं प्रेरयति ....
भेतुं प्रेरयति ....

(ग) पुनः पुनः ज्वलति .... भृशं नृत्यति ....
भृशं नमति .... कुटिलं व्रजति ....
कुटिलं गच्छति ....

(घ) आत्मनः पुत्रमिच्छति .... देवमिवाचरति ....
ग्रामे इवाचरति .... शिशुरिवाचरति ....
अप्सरा इवाचरति .... अमन्दो मन्दो भवति ....
कलहं करोति ....

२. उत्तम पुरुष में लिट् लकार कब होता है? सोदाहरण स्पष्ट करें।

३. भू धातु के लिट् लकार उत्तमपुरुष के रूप लिखें।

४. निम्नलिखित पदों में धातु, लकार, पुरुष तथा वचन बताएँ—

(क) लेभिषे, आपुः, पेठतुः, तस्थिम, शिश्ये।

(ख) अद्राक्षीत्, अस्थुः, अकृषत, अभूम, भवितास्मः।

५. निम्नलिखित शब्दों का विग्रह करें—

लिप्सते, शुश्रूषते, जिहीर्षति, गमयति, श्रावयति, पापच्यते।

६. संस्कृत में अनुवाद करें—

(क) दुष्ट वक्र आचरण करता है (चर् + यङ्)।

(ख) रोगी दिन में बार-बार सोता है (स्वप् + यङ्)।

(ग) चालक वाहन को तेज (द्रुतं) चलाता है।

(घ) शिक्षक हमें नियम समझाता है (बुध् + णिच्)।

(ङ) शीला धूप में घी पिघलाती है।

(च) वह हमें घर की याद दिलाता है (स्मृ + णिच्)।

*

८ आत्मनेपद-परस्मैपद प्रकरण
Ātmanepada and Parasmaipada

तिङन्त पद में दो प्रकार के प्रत्यय होते हैं–आत्मनेपद और परस्मैपद। ये भेद वस्तुतः प्रत्ययों के हैं। **तिप्, तस्, झि** आदि नौ प्रत्यय परस्मैपद हैं जब कि शेष **त, आताम्, झ** आदि नौ आत्मनेपद हैं। धातुपाठ में ही निश्चित किया गया है, कौन धातुएँ परस्मैपद प्रत्यय लेती हैं और कौन आत्मनेपद के प्रत्यय। कुछ धातुएँ अवश्य ही उभयपदी हैं, दोनों प्रत्ययों के साथ उनके रूप चलते हैं। इन धातुओं के साथ आत्मनेपद और परस्मैपद के प्रयोग की अर्थ-व्यवस्था है। जब क्रिया के फल की प्राप्ति कर्ता को हो रही हो तो उभयपदी धातु से आत्मनेपद होता है और जब क्रियाफल कर्ता से भिन्न व्यक्ति को मिलने की विवक्षा हो तो ऐसी उभयपदी धातु से परस्मैपद होता है (**स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले** १.३.७२)। जैसे–यजमानः स्वयं यजते (यज्ञ अपने लाभ के लिए करता है)। पुरोहितः यजमानस्य कल्याणाय **यजति**। कटं **कुरुते** (अपने उपयोग के लिए चटाई बनाता है)। कटं **करोति** (दूसरे के लाभ के लिए चटाई बनाता है)। ऐसा उन्हीं धातुओं से होता है जिनके रूप दोनों प्रकार से चलते हैं–परस्मैपदी और आत्मनेपदी।

विशेष स्थितियों में धातु से आत्मनेपद या परस्मैपद प्रत्यय ही होते हैं जिनके मुख्य नियम दिये जाते हैं—

आत्मनेपद-प्रकरण

१. **भावकर्मणोः** (१.३.१३)—भाववाच्य और कर्मवाच्य में धातु से केवल आत्मनेपद होता है। जैसे–त्वया **स्थीयते,** बालकेन **सुप्यते** (भाववाच्य)। मया **पठ्यते** ग्रन्थः, रामेण जलं **पीयते,** सेवकेन कार्यं **क्रियते** (कर्मवाच्य)। कर्म-कर्तृवाच्य में भी ऐसा ही होता है क्योंकि वहाँ कर्म की ही कर्ता के रूप में विवक्षा होती है–**भिद्यते** काष्ठं स्वयमेव, **पच्यते** ओदनः स्वयमेव (लकड़ी स्वयं टूट जा रही है, भात स्वयं पक रहा है)।

२. **कर्तरि कर्मव्यतिहारे** (१.३.१४)—'कर्मव्यतिहार' का अर्थ है क्रिया का विनिमय अर्थात् दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा परस्पर एक ही प्रकार की क्रिया का सम्पादन। ऐसा अर्थ होने पर कर्तृवाच्य में आत्मनेपद होता है। जैसे–

व्यतिलुनीते (एक के योग्य फसल काटने का काम दूसरा कर रहा है)। **व्यतिलुनते** (आपस में काम बदल कर कटनी कर रहे हैं)। चन्द्रः सूर्यं **व्यतिभवते** (जैसे सूर्य चन्द्र के अस्त होने पर उगता है, वैसे ही चन्द्र भी सूर्य के अस्त होने पर उगता है)। धर्मः **व्यतिस्ते** (वि + अति + अस् धातु + आत्मनेपद त) = धार्मिक कर्तव्य बदल जा रहा है अर्थात् एक का कर्म दूसरा कर रहा है। **संप्रहरन्ते** राजानः = राजा लोग एक दूसरे पर प्रहार कर रहे हैं।

इस नियम के कुछ अपवाद हैं जैसे–गति और हिंसा अर्थ वाली धातुओं से, हँसना आदि से आत्मनेपद नहीं होता। **व्यतिगच्छन्ति,** व्यतिघ्नन्ति, **व्यतिहसन्ति,** व्यतिजल्पन्ति। यदि इतरेतर, परस्पर या अन्योन्य शब्द का प्रयोग हो तो भी आत्मनेपद नहीं होता जैसे–कृषकाः इतरेतरस्य (परस्परस्य, अन्योन्यस्य) धान्यं **व्यतिलुनन्ति** (किसान एक दूसरे की फसल काटते हैं)।

३. i) **नेर्विशः** (१.३.१७)—निपूर्वक विश्-धातु (प्रवेश करना) से आत्मनेपद होता है जैसे–**निविशते** गृहम्। **निविशते** यदि शूकशिखा पदे। किन्तु प्रविशति, संविशति गुहाम्।

ii) **परि-व्यवेभ्यः क्रियः** (१.३.१८)—**परि, वि** या **अव** के बाद क्री-धातु से आत्मनेपद होता है जैसे **परिक्रीणीते** (खरीदता है), **विक्रीणीते** (बेचता है), **अवक्रीणीते** (किराये पर लेता है)।

iii) **विपराभ्यां जेः** (१.३.१९)—**वि** तथा **परा** के बाद जि-धातु से आत्मनेपद होता है। जैसे–**विजयते**। **पराजयते** शत्रून्, अध्ययनात्**पराजयते**।

४. **आङो दोऽनास्यविहरणे** (१.३.२०)—**आ** उपसर्ग के बाद दा-धातु से, मुँह फाड़ने का अर्थ न रहने पर, आत्मनेपद होता है। जैसे–विद्या**मादत्ते,** हंसः क्षीर**मादत्ते, नादत्ते** भवतां स्नेहेन पल्लवम्। सब में आदान (ग्रहण) करना अर्थ है। मुँह फाड़ने के अर्थ में परस्मैपद होता है–पादस्फोटं **व्याददाति** = पैर के फोड़े का मुँह खोलता है। बालको मुखं **व्याददाति** = बच्चा अपना मुँह फाड़ता है। नदी कूलं **व्याददाति** = नदी अपने किनारे को तोड़ती है। दूसरे के मुँह को खोलने के अर्थ में आत्मनेपद ही होता है। जैसे–पिपीलिकाः पतङ्गस्य मुखं **व्याददते** = चींटियाँ फतिंगे का मुँह फाड़ रही हैं (पराङ्गकर्मकान्न निषेधः–वार्तिक)।

५. **क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च** (१.३.२१)—**आ, अनु, सम्** तथा **परि** के बाद क्रीड्-धातु (खेलना) से आत्मनेपद होता है–आक्रीडते, अनुक्रीडते, संक्रीडते,

परिक्रीडते। कूजन अर्थ में सम् + क्रीड् से परस्मैपद ही होता है–रथचक्रं **संक्रीडति** (रथ का पहिया आवाज करता है)।

i) शिक्ष् (विद्योपादाने) धातु से जिज्ञासा-अर्थ में आत्मनेपद होता है–धनुषि **शिक्षते** (धनुर्विद्या सीखना चाहता है)। व्याकरणे **शिक्षते**।

ii) नाथ् (याचना, उपताप, ऐश्वर्य, आशीः) धातु से आकांक्षा करने के अर्थ में आत्मनेपद होता है–सर्पिषो **नाथते** (मुझे घी मिले–यह आशा करता है)। मोक्षाय **नाथते**।

iii) **हरतेर्गत-ताच्छील्ये** (वा.)–**अनु** के बाद **हृ** (हरणे) धातु से आत्मनेपद होता है, यदि किसी के स्वाभाविक गुण को प्राप्त करने या शील (आदत) के अनुसरण का अर्थ हो। जैसे–पैतृकमश्वा **अनुहरन्ते** (घोड़े पैतृक गुण को पाते हैं), गावो मातर**मनुहरन्ते** (गायें मातृक गुण को पाती हैं)। किन्तु 'पुत्रः रूपेण पितरमनुहरति'–यहाँ रूप के सादृश्य का अर्थ है, आदत या गुण का अनुसरण अर्थ नहीं है।

iv) कृ (विक्षेपे, बिखेरना) धातु यदि **अप** उपसर्ग के बाद हो तो हर्ष, जीविका तथा आवास बनाने (पशु-पक्षियों द्वारा) के अर्थों में आत्मनेपद होता है। इन अर्थों में धातु के पूर्व सुट् (स्) भी लगता है। वस्तुतः कोई चौपाया या पक्षी कुरेदने का काम इन अर्थों में करें तो ये प्रयोग होते हैं। जैसे–**अपस्किरते** वृषो हृष्टः (साँड़ प्रसन्नता से भूमि अपने खुर से खोदता है)। **अपस्किरते** कुक्कुटो भक्ष्यार्थी (मुर्गा भोजन की खोज में चंगुल से खोदता है)। **अपस्किरते** श्वा आश्रयार्थी (कुत्ता बैठने के लिए राख की ढेर खोदता है)।

v) आ-पूर्वक प्रच्छ धातु से अनुमति माँगने के अर्थ में आत्मनेपद होता है जैसे–मित्रम् **आपृच्छते** (मित्र से अनुमति लेता है)। **आपृच्छस्व** प्रियसखममुम्।

६. **समवप्रविभ्यः स्थः** (१.३.२२)—**सम्, अव, प्र, वि** के बाद **स्था** धातु से आत्मनेपद होता है। लोको निर्धनस्य वाक्ये न **सन्तिष्ठते** (विश्वास नहीं करता)। क्षणमप्य**वतिष्ठते** यदि (यदि वह थोड़ी देर भी ठहर जाता है)। नगराय **प्रतिष्ठते** (प्रस्थान करता है, चल देता है)। **वितिष्ठते** (स्थिर रहता है)। **आ** के बाद **स्था** धातु से सिद्धान्त देने के अर्थ में आत्मनेपद होता है–बौद्धाः सर्वं क्षणिकम् **आतिष्ठन्ते** (बौद्धों का सिद्धान्त है कि सब कुछ क्षणिक है)।

७. **प्रकाशन-स्थेयाख्ययोश्च** (१.३.२३)—अपनी इच्छा के प्रकाशन एवं मध्यस्थता (स्थेय या निर्णायक मानना) का अर्थ होने पर स्था-धातु से आत्मनेपद होता है। जैसे–गोपी कृष्णाय **तिष्ठते** (अपना आशय प्रकाशित करती है)। त्वयि

विवादः **तिष्ठते** (इस विवाद का निर्णय तुम पर ही आश्रित है)। संशय्य कर्णादिषु **तिष्ठते** यः (**किरातार्जुनीय** ३.१४) = सन्देह होने पर जो कर्ण आदि पर निर्णय के लिए आश्रित रहता है।

८. **उदोऽनूर्ध्वकर्मणि** (१.३.२४)—शरीर के ऊपर उठने या न्यायपूर्वक कर आदि का संग्रह अर्थ न हो तो उद् + स्था से आत्मनेपद होता है। जैसे–मुक्तावु**त्तिष्ठते** (मुक्ति के लिए प्रयत्न करता है)। किन्तु–आसनादु**त्तिष्ठति** (आसन से ऊपर उठता है), अस्माद् ग्रामाच्छत**मुत्तिष्ठति** (इस गाँव से कर के रूप में सौ रुपये उठते हैं)। यदु**त्तिष्ठति** वर्णेभ्यो नृपाणां क्षयि तद्धनम् (**शाकुन्तल** २.१३)।

i) **उपान्मन्त्रकरणे** (१.३.२५)—मन्त्र द्वारा देवपूजा के अर्थ में उप + स्था से आत्मनेपद होता है। जैसे–गायत्र्या सूर्य**मुपतिष्ठते** (गायत्री मन्त्र से सूर्य की पूजा करता है)। **देवपूजा** (आदित्यमुपतिष्ठते), **संगतिकरण** (मिलना-गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते), **मित्रकरण** (सन्तमुपतिष्ठते, रथिकानुपतिष्ठते = रथ वालों से मित्रता करता है), **मार्ग** (अयं पन्थाः काशीमुपतिष्ठते = यह रास्ता काशी जाता है)–इन अर्थों में भी उप + स्था से आत्मनेपद होता है। लिप्सा अर्थ में यह वैकल्पिक है–भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठति उपतिष्ठते (भिखारी सम्पन्न व्यक्ति के पास कुछ आशा से पहुँचता है)।

ii) **अकर्मकाच्च** (१.३.२६)—उप + स्था का अकर्मक रूप में प्रयोग हो तो भी आत्मनेपद होता है–भोजनकाले **उपतिष्ठते** (भोजन के समय पहुँच जाता है)। ऊपर के नियम में इसका सर्वत्र सकर्मक प्रयोग था।

९. **उद्विभ्यां तपः** (१.३.२७)—**उद्, वि** उपसर्गों के बाद तप्-धातु (सन्तापे) से आत्मनेपद होता है किन्तु अकर्मक-रूप से ही यह विधान है, सकर्मक से नहीं। जैसे–सूर्यः **उत्तपते, वितपते** (सूर्य तप्त हो रहा है)। सकर्मक रूप होने पर **स्वाङ्गकर्म से आत्मनेपद** होता है–उत्तपते-वितपते स्वपाणिम् (अपना हाथ सेंकता है)। किन्तु–**उत्तपति** सुवर्णं सुवर्णकारः, चैत्रो मैत्रस्य पाणि**मुत्तपति**। दूसरे को गर्म करने का अर्थ है (पराङ्गकर्मकात् न)।

i) **आङो यम-हनः** (१.३.२८)—इसी प्रकार की स्थिति आ-पूर्वक यम् और हन् धातुओं की है अर्थात् अकर्मक या स्वाङ्गकर्मक होने से आत्मनेपद होता है जैसे–सुप्तोत्थितः जनः **आयच्छते** (अँगड़ाई लेता है, दीर्घः भवति)। निर्धनः **आहते** (पीडितो भवति)। स्वाङ्गकर्मक–असौ पादम् **आयच्छते** (वह अपना पैर फैलाता है), शोकार्तः स्वं वक्षः **आहते** (अपनी छाती पीटता है)। दूसरे के अङ्ग को फैलाने या पीटने पर परस्मैपद होगा–परकीयं मस्तक**माहन्ति**। कूपाद् रज्जु**मायच्छति** (कुएँ से रस्सी खींचता है)।

ii) **सम्** के बाद **गम्** (मिलना), **प्रच्छ्** (निश्चय करना), **श्रु** (सुनना) इत्यादि का अकर्मक प्रयोग होने पर आत्मनेपद होता है। जैसे–वाक्यं **संगच्छते** (यह वाक्य युक्तिसंगत है), सखीभिः **संगच्छते** (सखियों के साथ मिलकर जाती है)। किन्तु ग्रामं **संगच्छति** (सकर्मक-प्रयोग)। युक्त्या **सम्पृच्छते** (युक्ति द्वारा निश्चय करता है)। किन्तु, मित्रं **सम्पृच्छति** (सकर्मक-प्रयोग)। हितात्पुरुषात् **संशृणुते** (हितैषी व्यक्ति से सुनता है)। हितान्न यः **संशृणुते** स किम्प्रभुः (किरातार्जुनीय १.५) = जो हितैषी की नहीं सुनता, वह दुष्ट राजा होता है। किन्तु, शब्दं संशृणोति (सकर्मक-प्रयोग)।

iii) ह्वे (स्पर्धायां शब्दे च = ललकारना, पुकारना) धातु के पूर्व **नि, सम्, उप, वि** उपसर्ग हों तो आत्मनेपद होता है–निह्वयते, संह्वयते, उपह्वयते, विह्वयते। **आ** उपसर्ग के बाद इससे स्पर्धा (चुनौती देने) के अर्थ में आत्मनेपद होता है (**स्पर्धायामाङः** १.३.३१)। पुकारने के अर्थ में परस्मैपद ही होगा। जैसे–मल्लो मल्लम् **आह्वयते** (पहलवान दूसरे पहलवान को ललकारता है)। किन्तु, माता पुत्रम् **आह्वयति** (माता पुत्र को पुकारती है)।

१०. **गन्धनावक्षेपण-सेवन-साहसिक्य-प्रतियत्न-प्रकथनोपयोगेषु कृञः** (१.३.३२)—इन अर्थों में कृ-धातु से आत्मनेपद होता है जिनके लिए नियत उपसर्गों का भी प्रयोग होता है। गन्धन (हिंसा)–**उत्कुरुते** (चुगली करता है जिससे हानि हो)। अवक्षेपण (तिरस्कार)–**उदाकुरुते** श्येनो वर्तिकाम् (बाज बटेर को तुच्छ समझता है)। सेवन (अनुसरण)–भृत्यो **नृपमुपकुरुते**। साहसिक्य (हिंसक कार्य)–परदारान् **प्रकुरुते** (परनारी से छेड़खानी करता है)। प्रतियत्न (गुण बढ़ाना)–एधोदकस्योपस्कुरुते (इन्धन जल का गुण बढ़ा देता है)। प्रकथन (वाचन)–गाथाः **प्रकुरुते** (वेदकथाएँ बाँचता है)। उपयोग (विनियोग, धर्म-कार्य में लगाना)–शतं मुद्राः **प्रकुरुते** = सौ रूपये लगा देता है। जहाँ समान उपसर्ग हैं वहाँ प्रकरण से अर्थ स्पष्ट होता है।

i) **अधेः प्रसहने** (१.३.३३)—अधि + कृ से प्रसहन (सह लेना या पराजित करना) अर्थ में आत्मनेपद होता है–शत्रुमधिकुरुते (शत्रु को सह लेता या पराजित करता है)।

ii) **वेः शब्दकर्मणः** (१.३.२४)—वि + कृ से आत्मनेपद होता है, यदि शब्द कर्म के रूप में हो जैसे–स्वरान् **विकुरुते** (स्वरों को–उनके उच्चारण को–विकृत कर रहा है)। किन्तु शब्द-भिन्न कर्म रहने पर परस्मैपद होगा-चित्तं **विकरोति** कामः (काम चित्त को अव्यवस्थित करता है)। यदि

अकर्मक रूप में प्रयोग हो तो भी आत्मनेपद होता है (अकर्मकाच्च १.३.३५) जैसे–छात्राः **विकुर्वते** (छात्र बिगड़े जा रहे हैं)।

११. सम्मानन (आदर प्रकट करना), उत्सञ्जन (ऊपर उठाना), आचार्यकरण (उपनयन करना), ज्ञान (वास्तविक रूप का निर्णय करना), भृति (वेतन पर नियुक्त करना), विगणन (ऋण, कर आदि चुकाना) तथा व्यय (अच्छे कार्य में खर्च करना)–इन सात अर्थों में नी (प्रापणे) धातु से आत्मनेपद होता है। इनमें कहीं-कहीं अर्थ के अनुसार उपसर्ग होते हैं। उदाहरण–शास्त्रे **नयते** (शास्त्र में शिष्य को पटु बनाकर उसका आदर करता है)। **दण्डमुन्नयते** (डंडा ऊपर उठाता है)। **माणवकमुपनयते** (बालक का उपनयन कर अपने पास रखता है)। तत्त्वं नयते (तत्त्व का निश्चय करता है)। कर्मकरानुपनयते (मजदूरों को वेतन पर रखता है)। करं **विनयते** (कर चुकाता है)। शतं **विनयते** (धर्मकार्य में सौ रुपयों का विनियोग करता है)।

i) **कर्तृस्थे चाशरीरे कर्मणि** (१.३.३७)—विपूर्वक नी धातु से आत्मनेपद होता है जब उसका कर्म कर्ता में तो स्थित हो किन्तु शरीर के रूप में न हो। जैसे–(स्वकीयं) कोपं **विनयते** = अपने क्रोध को शान्त करता है। किन्तु, शिष्यः गुरोः कोपं **विनयति** = शिष्य गुरु के क्रोध को शान्त करता है। इसमें कोप (कर्म) कर्तृस्थ नहीं है, अतः आत्मनेपद नहीं हुआ।

१२. **वृत्ति-सर्ग-तायनेषु क्रमः** (१.३.३८)—उपसर्ग-रहित क्रम्-धातु उभयपदी है किन्तु वृत्ति (स्वतन्त्र गति), सर्ग (उत्साह) तथा तायन (विकास या वृद्धि) अर्थ में इससे केवल आत्मनेपद होता है जैसे (वृत्ति अर्थ)–व्याकरणे **क्रमते** बुद्धिः = व्याकरण में उसकी बुद्धि स्वतन्त्र रूप से चलती है। अध्ययनाय **क्रमते** = अध्ययन के लिए उत्साहित रहता है। **क्रमन्ते**ऽस्मिन् शास्त्राणि = इस व्यक्ति में शास्त्र बहुत विकसित या समृद्ध हैं (यह पूर्ण शास्त्रज्ञ है)। सतां लक्ष्मीः **क्रमते** (बढ़ती है)।

i) **उपपराभ्याम्** (१.३.३९)—उपर्युक्त तीनों अर्थों में उप तथा परा के बाद क्रम्-धातु से आत्मनेपद होता है। उदाहरण–पराक्रमं तस्य परीक्षितुं राक्षसी **उपक्रमते** (तुलनीय-भट्टि ८.२३)। युद्धाय **पराक्रमते** सैनिकः। किन्तु, **संक्रामति** शास्त्रेषु बुद्धिः।

ii) **आङ उद्गमने** (१.३.४०)—किसी ज्योति (प्रकाश) के ऊपर उठने के अर्थ में आ + क्रम् से आत्मनेपद होता है। जैसे–सूर्यः **आक्रमते**। किन्तु, धूमः प्रासादात् **आक्रामति**। धूम कोई ज्योति नहीं है।

iii) **वेः पाद-विहरणे** (१.३.४१)—वि + क्रम् से पैरों के सुन्दर संचालन के अर्थ में आत्मनेपद होता है जैसे–साधु **विक्रमते** अश्वः (घोड़ा अच्छी तरह चलता है)। किन्तु अन्य अर्थ होने पर '**विक्रामति शूरः**' (शूर पराक्रम करता है)। कार्य को आरम्भ करने के अर्थ में **प्र** और **उप** के बाद भी क्रम् से आत्मनेपद होता है जैसे–भोक्तुं **प्रक्रमते, उपक्रमते** (खाना आरम्भ करता है)। किन्तु, **प्रक्रामति** गजः (चलता है), **उपक्रामति** शिशुः (निकट आता है)।

१३. **अपह्नवे ज्ञः** (१.३.४४)—किसी तथ्य को छिपाने (अस्वीकार करने) के अर्थ में ज्ञा-धातु से आत्मनेपद होता है, तदनुसार उपसर्ग **अप** भी लगता है। जैसे–**शतमपजानीते** (सौ रुपयों को चुकाना अस्वीकार करता है)। यदि ज्ञा-धातु का प्रयोग अकर्मक के रूप में हो तो भी आत्मनेपद होता है जैसे–**सर्पिषो जानीते** (घी पाने से उस कार्य में प्रवृत्त होता है)। यहाँ सर्पिस् (घी) का प्रयोग करण कारक में तथा ज्ञा-धातु का ज्ञान-भिन्न अर्थ में (प्रवृत्ति अर्थ में) हुआ है इसीलिए 'ज्ञोऽविदर्थस्य करणे' (२.३.५१) सूत्र से करण में षष्ठी विभक्ति है।

i) **सम्प्रतिभ्यामनाध्याने** (१.३.४६)—**सम्** और **प्रति** उपसर्ग के बाद स्मरणभिन्न (आध्यान = स्मरण) अर्थ में ज्ञा-धातु हो तो इससे आत्मनेपद होता है। जैसे–**शतं संजानीते** (सौ रुपयों की आशा रखता है, प्रतीक्षा करता है)। **कन्यादानं प्रतिजानीते** (कन्यादान की प्रतिज्ञा करता है)। **प्रतिजानीते** = स्वीकार करता है। किन्तु मातरं मातुर्वा **सञ्जानाति** (स्मरण करता है)। शेषत्व–विवक्षा में षष्ठी विभक्ति हुई है।

१४. **भासनोपसंभाषा-ज्ञान-यत्न-विमत्युपमन्त्रणेषु वदः** (१.३.४७)—भासन (प्रकाश, किसी विषय में निपुणता दिखाना), सान्त्वना या प्रलोभन देना (उपसंभाषा), ज्ञान प्रकट करना, प्रयत्न करना, विवाद करना (विमति), अनुरोध करना (उपमन्त्रण = फुसलाना)–इन अर्थों में वद्-धातु से आत्मनेपद होता है। जैसे–शास्त्रे **वदते** (योग्यता दिखाता है), **भृत्यानुपवदते** (सेवकों को प्रलोभित करता है), **पाणिनिः वदते** (पाणिनि ज्ञान प्रकट करते हैं), **क्षेत्रे वदते** (खेत में श्रम करता है), **विवदन्ते** छात्राः (विवाद करते हैं), **विवदमानेषु शास्त्रेषु** (शास्त्रों में परस्पर विवाद होने पर), परकलत्र**मुपवदते** (फुसलाता है)।

i) **व्यक्तवाचां समुच्चारणे** (१.३.४८)—मनुष्यों की सम्मिलित वाणी के अर्थ में वद् से आत्मनेपद होता है। जैसे–**संप्रवदन्ते वैदिकाः** (वैदिक लोग एक ही साथ उच्चारण कर रहे हैं)। छात्राः प्रार्थनाकाले **संवदन्ते** (साथ बोल रहे हैं)। अर्थ स्पष्ट करने के लिए अनुकूल उपसर्ग लगाये

जाते हैं। अन्य प्राणियों के सहोच्चारण में परस्मैपद ही होगा–वरतनु! **संप्रवदन्ति** कुक्कुटाः (हे सुन्दरि, ये मुर्गे साथ बोल रहे हैं)।

ii) **अनोरकर्मकात्** (१.३.४९)—अनु + वद् (अनुकरण करना) से, अकर्मक होने पर, आत्मनेपद होता है यदि मनुष्य की वाणी का अर्थ हो। जैसे–**अनुवदते कठः कलापस्य** (कठ शाखा वाले कलाप शाखा वालों की तरह उच्चारण करते हैं)। सकर्मक में परस्मैपद होता है–**उक्तमनुवदति** (कही हुई बात को दुहराता है)। मनुष्य से भिन्न ध्वनि में भी परस्मैपद होता है–**अनुवदति वीणा** (वीणा उसी स्वर को दुहराती है)।

iii) **विभाषा विप्रलापे** (१.३.५०)—परस्पर विरोधी बातें कही जा रही हों तो इस अर्थ में वद् से वैकल्पिक आत्मनेपद या परस्मैपद होता है जैसे–वैद्याः **विप्रवदन्ते-विप्रवदन्ति**।

iv) **अपाद् वदः** (१.३.७३)—अप + वद् का प्रयोग निन्दा, अस्वीकृति आदि अर्थ में हो और क्रिया का फल कर्ता को वाञ्छित हो तो आत्मनेपद होता है जैसे–**धनलोभी न्यायम् अपवदते** (लोभी न्याय को अस्वीकार करता है)। केवल निन्दा अर्थ में–**अपवदति**। **मनुस्मृति** (४.२३६)– **नार्तोऽप्यपवदेद् विप्रान्** (संकट होने पर भी विप्र-निन्दा न करे)।

१५. **उदश्चरः सकर्मकात्** (१.३.५३)—उद् + चर् (उल्लंघन करना) धातु का सकर्मक प्रयोग होने पर इससे आत्मनेपद होता है। जैसे–**धर्मम् उच्चरते** (धर्म का उल्लंघन करता है)। किन्तु अकर्मक-प्रयोग (ऊपर उठना) होने पर परस्मैपद ही रहता है–वाष्पम् **उच्चरति** (भाप ऊपर जा रही है)। शब्दः **उच्चरति** (आवाज उठ रही है)। ध्यान रहे, उच्चारण अर्थ में 'उच्चारयति' (उच्चारण करता है) होता है।

i) **समस्तृतीया-युक्तात्** (१.३.५४)—सम् + चर् धातु का प्रयोग यदि तृतीयान्त पद के साथ हो तो आत्मनेपद होता है–**रथेन संचरते** (रथ से चलता है)। तृतीयान्त पद करण कारक का होना चाहिए अन्यथा आत्मनेपद नहीं होगा। जैसे–**पुण्येन** (हेतुना) **सञ्चरति** (पुण्य के कारण चल पा रहा है)। यहाँ हेतु में तृतीया है। **रथेन समुदाचरते**–यहाँ उपसर्ग का व्यवधान भी है।

१६. **उपाद् यमः स्वकरणे** (१.३.५६)—उप + यम् (यच्छ्) यदि स्वीकार करने के अर्थ में हो तो आत्मनेपद होता है। जैसे–**रामः उपयच्छते सीताम्।** रामो विश्वामित्रात् जृम्भकास्त्राणि **उपायच्छत** (विश्वामित्र से राम ने जृम्भकास्त्र स्वीकार किये)। आ + यम् (फैलना, फैलाना) से अकर्मक होने पर या

स्वाङ्गकर्मक प्रयोग में आत्मनेपद होता है (**आङो यमहनः** १.३.२८)। जैसे-सुप्तोत्थितः जनः **आयच्छते** (अकर्मक, अँगड़ाई लेता है)। स्वपाणिम् **आयच्छते** (स्वांगकर्मक, फैलाता है) **सम्, उद्, आङ्** के बाद यम्-धातु से आत्मनेपद होता है, यदि 'ग्रन्थ' कर्म के रूप में न हो जैसे-**वस्त्रमायच्छते** (कपड़ा पहनता है), **भारमुद्यच्छते** (बोझ उठाता है), **व्रीहीन् संयच्छते** (धान समेटता है)। किन्तु 'वेदम् उद्यच्छति' (वेद पढ़ने का उद्यम करता है)। यहाँ कर्म में ग्रन्थ = वेद है। (**समुदाङ्भ्यो यमोऽग्रन्थे** १.३.७५)।

१७. **ज्ञा-श्रु-स्मृ-दृशां सनः** (१.३.५७)—**ज्ञा, श्रु, स्मृ** (याद करना) और **दृश्**-इन धातुओं के बाद सन् प्रत्यय (इच्छार्थक) लगे तो उससे आत्मनेपद होता है। जैसे–ज्ञातुमिच्छति = **जिज्ञासते**। श्रोतुमिच्छति = **शुश्रूषते**। स्मर्तुमिच्छति = **सुस्मूर्षते**। द्रष्टुमिच्छति = **दिदृक्षते**। किन्तु–प्रतिशुश्रूषति, आशुश्रूषति। उपसर्गयुक्त है।

टिप्पणी—सामान्य नियम है कि जो धातु सन्-प्रत्यय के पूर्व जिस प्रकार का प्रत्यय (आत्मनेपद या परस्मैपद) ग्रहण करती है, सन्-प्रत्यय लगने पर उसी रूप में प्रत्यय लेती है जैसे–विजयते-(सन्) विजिगीषते। भुङ्क्ते-बुभुक्षते (खाना चाहता है)। भुनक्ति-बुभुक्षति। जिघ्रति-जिघ्रासति। किन्तु उपर्युक्त चार धातुएँ अपवाद-रूप हैं।

i) **भुजोऽनवने** (१.३.६६)—**भुज्** धातु का अर्थ पालन करना न हो तो इससे आत्मनेपद होता है। जैसे–**अन्नं भुङ्क्ते** (अन्न खाता है)। पालन के अर्थ में परस्मैपद होगा–**राजा पृथ्वीं भुनक्ति** (राजा पृथ्वी को पालते हैं)।

१८. **भीस्म्योर्हेतुभये** (१.३.६८)—णिजन्त (प्रेरणार्थक) **भी** तथा **स्मि** धातु से आत्मनेपद प्रत्यय होते हैं, यदि प्रयोजक कर्ता (भय और विस्मय उत्पन्न करने वाले कर्ता) से भय या विस्मय मिल रहा हो–जटाधारी भिक्षुकः शिशुं **भीषयते** (डराता है) या **भापयते**। **विस्मापयते** (विस्मय उत्पन्न करता है)। यदि अन्य कारण से भय-विस्मय हो तो परस्मैपद होता है। जैसे–खड्गेन **भाययति** (तलवार से डराता है), **रूपेण विस्माययति** (अपने रूप से विस्मित करता है)।

परस्मैपद-प्रकरण

१. **शेषात्कर्तरि परस्मैपदम्** (१.३.७८)—आत्मनेपद का विधान करने वाले सूत्रों के क्षेत्र में आने वाली धातुओं से भिन्न धातुओं से कर्तृवाच्य में परस्मैपद होता है। जैसे–याति, भवति, प्रविशति, वर्धयति।

२. **अनु-पराभ्यां कृञः** (१.३.७९)—**अनु** और **परा** के बाद **कृ** धातु से परस्मैपद होता है, चाहे क्रिया का फल कर्ता को अभीष्ट क्यों न हो। जैसे- **अनुकरोति** (अनुकरण करता है), **पराकरोति** (परास्त करता है)।

३. **अभि-प्रत्यतिभ्यः क्षिपः** (१.३.८०)—**अभि, प्रति** और **अति** के बाद **क्षिप्** धातु से परस्मैपद होता है। **अभिक्षिपति** (ऊपर फेंकता है), **अतिक्षिपति** (दूर हटाता है), **प्रतिक्षिपति** (धकेल देता है, throws back)।

४. **प्राद् वहः** (१.३.८१)—वह् धातु उभयपदी है किन्तु प्र + वह् से परस्मैपद होता है-**प्रवहति**। इसलिए इससे शतृ-प्रत्यय होगा-प्रवहन्। शानच् लगा कर 'प्रवहमाण' बनाना अशुद्ध है।

५. **व्याङ्परिभ्यो रमः, उपाच्च** (१.३.८३-८४)—रम्-धातु मूलतः आत्मनेपदी है किन्तु **वि, आ, परि** और **उप** के बाद इससे परस्मैपद ही होता है-**विरमति** (रुकता है), **विरमामि** (रुकता हूँ), **आरमति** (विश्राम करता है), **परिरमति** (प्रसन्न होता है)। उप + रम् का सकर्मक प्रयोग हो तो परस्मैपद होता है जैसे- **यज्ञदत्तमुपरमति** (यज्ञदत्त को प्रसन्न करता है); अकर्मक प्रयोग होने पर विकल्प है-**उपरमति-उपरमते**। जैसे-**भोजनाद् उपरमते-ति** (भोजन से हट जाता है)।

६. **बुध-युध-नश-जनेङ्-प्रु-द्रु-स्रुभ्यो णेः** (१.३.८६)—यदि बुध् (जानना, जागना), युध् (लड़ना), नश् (नष्ट होना, खोना), जन् (उत्पन्न होना), इङ् (अधि + इ = पढ़ना), प्रु (जाना), द्रु (दौड़ना, बहना, पिघलना) और स्रु (बहना) धातुओं का णिजन्त (प्रेरणार्थक) प्रयोग हो तो परस्मैपद होता है। जैसे- **सूर्यः पद्मं बोधयति** (सूर्य कमल को जगाता है = खिलाता है), **गुरुः शिष्यं बोधयति** (समझाता है)। **खलः मित्रे योधयति** (दुष्ट व्यक्ति दो मित्रों को लड़वाता है)। पापं **नाशयति**। सुखं **जनयति** (उत्पन्न करता है)। छात्रान् **अध्यापयति** (पढ़ाता है-अधि + इङ् + णिच्)। **धनं प्रावयति** (धन दिलाता है)। घृतं **द्रावयति** (घी पिघलाता है)। **स्थालीतः मण्डं स्रावयति** (बटलोही से माँड़ पसाता है)।

७. **निगरण-चलनार्थेभ्यश्च** (१.३.८७)—निगरण (खाना) और चलने के अर्थ वाली धातुओं का णिजन्त होने पर परस्मैपद होता है। जैसे-**अतिथिं भोजयति,** निगारयति, आशयति (खिलाता है)। **चलयति, कम्पयति** (कँपाता है)। इसमें अद् (खाना) धातु का निषेध है-**माता पुत्रेण अन्नम् आदयते** (माता पुत्र को अन्न खिलाती है)।

८. **अणावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्** (१.३.८८)—णिजन्त न रहने पर (= मूलतः) जो धातु अकर्मक है, उससे णिजन्त होने पर परस्मैपद होता है यदि उसका कर्ता कोई प्राणी हो। जैसे—

(अणिजन्त)	(णिजन्त)
(क) **देवदत्तः आसने आस्ते** (आस्)। (देवदत्त आसन पर बैठता है)	**रामः देवदत्तम् आसने आसयति।** (राम देवदत्त को आसन पर बैठाता है)
(ख) **शिशुः सुखेन शेते** (शीङ्)। (शिशु सुख से सोता है)	**माताः शिशुं सुखेन शाययति।** (माता शिशु को सुख से सुलाती है)

यदि कर्ता प्राणी न हो तो आत्मनेपद होता है–(अणिजन्त) सस्यानि शुष्यन्ति–(णिजन्त) आतपः सस्यानि **शोषयते**।

अभ्यास - ११

१. इन युग्मों का अन्तर स्पष्ट करें—

(क) उपतिष्ठति, उपतिष्ठते
(ख) आह्वयति, आह्वयते
(ग) विकुरुते, विकरोति
(घ) अनुहरति, अनुहरते
(ङ) विक्रमते, विक्रामति
(च) आक्रमते, आक्रामति
(छ) आदत्ते, आददाति
(ज) भीषयते, भाययति
(झ) उत्तिष्ठति, उत्तिष्ठते
(ञ) भुनक्ति, भुङ्क्ते

२. निम्नलिखित वाक्यों के क्रियापदों में आत्मनेपद-परस्मैपद प्रयोग पर टिप्पणी लिखें—

(क) त्वया स्थीयते
(ख) सम्प्रहरन्ते राजानः
(ग) गृहं निविशते
(घ) पराजयते शत्रून्
(ङ) बालको मुखं व्याददाति
(च) सर्पिषो नाथते
(छ) व्याख्यानं विरमति
(ज) क्षणमप्यवतिष्ठते यदि
(झ) गावो मातरमनुहरन्ते
(ञ) छात्रं बोधयति गुरुः
(ट) पादमायच्छते
(ठ) सखीभिः संगच्छते
(ड) कोपं विनयते
(ढ) अध्ययनाय क्रमते
(ण) सम्प्रति सम्प्रवदन्ति कुक्कुटाः

३. निम्नलिखित सूत्रों की सोदाहरण व्याख्या करें—

(क) विपराभ्यां जेः
(ख) उदोऽनूर्ध्वकर्मणि
(ग) उद्विभ्यां तपः
(घ) संप्रतिभ्यामनाध्याने
(ङ) उदश्चरः सकर्मकात्
(च) भुजोऽनवने
(छ) व्याङ्परिभ्यो रमः
(ज) समस्तृतीयायुक्तात्

४. **निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करें—**

i) (क) यह छात्र पढ़ाई से हार मानता है। (परा + जि)
(ख) नदी अपने किनारे को तोड़ रही है। (वि + आ + दा)
(ग) पुत्र रूप में पिता से मिलता-जुलता है। (अनु + हृ)
(घ) कुत्ता बैठने के लिए राख की ढेर को (भस्मराशि) खोदता है। (अप + कृ)
(ङ) पिता जी शीघ्र शहर के लिए चल पड़ते हैं। (प्र + स्था)

ii) (क) सेवक कुएँ से रस्सी खींचता है। (आ + यम्)
(ख) वह आग में अपना हाथ सेंकता है। (उत् + तप्)
(ग) बारात के लोग (वरयात्रिणः) भोजनकाल में पहुँच जाते हैं। (उप् + स्था)
(घ) यह बात संगत नहीं है। (सम् + गम्)
(ङ) मैं वेतन पर मजदूरों को रखता हूँ। (उप + नी)

iii) (क) शिष्य गुरु का क्रोध शान्त करता है। (वि + नी)
(ख) महल से धुआँ उठ रहा है। (आ + क्रम्)
(ग) प्रार्थना के समय छात्र साथ बोलते हैं। (सम् + वद्)
(घ) पति पत्नी को स्वीकार करता है। (उप + यम्)
(ङ) दुष्ट जन अनुशासन का उल्लंघन करता है। (उद् + चर्)

*

१ अव्यय-प्रकरण
Indeclinables

लिङ्ग, वचन या विभक्ति के अनुसार जो शब्द अपना रूप न बदले, उसे **अव्यय** (indeclinable) कहा जाता है। 'व्यय' का अर्थ है परिवर्तन (वि + इ - धातु + अच् - प्रत्यय = व्ययः)। यत्पदं विकारं न लभते, तदव्ययम्। पतञ्जलि ने इसीलिए कहा है—

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥

अर्थात् तीनों लिङ्गों, सभी विभक्तियों और सभी वचनों में जो एक समान रहे, विकृत न हो वह अव्यय है। संस्कृत भाषा के वाक्यों में इनका प्रयोग अभिव्यक्ति को स्पष्ट करता है। इनकी सार्थकता को लेकर उच्चतर व्याकरण में विवाद है। इन्हीं अव्ययों में उपसर्ग और निपात हैं जिन्हें व्याकरण-दर्शन केवल द्योतक मानता है, वाचक नहीं क्योंकि ये सुबन्त-तिङन्त से भिन्न हैं। आज व्याकरण इस विवाद में नहीं पड़ता। अव्यय अर्थ का निर्देश करते हैं। वाक्य में स्वतन्त्र पद के रूप में इनका प्रयोग होता है। जैसे–स **शीघ्रं** चलति। त्वम् **अपि** पठिष्यसि। **यथेष्टं** गच्छ। **सर्वत्र** धूमः अस्ति। रामः **गन्तुं** तत्परः। इन वाक्यों में स्थूल अक्षरों में अंकित पद अव्यय हैं।

रचना की दृष्टि से अव्यय तीन प्रकार के हैं[1]—१. मूल अव्यय, २. प्रत्ययान्त अव्यय, ३. अव्ययीभाव समास। प्रत्ययान्त अव्ययों के दो भेद हैं–कृत्प्रत्ययान्त तथा तद्धितान्त। इनका निरूपण करें।

१. मूल (Cardinal) अव्यय

ये अव्यय संस्कृत में रूढ़ हो गये हैं। इनके रूपों में कहीं-कहीं विभक्तियों की भी झलक मिलती है (जैसे–शनैः, पश्चात्, पुनः, अधः उपरि, सहसा, चिरम्, चिरेण इत्यादि)। प्रायः इनमें **अम्** लगा होता है–शीघ्रम्, साम्प्रतम्, एवम्। कुछ विभक्ति–शून्य हैं–च, वा, खलु, तु, अपि, वृथा इत्यादि। यहाँ इन अव्ययों की सूची दी जाती है।

अकस्मात् (अचानक, Suddenly), **अग्रतः** (सामने, Before), **अग्रे** (आगे, In front of, at first, ahead), **अचिरम्, अचिरेण, अचिराय, अचिरात्** (शीघ्र, अभी

१. स्वरादिनिपातमव्ययम् (१.१.३७), तद्धितश्चासर्वविभक्तिः (१.१.३८), कृन्मेजन्तः (१.३.३९), क्त्वातोसुन्कसुनः (१.३.४०), अव्ययीभावश्च (१.१.४१)।

हाल में, Quickly, recently), **अजस्रम्** (निरन्तर Constantly), **अञ्जसा** (ठीक, सही, Correctly, properly), **अन्तः** (भीतर, In, Into), **अतीव** (बहुत अधिक, Exceedingly), **अथ** (अब, इसके बाद, Then), **अथ किम्** (हाँ-हाँ, Yes), **अधः, अधस्तात्** (नीचे, Below), **अपरम्** (इसके अतिरिक्त, Moreover), **अपरेद्युः** (अगले दिन, On the following day), **अधुना** (आजकल, Now-a-days), **अनिशम्** (निरन्तर, Incessantly), **अन्तरा** (बीच में, Between), **अन्तरेण** (बिना, Without), **अभितः** (दोनों ओर, सब ओर, निकट, On both sides, on all sides, near), **अभीक्ष्णम्** (बार-बार, Repeatedly), **अमा** (साथ, Together), **अरम्** (तुरत, Quickly), **अर्वाक्** (पहले, इधर, Before, recently), **अलम्** (पर्याप्त, व्यर्थ, Enough, useless), **असकृत्** (बार-बार, Repeatedly), **असम्प्रति, असाम्प्रतम्** (अनुचित, Improper), **अह्नाय** (तुरत, Instantly), **आरात्** (निकट, दूर, Near, at a distance), **इति** (इस प्रकार, In this way), **इदानीम्** (इस समय, At this time), **इह** (यहाँ, Here), **ईषत्** (थोड़ा, Slightly), **उच्चैः** (जोर से, Loudly), **उपांशु** (चुपचाप, Silently), **उपरि, उपरिष्टात्** (ऊपर, Above), **ऋते** (बिना, Without), **एकपदे** (तत्काल, तुरत, Instantly), **एव** (केवल, Only), **एवम्** (इस प्रकार, हाँ, So, Yes)।

कच्चित् (मुझे विश्वास या आशा है, I see), **कर्हिचित्** (कभी भी, At any-time), **किञ्च** (इसके अतिरिक्त, Moreover), **किञ्चन, किञ्चित्** (कुछ, थोड़ा, Little, some-how), **किन्तु** (लेकिन, But), **किंस्वित्** (क्या, कौन, कैसा, Who, how), **किंवा** (अथवा, Or), **किमु, किमुत** (इसके अतिरिक्त क्या, What more), **किल** (सचमुच, Indeed), **कुवित्** (अधिक, Much), **केवलम्** (केवल, Only), **क्व** (कहाँ, Where), **क्वचित्** (कहीं पर, Somewhere), **खलु** (निश्चय ही, Indeed, certainly), **चिरम्, चिरेण, चिराय, चिरात्** (बहुत दिनों तक, देर तक, For or after a long time), **जातु** (कभी, शायद, Ever, perhaps), **जोषम्** (चुपचाप, Silently), **झटिति** (तुरत, Quickly), **तिरः, तिर्यक्** (तिरछा, टेढ़े ढंग से, Crookedly, across), **तूष्णीम्** (चुपचाप, Silently), **दिवा** (दिन में, By day), **दिष्ट्या** (भाग्य से, Luckily), **दोषा** (रात में, At night), **द्राक्** (तुरत, Quickly), **ध्रुवम्** (निश्चित रूप से, Definitely), **नक्तम्** (रात में, By night), **न** (नहीं, Not, nor), **नहि** (बिल्कुल नहीं, Not at all), **नाना** (अनेक प्रकार से, In many ways), **नाम** (अर्थात् संभवतः, Meaning thereby perhaps), **निकषा** (समीप, Near), **निकामम्** (पूर्णतः, Fully, enough), **निरन्तरम्** (सदैव, Always), **नूनम्** (निश्चित रूप से, Definitely), **परश्वः** (आगामी परसों, Day after tomorrow), **परितः** (चारों ओर, On all sides), **परेद्युः** (दूसरे दिन, Next day), **पश्चात्** (बाद में,

Afterwards), **पुनः** (फिर, Again), **पुनः पुनः** (बार-बार, Again and again, repeatedly), **पुरः, पुरतः, पुरस्तात्** (सामने, In front), **पुरा** (पुराने समय में, In former times), **पूर्वेद्युः** (पिछले दिन, Yesterday), **पृथक्** (अलग, Apart from), **प्रकामम्** (बहुत अधिक, Exceedingly), **प्रगे** (सुबह में, In the morning), **प्रत्युत** (बल्कि, अपितु, On the contrary, rather), **प्रसह्य** (बलपूर्वक, Forcibly), **प्राक्** (पहले, At first), **प्रातः** (सुबह में, In the morning), **प्राध्वम्** (विरोध में, पक्ष में, Favourably, in an opposite way), **प्रायः** (बहुधा, Mostly), **प्रेत्य** (मरने पर, After death प्र+इ+ल्यप्), **बहिः** (बाहर, अलावा, Out, except), **भूयः, भूयोभूयः** (पुनः, बार-बार, बहुत अधिक, Again, repeatedly, exceedingly), **भृशम्** (बहुत अधिक, Exceedingly), **मंक्षु** (तुरत, Quickly), **मनाक्** (थोड़ा, A little), **मिथः** (परस्पर, To each other), **मिथ्या, मृषा** (झूठ, Falsely, wrongly), **मुहुः** (पुनः, Again), **मुहुर्मुहुः** (बार-बार, Again and again), **यदि, चेत्** (अगर, If), **युगपत्** (एक साथ, Simultaneously), **विना** (बिना, Except), **वृथा** (बेकार, निरर्थक, In vain), **शनैः** (धीरे-धीरे, Slowly), **शश्वत्** (सदैव, Always), **सकृत्** (एक बार, Once), **सततम्, सदा** (सब समय, निरन्तर, Always), **सद्यः** (तुरत, At once), **सपदि** (उसी समय, तुरत, At once), **समन्ततः, समन्तात्** (सब प्रकार से, By all means), **समया** (समीप, Near), **सम्प्रति, साम्प्रतम्** (इस समय, Now), **सम्यक्** (ठीक तरह से, Properly), **सह** (साथ, Together), **सहसा** (अचानक, Suddenly), **साकम्** (साथ, Together), **साक्षात्** (सामने, स्वयं, In person), **सार्धम्** (साथ, Together), **सायम्** (शाम में, In the evening), **स्वयम्** (स्वतः, Oneself), **हि** (क्योंकि, Because), **ह्यः** (बीता कल, Yesterday)। हे, हन्त, अहह, अहो, अयि, अये इत्यादि सम्बोधनात्मक अव्यय हैं।

२. प्रत्ययान्त अव्यय

कुछ अव्यय अपनी रचना की दृष्टि से कृत् या तद्धित प्रत्ययों से बनते हैं जिन्हें कृदन्त तथा तद्धितान्त के वर्गों में रखते हैं।

(क) कृदन्त अव्यय (Indeclinables formed with Primary suffixes)

पाणिनि ने मकारान्त (जैसे तुमुन्, ण्वुल्, कमुल् प्रत्ययान्त) तथा एजन्त (वैदिक भाषा में कर्तवे, दृशे, गन्तवै, गमध्यै आदि रूप) कृदन्तों को एवं क्त्वा-ल्यप्, तोसुन्, कसुन् प्रत्ययान्त कृदन्त रूपों को अव्यय कहा है क्योंकि इनके रूप परिवर्तित नहीं होते।

उदाहरण—गन्तुम्, पठितुम्, द्रष्टुम्, खेलितुम् इत्यादि सभी तुमुन्नन्त। **पाठम्-पाठम्** (पढ़-पढ़कर), **स्मारम्-स्मारम्** (याद कर-करके), **गायं-गायम्** (गा-गाकर) इत्यादि णमुल्-प्रत्ययान्त। णमुल् के अन्य उदाहरण–**उदरपूरं** खादति (भर पेट खाता है)। **नामग्राहं**

माम् आह्वयति (मुझे नाम लेकर बुलाता है)। तोसुन्, कसुन्, कमुल् प्रत्यय वैदिक भाषा के हैं। क्त्वा और ल्यप् संस्कृत में बहुत प्रचलित हैं जैसे–**भुक्त्वा, रुदित्वा, सुप्त्वा, गृहीत्वा** इत्यादि। ल्यप् उपसर्ग के साथ या समास में होता है–**संगृह्य, आगम्य, उद्बुध्य, शुक्लीकृत्य** (उजला बनाकर), **आदाय** (लेकर), **अनुभूय** (अनुभव करके), **अधीत्य** (पढ़कर), **पराजित्य** (पराजित करके) इत्यादि।

(ख) तद्धितान्त अव्यय (Indeclinables formed with Secondary suffixes)

ऐसे अव्यय शब्दों की संख्या बहुत अधिक है। कुछ तो मूल या रूढ़ जैसे भी लगते हैं। पाणिनि के तद्धित सूत्रों में ये विहित हैं।

i) **तसिल् प्रत्ययान्त**—पञ्चमी विभक्ति के अर्थ में तसिल् होता है जैसे–कस्मात् = **कुतः** (क्यों)। सर्वस्मात् = **सर्वतः** (सभी ओर से)। अस्मात् = **अतः** (यहाँ से), **इतः**। तस्मात् = **ततः** (वहाँ से, इसलिए)। **ग्रामतः** (गाँव से)। **परिवारतः** (परिवार से)। परितः, अभितः उभयतः इत्यादि भी इसी प्रकार के शब्द हैं। यस्मात् = **यतः** (जहाँ से, क्योंकि)।

ii) **त्रल् प्रत्ययान्त**—सप्तमी विभक्ति के अर्थ में त्रल् प्रत्यय होता है। जैसे–कस्मिन् = **कुत्र** (कहाँ)। सर्वस्मिन् = **सर्वत्र** (सब जगह)। एकस्मिन् = **एकत्र** (एक जगह)। तस्मिन् = **तत्र** (वहाँ)। यस्मिन् = **यत्र** (जहाँ)। अस्मिन् = **अत्र** (यहाँ)। परस्मिन् = **परत्र** (परलोक में)। अपरस्मिन् = **अपरत्र** (दूसरी जगह)। अन्यस्मिन् = **अन्यत्र**। इदम् के बाद 'ह' प्रत्यय होकर **इह** (अत्र) भी होता है। किम् का '**क्व**' (कुत्र) भी होता है।

iii) **दा प्रत्ययान्त**—सर्व, एक, अन्य, किम्, यद् और तद् से काल के अर्थ में दा प्रत्यय होता है। जैसे–सर्वेषु कालेषु = **सर्वदा** (सब समय, सदा)। एकस्मिन् काले = **एकदा** (एक समय, किसी समय)। अन्यस्मिन् काले = **अन्यदा** (दूसरे समय में)। कस्मिन् काले = **कदा** (कब, किस समय)। यस्मिन् काले = **यदा** (जब, जिस समय)। तस्मिन् काले = **तदा, तदानीम्** (उस समय)। इदम् से काल अर्थ में **अधुना** और **इदानीम्** (इस समय, अस्मिन् काले) ये दो रूप होते हैं (पा.सू. ५.३.१५-१९)।

iv) **र्हिल् प्रत्ययान्त**—काल अर्थ में कुछ शब्दों से र्हिल्-प्रत्यय भी होता है जैसे–एतस्मिन् काले = **एतर्हि**। तद्-**तदा, तर्हि** (तब)। किम्-**कर्हि, कदा**।

v) **थाल्-प्रत्ययान्त**—प्रकार के अर्थ में थाल् प्रत्यय होता है। जैसे–सर्वैः प्रकारैः = **सर्वथा** (सब प्रकार से)। येन प्रकारेण = **यथा**। तेन प्रकारेण = **तथा**। अनेन

प्रकारेण = इदम् + थाल् (थम्) = **इत्थम्** (इस प्रकार)। केन प्रकारेण = **कथम्** (किस प्रकार)।

vi) **अस्ताति-प्रत्ययान्त**—पूर्व + अस्ताति = **पुरः, पुरस्तात्**। **अधस्तात्, अधः** (नीचे)। **परतः, परस्तात्** (दूसरी ओर से)। **उपरि, उपरिष्टात्** (ऊपर)। कुछ अव्ययों के योग में विभक्ति-प्रयोग सीमित किये गये हैं जिन्हें उपपद-विभक्तियों के प्रसंग में हम देखेंगे।

३. अव्ययीभाव समास

अव्ययीभाव समास के पद भी अविकारी होने के कारण अव्यय कहे गये हैं। इस समास के पद वस्तुतः क्रिया-विशेषण (Adverb) का काम करते हैं जो अव्यय-रूप होता है। इसका विवेचन इस समास के प्रसंग में होगा। कुछ उदाहरण यहाँ प्रासंगिक हैं। जैसे—बालकः **यथाशक्ति** (शक्तिमनतिक्रम्य = अपनी शक्ति भर) पठति। अहम् **उपसरोवरम्** (सरोवरस्य समीपम् = तालाब के पास) वसामि। वाराणसी अनुगङ्गम् (गङ्गाया अनु = गंगा के किनारे-किनारे) अवस्थिता।

अव्ययीभाव के अतिरिक्त कुछ अन्य समासों के पद भी अव्यय संज्ञा प्राप्त करते हैं जैसे—बहुब्रीहि समास में **'केशाकेशि'** (केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम्), 'दण्डादण्डि' (दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम्) इत्यादि पदों में अव्ययीभाव के **'तिष्ठद्गु'** (गाय दूहने का समय) के समान अव्यय-रूप हो जाता है।[१]

अव्ययों के प्रयोग

संस्कृत भाषा में अव्ययों के प्रयोग से भाषा का सौन्दर्य एवं अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता के अतिरिक्त अभिप्राय की यथार्थता भी प्रकट होती है। गद्य या पद्य में अव्यय का समुचित प्रयोग सुन्दरता की वृद्धि करता है। कभी-कभी तो अव्यय के अभाव में भाव प्रकट करने में कठिनाई का भी अनुभव होता है। अतः अव्ययों का साधारण अर्थ जानना ही पर्याप्त नहीं, उनका प्रयोग भी समझना चाहिए। यहाँ प्रमुख अव्ययों के प्रयोग दिखाये जाते हैं।

स्वरादि (Beginning with Vowels)

अकस्मात् – अकस्मात् तत्र कुक्कुरः समागतः (वहाँ **अचानक** कुत्ता आ गया)।

अग्रतः – अग्रतः सकलं शास्त्रं पृष्ठतः सशरं धनुः (छात्रों के **आगे** सभी शास्त्र और पीछे धनुष-बाण रहे अर्थात् ज्ञान और शक्ति दोनों ही अर्जित करें)।

१. **सिद्धान्तकौमुदी**, सूत्र ८४८ (अन्येषामपि दृश्यते) पर-तिष्ठद्गु प्रभृतिषु इच्-प्रत्ययस्य पाठादव्ययीभावत्वमव्ययत्वं च।

अग्रे – गृहस्याग्रे वाटिकास्ति (घर के **आगे** फुलवारी है)।
अचिरम् – त्वं चल, अहमपि अचिरम् आगच्छामि (तुम चलो, मैं भी **शीघ्र** आता हूँ)।
अतएव – मम भ्राता आगतः, अतएव विलम्बः (मेरा भाई आया था, **इसीलिए** देर हुई)।
अत्र – अत्र उपविश, तावदागच्छामि (**यहाँ** बैठो, तबतक आता हूँ)।
अजस्त्रम् – स संपूर्णं दिवसम् अजस्त्रं पठति (वह पूरे दिन **निरन्तर** पढ़ता है)।
उभयत्र – गृहे विद्यालये उभयत्र पठामि (घर में और स्कूल में **दोनों जगह** पढ़ता हूँ)।
अथ किम् – किं त्वं गतोऽसि? अथ किम् (क्या तुम गये हो? **जी हाँ**)।
अभितः – नदीमभितः ग्रामः वर्तते (नदी के **दोनों ओर** गाँव है)।
अधुना – अधुना मार्गाणां विस्तारः कृतः (**आजकल** मार्गों का विस्तार किया गया है)।
इदानीम् – किमिदानीं करिष्यति (**इस समय/अब** वह क्या करेगा?)
अधस्तात् – पर्वतानामधस्तात् ग्रामाः सन्ति (पहाड़ों के **नीचे** गाँव हैं)।
अन्तरेण – त्वामन्तरेण न गमिष्यामि (तुम्हारे **बिना** नहीं जाऊँगा)।
अद्य-श्वः – वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात् (**आज** कबूतर होना अच्छा है, **कल** मोर पाने की आशा नहीं–नौ नगद न तेरह उधार)।
उच्चैः – मन्दिरे उच्चैः कीर्तनं कुर्वन्ति (मन्दिर में **ऊँचे स्वर से** कीर्तन करते हैं)।
एवम् – एवं मा वद (**ऐसा** मत बोलो)। मा = मत, नहीं।
इतः – इतो दूरं मम गृहम् (**यहाँ से** मेरा घर दूर है)।
इव – अश्व इव मा धाव (घोड़े के **समान** मत दौड़ो)।
ईषत् – त्वम् ईषत् विरम, आगच्छति गुरुः (तुम **थोड़ा** रुको, गुरुजी आते हैं)।
अलम् – अलं विवादेन (झगड़ा करना **व्यर्थ** है)।
इदं भोजनम् अलम् (यह भोजन **पर्याप्त** है)।
इति – मम नाम हरिहरः इति (मेरा नाम हरिहर **ऐसा** है)
अन्तः – गृहस्यान्तः प्रविश्य स्थितः (घर के **भीतर** घुसकर बैठ गया)।
ऋते – सूर्याद् ऋते तमः को नाशयेत् (सूर्य के **बिना** अँधेरा कौन हटाए)?
एव – त्वमेव रक्षकः असि (तुम **ही** रक्षक हो)।
एकदा – एकदा तत्राहं गतवान् (**एक समय** मैं वहाँ गया था)।

व्यञ्जनादि (Beginning with Consonants)

कथम् – कथं स पठिष्यति (वह **कैसे** पढ़ेगा)?
कदा – त्वं कदा गतः आसीः (तुम **कब** गये थे)?
कुत्र – तव ग्रामः कुत्र वर्तते (तुम्हारा गाँव **कहाँ** है)?
किञ्चित् – मम ग्रामः किञ्चित् दूरेऽस्ति (मेरा गाँव **कुछ** दूर पर है)।
क्व – क्व ते गृहम् (तुम्हारा घर **कहाँ** है)?
क्वचिदपि – क्वचिदपि न लब्धं गृहसुखम् (घर का सुख **कहीं भी** न मिला)।
किंस्वित् – किंस्विद् गुरुतरं भूमेः (भूमि से बढ़कर या भारी **क्या** है)?
कदापि – कदापि समुद्रं न दृष्टवानहम् (मैंने **कभी भी** समुद्र नहीं देखा)।
किल-खलु – कवीनां कालिदासः श्रेष्ठः खलु/किल (कालिदास **निश्चय ही** कवियों में श्रेष्ठ हैं)।
चिरम् – स नगरे चिरम् अवसत् (वह नगर में **बहुत समय तक** रह गया)।
जातु – कोऽपि कर्मरहितो न जातु वर्तते (कोई **कभी भी** बेकार नहीं रहता)।
चेत् – त्वं गच्छसि चेत् गच्छ (तुम **यदि** जाते हो तो जाओ)।
झटिति – झटिति आगच्छ (**झटपट** आ जाओ)।
तिर्यक् – जलौकाः तिर्यक् चलति (जोंक **तिरछा/टेढ़ा** चलती है)।
तूष्णीम् – तावत् तूष्णीं तिष्ठ (तबतक **चुपचाप** बैठो)।
नक्तम् – नक्तम् अहं न खादामि (**रात में** मैं नहीं खाता)।
नूनम् – नूनं स एव श्रेष्ठः (**निश्चित रूप से** वही श्रेष्ठ है)।
प्रत्यहम् – स प्रत्यहं स्नानं करोति (वह **प्रतिदिन** स्नान करता है)।
पुरः, पुरतः – अयं तव पुरः/पुरतः उपस्थितः (यह तुम्हारे **सामने** उपस्थित हो गया)।
प्रायः – त्वं प्रायः समये आगच्छसि (तुम **लगभग** समय पर आते हो)।
परत्र – धार्मिकाः इह परत्र च सुखं लभन्ते (धार्मिक लोक तथा **परलोक** में सुख पाते हैं)।
प्रातः – प्रातः भ्रमणं स्वास्थ्यप्रदं भवति (**सुबह** में टहलना स्वास्थ्यकर है)।
भूयोभूयः – भूयोभूयः कथयामि मा खेल (**बारबार** कहता हूँ मत खेलो)।
भृशम् – स भृशं पीडितो वर्तते (वह **बहुत** पीड़ित है)।
प्रभृति – अद्य प्रभृति तव दासः अस्मि (आज **से** मैं तुम्हारा दास हूँ)।
बहुशः – बहुशः निवारितोऽपि स गतः (**बार-बार** रोके जाने पर भी वह गया)।
मिथ्या – कथं मिथ्या वदसि (कैसे **झूठ** बोल रहे हो)?
मा – कदापि तत्र मा गच्छ (कभी वहाँ **मत** जाओ)।

यावत् – गृहं यावत् त्वया सह चलामि (घर **तक** तुम्हारे साथ चलता हूँ)।

युगपत् – अर्जुनः दुर्योधनश्च युगपत् समागतौ (अर्जुन और दुर्योधन **एक साथ** आ गये)।

वृथा – तव अहंकारः वृथा (तुम्हारा अहंकार **व्यर्थ** है)।

मिथः – राक्षसौ मिथः प्रहारेण नष्टौ (दोनों राक्षस **परस्पर** प्रहार से नष्ट हो गए)।

यतः – गृहं गच्छ यतः अद्य अवकाशः अस्ति (घर जाओ **क्योंकि** आज छुट्टी है)।

सह/सार्धम्/साकं/समम् – रामेण सह सीतापि गता (राम **के साथ** सीता भी गई)।

सहसा – सहसा कर्मणि न वर्तितव्यम् (**अचानक** काम में नहीं लगना चाहिए)।

सपदि – त्वं सपदि गत्वा कथय (तुम **शीघ्र** जाकर कह दो)।

सद्यः – सद्यः स उपस्थितः (**उसी समय** वह उपस्थित हो गया)।

अभ्यास - १२

१. अव्ययों का सामान्य परिचय उदाहरण के साथ दें।

२. निम्नलिखित अव्ययों का अर्थ देकर अपने वाक्यों में प्रयोग करें—

अधुना, सद्यः, निकषा, भूयः, मुहुः, सकृत्, कुतः, इत्थम्, पुरा, कुत्र।

३. इन अव्ययों के विपरीतार्थक अव्यय लिखें—

सकृत् .... पुरा .... एकत्र ....

अग्रतः .... शीघ्रम् .... प्रायः ....

पृथक् .... युगपत् ....

४. इस श्लोकांश में अव्यय पद चुनें—

गत्वा सद्यः सपदि लभते सार्धमेतैर्मनुष्यै-
र्नक्तं पूजा-प्रणति-समये दर्शनं शूलपाणेः।

५. इनमें से सही अव्ययों को चुनकर रिक्त स्थानों को भरें—

इतस्ततः, किन्तु, विना, तत्र, यथा, सह, तदैव, ह्यः, तु, तथा

(क) .... अहमिहोद्यानेऽगच्छम्।

(ख) .... बालकाः अखेलन्।

(ग) तत्र केचित् .... अभ्रमन्।

(घ) उद्यानपालः .... लतासु जलं दत्तवान्।

(ङ) .... एकः रक्षकः जनान् निरीक्षते स्म।
(च) एकः बालकः मात्रा .... आगतः।
(छ) .... स आगतः .... एव निर्गतः।
(ज) स पितरं .... न तिष्ठति।
(झ) अहं .... एकाकी एवासम्।

६. **सही अव्यय देकर वाक्यों को पूरा करें—**

अपि, नूनम्, अतीव, च, सर्वत्र, एव।

(क) .... लोकमान्यः तिलकः विद्वान् देशभक्तः .... आसीत्।
(ख) तत्कृतं गीतारहस्यम् .... लोकप्रियं वर्तते।
(ग) स्वतन्त्रतासंग्रामे .... स संलग्नः।
(घ) गणेशोत्सवः तेन .... प्रचारितः अस्ति।
(ङ) महाराष्ट्र-प्रदेशे .... अयं समारोहः आयोज्यते।

७. **निम्नलिखित स्थानवाचक अव्ययों का अर्थ देकर वाक्य-प्रयोग करें—**

एकत्र, सर्वत्र, तत्र, अत्र, कुत्र, उभयत्र, परत्र।

८. **निम्नलिखित शब्दों से तसिल्-प्रत्यय लगाकर वाक्य-प्रयोग करें—**

इदम्, तद्, किम्, उभय, सर्व, परि, ग्राम, गृह।

९. **निम्नलिखित वाक्यों की पूर्ति कालवाचक (यदा, एकदा आदि) अव्यय लगाकर करें—**

(क) .... अहं तत्र गतः आसम्।
(ख) वायुः .... चलति।
(ग) वृष्टिः .... भविष्यति?
(घ) .... त्वं पठिष्यसि .... पिता प्रसन्नो भवेत्।
(ङ) .... अपि च विद्यालयात् नागतः।

१०. **इनमें से उचित अव्यय चुनकर निम्नांकित वाक्यों को पूर्ण करें—**

अत्र, अपि, पुरा, सम्प्रति, सपदि

(क) .... भारतवर्षं सम्पन्नमस्ति।
(ख) विदेशिनः .... अस्य प्रशंसां कुर्वन्ति।
(ग) .... देवा अस्य गानमकुर्वन्।
(घ) .... जन्मना जनाः धन्या आसन्।
(ङ) अयं देशः .... प्रगतिं कुर्यात्।

*

१० उपसर्ग-प्रकरण
Prefixes

क्रियाओं (धातुओं तथा कृदन्त शब्दों) के पूर्व लगाये जाने वाले प्र, परा आदि शब्दों को **उपसर्ग** कहते हैं (प्रादयः, उपसर्गाः क्रियायोगे, गतिश्च–पा.सू. १.४.५८-६०)। इन्हें **'गति'** भी कहते हैं, यद्यपि **'गति'** के अन्तर्गत अन्य भी कई प्रकार के शब्द हैं जैसे–ऊरी, उररी आदि शब्द, च्वि-प्रत्ययान्त, डाच्-प्रत्ययान्त (ऊर्यादिच्विडाचश्च १.४.६१), सत्-असत्, अलम्, अन्तर्, पुरस्, तिरस् आदि शब्द जो अपने निर्धारित अर्थों में हैं (१.४.६२-७९)। तत्पुरुष-समास के अन्तर्गत प्रादि और गति-समास में हम इन्हें देखेंगे।

उपसर्गों की संख्या २२ है–प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निर्-निस्, दुर्-दुस्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप। निर्-निस् और दुर्-दुस् को कारण-वश पृथक् पढ़ा गया है। इन्हें समान मानने पर बीस ही उपसर्ग होते हैं। इन्हें निम्नांकित तोटक छन्द में रखा गया है—

प्रपरापसमन्ववनिर्दुरभि-व्यधिसूदतिनिप्रतिपर्यपयः ।
उपआङिति विंशतिरेष सखे, उपसर्गविधिः कथितः कविना ॥

उपसर्ग लगने पर क्रिया के अर्थ में कुछ परिवर्तन होता है जैसा कि इस कारिका में कहा गया है—

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।
प्रहाराहार-संहार-विहार-परिहारवत् ॥

हृ (हरणे) धातु के पूर्व 'प्र' लगने पर **प्रहार, प्रहरति** (मारना), 'आ' लगने पर **आहार** (भोजन), **आहरति** (ले जाना), 'सम्' लगने पर **संहार, संहरति** (नाश, सिकोड़ना), 'वि' लगने पर **विहार, विहरति** (खेलना, भ्रमण, मनोरंजन करना), 'परि' लगने पर **परिहार, परिहरति** (बचना) में अर्थ बदल जाते हैं। कभी-कभी अकर्मक क्रिया भी उपसर्ग के कारण सकर्मक बन जाती है जैसे–'भवति' अकर्मक है किन्तु 'अनुभवति' सकर्मक है (जैसे–सुखमनुभवति)।

आत्मनेपद-परस्मैपद प्रकरण में देख चुके हैं कि उपसर्ग के कारण धातु आत्मनेपदी से परस्मैपदी में बदल जाती है, इसके विपरीत परस्मैपदी भी आत्मनेपदी हो जाती है जैसे–जयति (पर.) विजयते-पराजयते (आत्म.)। रमते (आत्म.), विरमति-परिरमति (पर.)। इस प्रकार

क्रिया के रूप (Form) और अर्थ (Meaning) दोनों में उपसर्ग की बड़ी भूमिका है। अर्थ के विकार के विषय में निम्नलिखित कारिका भी ध्यातव्य है—

धात्वर्थं बाधते कश्चित् कश्चित्तमनुवर्तते।
तमेव विशिनष्ट्यन्य उपसर्गगतिस्त्रिधा॥

अर्थात् उपसर्ग की तीन गतियाँ हैं—

१. कोई तो धात्वर्थ को बदल देता है (बाधते) जैसे–हरति से आहरति ('ले जाना' से 'ले आना'), संहरति (समेट लेना); गच्छति से आगच्छति ('जाना' से 'आना')।
२. कोई धात्वर्थ का अनुगमन करता है जैसे–विशति, प्रविशति (दोनों–'प्रवेश करना')।
३. कोई उपसर्ग धात्वर्थ को विशिष्ट बना देता है जैसे–करोति (करता है), प्रकरोति (अच्छी तरह करता है)।

यहाँ कुछ प्रचलित क्रियाओं के साथ जुड़े हुए उपसर्गों के उदाहरण दिये जाते हैं—

१. कृ-करोति, कुरुते (करता है)

अनुकरोति = नकल करता है। **व्याकरोति** = व्याख्या करता है।
अपकरोति = अपकार करता है। **अधिकरोति** = अधिकार जमाता है।
अपाकरोति = दूर करता है। **विकरोति** = दूषित करता है।
उपकरोति = उपकार करता है। **विकुरुते** = बिगड़ता है।

२. गम् (गच्छ्) गच्छति = जाता है

अनुगच्छति = पिछे चलता है। **प्रत्यागच्छति** = लौटता है।
अधिगच्छति = ज्ञान पाता है। **निर्गच्छति** = निकल जाता है।
उपगच्छति = पास जाता है। **उद्गच्छति** = उड़ता है।
अवगच्छति = समझता है। **संगच्छति** = (कहीं) जाता है।
आगच्छति = आता है। **संगच्छते** = साथ चलता है।

३. ग्रह्-गृह्णाति = लेता है

अनुगृह्णाति = दया करता है। **प्रतिगृह्णाति** = दान लेता है, वापस लेता है।
संगृह्णाति = संग्रह करता है। **विगृह्णाति** = झगड़ा करता है।

४. चर्-चरति = चलता है

अनुचरति = पीछे चलता है। **उपचरति** = सेवा करता है।
आचरति = व्यवहार करता है। **परिचरति** = सेवा करता है।
उच्चरति = बोलता है। **विचरति** = घूमता है।

५. ज्ञा-जानाति = जानता है

अपजानीते	=	अस्वीकार करता है।	**अवजानाति**	=	तिरस्कार करता है।
प्रतिजानीते	=	संकल्प करता है।	**विजानाति**	=	ठीक जानता है।
प्रजानाति	=	समझता है (सकर्मक)			

६. नी-नयति = ले जाता है

अनुनयति	=	प्रार्थना करता है।	**आनयति**	=	ले आता है।
अभिनयति	=	अभिनय करता है।	**उपनयते**	=	यज्ञोपवीत देता है। (अपने पास रखता है)
उन्नयते	=	उठाता है।	**विनयते**	=	व्याख्या करता है।
विनयति	=	शान्त करता है।	**निर्णयति**	=	निश्चय (फैसला) करता है।
परिणयति	=	विवाह करता है।			

७. भू-भवति = होता है

अनुभवति	=	अनुभव करता है।	**अभिभवति**	=	पराजित करता है।
उद्भवति	=	उत्पन्न होता है।	**परिभवति**	=	पराजित करता है।
संभवति	=	हो सकता है।	**प्रभवति**	=	निकलता है। प्रभुता रखता है।

८. लप्-लपति = बोलता है

अपलपति	=	अस्वीकार करता है।	**आलपति**	=	वार्तालाप करता है।
प्रलपति	=	अनर्गल बोलता है।	**विलपति**	=	रोता है।

९. वद्-वदति = बोलता है

अनुवदति	=	दुहराता है।	**अपवदति**	=	निन्दा करता है।
प्रतिवदति	=	उत्तर देता है।	**विवदते**	=	विवाद करता है।
अपवदते	=	अस्वीकार करता है।	**संवदते**	=	सहमत होता है।
संप्रवदन्ते	=	एक समान बोलते हैं।	**उपवदते**	=	फुसलाता है, सलाह देता है।

१०. वह्-वहति = ढोता है, बहता है

प्रवहति	=	बहता है (अकर्मक) ढोता है (सकर्मक)	**आवहति**	=	उत्पन्न करता है।
			उद्वहति	=	विवाह करता है।
संवहति	=	मालिश करता है।	**परिवहति**	=	ढोकर ले जाता है।
निर्वहति	=	पूरा करता है, निबाहता है।			

११. वृत्-वर्तते = है, होता है

अनुवर्तते	=	पीछे चलता है।	**निवर्तते**	=	लौटता/रुकता है।
प्रवर्तते	=	आगे जाता है।	**प्रत्यावर्तते**	=	लौटता है।
		आरम्भ होता है।	**विवर्तते**	=	बदलता है।

१२. सद्-सीदति = बिखरता/टूटता/नष्ट होता है

प्रसीदति	=	प्रसन्न होता है।	**विषीदति**	=	दुःखी होता है।
निषीदति	=	बैठता है।	**उत्सीदति**	=	नष्ट होता है।
उपसीदति	=	पास आता है।	**प्रसादयति**	=	प्रसन्न करता है।
उत्सादयति	=	नष्ट करता है।	**आसादयति**	=	पाता है।

१३. सृ-सरति = सरकता/चलता है

अनुसरति	=	पीछे चलता है।	**अपसरति**	=	हट जाता है।
अभिसरति	=	चुपके से जाता है।	**उपसरति**	=	पास जाता है।
निःसरति	=	निकल जाता है।	**प्रसरति**	=	फैलता है।
संसरति	=	बार-बार चलता है। (आता-जाता रहता है-संसार)			

१४. स्था (तिष्ठ)-तिष्ठति = ठहरता है, बैठता है

अवतिष्ठते	=	ठहरता है।	**प्रतिष्ठते**	=	चल देता है।
सन्तिष्ठते	=	बात पर रहता है (वाक्ये न संतिष्ठते)			
अधितिष्ठति	=	रहता है।	**उपतिष्ठति**	=	पास रहता है।
अनुतिष्ठति	=	अनुष्ठान करता है।	**उपतिष्ठते**	=	पूजा करता है। (सूर्यमुपतिष्ठते)
उत्तिष्ठति	=	ऊपर उठता है।	**उत्तिष्ठते**	=	लालसा रखता है।
आतिष्ठति	=	आचरण करता है।	**आतिष्ठते**	=	सिद्धान्त रखता है।

१५. हृ-हरति = ले जाता है

अपहरति	=	अपहरण करता है।	**उपहरति**	=	भेंट देता है।
अनुहरति	=	नकल करता है।	**उद्धरति**	=	उद्धार करता है।
आहरति	=	ले आता है।	**प्रहरति**	=	प्रहार करता है।
परिहरति	=	दूर करता है।	**विहरति**	=	सैर करता है।
संहरति	=	नाश करता है।	**उपसंहरति**	=	समेटता है।

उपर्युक्त परिदृश्य से उपसर्गों के महत्त्व की थोड़ी झलक मिल सकती है। अब कृदन्त शब्दों के पूर्व उपसर्गों के उपयोग के कुछ उदाहरण लें। संस्कृत की शब्द-सम्पत्ति (Vocabulary) की समृद्धि में इन उपसर्गों का प्रचुर योगदान देखा जा सकता है।

सोपसर्ग शब्दों के उदाहरण

१. **प्र** – प्रकारः, प्रचारः, प्रसारः, प्रवेशः, प्रयोगः, प्रवाहः, प्रभावः, प्रक्रमः, प्रमाणम्, प्रस्थानम्, प्रयाणम्.....।

२. **परा** – पराजयः, पराभवः, परामर्शः, पराक्रमः।

३. **अप** – अपकारः, अपनयः, अपमानः, अपकर्षः, अपवादः, अपलापः, अपहरणम्।

४. **सम्** – संसारः, संवादः, संहारः, संयमः, सम्बोधनम्, संलापः, सञ्चयः, संस्कारः।

५. **अनु** – अनुभवः, अनुसारः, अनुगमः, अनुकरणम्, अनुवादः, अनुचरः, अनुसरणम्।

६. **अव** – अवकाशः, अवरोधः, अवसरः, अवबोधः, अवगतिः, अवग्रहः।

७. **निस्** – निःसारः, निश्चयः, निश्चलः, निष्पन्दः।

निर् – निराशा, निरादरः, निर्जनः, नीरोगः, निर्णयः, निर्दयः, निर्दोषः।

८. **दुस्** – दुष्कर्म, दुस्तरः, दुश्शासनः, दुश्शीलः, दुष्करः।

दुर् – दुर्जनः, दुराराध्यः, दुर्गमः दुर्बोधः, दुरात्मा।

९. **वि** – विकासः विहारः, विश्वासः, विरोधः, विसर्गः, विचारः, विमर्शः।

१०. **आ** – आकारः, आचारः, आधारः, आगमः, आरोहः, आरामः, आशयः, आधिः।

११. **नि** – निवासः, निदेशकः, निवेशः, निषेधः, निदानम्, निधिः।

१२. **अधि** – अधिकारः, अधिष्ठाता, अध्यक्षः, अधिगमः, अध्ययनम्।

१३. **अपि** – इसके 'अ' का लोप होता है–पिधानम्, पिहितम्।

१४. **अति** – अतिरिक्तम्, अत्याचारः, अतिरेकः, अत्ययः, अतिसारः।

१५. **सु** – सुगमः, सुकरः, सुलभः, सुरागः, सुलेखः।

१६. **उत्** – उद्धारः, उल्लासः, उन्नतिः, उद्योगः, उच्चारणम्, उत्कृष्टः।

१७. **अभि** – अभियोगः, अभिज्ञानम्, अभिमानः, अभिभवः, अभियानम्।

१८. **प्रति** – प्रतिकारः, प्रतिक्रिया, प्रतिरोधः, प्रतिषेधः, प्रतिपक्षः, प्रतिदिनम्।

१९. **परि** – परिश्रमः, परिभवः, परिसरः, परिचयः, परिहारः, परिवारः, परिजनः।

२०. **उप** – उपकारः, उपयोगः, उपायः, उपद्रवः, उपहारः, उपवासः, उपमानम्।

अभ्यास - १३

१. उपसर्ग किसे कहते हैं? इसका महत्त्व सोदाहरण समझाएँ।

२. निम्नलिखित शब्दों में उपसर्ग और धातु को पृथक्-पृथक् लिखें—
आचरणीयम्, उल्लिखेत्, विहाय, पराजयः, निश्चित्य।

३. कृ, हृ और भू धातु से कोई तीन उपसर्ग लगाकर अर्थ स्पष्ट करें।

४. निम्नलिखित उपसर्गों को जोड़कर एक-एक शब्द लिखें—

i) अप .... वि ....
निस् .... उप ....

ii) अनु .... उप ....
प्र .... अधि ....

iii) सु .... अधि ....
उप .... अभि ....

iv) परा .... निर् ....
अनु .... प्र ....

v) अव .... प्र ....
अनु .... परि ....

५. अनु उपसर्ग किस शब्द में नहीं है?
(क) अनुभूतिः (ख) अनुदारः (ग) अनुकृतिः (घ) अनुमानम्

६. दुर्गमः में मूल शब्द क्या है?
(क) दुर् (ख) दुर्ग (ग) गम (घ) दुस्

७. निम्नलिखित शब्दों में उपसर्ग बताएँ—

i) उपद्रवः .... विनाशः ....
प्रतिकारः .... अत्यादरः ....

ii) आधिः .... निधिः ....
विधानम् .... प्रणामः ....

iii) संशयः .... आगम्य ....
परित्राणम् .... दुष्कृतः ....

iv) विचलितः .... अनुसरणम् ....
पिधाय .... अध्यादेशः ....

v) निनादः .... विवादः ....
संलापः .... उल्लासः ....

८. इस कारिका का अर्थ स्पष्ट करें—

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्।।

९. निम्नांकित क्रियाओं का अर्थ लिखें—

अनुभवति .... विहरति ....
उत्तिष्ठति .... प्रतिष्ठते ....
उपसंहरति .... विकरोति ....
अपसरति .... विषीदति ....
परिणयति .... अपलपति ....

*

११ कृत्-प्रकरण
Primary Suffixes

धातु से लगाये जाने वाले, तिङ् से भिन्न, प्रत्ययों को 'कृत्' कहते हैं। जिन शब्दों के अन्त में कृत्-प्रत्यय लगे हों उन्हें 'कृदन्त' कहा जाता है। संस्कृत व्याकरण की पुस्तकों में इसीलिए कृत्-प्रकरण को कृदन्त-प्रकरण भी कहा जाता है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि कृत् और कृदन्त समानार्थक हैं। घञ्, क्त्वा, तुमुन् आदि कृत् हैं, जबकि इनसे बने हुए 'पाठ, गत्वा, गन्तुम्' आदि कृदन्त शब्द हैं। कृत् प्रत्यय है, कृदन्त प्रत्यय नहीं होता अपितु कृत्-प्रत्यय से बना शब्द होता है।

कृत्-प्रत्यय से निष्पन्न कृदन्त शब्द जब संज्ञा या विशेषण होता है तब उससे प्रथमा आदि विभक्तियाँ लगती हैं जैसे–**पाठः, पाठस्य, पठितः, पठितानि, पठितस्य** इत्यादि। श्रु + तृच् = श्रोतृ। इससे **श्रोता, श्रोतारौ, श्रोतारः** जैसे रूप होंगे। कभी-कभी कृदन्त शब्द क्रिया के रूप में आते हैं जैसे–रामः **गतवान्,** सीता **पठितवती**–इनमें क्तवतु प्रत्यय है। बालकः **गतः,** पत्रं **पतितम्**–इनमें क्त प्रत्यय है। क्त्वा, ल्यप्, तुमुन् आदि प्रत्यय भी अपूर्ण (Infinite) क्रिया बनाते हैं जैसे–तत्र **गत्वा** सः अवसत् (वहाँ **जाकर** वह रह गया)। गृहं **परित्यज्य** सुखं न भवति (घर **छोड़कर** सुख नहीं होता)। **पठितुं** स आगतः (**पढ़ने के लिए** वह आया)।

कृत् प्रत्ययों के तीन वर्ग हैं–कृत्य, कृत् तथा उणादि।

१. कृत्य-प्रत्यय (Potential Participle)

पाणिनि ने तव्यत्-तव्य, अनीयर्, यत्-ण्यत्-क्यप् (=य) इन छह प्रत्ययों को 'कृत्य' कहा है। दूसरे कृत् प्रत्ययों से इनमें भिन्नता है कि सामान्य रूप से ये कर्मवाच्य और भाववाच्य में होते हैं (तयोरेव कृत्य-क्त-खलर्थाः ३.४.७०)। वैसे क्त प्रत्यय और खलर्थ (जैसे–दुष्करः, सुगमः) भी इन्हीं अर्थों में रहते हैं किन्तु कृत्य जैसी व्यापकता 'क्त' में नहीं होती। खलर्थ के तो उदाहरण भी अत्यल्प हैं। सभी कृत्य-प्रत्यय यकारान्त हैं। सभी 'योग्यता' के अर्थ में हैं।

i-ii) **तव्यत्-तव्य**—ये दोनों समान हैं, त् के कारण केवल वैदिक भाषा में स्वर का भेद होता है। गम् + तव्यत् (तव्य) = गन्तव्यम्, गन्तव्यः, गन्तव्या = जाने योग्य (गन्तुं योग्यम्, योग्यः, योग्या)। श्रोतुं योग्यम्–श्रु + तव्य = श्रोतव्यम्। जि + तव्य = जेतुं योग्यः = जेतव्यः शत्रुः। पठ् + तव्य = पठितुं योग्यम् =

पठितव्यम्। दृश् + तव्य = द्रष्टुं योग्यं = द्रष्टव्यम् उद्यानम्। इन उदाहरणों में तव्य-प्रत्यय से बने शब्द विशेषण का काम कर रहे हैं। क्रिया के रूप में (कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में) इनके प्रयोग रोचक होते हैं—

(क) त्वया ओदनः **भोक्तव्यः** (भुज् + तव्य)–तुम्हें भात **खाना चाहिए।** (कर्मवाच्य)

(ख) त्वया अद्य ग्रन्थः **पठितव्यः** अस्ति–तुम्हें आज ग्रन्थ **पढ़ना** है। (कर्म.)

(ग) दिवसे **शयितव्यं** (शी + तव्य) नास्ति–दिन में **सोना** नहीं है। (भाववाच्य)

(घ) प्रातरेव **चलितव्यम्** – प्रातःकाल ही **चलना चाहिए/चल देना है।** (भाव.)

(ङ) तेन दुष्टेन **भवितव्यम्** – वह दुष्ट **हो सकता है।** (भाववाच्य)

(च) पत्रेण **पतितव्यमेव** अस्ति – पत्ते को **गिरना** ही है। (भाव.)

iii) **अनीयर्** – यह भी अर्थ की दृष्टि से और रचना के रूप में तव्यत् या तव्य जैसा ही है। किन्तु तव्य के समान इसमें धातु से इट् नहीं लगता जैसे–धाव् + अनीयर् = **धावनीयम्**। तव्य लगने पर – 'धावितव्यम्' होता। दोनों का अर्थ है – दौड़ना चाहिए, दौड़ने योग्य। पठ् + अनीयर् = **पठनीयम्,** पठनीयः, पठनीया। दृश् + अनीयर् = **दर्शनीयम्** ....। **ग्रह्-ग्रहणीयम्** ....। लिख्-**लेखनीयम्**। कृ-**करणीयम्** ....। सेव्-**सेवनीयम्** ....। शी-**शयनीयम्।** वच्-**वचनीयम्** ....। मुच् (छोड़ना)–**मोचनीयम्** ....। कथ्-**कथनीयम्**। पूज्-**पूजनीयम्।**

तव्यत्-अनीयर् के सम्बन्ध में ज्ञातव्य—

१. धातु के अन्त में **इ, उ, ऋ** हो तो इनका गुण आदेश होकर क्रमशः **ए, ओ** तथा **अर्** हो जाता है जैसे–जि-जेतव्य, जि + अनीयर् = जयनीय। भू-भवितव्य (इट् आगम), भवनीय। कृ-कर्तव्य, अनीयर्-करणीय।[१]

२. धातु की उपधा में इ,उ हो तो उसका भी गुण आदेश (इ-ए, उ-ओ) होता है जैसे–लिख्-लेखितव्य, लेखनीय। बुध्-बोद्धव्य, बोधनीय।[२]

३. इन प्रत्ययों से बने शब्द विशेषण-रूप होते हैं। अतः विशेष्य के अनुसार लिङ्ग और वचन का ग्रहण करते हैं। सकर्मक धातु के प्रयोग में कर्म के अनुसार ये दोनों होते हैं जैसे–त्वचा **लेखितव्यं/लेखनीयं** पत्रम्। छात्रेण **पठितव्याः/पठनीयाः** ग्रन्थाः। सर्वैः **द्रष्टव्या/दर्शनीया** नदी। अकर्मक धातु से केवल भाववाच्य में प्रयोग होने से सदा नपुंसक-लिङ्ग एकवचन का ही रूप होता है जैसे–त्वया अत्र

१. सार्वधातुकार्धधातुकयोः (पा.सू. ७.३.८४)।
२. पुगन्तलघूपधस्य च (पा.सू. ७.३.८६)।

न (**स्थातव्यम्/स्थानीयम्**)। रात्रौ अधिकं न **जागरितव्यम्/जागरणीयम्** (रात में अधिक नहीं जागना चाहिए)।

ये ही नियम अन्य कृत्य-प्रत्ययों के विषय में भी हैं। केवल ण्यत् प्रत्यय के कुछ पृथक् नियम हैं क्योंकि वह णित् (ण् की इत्संज्ञावाला) प्रत्यय है।

iv) **यत्**–सामान्यतः अजन्त धातुओं से यत् प्रत्यय होता है (अचो यत् ३.१.९७)। जैसे–चेतुं योग्यम्–चि+यत्=**चेयम्** (चुनने योग्य, चुनना चाहिये)। जेतुं योग्यम्–जि+यत्=**जेयम्** (जीतने योग्य)। इनसे तव्यत्–अनीयर् भी हो सकते हैं–**चेतव्यं** पुष्पम्, **चयनीयो** ग्रन्थः। **जेतव्यो** राजा, **जयनीया** सेना। आकारान्त (तथा आकारान्त में बदलने वाली) धातुओं का यत् प्रत्यय लगने पर ईकार (जो गुण होकर ए) हो जाता है जैसे–दा + यत् = दी-**देयम्** (दातुं योग्यम्)। स्ना-**स्नेयम्** (स्नातुं योग्यम्) जलम्। पा-**पेयम्** (पातुं योग्यम्)। ग्लै (ग्ला)-**ग्लेयम्** (थक जाने योग्य)। गै (गा)-**गेयं** पद्यम्।

कुछ हलन्त धातुओं से यत् के उदाहरण–शस्-**शस्यम्** (काटने योग्य) जन्-**जन्यम्** (उत्पत्ति के योग्य)। हन्-**वध्यः**। शप्-**शप्यः** (शाप देने योग्य)। लभ्-**लभ्यम्** (पाने योग्य)। गम्-**गम्यम्** (जाने योग्य)। शक्-**शक्यम्**। सह्-**सह्यम्**। गद्-**गद्यम्**। मद्-**मद्यम्**। वह्-**वह्यम्** (जिससे वहन किया जाय-शकट), किन्तु वहन करने योग्य के अर्थ में-**वाह्यम्** (ण्यत्-प्रत्यय)।

v) **क्यप्**–इसमें 'य' बचता है किन्तु गुण नहीं होता। धातु के य, व का संप्रसारण (य-इ, व-उ) हो जाता है। ह्रस्वान्त धातु से 'त्' भी लग जाता है।[१] जैसे-इ + क्यप् (य) = **इत्यः** (जाने योग्य), स्तु + क्यप् = **स्तुत्यः** (प्रशंसनीय)। शास् + क्यप् = **शिष्यः** (अनुशासन के योग्य)। भृ + क्यप् = **भृत्यः**।

vi) **ण्यत्**–इसमें भी 'य' बचता है। सामान्य रूप से ऋकारान्त और हलन्त धातुओं से 'योग्यता' के अर्थ में ण्यत् लगता है (ऋहलोर्ण्यत्)। जैसे—

कर्तुं योग्यम्–कृ + ण्यत्–ऋ की वृद्धि 'आर्' होकर – **कार्यम्**। पठ् + ण्यत् - उपधा अ की वृद्धि 'आ' होकर – **पाठ्यम्** (पठितुं योग्यम्)। ग्रह् + ण्यत् = **ग्राह्यम्** (ग्रहीतुं योग्यम्)। धृ – **धार्यम्**। वच् – **वाच्यम्** (संज्ञा अर्थ में - **वाक्यम्**)। भुज् – **भोग्यम्** (भोग करने योग्य), **भोज्यम्** (खाने योग्य)। हस् - **हास्यम्**। त्यज् – **त्याज्यम्**। वि + भज् + ण्यत् – **विभाज्यम्** (विभक्तुं योग्यम्)।

---

१. ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् (६.१.७१)।

कुछ प्रमुख धातुओं से कृत्य प्रत्ययान्त शब्द

धातु	तव्यत्	अनीयर्	ण्यत्/यत्	अर्थ
अर्च्	अर्चितव्य	अर्चनीय	अर्च्य (ण्यत्)	पूजा के योग्य
कथ	कथयितव्य	कथनीय	कथ्य (ण्यत्)	कहने योग्य
कम्	कामयितव्य	कमनीय	काम्य (ण्यत्)	इच्छा के योग्य
कुप्	कोपितव्य	कोपनीय	कोप्य (ण्यत्)	क्रोध-योग्य
कृ	कर्तव्य	करणीय	कार्य (ण्यत्)	करने योग्य
क्री	क्रेतव्य	क्रयणीय	क्रेय (यत्)	खरीदने योग्य
क्षम्	क्षन्तव्य	क्षमणीय	क्षम्य (यत्)	सहने योग्य
खाद्	खादितव्य	खादनीय	खाद्य (ण्यत्)	खाने योग्य
खेल्	खेलितव्य	खेलनीय	खेल्य (ण्यत्)	खेलने योग्य
गण्	गणयितव्य	गणनीय	गण्य (ण्यत्)	गिनने योग्य
गर्ह्	गर्हितव्य	गर्हणीय	गर्ह्य (ण्यत्)	निन्दनीय
गुप्	गोपितव्य	गोपनीय	गोप्य (ण्यत्)	छिपाने योग्य
गै	गातव्य	गानीय	गेय (यत्)	गाने योग्य
ग्रह्	ग्रहीतव्य	ग्रहणीय	ग्राह्य (ण्यत्)	पकड़ने योग्य
चर्	चरितव्य	चरणीय	चर्य (यत्)	चलने योग्य
चि	चेतव्य	चयनीय	चेय (यत्)	चुनने योग्य
छिद्	छेत्तव्य	छेदनीय	छेद्य (ण्यत्)	काटने योग्य
जि	जेतव्य	जयनीय	जेय (यत्)	जीतने योग्य
ज्ञा	ज्ञातव्य	ज्ञानीय	ज्ञेय (यत्)	जानने योग्य
तुष्	तोष्टव्य	तोषणीय	तोष्य (ण्यत्)	सन्तोष देने योग्य
त्यज्	त्यक्तव्य	त्यजनीय	त्याज्य (ण्यत्)	छोड़ने योग्य
त्रै (पालने)	त्रातव्य	त्राणीय	त्रेय (यत्)	रक्षा के योग्य
दण्ड् (दमने)	दण्डयितव्य	दण्डनीय	दण्ड्य (ण्यत्)	दमन के योग्य
दम्	दमितव्य	दमनीय	दम्य (यत्)	दमन के योग्य
दय	दयितव्य	दयनीय	(अप्रयुक्त)	दया करने योग्य
दह्	दग्धव्य	दहनीय	दाह्य (ण्यत्)	जलाने योग्य
दा	दातव्य	दानीय	देय (यत्)	देने योग्य
दृश्	द्रष्टव्य	दर्शनीय	दृश्य (क्यप्)	देखने योग्य
द्विष्	द्वेष्टव्य	द्वेषणीय	द्वेष्य (ण्यत्)	घृणा के योग्य
धा	धातव्य	धानीय	धेय (यत्)	धारण योग्य
धृ (धारणे)	धारयितव्य	धरणीय	धार्य (ण्यत्)	धारण योग्य
ध्यै (ध्यान)	ध्यातव्य	ध्यानीय	ध्येय (यत्)	चिन्तन योग्य

नम	नन्तव्य	नमनीय	नम्य (यत्)	झुकने योग्य
निन्द् (कुत्सायाम्)	निन्दितव्य	निन्दनीय	निन्द्य (ण्यत्)	निन्दा योग्य
नी (प्रापणे)	नेतव्य	नयनीय	नेय (यत्)	ले जाने, बिताने योग्य
नृत् (गात्रविक्षेपे)	नर्तितव्य	नर्तनीय	नर्त्य (ण्यत्)	नाचने योग्य
पच्	पक्तव्य	पचनीय	पाक्य (ण्यत्)	पकाने योग्य
पत्	पतितव्य	पतनीय	पात्य (ण्यत्)	गिरने योग्य
पा (पाने)	पातव्य	पानीय	पेय (यत्)	पीने योग्य
पाल (रक्षणे)	पालयितव्य	पालनीय	पाल्य (ण्यत्)	रक्षा के योग्य
पिष् (संचूर्णने)	पेष्टव्य	पेषणीय	पेष्य (ण्यत्)	पीसने योग्य
पूज्	पूजयितव्य	पूजनीय	पूज्य (ण्यत्)	आदर योग्य
पूर्	पूरयितव्य	पूरणीय	पूर्य (ण्यत्)	पूरा करने योग्य
प्रच्छ् (जिज्ञासा)	प्रष्टव्य	प्रच्छनीय	प्रच्छ्य (ण्यत्)	पूछने योग्य
बन्ध् (बाँधना)	बन्द्धव्य	बन्धनीय	बन्ध्य (ण्यत्)	बाँधने योग्य
बुध् (बोधने)	बोद्धव्य	बोधनीय	बोध्य (ण्यत्)	समझने योग्य
ब्रू/वच्	वक्तव्य	वचनीय	वाच्य (ण्यत्)	बोलने योग्य
भिद् (विदारणे)	भेत्तव्य	भेदनीय	भेद्य (ण्यत्)	तोड़ने/फाड़ने योग्य
भी (भये)	भेतव्य	भयनीय	भेय (यत्)	डरने योग्य
भुज्	भोक्तव्य	भोजनीय	भोज्य (ण्यत्)	खाने योग्य
भू	भवितव्य	भवनीय	भाव्य (ण्यत्)	होने योग्य
			भव्य (यत्)	होनेवाला, भविष्णु
मन्	मन्तव्य	मननीय	मान्य (ण्यत्)	मानने योग्य
मिल् (संगमे)	मेलितव्य	मेलनीय	मेल्य (ण्यत्)	मिलने योग्य
मुच् (मोक्षणे)	मोक्तव्य	मोचनीय	मोच्य (ण्यत्)	छोड़ने योग्य
मुद् (हर्षे)	मोदितव्य	मोदनीय	मोद्य (ण्यत्)	प्रसन्न होने योग्य
यज्	यष्टव्य	यजनीय	याज्य (ण्यत्)	यज्ञ के योग्य
याच्	याचितव्य	याचनीय	याच्य (ण्यत्)	माँगने योग्य
युध् (संप्रहारे)	योद्धव्य	योधनीय	योध्य (ण्यत्)	युद्ध के योग्य
रक्ष् (पालने)	रक्षितव्य	रक्षणीय	रक्ष्य (ण्यत्)	बचाने योग्य
रम्	रन्तव्य	रमणीय	रम्य (यत्)	आनन्द के योग्य
राध् (वृद्धौ)	राद्धव्य	राधनीय	राध्य (ण्यत्)	बढ़ने योग्य

(प्रायः आ उपसर्ग के साथ - आराद्धव्य, आराधनीय, आराध्य)

रुध् (आवरणे)	रोद्धव्य	रोधनीय	रोध्य (ण्यत्)	रोकने योग्य
रुह् (प्रादुर्भावे)	रोढव्य	रोहणीय	रोह्य (ण्यत्)	उगने योग्य
लभ् (प्राप्तौ)	लब्धव्य	लभनीय	लभ्य (यत्)	पाने योग्य

लुप्	लोप्तव्य	लोपनीय	लोप्य (ण्यत्)	नाश योग्य
लुभ् (ललचना)	लोब्धव्य	लोभनीय	लोभ्य (ण्यत्)	लालच के योग्य
लोक (दर्शने)	लोकितव्य	लोकनीय	लोक्य (ण्यत्)	दर्शनीय

(प्रायः आ, अव और वि के साथ)

वञ्च्	वञ्चितव्य	वञ्चनीय	वञ्च्य (ण्यत्)	धोखा देने योग्य
वन्द् (अभिवादन स्तुत्योः)	वन्दितव्य	वन्दनीय	वन्द्य (ण्यत्)	वन्दन योग्य
वर्ण (वर्णने)	वर्णितव्य	वर्णनीय	वर्ण्य (ण्यत्)	वर्णन के योग्य
वस् (निवासे)	वास्तव्य (बसने वाला)	वसनीय	वास्य (ण्यत्)	रहने योग्य
वह् (प्रापणे)	वोढव्य	वहनीय	वाह्य (ण्यत्)	ले जाने योग्य
विद् (ज्ञाने)	वेदितव्य	वेदनीय	वेद्य (ण्यत्)	जानने योग्य
वृत् (वर्तने, होना)	वर्तितव्य	वर्तनीय	वर्त्य (ण्यत्)	व्यवहार योग्य
शंस् (स्तुतौ)	शंसितव्य	शंसनीय	शंस्य (ण्यत्)	प्रशंसा योग्य

(प्रायः प्र के साथ)

शास् (अनुशिष्टौ)	शासितव्य	शासनीय	शिष्य (क्यत्)	अनुशासन के योग्य
शी (स्वप्ने, सोना)	शयितव्य	शयनीय	शेय (यत्)	सोने योग्य
शुच् (शोके)	शोचितव्य	शोचनीय	शोच्य (ण्यत्)	शोक योग्य
शुद्ध (शुद्ध होना)	शोद्धव्य	शोधनीय	शोध्य (ण्यत्)	शुद्धि योग्य

(शुद्ध करने योग्य के अर्थ में णिच् लगकर-शोधितव्य-शोधनीय-शोध्य)

सह् (मर्षणे)	सोढव्य	सहनीय	सह्य (यत्)	सहने योग्य
सेव	सेवितव्य	सेवनीय	सेव्य (ण्यत्)	सेवा योग्य
स्था (गतिनिवृत्तौ)	स्थातव्य	स्थानीय	स्थेय (यत्)	ठहरने योग्य
हन्	हन्तव्य	हननीय	वध्य (यत्)	मारने योग्य
हस्	हसितव्य	हसनीय	हास्य (ण्यत्)	हँसने योग्य

२. कृत्-प्रत्यय

'कृत्' शब्द कृ-धातु से क्विप् प्रत्यय लगकर बना है जिसका अर्थ है–कर्ता या करने वाला जैसे–उपायकृत्, ग्रन्थकृत् इत्यादि। अतएव इस अर्थ को आदर्श मानकर सामान्यतः कृत्-प्रत्यय कर्ता के अर्थ में होते हैं (कर्तरि कृत् ३.४.६७)। जैसे-पठ् धातु से ण्वुल् (अक) प्रत्यय लगकर जो 'पाठक' शब्द बनता है उसमें धातु के मूल अर्थ (पढ़ना) के साथ 'कर्ता'

का भी अर्थ रहता है–पढ़ने वाला, पठन-क्रिया में स्वतन्त्र। ऊपर कहा गया है कि कुछ कृत् कर्म और भाव अर्थ में होते हैं (तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः)। इतना ही नहीं, दूसरे कारकों का अर्थ भी कृत् प्रत्यय देते हैं (कृत्यल्युटो बहुलम्)। जैसे–दीयते **अस्मै** इति दानीयः (दा+अनीयर्) विप्रः। बिभेति **यस्याः** सा भेतव्या (भी+तव्यत्) रजनी। आस्यते **अस्मिन्** इति आसनम् (आस्+ल्युट्)। क्रियते **अनेन** इति करणम् (कृ+ल्युट्)। इन शब्दों में क्रमशः सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण और करण अर्थों में प्रत्यय है, विग्रह वाक्यों में स्थूल शब्दों से यह सूचित होता है।

यहाँ उपयोगिता के आधार पर मुख्य प्रत्ययों का निरूपण किया जाता है।

१-२. भूतकालिक प्रत्यय क्त और क्तवतु (Past-Participle)

क्त (त) और क्तवतु (तवत्) भूतकाल में धातुओं से लगते हैं। इन्हें संयुक्त रूप से पाणिनि ने **'निष्ठा'** कहा है। दोनों में क् अनुबन्ध (इत्संज्ञक) है, क्तवतु में 'उ' भी अनुबन्ध ही है। त का कुछ धातुओं के बाद सन्धि के कारण 'ट' होता है जैसे–दृश् से दृष्टः, दृष्टवान्। प्रच्छ् से पृष्टः, पृष्टवान्। कहीं-कहीं त का न या ण भी होता है जैसे–भिद् धातु से भिन्नः, भिन्नवान्। कॄ से कीर्णः, कीर्णवान्। शॄ से शीर्णः, शीर्णवान्। द्रा से द्राणः, द्राणवान्।

क्त प्रत्यय कर्मवाच्य और भाववाच्य में होता है किन्तु क्तवतु कर्तृवाच्य का प्रत्यय है। जैसे—

क्त प्रत्यय – तेन **लिखितं** पत्रम्। (कर्मवाच्य)
त्वया **स्नातम्** अद्य। (भाववाच्य)

क्तवतु प्रत्यय – स **लिखितवान्** पत्रम्। (कर्तृवाच्य)
सीता **दृष्टवती** पुस्तकम्। (कर्तृवाच्य)

ध्यान दें कि कर्मवाच्य में 'क्त' प्रत्यय का लिङ्ग और वचन कर्म (पत्रम्) के अनुसार है। भाववाच्य में तो उसे सदा नपुंसकलिङ्ग और एकवचन ही रहना है। कर्तृवाच्य में क्तवतु-प्रत्यय का लिङ्ग-वचन कर्ता के अनुसार है। गत्यर्थक धातुओं तथा अकर्मक एवं विशेषतः 'शीङ्', 'स्था', 'जन्' आदि धातुओं से कर्तृवाच्य में भी 'क्त' प्रत्यय होता है। जैसे—

बालकः **गतः**। बालिका **गता**। पत्रं **पतितम्** (अकर्मक)। बालकः **सुप्तः**, **शयितः**, **स्थितः**, मृतः, जातः, जीर्णः, भीतः इत्यादि। शीङ् आदि धातु स्वयं तो अकर्मक हैं किन्तु उपसर्ग लगने पर सकर्मक हो जाते हैं। उस स्थिति में भी 'क्त' कर्तृवाच्य में ही होता है–विष्णुः शेषनागम् **अधिशयितः**, लक्ष्मणः रामम् **अनुजातः**। गङ्गा हिमालयम् **अधिष्ठिता**। रथम् **आरूढः** कृष्णः इत्यादि।

क्त-क्तवतु से बने कुछ रूप (पुंल्लिंग में)

क्षि – क्षीणः, क्षीणवान्
भिद् – भिन्नः, भिन्नवान् (णिच्-भेदितः)
हन् – हतः, हतवान्
हा – हीनः, हीनवान्
शुष् – शुष्कः, शुष्कवान् (णिच्-शोषितः)
पच् – पक्वः, पक्ववान्
दम् – दान्तः, दान्तवान् (णिच्-दमितः)
शम् – शान्तः, शान्तवान् (णिच्-शमितः)
वस् – उषितः, उषितवान्
ज्ञा – ज्ञातः, ज्ञातवान् (णिच्-ज्ञापितः)
क्लिश् – क्लिष्टः, क्लिष्टवान् (णिच्-क्लेशितः)
शी – शयितः, शयितवान्
स्था – स्थितः, स्थितवान् (णिच्-स्थापितः)
निः+वा – निर्वाणः अग्निः
– निर्वातः वातः
वस् – उषितः, उषितवान्
वद् – उदितः, उदितवान्
वच् – उक्तः, उक्तवान्
दा – दत्तः, दत्तवान्
अद् – जग्धः, जग्धवान्
बन्ध् – बद्धः, बद्धवान्
भञ्ज् – भग्नः, भग्नवान्
आ+दा+क्त – आदत्तः, आत्तः
प्र+दा+क्त – प्रदत्तः, प्रत्तः
जन् – जातः, जातवान्

भू – भूतः, भूतवान्
गम् – गतः, गतवान्
पठ् – पठितः, पठितवान्
दृश् – दृष्टः, दृष्टवान्
याच् – याचितः, याचितवान्
लभ् – लब्धः, लब्धवान्
नी – नीतः, नीतवान्
कृ – कृतः, कृतवान्
मृ – मृतः, मृतवान्
स्वप् – सुप्तः, सुप्तवान्
युज् – युक्तः, युक्तवान्
भुज् – भुक्तः, भुक्तवान्
क्री – क्रीतः, क्रीतवान्
ग्रह् – गृहीतः, गृहीतवान्
अधि+इ – अधीतः, अधीतवान्
भी – भीतः, भीतवान्
पुष् – पुष्टः, पुष्टवान्
नश् – नष्टः, नष्टवान्
सेव् – सेवितः, सेवितवान्
शास् – शिष्टः, शिष्टवान्
रुद् – रुदितः, रुदितवान्
विद् – विदितः, विदितवान्
श्रु – श्रुतः, श्रुतवान्
स्पृश् – स्पृष्टः, स्पृष्टवान्

१. स्त्रीलिङ्ग में क्त-प्रत्ययान्त शब्दों से टाप् (आ) प्रत्यय होकर पठिता, गृहीता, सुप्ता, भिन्ना, उक्ता जैसे शब्द बनते हैं जिनका रूप 'लता' के समान होता है।

२. नपुंसकलिङ्ग में उक्त शब्दों का फल के समान रूप चलता है–दत्तम्, दत्ते, दत्तानि। पठितम्, पठिते, पठितानि। जैसे–मया पुस्तकं **पठितम्**, पुस्तके **पठिते**, पुस्तकानि **पठितानि**। पत्रं **पतितम्**, पत्रे **पतिते**, पत्राणि **पतितानि**।

३. क्तवतु प्रत्ययान्त शब्दों का मूल रूप नपुंसक लिङ्ग जैसा ही होता है–पतितवत्, गतवत्, चलितवत् इत्यादि। इसीसे स्त्रीलिङ्ग में ङीप् (ई) लगाकर पतितवती, गतवती, चलितवती जैसे रूप होते हैं। इनका रूप-परिवर्तन नदी के समान होता है जैसे–बालिका **गतवती**। बालिके **गतवत्यौ**। बालिकाः **गतवत्यः**।

ध्यान दें कि क्तवतु प्रत्यय के रूप लङ् या अन्य भूतकालिक लकारों की अपेक्षा संस्कृत व्यवहार में सरल हैं। इनमें पुरुषगत परिवर्तन नहीं होता, केवल लिङ्ग और वचन का ध्यान रखना पड़ता है। कुछ उदाहरण लें—

त्वं कथितवान्। अहं दृष्टवान्। यदि सुननेवाली या बोलनेवाली स्त्री हो तो **त्वं कथितवती। अहं दृष्टवती।** तीनों पुरुषों में यही रूप होंगे। वचन बदलने पर अवश्य ही रूप बदलेंगे–**यूयं पठितवन्तः** (पुं.)। **यूयं पठितवत्यः** (स्त्री.)। **वयं दृष्टवन्तः** (पुं.)/**वयं दृष्टवत्यः** (स्त्री.)। कर्ता प्रथमपुरुष का हो तो कोई संदेह ही नहीं रहता कि पुंल्लिंग होगा या स्त्रीलिंग। जैसे–अध्यापकः **पाठितवान्**। शिक्षिकाः **गतवत्यः**। ते **लब्धवन्तः**। ताः **उक्तवत्यः**।

३-४. वर्तमानकालिक शतृ-शानच् प्रत्यय (Present Participle)

ये प्रत्यय लट् लकार (वर्तमान काल) के स्थान में होते हैं (लटः शतृशानचावप्रथमा-समानाधिकरणे ३.२.१२४)। इसलिए उस लकार के विकरण भी इनमें उपस्थित रहते हैं। शतृ में 'अत्' बचता है। यह परस्मैपदी धातु से लगता है। शानच् में 'आन' बचता है। यह आत्मनेपदी धातु से लगता है। उभयपदी धातु से दोनों होते हैं। धातु अकारान्त हो तो शानच् के आन के पूर्व 'म' लगकर 'मान' ऐसा रूप होता है (आने मुक् ७.२.८२)।

उदाहरण–पठ+शतृ = **पठत्** (नपुं.), **पठन्** (पुं.), **पठन्ती** (स्त्री.) = पढ़ता हुआ, पढ़ती हुई। गम् + शतृ = **गच्छत्, गच्छन्, गच्छन्ती**। लभ् (आत्मनेपदी) + शानच् = **लभमानम्** (नपुं.), **लभमानः** (पुं.) **लभमाना** (स्त्री.) = पाता हुई, पाती हुई। कृ (उभयपदी)–**कुर्वत्, कुर्वन्, कुर्वती** (करता हुआ, करती हुई)। शानच् होने पर–**कुर्वाणम्** (नपुं.), **कुर्वाणः** (पुं.), **कुर्वाणा** (स्त्री.)। अर्थ वही है।

वाक्यों के उदाहरण—

१. **गिरते हुए** बच्चे को रोकता है – **पतन्तं** बालकं वारयति। (द्वितीया विभक्ति)
२. पानी **पीते हुए** घोड़े को देखो – जलं **पिबन्तम्** अश्वं पश्य। (द्वितीया विभक्ति)
३. **दौड़ता हुआ** लड़का भाग गया – **धावन्** बालकः पलायितः। (प्रथमा विभक्ति)
४. कथा **सुनते हुए** वह सो गया – कथां **शृण्वन्** स सुप्तः। (प्रथमा विभक्ति)
५. धन **पाते हुए** तुम प्रसन्न हो – धनं **लभमानः** त्वं प्रसन्नः असि। (शानच्)
६. नगर में **रहते हुए** भी वह दुःखी है – नगरे **वसन्** अपि स दुःखी अस्ति।

७. **दौड़ते हुए** घोड़े से गिरा – **धावतः** अश्वात् पतितः। (पञ्चमी विभक्ति)
८. वह व्याकरण **पढ़ रहा** है – स व्याकरणं **पठन्** अस्ति (= पठति)।
९. वह काव्य **लिख रही** थी – सा काव्यं **लिखन्ती** आसीत् (=अलिखत्)।

शतृ-शानच् के कुछ उदाहरण

भू – भवत्, भवन्, भवन्ती। **स्था** – तिष्ठत्, तिष्ठन्, तिष्ठन्ती।
दृश् – पश्यत्, पश्यन्, पश्यन्ती। **घ्रा** – जिघ्रन्, जिघ्रन्ती।
जि – जयन्, जयन्ती। **वि+जि** – विजयमानः, विजयमाना (शानच्)
रम् – रममाणः, रममाणा (शानच्)। **वि+रम्** – विरमन्, विरमन्ती।
शीङ् – शयानः, शयाना (शानच्)। **जन्** – जायमानः, जायमाना।
भुज् – भुञ्जानः, भुञ्जाना (खाती हुई)। भुञ्जन्, भुञ्जती (भोगती हुई)।
याच् – याचमानः, याचमाना (माँगती हुई)। **सह्** – सहमानः, सहमाना (सहती हुई)।
अधि+इङ् – अधीयानः, अधीयाना (पढ़ती हुई)। **वृध्** – वर्धमानः, वर्धमाना (बढ़ती हुई)।
मृ – म्रियमाणः, म्रियमाणा (मरती हुई)। **भृ** (धारण करना)–बिभ्रत् (शतृ), बिभ्राणः (शानच्)।
ग्रह – गृह्णन् (शतृ), गृह्णानः (शानच्)। **आस्+शानच्** – आसीनः (बैठा हुआ), आसीना।
आप् (पाना) – आप्नुवन्, आप्नुवती। **शक्** – शक्नुवत्, शक्नुवती।
शम् (शान्त होना) – शाम्यन्, शाम्यन्ती। **भिद्** – भिन्दन्, भिन्दती।
क्री – क्रीणन्, क्रीणती। **ज्ञा** – जानन्, जानती।
कथ – कथयन्, कथयन्ती। **चिन्त्** – चिन्तयन्, चिन्तयन्ती।
दा – ददत्, ददती (देती हुई)। **धा** – दधत्, दधती (धारण करती हुई)।

टिप्पणी—

१. शतृ-प्रत्ययान्त शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप होने पर सर्वत्र न् नहीं लगता। केवल भ्वादिगणीय और दिवादिगणीय धातुओं से ही नित्य न् लगता है–शप्श्यनोर्नित्यम् (७.१.८१)। बिभ्रती, तुदती, कुर्वती, जानती इत्यादि में नहीं लगा है।

२. कर्मवाच्य में जब धातु से 'यक्' लगकर आत्मनेपदी होता है तब शानच् (म् + आन) का ही प्रयोग होगा। जैसे–पठ् + यक् + शानच् = **पठ्यमान** (पढ़ा जाता हुआ)। श्रु + यक् + शानच् = **श्रूयमाण** (सुना जाता हुआ being heard)। कृ + यक् + शानच् = **क्रियमाण** (किया जाता हुआ being done)। दृश्-

दृश्यमान (दिखाई पड़ता हुआ being seen)। दिखाई पड़ने वाले वृक्षों का चित्र लिया गया = **दृश्यमानानां वृक्षाणां चित्रं गृहीतम्।**

३. लृट् लकार के स्थान में भी शतृ-शानच् होते हैं (लृटः सद् वा ३.३.१४) जैसे—

कृ + लृट् + शतृ = **करिष्यन्** (भविष्य में करने वाला व्यक्ति)।
वच् + यक् + लृट् + शानच् = **वक्ष्यमाणा** (जो बात भविष्य में कही जायगी)।
पठ् + यक् + लृट् + शानच् = **पठिष्यमाणं** पुस्तकम् (जो पुस्तक बाद में पढ़ी जायगी)।

५-६. पूर्वकालिक अर्थ के क्त्वा-ल्यप् प्रत्यय (Indeclinable Past-Participle)

जब एक ही व्यक्ति दो क्रियाएँ करता है तो उसकी पूर्वकालिक क्रिया की बोधक धातु से **'क्त्वा'** प्रत्यय लगता है। इसमें 'त्वा' बचता है। कहीं-कहीं सन्धि के कारण 'त्' का 'ट्' हो जाता है। जैसे—

विद्यालयं **गत्वा** (गम् + क्त्वा) बालकः नित्यं पठति।
चन्द्रं **दृष्ट्वा** (दृश् + क्त्वा) शिशुः मोदते।
रावणं **जित्वा** (जि + क्त्वा) रामः अयोध्यामागतः।
बहुकालं नगरे **स्थित्वा** (स्था + क्त्वा) स ग्रामं गतवान्।

इन वाक्यों में क्त्वा-प्रत्ययान्त क्रिया एवं मुख्य क्रिया का कर्ता एक ही व्यक्ति है। क्त्वा-प्रत्ययान्त क्रिया पूर्वकालिक है और मुख्य क्रिया उत्तर काल की है, दोनों क्रियाएँ समानकर्तृक हैं। अतः क्त्वा-प्रत्यय का विधान करते हुए पाणिनि कहते हैं–**समानकर्तृकयोः पूर्वकाले** (३.४.२१)। यह प्रत्यय कित् ('क्' अनुबन्धवाला) है अतः क्त प्रत्यय के समान ही धातु में परिवर्तन होता है। जैसे–धातु में गुणादेश न होना, य्,व्,र् का इ उ ऋ हो जाना, सेट् धातुओं को इट् आगम होना इत्यादि। कुछ धातुओं के उदाहरण—

धातु	क्त-प्रत्यय	क्त्वा-प्रत्यय	धातु	क्त-प्रत्यय	क्त्वा-प्रत्यय
ज्ञा	ज्ञातः	ज्ञात्वा	**यज्**	इष्टः	इष्ट्वा
दा	दत्तः	दत्त्वा	**वप्** (बीज-बोना)	उप्तः	उप्त्वा
स्था	स्थितः	स्थित्वा	**बुध्**	बुद्धः	बुद्ध्वा
धा (धारण)	हितः	हित्वा	**बन्ध्**	बद्धः	बद्ध्वा
जि	जितः	जित्वा	**शीङ्**	शयितः	शयित्वा
भू	भूतः	भूत्वा	**स्वप्**	सुप्तः	सुप्त्वा
कृ	कृतः	कृत्वा	**पठ्**	पठितः	पठित्वा

तॄ (पार-करना)	तीर्णः	तीर्त्वा	गम्	गतः	गत्वा
मुच् (बचना)	मुक्तः	मुक्त्वा	लभ्	लब्धः	लब्ध्वा
अद् (खाना)	जग्धः	जग्ध्वा	सह्	सोढः	सोढ्वा (सहित्वा)
दृश्	दृष्टः	दृष्ट्वा	खन्	खातः	खात्वा (खनित्वा)
वस्	उषितः	उषित्वा	क्रम्	क्रान्तः	क्रान्त्वा (क्रमित्वा)
वच्/ब्रू	उक्तः	उक्त्वा	गाह् (प्रवेश करना)	गाढः	गाहित्वा (गाढ्वा)
शास्	शिष्टः	शिष्ट्वा	इष् (चाहना)	इष्टः	एषित्वा (इष्ट्वा)

ल्यप्-प्रत्यय के कुछ उदाहरण

आं + दा	= आदाय (लेकर)	सम् + कृ	= संस्कृत्य (स्वच्छ बनाकर)
निस् + चि	= निश्चित्य (निश्चय करके)	वि + नी	= विनीय (झुकाकर)
परा + जि	= पराजित्य (हराकर)	अनु + भू	= अनुभूय (अनुभव करके)
अधि + इ	= अधीत्य (पढ़कर)	द्विधा + कृ	= द्विधाकृत्य (दो टुकड़े करके)
प्र + वच्	= प्रोच्य (प्रवचन करके)		
आ + पॄ	= आपूर्य (भरकर)	उत् + प्लु	= उत्प्लुत्य (उछल कर)
वि + ग्रह्	= विगृह्य (अलग कराकर)	अव + कॄ	= अवकीर्य (बिखेर कर)
आ + ह्वे	= आहूय (बुलाकर)	नि + बन्ध्	= निबध्य (बाँधकर)
वि + हा	= विहाय (छोड़कर)	परि + त्रै	= परित्राय (रक्षा करके)
वि + चिन्त	= विचिन्त्य (सोचकर)	उत् + स्था	= उत्थाय (उठकर)
आ + हन्	= आहत्य (मिलाकर)	वि + ज्ञा	= विज्ञाय (जानकर)
वि + क्री	= विक्रीय (बेचकर)	सम् + ग्रह्	= संगृह्य (समेटकर)
अव + गम्	= अवगम्य (समझकर)	प्र + दा	= प्रदाय (देकर)
आ + नी	= आनीय (लाकर)	नि + पा	= निपीय (पीकर)
अनु + वद्	= अनूद्य (दुहराकर, अनुवाद करके)	वि + भ्रम्	= विभ्रम्य (घूमकर)
		आ + घ्रा	= आघ्राय (सूँघकर)
प्र + इ	= प्रेत्य (मरने पर)	सम् + धा	= संधाय (जोड़कर)

७. तुमुन्-प्रत्यय (Infinitive)

तुमुन्-ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् (३.३.१०)—जब एक क्रिया दूसरी क्रिया के लिए होती है तब धातु से भविष्यत् काल के भाव अर्थ में तुमुन् प्रत्यय होता है, कर्ता के अर्थ में ण्वुल् (अक) प्रत्यय भी होता है। तुमुन् में 'तुम्' बचता है जिसके 'त' का कहीं-कहीं नियमतः 'ट' या 'ध' हो जाता है। ण्वुल् का 'अक' हो जाता है (युवोरनाकौ ७.१.१ अर्थात् यु = अन, वु = अक)। उदाहरण–कृष्णं **द्रष्टुं** याति, कृष्णं **दर्शको** याति। **द्रष्टुम्** (दृश् + तुमुन्) में भाव अर्थ का भविष्यत्कालिक प्रत्यय तुमुन् लगा है। **दर्शकः** में कर्ता अर्थ का भविष्यत्कालिक प्रत्यय ण्वुल् (अक) है। अर्थ है–कृष्ण को देखने के लिए या देखने वाला

जाता है। इस भविष्यत् वाले क्रियारूप को क्रियार्था क्रिया (Infinitive) कहते हैं। अंग्रेजी में इसे to see, to go, to play (देखने, जाने, खेलने के लिए) के रूप में प्रकट करते हैं। हिन्दी में 'के लिए' का प्रयोग होता है। वैदिक भाषा में इसके लिए अनेक अन्य प्रत्यय भी होते हैं जैसे–गन्तवे (जाने के लिए), दृशे (देखने के लिए), गमध्यै (जाने के लिए), पिबध्यै (पीने के लिए)। तुमुन्-प्रत्ययान्त शब्द क्त्वा या ल्यप् प्रत्ययान्त शब्दों के समान अव्यय होते हैं; उनके एकमात्र रूप होते हैं जिनका परिवर्तन नहीं होता। तुमुन् लगने पर धातु में तव्यत्-जैसा परिवर्तन होता है जैसे–श्रु–श्रोतव्यम्, श्रोतुम्। दृश्–द्रष्टव्यम्, द्रष्टुम्। नी–नेतुम्, गम्–गन्तुम्।

तुमुन्-प्रत्ययान्त के कुछ विशिष्ट प्रयोग—

१. सकना, चाहना, आरम्भ करना इत्यादि क्रियाओं के प्रयोग में अप्रधान क्रिया के रूप में तुमुन् प्रत्यय वाले रूपों का मुहावरेदार प्रयोग होता है—

अहं **पठितुं** शक्नोमि = मैं पढ़ सकता हूँ।
स **गन्तुम्** अर्हति = वह जा सकता है।
त्वं मेलां **द्रष्टुम् इच्छसि** = तुम मेला देखना चाहते हो।
छात्रः पुरस्कारं **लब्धुं** वाञ्छति = छात्र पुरस्कार पाना चाहता है।
रेलयानं **चलितुं** प्रारभत = रेलगाड़ी चलने लगी (चलना शुरू किया)।

२. 'पर्याप्त' के अर्थवाले शब्दों के प्रयोग में (जैसे–अलम्, समर्थः, कुशलः, पटुः इत्यादि) तुमुन्नन्त क्रिया का मुहावरेदार सुन्दर प्रयोग होता है। जैसे—

एतावद् अन्नं **भोक्तुम् अलम्** = इतना अन्न खाने के लिए पर्याप्त है।
विद्वानेव इदं **ज्ञातुं समर्थः** = विद्वान् ही इसे जानने में समर्थ है।
स एकाकी **गन्तुं कुशलः** = वह अकेला जाने में कुशल है।

३. काल, समय, वेला के साथ तुमुन् वाली क्रिया होती है जैसे—

इदानीं **पठितुं** कालः/समयः/वेला = यह समय पढ़ने का है।

तुमुन्-प्रत्ययान्त शब्दों के कुछ उदाहरण—

अद् (खाना)	= अत्तुम् (खाने के लिए)	**त्यज्**	= त्यक्तुम् (छोड़ने के लिए)
इ (जाना)	= एतुम् (जाने के लिए)	**दृश्**	= द्रष्टुम् (देखने के लिए)
कथ्	= कथयितुम् (कहने के लिए)	**निन्द्**	= निन्दितुम् (निन्दा के लिए)
क्री	= क्रेतुम् (खरीदने के लिए)	**नी**	= नेतुम् (ले जाने के लिए)
गम्	= गन्तुम् (जाने के लिए)	**पच्**	= पक्तुम् (पकाने के लिए)
गै	= गातुम् (गाने के लिए)	**पा**	= पातुम् (पीने या रक्षा करने के लिए)
जि	= जेतुम् (जीतने के लिए)		

भिद्	= भेत्तुम् (तोड़ने के लिए)	दा	= दातुम् (देने के लिए)
वच्/ब्रू	= वक्तुम् (बोलने के लिए)	ध्यै	= ध्यातुम् (ध्यान देने के लिए)
रुद्	= रोदितुम् (रोने के लिए)	नृत्	= नर्तितुम् (नृत्य के लिए)
वद्	= वदितुम् (बोलने के लिए)	आ+नी	= आनेतुम् (लाने के लिए)
वह्	= वोढुम् (ढोने के लिए)	प्रच्छ्	= प्रष्टुम् (पूछने के लिए)
शिक्ष्	= शिक्षितुम् (सीखने के लिए)	भुज्	= भोक्तुम् (खाने के लिए)
स्था	= स्थातुम् (ठहरने के लिए)	याच्	= याचितुम् (माँगने के लिए)
श्रु	= श्रोतुम् (सुनने के लिए)	रक्ष्	= रक्षितुम् (रक्षा के लिए)
अस्/भू	= भवितुम् (होने के लिए)	लभ्	= लब्धुम् (पाने के लिए)
अधि+इ	= अध्येतुम् (पढ़ने के लिए)	लिख्	= लेखितुम् (लिखने के लिए)
कृ	= कर्तुम् (करने के लिए)	सह्	= सोढुम् (सहने के लिए)
खाद्	= खादितुम् (खाने के लिए)	शी	= शयितुम् (सोने के लिए)
ग्रह्	= ग्रहीतुम् (पकड़ने के लिए)	स्ना	= स्नातुम् (नहाने के लिए)
चुर्	= चोरयितुम् (चुराने के लिए)	सृज्	= स्रष्टुम् (रचने के लिए)
ज्ञा	= ज्ञातुम् (जानने के लिए)		

कर्तृवाचक कृत्-प्रत्यय

कुछ कृत्-प्रत्यय धातु से लगकर उस धातु से सम्बद्ध क्रिया को करने वाले अर्थात् कर्ता का अर्थ देते हैं। ये भी दो प्रकार के हैं–सोपपद और निरुपपद। **सोपपद** वे कृत्प्रत्यय हैं जिनमें धातु के पूर्व किसी शब्द-विशेष (उपपद) की अनिवार्यता है जैसे–कुम्भं करोति इति कुम्भकारः (कुम्भ + कृ + अण्)। यहाँ अण् प्रत्यय सोपपद है क्योंकि कर्मकारक का कुम्भ शब्द इसमें उपपद है। किसी धातु से अण्-प्रत्यय तभी लगता है जब कर्मकारक का शब्द पूर्व में रहे (कर्मण्यण् ३.२.१)। **निरुपपद** कृत्प्रत्यय वे हैं जिनमें धातु से सीधा प्रत्यय लगता है, किसी पूर्वपद की अनिवार्यता नहीं होती। जैसे–बुध् + क (अ) = बुधः। ज्ञा + तृच् = ज्ञाता। नन्द् + ल्यु (अन) = नन्दनः (प्रसन्न करनेवाला, पुत्र)। ग्रह् + णिनि (इन्) = ग्राही (ग्रहण करने वाला) इत्यादि। यहाँ प्रमुख कर्तृवाचक कृत् प्रत्ययों का परिचय दिया जाता है। ये दोनों प्रकार के हैं।

१. **अण्**–इसमें 'अ' शेष रहता है। ण् अनुबन्ध का फल है कि इगन्त (इ,उ,ऋ से अन्त होने वाले) धातुओं की वृद्धि होती है। उपधा में अ हो तो उसकी वृद्धि होती है। उपधा में इक् होने से गुण (इ का ए, उ का ओ, ऋ का अर्) हो जाता है। इसका प्रमुख सूत्र है–**कर्मण्यण्** (३.२.१)। अर्थात् कर्मकारक का शब्द पूर्व में ('उपपद'–रूप में) रहे तो धातु से अण् लगता है। जैसे—

विग्रह	व्युत्पत्ति	निष्पन्न रूप
कुम्भं करोति इति	कुम्भ+कृ+अण्	कुम्भकारः
ग्रन्थं करोति इति	ग्रन्थ+कृ+अण्	ग्रन्थकारः
द्वारं पालयति इति	द्वार+पाल्+अण्	द्वारपालः
सूत्रं धारयति इति	सूत्र+धृ+अण्	सूत्रधारः
जलं वहति इति	जल+वह्+अण्	जलवाहः (मेघ)
पुष्पाणि लुनाति इति	पुष्प+लू+अण्	पुष्पलावः, पुष्पलावी (स्त्री.) (माली, मालिन)

अन्य उदाहरण–भाष्यकारः, चाटुकारः, शास्त्रकारः, टीकाकारः, भारहारः, श्वपाकः। यह सोपपद कृत्प्रत्यय है।

२. **अच्**–इसमें भी 'अ' शेष रहता है। यह निरुपपद और सोपपद दोनों है। साथ ही यह भाव अर्थ में भी होता है। निरुपपद अच् का उदाहरण है–पचतीति **पचः** (पकानेवाला, पच् + अच्)।[१] चरतीति **चरः** (चर् + अच्, चलनेवाला)। भवतीति **भवः** (भू + अच्)। नदतीति **नदः**, स्त्री.–नदी। चोरयति इति **चोरः** (चुर् + अच्)।

उपपदसहित अच् का विधान कर्म उपपद रहने पर हृ धातु से हुआ है यदि ऊपर उठाने का अर्थ न हो या पूरा शब्द आयु (अवस्था) का बोधक हो (हरतेरनुद्यमनेऽच् ३.२.९)। जैसे–अंशं हरति = **अंशहरः** (अंश + हृ + अच्)। **व्याधिहरः** योगः। **दुःखहरः** पुत्रः। **मनोहरं** दृश्यम्। **वातहरं** तैलम्। ऊपर उठाने के अर्थ में अण् प्रत्यय लगेगा–भारहारः। अच् प्रत्यय लगने से केवल गुणादेश (ऋ का अर्) होता है। अवस्था-बोध होने पर–**कवचहरः** कुमारः (कवच धारण करने की आयु वाला)।

अर्ह् धातु से भी अच् प्रत्यय कर्म उपपद में रहने पर होता है (३.२.१२) जैसे–पूजाम् अर्हति = **पूजार्हः** (पूजा के योग्य)। **निन्दार्हः** (निन्दनीय) अपराधी। यदि अधिकरण कारक का शब्द उपपद हो तो शीङ् धातु से अच् होता है (अधिकरणे शेतेः ३.२.१५) शिलायां शेते इति–**शिलाशयः** (चट्टान पर सोने वाला)। **शय्याशयः**। खेशयः, खशयः (आकाश में विश्राम करने वाला)। **कुशेशयम्** (कमल)। पार्श्वशयः (करवट सोनेवाला), उदरशयः (पेट के बल सोनेवाला)।

भाव अर्थ में भी इवर्णान्त धातुओं से अच् प्रत्यय होता है (एरच् ३.३.५६)। जि–**जयः**। क्षि–**क्षयः**। नी–**नयः**। लीङ्–**लयः**। भी–**भयम्**। चि–**चयः** (समूह)।

१. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः (३.१.१३४) नन्द् आदि से ल्यु, ग्रह आदि से णिनि तथा पच् आदि से अच् प्रत्यय होता है।

३. क (अ)—

i) जिस धातु की उपधा में इक् (इ,उ,ऋ) हो उससे तथा ज्ञा, प्री और कृ धातु से कर्ता के अर्थ में क प्रत्यय होता है (इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः ३.१.१३५)। जैसे–विद् + क = **विदः**। बुध् + क = **बुधः** (बुध्यते इति, समझनेवाला)। **लिखः** (लिखनेवाला)। **नृतः** (नाचने वाला)। जानाति इति **ज्ञः** (ज्ञा + क, जाननेवाला)। प्रीणाति इति **प्रियः** (प्री + क, प्रसन्न करनेवाला)। किरति इति **किरः** (बिखेरने वाला, पक्षी)।

ii) उपसर्ग के बाद आकारान्त धातु से क प्रत्यय होता है (आतश्चोपसर्गे ३.१.१३६)–प्र + ज्ञा + क = प्रज्ञः (विशेष ज्ञानवाला)। आकारान्त धातु के आ का लोप क् के कारण हुआ है (आतो लोप इटि च)। उत् + स्था + क = **उत्थः** (उठनेवाला)। नि + स्था + क = **निष्ठः** (समर्पित)।

iii) कर्मकारक उपपद में हो तो उपसर्ग-रहित आकारान्त धातु से क प्रत्यय होता है–सर्वं जानाति इति **सर्वज्ञः** (सर्व + ज्ञा + क, सब कुछ जाननेवाला)। धनं ददाति इति **धनदः** (धन + दा + क, धनदाता, कुबेर)। जलं ददातीति–**जलदः**। वारिदः, पयोदः (मेघ)। मधु पिबति इति मधुपः (मधु + पा + क, भ्रमर)।

iv) कर्मकारक से भिन्न सुबन्त के उपपद रहने पर भी स्था धातु से क होता है–गृहे तिष्ठतीति **गृहस्थः**। विषमस्थः, तटस्थः, इहस्थः। अन्यत्र भी क होता है–**द्विपः** द्वाभ्यां पिबति, हाथी)। **पादपः** (वृक्ष)–पादेन पिबति।

४. ट (अ)—

i) अधिकरण कारक के उपपद रहते हुए चर् धातु से 'ट' प्रत्यय लगता है। जैसे–कुरुषु चरतीति **कुरुचरः** (कुरु+चर्+ट, कुरु प्रदेश में चलने वाला), स्त्रीलिङ्ग–**कुरुचरी**। इसी प्रकार **वनचरः** (वनेचरः भी), **खचरः** (आकाशचारी), **निशाचरः**, **जलचरः**, **पार्श्वचरः** (अगल-बगल चलनेवाला), **उभयचरः**। इन सबसे स्त्रीलिङ्ग में ङीप् लगकर 'चरी' रूप होगा। **सहचरः-सहचरी**।

ii) पुरः, अग्रतः और अग्र के बाद सृ धातु से 'ट' होता है–पुरःसरः, अग्रतःसरः, अग्रसरः (अग्रेसरः भी)।

iii) **कृञो हेतु-ताच्छील्यानुलोम्येषु** (३.२.२०)–हेतु (कारण, निमित्त), स्वभाव होना और अनुकूलता का अर्थ प्रतीत हो तो कर्म कारक के शब्द के बाद (उपपद रहते) कृ धातु से 'ट' प्रत्यय होता है। जैसे–यशः करोति इति

यशस्करी विद्या (यशस् + कृ + ट)। विद्या यश का कारण है। **पुष्टिकरम्** अन्नम्। श्राद्धं करोतीति तच्छीलः = **श्राद्धकरः** पुत्रः (श्राद्ध करने का शील रखने वाला)। **वचनकरः** शिष्यः (वचन पर चलने वाला)। **अर्थकरी** विद्या।

iv) दिवा, निशा, विभा, भास्, किम्, लिपि इत्यादि, शब्दों के बाद कृ से 'ट' प्रत्यय होता है चाहे हेतु आदि अर्थ नहीं भी हों। **दिवाकरः, विभाकरः,** भास्करः, प्रभाकरः (सब का अर्थ सूर्य), किङ्करः (सेवक), **तस्करः** (चोर), चित्रकरः, लिपिकरः (लिपिबद्ध करनेवाला, Stenographer)। **कर्मकरः (सेवक), अण् प्रत्यय से** कर्मकारः (लौहकार, लोहार Blacksmith)।

५. **टक् (अ)**—यह प्रायः हन् धातु से लगकर उसे 'घ्न' बना देता है–जायां हन्ति इति लक्षणयुक्तः–जाया + हन् + टक् = **जायाघ्नः** (पत्नी मर जाए, इस लक्षण वाला पति)। **पतिघ्नी** स्त्री (पति की मृत्यु के लक्षण वाली स्त्री)। **पित्तघ्नम्** औषधम् (पित्त के शमनवाली दवा)। पा और गै धातु से भी टक् होता है, तब अन्त्य स्वर 'आ' का लोप हो जाता है–सुरां पिबति = **सुरापः, सुरापी**। साम गायति = **सामगः, सामगी** (गै का पहले गा होकर आ का लोप हुआ है)। पा धातु के पूर्व सुरा से भिन्न कर्म होने पर 'क' प्रत्यय लगता है–क्षीरपः, क्षीरपा (स्त्री.)। पा का अर्थ रक्षा हो, तब भी यही 'क' प्रत्यय होगा, टक् नहीं–सुरां पाति (रक्षति) = सुरापः, सुरापा। स्त्रीलिङ्ग में अन्तर स्पष्ट हो जाता है कि अर्थ क्या है, कौन प्रत्यय लगा है।

६. **ड (अ)**—इस प्रत्यय के लगने से धातु के अन्तिम स्वर तथा स्वर के बाद के व्यञ्जन का भी लोप हो जाता है (गम् के अम् का, जन् के अन् का)। तब यह 'अ' प्रत्यय लगता है। अन्त, अत्यन्त, अध्व, दूर, पार, सर्व, अनन्त शब्द यदि कर्म के रूप में हों तो उनके बाद गम् धातु से 'ड' (अ) प्रत्यय होता है। जैसे–अन्तं गच्छति = अन्त+गम्+ड = **अन्तगः**। अत्यन्तगः। अध्वानं गच्छति–अध्वन् + गम् + ड = **अध्वगः**। दूरगः, पारगः, सर्वगः। सप्तम्यन्त शब्द के बाद जन् धातु से 'ड' प्रत्यय होता है (सप्तम्यां जनेर्डः ३.२.९७)। जैसे–सरसि जातम् = **सरसिजम्,** सरोजम्। **जलजम्**। मनोजः (कामदेव)। इसी प्रकार द्विजः, अजः, प्रजाः, अग्रजः, अनुजः आदि शब्द 'ड' प्रत्यय से बनते हैं। **विहगः** (विहायसा आकाशेन गच्छति = पक्षी), **दुर्गः** (किला), शत्रुहः (हन् + ड), क्लेशापहः (कष्ट दूर करनेवाला, आश्वासन देनेवाला, पुत्र), तमोपहः (तमस् + अप + हन् + ड) आदि भी इसी प्रत्यय के शब्द हैं।

७. **खच्, खश् (अ)**—इन प्रत्ययों में ख् इसलिए लगा है कि उपपद के रूप में आये हुए शब्द में म् लग जाता है। जैसे–प्रियं वदति = **प्रियंवदः** (प्रिय बोलने वाला, प्रिय + वद् + खच्)। वशं वदति = **वशंवदः** (आज्ञाकारी)[१]।

जनम् एजयति = **जनमेजयः** (लोगों को कँपानेवाला, महाभारत के एक राजा का नाम, जन + एज् + खश्)। अभ्रं लेढि = **अभ्रंलिहः** (आकाशचुम्बी, अभ्र + लिह् + खश्)। स्तनं धयति = **स्तनन्धयः** बालः (दूध पीता बच्चा, स्तन + धेट् + खश्)। विधुं तुदतीति = **विधुन्तुदः** राहुः (चन्द्रमा को ग्रसनेवाला, विधु + तुद् + खश्)। विहायसा गच्छति = **विहङ्गमः, विहङ्गः** (पक्षी, आकाशचारी, विहायस् + गम् + खच्)। वैकल्पिक डित् होने से गम् धातु के अम् का लोप हुआ है–विहङ्गः। इसी प्रकार–**भुजङ्गमः, भुजङ्गः** (सर्प)। भयं करोति–**भयङ्करः** (भय + कृ + खच्)। विश्वं बिभर्ति = **विश्वम्भरा** (पृथ्वी, विश्व + भृ + खच् + टाप्, स्त्री.)। पतिं वृणोति = **पतिंवरा** (अपना पति स्वयं चुनने वाली, पति + वृ + खच् + टाप्)। सूर्यं न पश्यति सा = **असूर्यम्पश्या** (सूर्य न देखनेवाली, पर्दे में रहने वाली, खश् प्रत्यय तथा स्त्रीलिङ्ग में निपातन से सिद्ध)। आत्मानं पण्डितं मन्यते = **पण्डितम्मन्यः** (अपने को पण्डित समझने वाला, अभिमानी, पण्डित + मन् + खश्)। ये सभी **उपपद तत्पुरुष समास** हैं। (देखें–समास प्रकरण)।

८. **ण्वुल् (अक)**—कर्ता का अर्थ देने वाला यह प्रत्यय सभी धातुओं से लगता है। सामान्यतः उपधा के अ की वृद्धि करके 'आ' बना देता है किन्तु उपधा में इ, उ या ऋ हो तो गुण आदेश होता है (इ–ए, उ–ओ, ऋ–अर्)। अजन्त धातु की वृद्धि ही होती है तथा तदनुसार सन्धि होगी। उदाहरण–करोति इति–कृ + ण्वुल् = **कारकः** (करनेवाला)। इसका षष्ठी तत्पुरुष समास में प्रयोग हो सकता है–हितकारकः तृप्तिकारकः, दुःखकारकः इत्यादि। आकारान्त धातु होने पर य् (युक्) लगता है (आतो युक् चिण्कृतो; ७.३.३३)। जैसे–ददातीति = **दायकः** (देनेवाला, दा + ण्वुल्)। गायति इति = **गायकः** (गवैया, गै + ण्वुल्)। पा + ण्वुल् = **पायकः** (पीनेवाला)। धा+ण्वुल् = **धायकः** (रखनेवाला, धारणकर्ता)। पचति इति = **पाचकः**। पश्यति इति = दृश् + ण्वुल् = **दर्शकः**। गृह्णाति इति = ग्राहकः (ग्रह् + ण्वुल्)। पालयतीति = **पालकः**। लिखति इति = **लेखकः**। बोधयति इति = **बोधकः** ('बुध्यते इति' से भी, बुध्+ण्वुल्, समझनेवाला, समझाने वाला)। वर्षति इति = **वर्षकः** (बरसने वाला, वृष् + ण्वुल्)। शम् आदि धातुओं से उपधा की वृद्धि नहीं होती–शम्-**शमकः**,

१. प्रियवशे वदः खच् (३.२.३८)।

जनयतीति **जनकः**। पठति इति = **पाठकः**। पचतीति **पाचकः**। नाशयति इति **नाशकः**। वहतीति = **वाहकः**। नयति इति = **नायकः**।

९. **तृच् (तृ)**—यह प्रत्यय भी ण्वुल् के साथ पढ़ा जाता है (ण्वुल्-तृचौ ३.१.१३३)। इस प्रत्यय के लगने पर 'दातृ' शब्द के समान रूप होता है। ददाति इति = **दाता** (देनेवाला, दा+तृच्)। करोति इति = **कर्ता** (कृ + तृच्)। श्रु + तृच् = **श्रोता**। नयति इति = **नेता** (नी + तृच्)। गृह्णाति इति = **ग्रहीता** (ग्रह् + तृच्)। बुध्यते इति = **बोद्धा** (बुध् + तृच्, समझनेवाला)। युध्यते इति = **योद्धा** (युध् + तृच्)। वहतीति–**वोढा** (वह् + तृच्, ढोनेवाला)। सह् + तृच् = **सोढा** (सहनेवाला)। वच् + तृच् = **वक्ता**। भुज्–**भोक्ता** (खाने वाला)। दृश्–**द्रष्टा**। सृज्–**स्रष्टा**। वि + क्री + तृच् = **विक्रेता** (बेचने वाला)।

१०. **णिनि (इन्)**—ग्रह आदि धातुओं से कर्ता अर्थ में णिनि (इन्) प्रत्यय होता है। जैसे–गृह्णाति इति–**ग्राही** (ग्रहणकर्ता)। मूल शब्द 'ग्राहिन्' बना, प्रथमा एकवचन में गुणिन् के समान रूप होता है–ग्राही। कृ + णिनि = **कारी**। शुध्+णिनि = **शोधी** (शुद्ध करने वाला)। शुभ् + णिनि = **शोभी** (शोभनेवाला) पा+णिनि = **पायी** (पीनेवाला)। स्था–**स्थायी**। उष्ण + भुज् + णिनि = **उष्णभोजी** (गर्म खाने की आदतवाला)। हन् + णिनि = **घाती** (मारनेवाला)। स्त्रीलिङ्ग में इन् + ई = इनी होता है जैसे–ग्राहिणी, कारिणी, शोभिनी, पायिनी इत्यादि। ब्रह्म + वद् + णिनि = **ब्रह्मवादी**, ब्रह्मवादिनी (स्त्री.)। वेद या ब्रह्म की व्याख्या करने वाला/वाली। **ब्रह्मघाती** = ब्रह्म + हन् + णिनि (वेदाध्ययन की उपेक्षा करने वाला, ब्राह्मण की हत्या करने वाला)।

११. **ल्यु (अन)**—नन्द आदि धातुओं से यह प्रत्यय लगता है। जैसे–नन्दयति इति **नन्दनः**–नन्द + णिच् + ल्यु (आनन्द देने वाला, पुत्र)। मदयति इति **मदनः**–मद् + णिच् + ल्यु = कामदेव, मादक पदार्थ। साधयति इति **साधनः** (साध्+ल्यु)। नपुंसकलिङ्ग में 'साधनम्' भाववाचक ल्युट् प्रत्यय से बनता है। पावयति इति **पावनः** = पू + णिच् + ल्यु = पवित्र करने वाला। बिना 'णिच्' के '**पवनः**' होता है (पुनाति या पवते, स्वच्छ वायु)। मधुं राक्षसं सूदयति इति **मधुसूदनः** (मधु + सूद् + ल्यु, विष्णु)। जनम् अर्दयति इति **जनार्दनः** (जन + अर्द् + ल्यु, विष्णु)। विशेषेण भीषयति इति **विभीषणः** (वि + भी + णिच् + ल्यु), षुक् आगम है। रावयति इति **रावणः** (रु + णिच् + ल्यु, जोरों से गरजने वाला)। ये दोनों रामायण के राक्षस-पात्र हैं।

१२. **इष्णुच्**—कर्ता के अर्थ में शील (आदत) का भी बोध होने से धातुओं से यह प्रत्यय लगता है। जैसे–अलंकर्तुं शीलमस्य सः–**अलंकरिष्णुः**

(अलम् + कृ + इष्णुच्)। **निराकरिष्णुः** (जिसकी आदत सभी को अस्वीकार करने की है)। वृध्–**वर्धिष्णुः**। सह्–**सहिष्णुः** (सहनशील)। क्षि–**क्षयिष्णुः** (नष्ट होने वाला)। भू–**भविष्णुः** (जिसका भविष्य उज्ज्वल हो)। प्र + भू–**प्रभविष्णुः** (शक्तिशाली)।

१३. **उ**—यह प्रत्यय सन्नन्त धातु से तथा आ+शंस्, भिक्ष् आदि से कर्ता के अर्थ में होता है।[१] जैसे–पा + सन् + उ = **पिपासुः** (प्यासा, पातुमिच्छति सः)। ज्ञा + सन् + उ = **जिज्ञासुः** (ज्ञातुमिच्छतिः सः)। कृ–**चिकीर्षुः** (कर्तुमिच्छति सः) भुज्–**बुभुक्षुः** (भूखा)। मृ–**मुमूर्षुः** (मरणशील)। गम्–**जिगमिषुः** (गन्तुमिच्छुः, जाने का इच्छुक)। पत्–**पिपतिषुः** (जो गिरने ही वाला हो)। आ + शंस् + उ = **आशंसुः** (आशा से भरा हुआ)। भिक्ष् + उ = **भिक्षुः** (याचना करने वाला)। **प्रभुः**, **विभुः** आदि शब्द उपसर्ग–युक्त भू–धातु से 'डु' प्रत्यय लगकर बनते हैं। उसमें भी 'उ' शेष रहता है। इसी प्रकार शम् + भू + दु = शम्भुः।

१४. **क्विप् (सर्वलोप)**—इस प्रत्यय का पूरा लोप हो जाता है किन्तु ह्रस्वान्त धातु से त् (तुक्) लग जाता है। प्रत्यय कर्ता का अर्थ देता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–सेनां नयति इति **सेनानीः** (सेना + नी + क्विप्)। कर्म करोति इति **कर्मकृत्** (कर्म + कृ + क्विप्; काम करने वाला)। इन्द्रं जयति इति **इन्द्रजित्** (इन्द्र + जि + क्विप्, इन्द्रविजेता, मेघनाद)। वि + राज् + क्विप् = विराज्, विराट् (सृष्टिकर्ता)। प्रसूते इति **प्रसूः** (प्र + सू + क्विप्, माता)। इसी से मिलता हुआ **'ण्वि'** प्रत्यय है जिसमें अकार उपधा वाली धातु की वृद्धि हो जाती है–अंशं भजति इति **अंशभाक्** (अंश का भागीदार, अंश + भज् + ण्वि)।

भाववाचक कृत्प्रत्यय

कुछ कृत्प्रत्ययों के लगने से भाववाचक संज्ञा (Abstract Noun) बनती है अर्थात् क्रिया का मूल अर्थ ही प्रकट होता है। जैसे–सेव् (सेवा करना) + ल्युट् = सेवनम् (सेवा करना)। अर्थ समान होने पर भी धातु का सीधा वाक्य में प्रयोग नहीं होता, किन्तु कृदन्त शब्द को पद बनाकर वाक्य में प्रयुक्त कर सकते हैं। जैसे–रोगी औषधस्य **सेवनं** करोति। यहाँ 'सेव्' करोति नहीं हो सकता। मुख्य प्रत्यय इस प्रकार हैं—

१. **क्तिन् (ति, टि, धि)—इस प्रत्यय से बना शब्द स्त्रीलिङ्ग होता है।**[२] कृ + क्तिन् = **कृतिः**। दृश् + क्तिन् = **दृष्टिः**। बुध् + क्तिन् = **बुद्धिः**। स्तु–**स्तुतिः**। गम्–**गतिः**। प्र + नम्–**प्रणतिः**। रम्–**रतिः**। शम्–**शान्तिः**। क्षम्–**क्षान्तिः**

---

१. सनाशंसभिक्ष उः (३.२.१६८)।
२. स्त्रियां भावे क्तिन् (३.३.९४)।

(सहनशीलता)। यज्–**इष्टिः**। वृष्–**वृष्टिः**। भुज्–**भुक्तिः**। स्था–**स्थितिः**। गै–**गीतिः**। पा–**पीतिः** (पीना)। श्रु–**श्रुतिः**। पच्–**पक्तिः** (पकाना)। सम् + पद् + क्तिन् = **सम्पत्तिः**। वि + पद् + क्तिन् = **विपत्तिः**। इन दोनों अर्थों में क्विप्-प्रत्यय से सम्पद् और विपद् शब्द भी बनते हैं। कृत् (संशब्दने) + क्तिन् = **कीर्त्तिः**। मुर्च्छ् (मोह–समुच्छ्राययोः) + क्तिन् = **मूर्त्तिः**। उपधायां च (८.२.७८) से उपधादीर्घ।

२. **घञ्** (अ)—यह भाववाचक प्रत्ययों में सर्वाधिक व्यापक तथा प्रसिद्ध है। धातु के अन्तिम च् को क् तथा ज् को ग् कर देता है (चजोः कु घिण्ण्यतोः ७.३.५२)। ण्यत् प्रत्यय में भी यही नियम है। पच् + घञ् = **पाकः**। रुज् + घञ् = **रोगः**। पठ् + घञ् = **पाठः**। लभ् = लाभः। सृ-सारः। हृ-हारः। पद्-पादः। बुध्-**बोधः**। लुभ्-**लोभः**। कुप्–**कोपः**। मुह्–**मोहः**। कम्–**कामः**। ग्रह्–**ग्राहः**। स्पृश्–**स्पर्शः**। रञ्ज्–**रागः**। उप + अधि + इङ् + घञ् = **उपाध्यायः** (उपेत्य अस्माद् अधीयते, जिसके पास जाकर पढ़ाई की जाय)। उपसर्ग–रहित श्रि, नी और भू से घञ् होता है (श्रिणीभुवोऽनुपसर्गे ३.३.२४) श्रि–**श्रायः**, नी–**नायः**, भू–**भावः**। उपसर्ग लगने पर–प्रश्रयः, प्रणयः, प्रभवः (सब में अप्–प्रत्यय है)। उत् + मद्–**उन्मादः**। प्र + मद्–**प्रमादः** (असावधानी Carelessness)। प्र + वद्–**प्रवादः** (अफवाह Rumour)। वि + वद्–**विवादः**। सम् + वद्–**संवादः**। अपवादः, परिवादः, परीवादः इत्यादि भी इसी प्रकार बने हैं। हस्–हासः, उपहासः। **घञ् तथा अप् प्रत्यय से बने शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं** (घञबन्तः, लिङ्गानुशासन, सूत्र ३६)।

३. **अप्** (अ)—यह मुख्यतः ऋवर्णान्त और उवर्णान्त धातुओं से होता है **ऋदोरप्** (३.३.५७)। घञ् प्रत्यय का अपवाद है अर्थात् घञ् प्रत्यय न लगने की स्थिति में यही होगा। उदाहरण–कृ + अप् = **करः**। शृ + अप् = **शरः** (चीरने वाला, बाण) यु + अप् = **यवः**। लू + अप् = **लवः**। स्तु–**स्तवः**। पू–**पवः** (पवित्र करना)। वि + स्तृ + अप् = **विस्तरः** (शब्दों का फैलाव)। अन्य वस्तुओं के फैलाव के अर्थ में घञ् प्रत्यय लगकर '**विस्तारः**' बनता है जैसे–नगरस्य विस्तारः। पाणिनि का नियम है–**प्रथने वावशब्दे** (३.३.३३)। अर्थात् वि उपसर्ग के बाद शब्द-भिन्न वस्तु के प्रथन (फैलाव) में स्तृ धातु से घञ् होता है, शब्द-प्रथन में तो अप् ही होगा। निस् + चि + अप् = **निश्चयः**। ग्रह्–**ग्रहः**। वृ–**वरः**। गम्–**गमः**, आगमः, निगमः, संगमः। जप्–**जपः**। हन् + अप् = **वधः**। घञ् लगने पर–**घातः**। यम्–**यमः**, संयमः, नियमः।

४. **अच्** (अ)—सामान्यतः इवर्णान्त धातुओं से अच् प्रत्यय लगता है (**एरच्** ३.३.५६)। जैसे–चि-**चयः**। जि–**जयः**। ली–**लयः** (नाश, लोप)। भी–

भयम्। यह नपुंसकलिङ्ग है, जब कि अन्य अच्-प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं। आ + श्रि + अच् = आश्रयः। नी–**नयः**, विनयः, प्रणयः, **परिणयः**, उपनयः।

५. **अ**—यह भाववाचक प्रत्यय प्रत्ययान्त (सन्, क्यच् आदि से युक्त) धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में लगता है **अ प्रत्ययात्** (३.३.१०२)। स्त्रीलिङ्ग होने से टाप् (आ) प्रत्यय भी अनिवार्यतः लगता है। जैसे–कृ + सन् + अ + टाप् = **चिकीर्षा** (कर्तुमिच्छा)। ज्ञा + सन् + अ + टाप् = **जिज्ञासा** (ज्ञातुमिच्छा)। श्रु–**शुश्रूषा** (सुनने की इच्छा, सेवा)। भुज्–**बुभुक्षा** (खाने की इच्छा, भूख)। पा-पिपासा (प्यास, पातुमिच्छा)। पुत्र + काम्यच् + अ + टाप् = **पुत्रकाम्या** (अपना पुत्र होने की इच्छा)। किसी धातु में दीर्घ स्वर तथा हलन्त वर्ण हो तो भी अ प्रत्यय होता है (**गुरोश्च हलः** ३.३.१०३)। जैसे–ईह् + अ + टाप् = **ईहा** (चेष्टा, कामना)। इच्छ् + अ + टाप् = **इच्छा**। ऊह्–**ऊहा** (तर्क)। ईक्ष् = **ईक्षा**, समीक्षा, परीक्षा, वीक्षा। चिन्ता, पूजा, कथा, चर्चा आदि अङ् प्रत्यय से बने हैं।

६. **युच् (अन)**—यह भाववाचक प्रत्यय भी टाप् का ग्रहण करता है। जैसे–वन्द् + युच् + टाप् = **वन्दना**। विद् + युच् + टाप् = **वेदना**, संवेदना। आ + लोच् + युच् + टाप् = **आलोचना**। आ + राध्–**आराधना**। वि + विच्–**विवेचना**। प्र + स्तु + णिच् + युच् + टाप् = **प्रस्तावना**। घट् + युच् + टाप् = **घटना**, दुर्घटना, संघटना। याच्–**याचना**।

अन्य कृत्प्रत्यय

विभिन्न अर्थों में दूसरे कृत्प्रत्यय भी होते हैं जैसे—

i) ईषद्, दुस्, सु के बाद किसी धातु से, सरलता या कठिनता का अर्थ ज्ञात होने पर, **खल् (अ)** प्रत्यय लगता है (ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ३.३.१२६)। जैसे–**ईषत्करः** (थोड़ा सा करने योग्य)। **दुष्करः** (दुस् + कृ + खल्) = जिसे कठिनाई से किया जाय। **सुकरः**–सरलता से करने योग्य। **दुर्गमः**, **सुगमः**। **दुर्लभः**, **सुलभः**।

ii) उपसर्ग के बाद दा या धा धातु से **कि (इ)** प्रत्यय भाव अर्थ में होता है (उपसर्गे घोः किः ३.३.९२) जैसे–सम् + धा + कि = **सन्धिः**। वि + धा–**विधिः**। नि + धा = **निधिः**। सम् + नि + धा + कि = **सन्निधिः**। आ + दा + कि = आदिः। कि प्रत्यय लगने पर धातु के आ का लोप होता है तथा शब्द पुंल्लिङ्ग रहता है। विधि, सन्धि, निधि आदि संस्कृत में पुंल्लिङ्ग हैं। [हिन्दी में 'बुद्धि' के सादृश्य (Analogy) से ये स्त्रीलिङ्ग हो गये हैं।]

iii) यज्, याच्, यत्, प्रच्छ् आदि से **नङ्-प्रत्यय** लगता है जैसे–यज् + नङ् = **यज्ञः** (न् का ञ्)। याच् + नङ् + टाप् = **याच्ञा।** (माँगना), यह स्त्रीलिङ्ग होता है। अन्य शब्द पुंल्लिङ्ग ही होते हैं। यत्–**यत्नः**। प्रच्छ् + नङ् = **प्रश्नः**।

iv) क्त्वा के अर्थ में, वारंवारता (Repetition) का प्रकाशन होने से, क्त्वा के अतिरिक्त **णमुल्-प्रत्यय** भी होता है। इसमें अम् शेष रहता है। धातु के स्वर में वृद्धि या गुण आदेश नियमतः होता है। पद का दो बार प्रयोग करते हैं। जैसे–श्रु + णमुल् = **श्रावंश्रावम्,** क्त्वा–श्रुत्वा श्रुत्वा (= सुन-सुनकर)। पठ्–**पाठं पाठम्,** पठित्वा पठित्वा (पढ़-पढ़कर)। भुज्–**भोजंभोजम्,** भुक्त्वा भुक्त्वा (खा-खाकर)। पा–**पायंपायम्,** पीत्वा-पीत्वा (पी-पीकर)। स्मृ–**स्मारंस्मारम्,** स्मृत्वा स्मृत्वा (याद कर-करके)। ये प्रयोग संस्कृत भाषा के वाग्व्यवहार (Idiom) के सूचक हैं।

अभ्यास - १४

१. निम्नलिखित शब्दों की व्युत्पत्ति दें—

(क)	शयितव्यम्	दर्शनीयः	पूज्यः	द्रष्टव्यः
	गद्यम्	वध्यः	वाह्यम्	शिष्यः
	स्तुत्यः	गेयम्	क्षन्तव्यम्	रक्षणीयम्
	बोद्धव्यः	वोढव्यः	लभ्यः	पेयम्
	नेतव्यम्	बोधः	स्मृत्वा	गानम्
(ख)	दृष्टवती	क्षीणः	दत्तवान्	पक्वः
	सुप्तः	दृष्टम्	जातः	अधीतम्
	स्थितवान्	हतः	उषितः	उक्तम्
	बद्धः	लब्धवान्	गतः	श्रुतम्
(ग)	शृण्वन्	लभभानः	शयानः	शक्नुवन्
	पठिष्यमाणम्	अवकीर्य	मुक्त्वा	निबध्य
	प्रष्टुम्	आनेतुम्	स्रष्टुम्	सोढुम्
	वक्तुम्	आदाय	भावना	लब्धुम्

२. निम्नलिखित वाक्यों को एक-एक शब्द में रूपान्तरित करें—

भाष्यं करोति सः ....

अंशं हरति सः ....

पूजामर्हति सः ....

शिलायां शेते सः ....

प्रीणातीति ....
गृहे तिष्ठतीति ....
निशायां चरतीति ....
अन्तं गच्छतीति ....
प्रियं वदतीति ....
पतिं वृणोति या ....
आत्मानं पण्डितं मन्यते सः ....
पावयति इति ....
अलंकर्तुं शीलमस्य ....

३. निम्नलिखित के योग से शब्द-रचना करें–

ग्रह्+णिनि	....	दा+ण्वुल्	....
वह्+तृच्	....	बुध्+तृच्	....
पू+ल्यु	....	गम्+सन्+उ	....
ज्ञा+सन्+उ	....	दृश्+क्तिन्	....
उत्+मद्+घञ्	....	वि+नी+अच्	....
श्रु+सन्+अ+टाप्	....	परि+ईक्ष्+अ+टाप्	....
सम्+धा+कि	....	प्रच्छ्+नङ्	....

*

१२ स्त्री-प्रत्यय-प्रकरण
Feminine Suffixes

जिन प्रत्ययों के लगने पर प्रातिपदिक (मूल शब्द) स्त्रीलिङ्ग बनता है, उन्हें स्त्री-प्रत्यय कहते हैं। कुछ शब्द तो स्वतः स्त्रीलिङ्ग रहते हैं जिनका निरूपण 'लिङ्गानुशासन' में किया जाता है जैसे–रमा, लता, माला, धेनु, वधू, नौ, मातृ, स्वसृ, विपद्, शरद्, उषस्, विंशति, वाच्, गिर्, दिश् आदि। कुछ प्रत्ययों के लगने पर स्त्रीलिङ्ग–रूप ही होते हैं जैसा कृत्प्रत्यय-प्रकरण में हमने देखा है–मति, बुद्धि, दृष्टि आदि क्तिन्-प्रत्ययान्त शब्द। इसी प्रकार जिज्ञासा, पिपासा, तृष्णा, ईहा आदि शब्द भी स्त्रीलिङ्ग होते हैं। स्त्री-प्रत्ययों के लगने से मूल शब्द (प्रातिपदिक) स्त्रीलिङ्ग बन जाते हैं। पाणिनि ने अष्टाध्यायी के चतुर्थ अध्याय के आरम्भ में स्त्री-प्रत्ययों का निरूपण किया है (४.१.३–७७)।

पाणिनि के अनुसार स्त्री-प्रत्ययों की संख्या ८ है–'आ' के रूप में **टाप्, डाप्** और **चाप्**; 'ई' के रूप में **ङीप्, ङीष्** और **ङीन्**; **ऊङ्** (ऊ) एवं **ति**। इनमें टाप् और ङीप् प्रमुख हैं जिनके सर्वाधिक उदाहरण हैं। अनुबन्धों (प्,ष्,न्,च्) के कारण वैदिक स्वर का अन्तर होता है।

१. **टाप् (आ)**—अज आदि गण के शब्दों तथा सामान्यतः अकारान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में टाप्–प्रत्यय लगता है।[१] जैसे–अज + टाप् = **अजा**। अश्व–**अश्वा**। चटक–**चटका** (गोरैया पक्षी Sparrow)। मूषिक–**मूषिका**। बाल–**बाला**। वत्स–**वत्सा**। सत्पुष्प–**सत्पुष्पा**। शूद्र–**शूद्रा** (शूद्र जाति की स्त्री)। त्रिफल–**त्रिफला**।[२] किन्तु **शूद्री** = शूद्र की स्त्री।

(क) **अकारान्त शब्दों से टाप्**—रामा, कन्या, खट्वा, गता, मता, दृष्टा, कृशा, दीना, सरला, सुशीला, मनोरमा, मनोहरा, चपला, प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, अनुरूपा, निर्मूला। **हलन्त शब्दों से**–वाच्-**वाचा**, दिश्-**दिशा**, गिर्-**गिरा**, क्षुध्-**क्षुधा**, रुज्-**रुजा**, स्रज्-**स्रजा**, दृश्-**दृशा**। ज्येष्ठ-**ज्येष्ठा**। कनिष्ठा, मध्यमा, कोकिला इत्यादि।

---

१. अजाद्यतष्टाप् (४.१.४)

२. त्रिफला = त्रयाणां फलानां समाहारः। त्रीणि फलानि यस्याः सा (बहुव्रीहि समास)–इस अर्थ में त्रिफली संहतिः–ऐसा रूप ङीप् प्रत्यय से होता है।

(ख) जिन शब्दों के अन्त में 'अक' हो उनसे टाप् लगने पर अ का इ हो जाता है–सर्वक–**सर्विका**। कारक–**कारिका**। वाचक–**वाचिका**। पालक–**पालिका**। पाठक–**पाठिका**। पाचक–**पाचिका**। सेवक–**सेविका**। नायक–**नायिका**। (प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः ७.३.४४)।

(ग) कुछ 'अक' वाले शब्दों में इकार नहीं होता है या अर्थभेद से होता है। जैसे–क्षिपका, ध्रुवका, **कन्यका**, उपत्यका, अधित्यका, चटका। **तारका** (तारा अर्थ में)–**तारिका** (रक्षा करने वाली)। **वर्णका** (वस्त्र)–**वर्णिका** (वर्णन करने वाली)। **वर्तका-वर्तिका** (बटेर, मतान्तर से विकल्प है)। पुत्रका-पुत्रिका (बेटी), सूतका-सूतिका (हाल में प्रसव किये हुए स्त्री), वृन्दारका-वृन्दारिका (देवी)। आर्यका-आर्यिका, गङ्का-गङ्किका। इन सबमें विकल्प है।

२. **डाप् (आ)**—मन् से अन्त होने वाले प्रातिपदिकों से एवम् अन् से अन्त होने वाले बहुव्रीहि समास के शब्दों से वैकल्पिक डाप्-प्रत्यय स्त्रीलिङ्ग में होता है। जैसे–सीमन् + डाप् (आ)–डित् के कारण 'अन्' (टि-भाग) का लोप होकर सीम् + आ = **सीमा** (Boundary)। दामन् + डाप् = **दामा** (प्रकाश, रस्सी)। दोनों के रूप दो प्रकार से होंगे–सीमानौ-सीमानः अथवा सीमे-सीमाः (लता के समान)। दामानौ-दामानः अथवा दामे-दामाः। बहवो यज्वानः (यज्ञ करने वाले) यस्यां सा–इस विग्रह वाले बहुव्रीहि समास में बहुयज्वन् + डाप् = **बहुयज्वा** नगरी। **बहुराजा** पृथ्वी (जहाँ अनेक राजा हैं = बहवो राजानो यस्यां सा)।

३. **चाप् (आ)**—तद्धित के यङ् प्रत्यय से बने शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में चाप्–प्रत्यय लगता है। (**यङश्चाप्** ४.१.७४)। कुमुदगन्धि की अपत्य–स्त्री के अर्थ में ष्यङ् प्रत्यय के बाद चाप् लगने पर–कुमुदगन्धि + ष्यङ् = कौमुदगन्ध्य + चाप् = **कौमुदगन्ध्या**। वाराह + ष्यङ् = वाराह्य + चाप् = **वाराह्या** (वाराह की पुत्री)। (देखें–सि.कौ., सू.–१२००)। करीषगन्धि + ष्यङ् + चाप् = **कारीषगन्ध्या**। अम्बष्ठ + अण् = आम्बष्ठ + ष्यङ् + चाप् = आम्बष्ठ्या। ये संस्कृत में भी विरल (Rare) शब्द हैं।

४. **ङीप् (ई)**—सामान्यतः ऋकारान्त और नकारान्त प्रातिपदिकों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप्-प्रत्यय होता है (**ऋन्नेभ्यो ङीप्** ४.१.५)।

ऋकारान्त के उदाहरण—दातृ + ङीप् = **दात्री** (देनेवाली)। यण् सन्धि से ऋ का र् (दात् र् ई = दात्री)। हन्तृ-**हन्त्री**। गम् + तृच् + ङीप् = **गन्त्री** (जानेवाली)। कृ + तृच् + ङीप् = **कर्त्री** (करनेवाली)। धातृ + ङीप् = धात्री, **विधात्री**। भोक्तृ + ङीप् = **भोक्त्री**। ध्यान रहे कि उच्चारण दोनों का समान होता है किन्तु प्रयोग या लेखन में अन्तर स्पष्ट हो जाएगा।

नकारान्त के उदाहरण—

कारिन् + ङीप् = **कारिणी** (न का णत्व, करनेवाली)।

ग्राहिन् + ङीप् = **ग्राहिणी** (ग्रहण करनेवाली)।

धारिन् + ङीप् = **धारिणी** (धारण करनेवाली)।

शोभिन् + ङीप् = **शोभिनी** (शोभा युक्त)।

गुणिन्–**गुणिनी**। मालिन्–**मालिनी** (मालावाली)।

पुँल्लिङ्ग रूप–कारी, ग्राही, धारी, शोभी, गुणी इत्यादि। धनिन्–**धनिनी**।

गृहिन्–**गृहिणी**। मायाविन्–**मायाविनी**। तपस्विन्–**तपस्विनी**। यशस्विन्–**यशस्विनी**। मनस्विन्–**मनस्विनी**। अनुरागिन्–**अनुरागिणी**। राजन् + ङीप्–उपधालोप होकर–**राज्ञी** (राज्ञ् + ई)। मघवन् + ङीप् – व् का उ (सम्प्रसारण) होने से **मघोनी** (= इन्द्राणी)। श्वन्–**शुनी** (कुतिया, Bitch)। दण्डिन्–**दण्डिनी** (दण्डधारिणी)। कामिनी, उपकारिणी, अनुगामिनी इत्यादि।

अपवाद—यदि कोई नकारान्त शब्द 'वन्' से अन्त हो तो न् का र् भी हो जाता है **(वनो र च** ४.१.७)। जैसे–पीवन्–**पीवरी** (मोटी स्त्री)। शर्वन्–**शर्वरी** (रात्रि)। शक्वन्–**शक्वरी** (एक वैदिक छन्द का नाम)। बहुधीवन्–**बहुधीवरी** (अनेक मछुआरों से भरी नगरी)। वैकल्पिक रूप से 'बहुधीवा' भी। यज्वन्–**यज्वरी** (यज्ञ करने वाली)। सुत्वन्–**सुत्वरी** (जिस स्त्री ने सोमरस तैयार किया है)।

(क) **उगितश्च** (४.१.६)—जिस शब्द की रचना में 'उ' या 'ऋ' वाला प्रत्यय लगा है (उक् = उ ऋ ऌ, इत् = लोप होने वाला) उससे भी स्त्रीलिङ्ग में ङीप् (ई) प्रत्यय लगता है। डवतु, वतु, मतुप् क्तवतु, क्वसु, ईयसुन् आदि उकार की इत्संज्ञा वाले प्रत्यय हैं, इनमें उ का लोप होता है। शतृ प्रत्यय में ऋ की इत्संज्ञा (लोप) होती है। अतः इनसे बने शब्दों का स्त्रीलिङ्ग ङीप् से बनता है।

उदाहरण (उ की इत्संज्ञा)—

i) भा + डवतु = भवत् (आप) + ङीप् = **भवती** (स्त्री के लिए 'आप')

ii) इदम् + वतु = इयत् (इतना) + ङीप् = **इयती** (इतनी)
एतत् + वतु = एतावत् (इतना) + ङीप् = **एतावती** (इतनी)
किम् + वतु = कियत् (कितना) + ङीप् = **कियती** (कितनी)
तद् + वतु = तावत् (उतना) + ङीप् = **तावती** (उतनी)
यद् + वतु = यावत् (जितना) + ङीप् = **यावती** (जितनी)

iii) श्री + मतुप् = श्रीमत् (धनवान्) + ङीप् = **श्रीमती** (धनवती)
गुण + मतुप् = गुणवत्, ङीप् लगकर **गुणवती** (गुणों से भरी)
शील + मतुप् = शीलवत्, ङीप् – **शीलवती** (शिष्टाचारवाली)
बुद्धिमत्–**बुद्धिमती**, प्रकाशवत्–**प्रकाशवती**
पुत्रवत्–**पुत्रवती** बलवत्–**बलवती**

iv) कृ + क्तवतु = कृतवत्, ङीप् – **कृतवती**
गम् + क्तवतु = गतवत्, ङीप् – **गतवती**
श्रुतवती, पठितवती, गृहीतवती, दृष्टवती, रुदितवती इत्यादि।

v) नि + सद् + क्वसु = निषेदिवस्, ङीप् – **निषेदुषी** (जो बैठ चुकी हो)।
उप + इ + क्वसु = उपेयिवस्, ङीप् – **उपेयुषी** (जो पास जा चुकी हो)।
विद् + वसु = विद्वस्, ङीप् – **विदुषी** (पण्डिता)।

vi) प्रिय + ईयसुन् = प्रेयस्, ङीप् – **प्रेयसी** (अधिक प्रिय स्त्री)।
गुरु + ईयसुन् = गरीयस्, ङीप् – **गरीयसी** (अधिक बड़ी)
महत् + ईयसुन् = महीयस्, ङीप् – **महीयसी** (अधिक बड़ी, पूज्यतर)
लघु–लघीयस्–**लघीयसी**। युवन् (अल्प)–कनीयस्–**कनीयसी** (छोटी)
पटु–पटीयस्–**पटीयसी**। युवन्–यवीयस्–**यवीयसी** (छोटी)
अल्प–अल्पीयस्–**अल्पीयसी** (छोटी)

टिप्पणी—उपर्युक्त शब्दों के पुंल्लिङ्ग रूप भवान्, इयान्, एतावान्, तावान्, श्रीमान्, गुणवान्, बुद्धिमान्, कृतवान्, निषेदिवान्, विद्वान्, प्रेयान् इत्यादि होते हैं।

शतृ-प्रत्ययान्त के उदाहरण (ऋ की इत्संज्ञा)—

गम् + शतृ = गच्छत् + ङीप् = **गच्छन्ती** (जाती हुई)।

दृश् + शतृ = पश्यत् + ङीप् = **पश्यन्ती** (देखती हुई)।

रुद् + शतृ + ङीप् = **रुदती** (रोती हुई)। श्रु + शतृ + ङीप् = **शृण्वती** (सुनती हुई)

कृ + शतृ + ङीप् = **कुर्वती**। दा + शतृ + ङीप् = **ददती**। भू + शतृ + ङीप् = **भवन्ती**।

नुम् विधान—शतृ + ङीप् होने पर भ्वादिगणीय और दिवादिगणीय धातुओं से नुम् (न्) लगना अनिवार्य है–भवन्ती, पचन्ती, धावन्ती, दीव्यन्ती, कुप्यन्ती, क्रामन्ती इत्यादि। चूँकि चुरादिगणीय धातुओं से भी णिच् के बाद शप् लगता है अतः उनमें भी इस स्थिति में नुम् लगता है जैसे–**चोरयन्ती** (चुराती हुई), **कथयन्ती, चिन्तयन्ती** इत्यादि (**शप्श्यनो–र्नित्यम्** ७.१.८१)। तुदादिगण में अवर्णान्त शब्दों के बाद वैकल्पिक नुम् होता है (**आच्छीनद्योर्नुम्** ७.१.८०) जैसे–**तुदती-तुदन्ती, इच्छती-इच्छन्ती**। इसी प्रकार लृट् लकार में शतृ-प्रत्यय से स्यत्-ष्यत् बना हो तो उससे भी वैकल्पिक नुम् होता है–**करिष्यती-करिष्यन्ती** अदादिगण की आकारान्त धातुओं से शतृ लगने पर भी वैकल्पिक नुम् होता है (आच्छीनद्योर्नुम्) जैसे–**याती-यान्ती**। अन्य वर्णों के बाद तथा दूसरे धातुगणों में नुम् नहीं होता–कुर्वती, घ्नती, तन्वती। अभ्यस्त धातुओं में भी नुम् नहीं लगता–दधती, ददती, शासती, बिभ्रती। (**नाभ्यस्ताच्छतुः** ७.१.७८)

(ख) निम्नलिखित प्रत्ययों के लगने पर स्त्रीलिङ्ग में ङीप् प्रत्यय होता है—

i) **टित्**—ट् की इत्संज्ञावाला जैसे–कुरुचर (ट-प्रत्यय)–**कुरुचरी**। **यशस्करी, अर्थकरी**, निशाचरी, **चतुर्थी** (चतुर् + थट् + ङीप्), **पञ्चमी** (पञ्चन् + मट् + ङीप्), **षष्ठी**, सप्तमी, नवमी, दशमी, **एकादशी** (एकादश + डट् + ङीप्), **दयामयी** (मयट्), गुणमयी इत्यादि।

ii) **ढ (एय)**[1] —विनता + ढक् + ङीप् = **वैनतेयी**। **सारमेयी** (कुतिया, सरमा + ढक् + ङीप्)। अतिथि + ढञ् (अतिथिषु साधुः) + ङीप् = **आतिथेयी**।

iii) **अण् (अ)**—कुम्भकार (अण्)–**कुम्भकारी, श्रावणी**, कार्तिकी, चैत्री, **पौर्णमासी**।

iv) **अञ् (अ)**—बिदस्य गोत्रापत्यं स्त्री, बैद + ङीप् = **बैदी**। **पौत्री, दौहित्री, पाञ्चाली**।

v) **द्वयसच्**—प्रमाण (माप) के अर्थ में प्रातिपदिक से **द्वयसच्** (द्वयस), **दघ्नच्** (दघ्न) और **मात्रच्** (मात्र)–ये तीन प्रत्यय होते हैं (**प्रमाणे द्वयसज् दघ्नञ्मात्रचः** ५.२.३७)। इन तीनों प्रत्ययों के बाद

१. (आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् (७.१.२) से फ = आयन, ढ = एय, ख = ईन, छ = ईय, घ = इय होता है।)

स्त्रीलिंग के ङीप् प्रत्यय होता है। जैसे–**जानुद्वयसी, जानुदघ्नी, जानुमात्री** (घुटने भर पानी वाली) नदी।

vi) **तयप्**—संख्यावाचक शब्दों से अवयव अर्थ में तयप् (तय) प्रत्यय लगता है, इससे स्त्रीलिङ्ग में ङीप् होता है। त्रयः अवयवा अस्याः– त्रितय + ङीप् = त्रितयी। चतुष्टयी, पञ्चतयी, दशतयी (ऋग्वेद-संहिता)। द्वि और त्रि के बाद तयप् का अयच् आदेश होता है–द्वय–**द्वयी**। त्रय–**त्रयी**। (**संख्याया अवयवे तयप्, द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा** ५.२.४२-४३)।

vii) **ठक्** (**इक**)—पक्ष + ठक् = **पाक्षिक**, ङीप्–**पाक्षिकी**। संसार + ठक् = **सांसारिक-सांसारिकी**। भूत + ठक् = **भौतिक-भौतिकी**। वेद–**वैदिक-वैदिकी** (वेदविषयक)। मूल–**मौलिक-मौलिकी**।

viii) **ठञ् (इक)**—लवण + ठञ् + ङीप् = **लावणिकी** (नमक से युक्त)।

ix) **कञ् (अ)**—यह कृत्प्रत्यय है। ऊपर वाले सभी तद्धित थे। त्यद् आदि कुछ सर्वनाम शब्दों के बाद ज्ञान अर्थ से भिन्न अर्थ वाली दृश् धातु से कञ् (अ), क्विन् और क्स प्रत्यय होते हैं। जैसे–तद् + दृश् + कञ् = तादृशः (पुं.), ङीप् लगने पर **तादृशी**। यद्–**यादृशी**। अस्मद्–**अस्मादृशी, मादृशी**। युष्मद्–**युष्मादृशी, त्वादृशी।** सर्वत्र 'समान' का अर्थ है–उसके समान, जिसके समान, हमारे समान, तुम्हारे समान। इदम् + दृश् + कञ् + ङीप् = **ईदृशी** (इस प्रकार की)। किम् + दृश् + कञ् + ङीप् = **कीदृशी** (किस तरह की)।

x) **क्वरप्**—नश् + क्वरप् = नश्वर + ङीप् = **नश्वरी**। जि + क्वरप् + ङीप् = **जित्वरी** (विजय करनेवाली)। इ + क्वरप् + ङीप् = **इत्वरी** (घुमक्कड़ स्त्री)। गम्–**गत्वरी** (जाने वाली)।

(ग) **वयसि प्रथमे** (४.१.२०)—प्रथम (तथा द्वितीय)[१] वयोवाचक अकारान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप्–प्रत्यय होता है। जैसे–कुमार + ङीप् = **कुमारी**। **किशोरी, तरुणी, वधूटी** (युवति)। किन्तु वृद्धा, स्थविरा इत्यादि में नहीं हुआ क्योंकि ये अन्तिम अवस्था के वाचक हैं। इनसे टाप् लगा। कन्या, बाला, वत्सा ये अपवाद (Exception) हैं।

---

१. वार्तिक–वयस्यचरमे इति वाच्यम्। अन्तिम छोड़कर अन्य वयोवाचक शब्दों से ङीप्।

(घ) **द्विगोः** (४.१.२१)—द्विगु समास के अकारान्त शब्दों से स्वार्थ में ही (स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए नहीं) ङीप् होता है। जैसे–त्रयाणां लोकानां समाहारः = **त्रिलोकी**। **पञ्चमूली** (पाँच जड़रूप द्रव्यों का समूह)। **सप्तशती, अष्टाध्यायी,** दशाक्षरी, एकश्लोकी, पञ्चपादी, **त्रिपादी** इत्यादि। त्रिभुवनम्, पञ्चपात्रम् आदि अपवाद हैं। 'त्रिफला' अजादिगण में पठित है।

(ङ) **अन्तर्वत्पतिवतोर्नुक्** (४.२.३२)—अन्तर्वत् और पतिवत्–इन दो शब्दों से अन्त में नुक् (नकार आगम) होता है, अतः स्त्रीलिङ्ग में नकारान्त होने से ङीप् लगता है–अन्तर्वत्न् ई = **अन्तर्वत्नी** (गर्भवती स्त्री)। पतिवत् न् ई = **पतिवत्नी** (जिसका पति जीवित है वह स्त्री)। यहाँ व का निपातन है अन्यथा पति से मतुप् लगने पर 'पतिमत्' होकर ङीप् लगता है–**पतिमती पृथ्वी** (स्वामी से युक्त पृथ्वी)।

(च) **पत्युर्नो यज्ञसंयोगे** (४.१.३३)—'यज्ञफल को साथ-साथ लेने वाली' ऐसा अर्थ रहे तो (स्त्रीलिङ्ग में) पति शब्द के इ का न् होकर नियमतः (ऋन्नेभ्यो ङीप्) ङीप्–प्रत्यय लगता है–पति (इ का न्) + ङीप् (ई) = **पत्नी**। प्रयोग है–**यजमानस्य पत्नी** (यज्ञ फलभोक्त्री)। यज्ञफल का अर्थ न हो तो 'पति' शब्द ही रहेगा–सभायाः पतिः, ग्रामस्य पतिः (मुखिया स्त्री या पुरुष)। इयं सभापतिः, राष्ट्रपतिः इत्यादि।

i) **सामान्यत**—पति-शब्दान्त समास होने पर, पति शब्द को नकारादेश वैकल्पिक होता है (**विभाषा सपूर्वस्य** ४.१.३४) जैसे–वृद्धः पतिः यस्याः सा–**वृद्धपत्नी** या **वृद्धपतिः**। स्थूलपतिः, स्थूलपत्नी। इयं **गृहपतिः, गृहपत्नी** वा। किन्तु 'सपत्नी' आदि कुछ शब्दों में नकारादेश अनिवार्य है–**सपत्नी** (समानः पतिः यस्याः सा), **एकपत्नी** (एकः पतिः यस्याः, साध्वी, पतिव्रता); **वीरपत्नी, भ्रातृपत्नी, पुत्रपत्नी** इत्यादि।

ii) **ङीप् के अन्तर्गत कुछ अन्य शब्द हैं**—अग्नि + ङीप् = **अग्नायी** (अग्नि देवता की कल्पित पत्नी)। मनु + ङीप् = **मनायी, मनावी** (मनुपत्नी)। रोहित + ङीप् = रोहिणी, रोहिता भी (लाल रंग की)। **महाराजी** (राजा की स्त्री), **महाराज्ञी** = महती राज्ञी। **स्थला** = कृत्रिम भूमि, **स्थली** = प्राकृतिक भूमि।

५. **ङीष् (ई)**—इस प्रत्यय का विधान अनेक सूत्रों में है। प्रमुख सूत्र है-**षिद्–गौरादिभ्यश्च** (४.१.४१) अर्थात् ष् के अनुबन्ध (इत्संज्ञा) से बने अकारान्त

शब्दों से एवं गौर आदि शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय लगता है। **षित् के उदाहरण**–नृत् + ष्वुन् (वु = अक) = नर्तक + ङीष् = **नर्तकी**। रञ्ज् + ष्वुन् + ङीष् = **रजकी**। शिल्पी (क्रियाकौशल) के अर्थ में ष्वुन् प्रत्यय होता है। मृगस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः–मृग + अक्षि + षच् (समासान्त प्रत्यय) = मृगाक्ष + ङीष् = **मृगाक्षी**। मीनाक्षी, विशालाक्षी।

गौरादिगण व्यापक है (= आकृतिगण है)। इसमें **गौरी, मत्सी** (मत्स्य + ङीष्), **मानुषी,** आमलकी, बदरी (बेर), पिप्पली, पृथिवी, **सुन्दरी, नटी,** वृषी, हयी, **हरिणी,** भृङ्गी, मही, **शुनी** (कुतिया), देहली, रजनी, **कदली,** गौतमी, मातामही, पितामही आदि का समावेश होता है।

(क) **वोतो गुणवचनात्** (४.१.४४)—उकारान्त गुणवाचक शब्द से स्त्रीलिङ्ग में विकल्प से ङीष्-प्रत्यय लगता है (वोतः = वा + उतः)। जैसे–**पटुः–पट्वी। लघुः–लघ्वी।** तनुः–तन्वी (पतली)। साधुः–साध्वी। गुरुः–गुर्वी। ये दोनों स्त्रीलिङ्ग हैं। उकारान्त शब्दों का रूप 'धेनु' के समान और ईकारान्त का नदी के समान होगा।

इसी प्रकार निम्नलिखित इकारान्त शब्दों से भी विकल्प से ङीष् होता है (**बह्वादिभ्यश्च** ४.१.५५)–बहुः–बह्वी, पद्धतिः–पद्धती, सूचिः–सूची, धूलिः–धूली, भूमिः–भूमी, राजिः–राजी (समूह, पंक्ति), श्रेणिः–श्रेणी, अवनिः–अवनी, तरणिः–तरणी; रजनिः–रजनी, धरणिः–धरणी। इनके रूप क्रमशः मति और नदी के समान होते हैं।

(ख) **पुंयोगादाख्यायाम्** (४.१.४८)—पुरुषवाचक शब्द से उसकी भार्या के अर्थ में स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय होता है। जैसे–गोपस्य स्त्री = गोप + ङीष् = गोपी। ब्राह्मणी, नापिती, शूद्री इत्यादि। सूर्य शब्द से देवता अर्थ में–**सूर्या** (सूर्य + चाप्)। किन्तु, सूर्यस्य मानुषी स्त्री = **सूरी** (= कुन्ती)। किन्तु पालक से अन्त होनेवाले गोपालक आदि शब्दों से स्त्री अर्थ में टाप् ही होता है, ङीष् नहीं–गोपालकस्य स्त्री = **गोपालिका**। **अश्वपालिका**।

(ग) इन्द्र, वरुण, भव, शर्व (शिव), रुद्र, मृड (= शिव), हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल और आचार्य शब्द से आनुक् (आन्) लगकर ङीष् प्रत्यय होता है। इनमें कहीं-कहीं अर्थ का भेद भी है। इन्द्र आदि छह शब्दों से तथा मातुल और आचार्य से पुंयोग (उनकी भार्या) के अर्थ में यह व्यवस्था है–इन्द्रस्य स्त्री–इन्द्र + आनुक् + ङीष् = **इन्द्राणी**। वरुणस्य स्त्री = **वरुणानी**। भवस्य स्त्री = **भवानी**, शर्व = **शर्वाणी**, रुद्र–**रुद्राणी, मृड–मृडानी** (चारों का अर्थ शिव-पत्नी पार्वती है)।

हिम और अरण्य से महत् अर्थ में यह व्यवस्था है। महत् हिमम्–**हिमानी**। महद् अरण्यम्–**अरण्यानी** (बड़ा जंगल)। यव से दोष अर्थ में–दुष्टः यवः–**यवानी** (दूषित जौ)। यवन शब्द से लिपि अर्थ में–यवनानां लिपिः–**यवनानी**। यवन की स्त्री के अर्थ में यवन + ङीष् = **यवनी**।

मातुल और उपाध्याय–इन दो शब्दों से 'आनुक्' आगम विकल्प से होता है, ङीष् तो होगा ही। मातुलस्य स्त्री–**मातुलानी, मातुली** (मामी, Maternal aunt)। उपाध्यायस्य स्त्री–**उपाध्यायानी, उपाध्यायी** (शिक्षक की स्त्री)। आचार्यस्य स्त्री = **आचार्यानी** (आचार्यपत्नी); इसमें णत्व नहीं होता। किन्तु जो स्वयं पढ़ाती हो वह **'आचार्या'** (टाप्) है।

अर्य (वैश्य) और क्षत्रिय शब्द से स्वार्थ में (पुंयोग न होने पर) आनुक् और ङीष् विकल्प से होता है–**अर्याणी, अर्या** (= स्वामिनी या वैश्य जाति की स्त्री)। **क्षत्रियाणी, क्षत्रिया** (क्षत्रिय जाति की स्त्री)। पुंयोग में (उनकी स्त्री के अर्थ में) **अर्यी** और **क्षत्रियी** (ङीष् प्रत्यय से) बनते हैं।

(घ) **स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्** (४.१.५४)—उपसर्जन (गौण, अप्रधान) रूप में, कोई अकारान्त तथा असंयुक्त वर्ण की उपधावाला स्वाङ्गवाचक शब्द हो तो उससे, स्त्रीलिङ्ग में, ङीष्–प्रत्यय विकल्प से लगता है। सामान्यतः बहुव्रीहि समास में दोनों पद उपसर्जन होते हैं क्योंकि अन्य पदार्थ प्रधान होता है। अतः इस सूत्र के उदाहरणों में बहुव्रीहि समास के शब्द ही दिये जाते हैं। उत्तरपद में अकारान्त स्वाङ्गवाचक शब्द रहे जिनकी उपधा में पूरा वर्ण हो, संयुक्त नहीं जैसे–मुख, कर, नख, केश आदि (गुल्फ, कर्ण, पार्श्व आदि नहीं)। 'स्वाङ्ग' यहाँ पारिभाषिक (Technical) शब्द है, अपने अङ्ग के अर्थ में नहीं। इसके तीन अर्थ हैं जो क्रमशः उदाहरणों के साथ दिये जाते हैं—

१. **अद्रवं मूर्तिमत् स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम्**—स्वाङ्ग वह है जो द्रवरूप न हो ('सुस्वेदा' में स्वेद-पसीना द्रवरूप है, अतः स्वाङ्ग नहीं), जो आकार-रूप हो ('सुज्ञाना' में ज्ञान आकार-रूप नहीं, अतः स्वाङ्ग नहीं है), जो प्राणी में स्थित हो ('सुमुखा शाला' में मुख स्वाङ्ग नहीं, क्योंकि प्राणी में नहीं है, मकान के मुँह का बोधक है), किसी विकार से उत्पन्न न हो ('सुशोफा' में शोफ अर्थात् सूजन स्वाङ्ग नहीं, क्योंकि शरीर के विकार के रूप में है)–इसीलिए इनमें ङीष् नहीं लगा है, टाप् का प्रयोग है। **'चन्द्रमुखी नायिका'** में मुख इनमें किसी कोटि में न होने से स्वाङ्ग है, ङीष् हुआ। विकल्प से **'चन्द्रमुखा'** भी सम्भव है किन्तु प्रचलित प्रयोग नहीं।

२. **अतत्स्थं तत्र दृष्टं च**—स्वाङ्ग वह भी है जो प्राणी में अभी न हो किन्तु कभी प्राणी में देखा गया हो जैसे–गली में केश फेंके हुए हों और वे किसी प्राणी के हों तो 'केश' स्वाङ्ग है। इसीलिए **सुकेशी सुकेशा वा रथ्या** (सुन्दर केशों से पूर्ण गली) में ङीष् और टाप् दोनों का वैकल्पिक प्रयोग है। **विकीर्णकेशी-विकीर्णकेशा श्मशानभूमिः।**

३. **तेन चेत् तत् तथायुतम्**—स्वाङ्ग वह भी है जो प्राणी के ही समान अप्राणी में भी दिखाई पड़े या वर्तमान हो जैसे किसी प्रतिमा में मुख, स्तन आदि अङ्ग। इसीलिए **सुमुखी-सुमुखा प्रतिमा, सुस्तनी-सुस्तना प्रतिमा** प्रयोग होते हैं जिनमें ङीष् और टाप् दोनों का विकल्प है। 'सुगुल्फा' में गुल्फ शब्द की उपधा में संयुक्ताक्षर है अतः ङीष् नहीं हुआ, केवल टाप् लगा है।

अपवाद—कुछ स्वाङ्गवाचक शब्दों के रहने से ङीष्–टाप् दोनों की अनुमति है (४.१.५५) जैसे–नासिका, उदर, ओष्ठ, जंघा, दन्त, कर्ण और शृङ्ग। उदाहरण–तुङ्गनासिकी-तुङ्गनासिका (ऊँची नाक वाली), कृशोदरी-कृशोदरा (पतले पेटवाली), बिम्बोष्ठी-बिम्बोष्ठा, सुदन्ती-सुदन्ता, चारुकर्णी-चारुकर्णा, तीक्ष्णशृङ्गी-तीक्ष्णशृङ्गा। सामान्यतः दो से अधिक स्वरों वाले स्वाङ्गशब्दों से उक्त स्थिति (उपसर्जन, असंयोगोपध, अकारान्त) में ङीष् नहीं होता–**मृगनयना, चारुदशना, लोलरसना** (चंचल जीभवाली)। सबमें टाप्-प्रत्यय लगा है।

(ङ) **जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्** (४.१.६३)—जो शब्द सदैव स्त्रीलिङ्ग ही हो (स्त्रीविषय) उससे भिन्न अकारान्त जातिवाचक शब्द से, जिसकी उपधा में य् नहीं हो (अ-योपधात्), स्त्रीलिङ्ग में ङीष् (ई) प्रत्यय लगता है। यहाँ 'जाति' शब्द भी पारिभाषिक है।[१]

i) कोई अपने अवयव-संस्थान (आकार-प्रकार) से पहचाना जाय तो वह जाति है (आकृतिग्रहणा जातिः) जैसे–काक, मयूर।

ii) सभी लिङ्गों में प्रयुक्त न होने पर (जैसे–तटः, तटी, तटम् जैसा न होने पर) एक बार कह देने से सर्वत्र ग्राह्य हो (असर्वलिङ्गत्वे सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या) जैसे–वृषल-**वृषली**।

iii) शाखाओं के साथ गोत्रबोधक शब्द (गोत्रं च चरणैः सह) जैसे–कठ-**कठी**। औपगव-**औपगवी**। ये वैदिक शाखाओं या गोत्रों के बोधक हैं।

---

१. आकृतिग्रहणा जातिः, लिङ्गानां च न सर्वभाक्। सकृदाख्यात-निर्ग्राह्या, गोत्रं च चरणैः सह।।

उदाहरण—मयूर + ङीष् = **मयूरी**। विहग-**विहगी। हंसी, काकी, मृगी, असुरी**। यकार उपधा वाले शब्द क्षत्रिय, वैश्य आदि से, जातिवाचक होने पर भी ङीष् न होकर **क्षत्रिया, वैश्या** आदि होते हैं। किन्तु इस वर्ग में अपवाद रूप से हय, गवय, मत्स्य, मनुष्य इत्यादि शब्दों से ङीष् होता है। अतः हयी, (घोड़ी), गवयी, **मत्सी, मनुषी** इत्यादि शब्द होते हैं। सदैव स्त्रीलिङ्ग रहने वाले सारिका, मक्षिका, पिपीलिका, माला, बलाका इत्यादि शब्द इस सूत्र की परिधि में नहीं आते। वे 'स्त्रीविषय' (सदा स्त्रीलिङ्ग) शब्द हैं।

i) मनुष्य जाति के वाचक इकारान्त शब्दों से भी ङीष् होता है जैसे–दक्ष की सन्तान–दक्ष + इञ् = दाक्षिः, ङीष् लगकर **दाक्षी**। 'तित्तिरि' मनुष्य जाति का नहीं है अतः इससे ङीष् नहीं होगा।

६. **ङीन् (ई)—शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्** (४.१.७३) शार्ङ्गरव आदि शब्दों से तथा अञ्–प्रत्ययान्त शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीन्-प्रत्यय लगता है जैसे–शार्ङ्गरव की स्त्री = **शार्ङ्गरवी**। कापटव–**कापटवी**। बैदस्य स्त्री = **बैदी** (बिद + अञ् + ङीन्) वात्स्यायन–**वात्स्यायनी** (वात्स्यायन गोत्र में जन्मी स्त्री)। प्राचीन भारत में दृढ़ गोत्र-जाति की व्यवस्था में इन शब्दों की प्रासंगिकता थी। गोत्र से पहचान होती थी।

७. **ऊङ् (ऊ)—ऊङुतः** (४.१.६६) उकारान्त मनुष्यजातिवाचक शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय होता है जैसे–कुरु + ऊङ् = **कुरूः** (कुरु जाति में उत्पन्न स्त्री)। **ब्रह्मबन्धूः**। अप्राणिजाति के उकारान्त शब्दों से भी होता है, किन्तु रज्जु आदि से नहीं होता। उदाहरण–अलाबु (लौकी) + ऊङ् = **अलाबूः**। **कर्कन्धूः** (ककड़ी)। किन्तु–रज्जुः, हनुः (ठुड्डी)।

कुछ अन्य ऊङ्–प्रत्ययान्त शब्द–**पङ्गूः** (लँगड़ी स्त्री)। **श्वश्रूः** (सास)। **करभोरूः** (हाथी के बच्चे की सूँड़ के समान सुडौल जंघावाली)। वामोरूः, गुग्गुलूः, **मधूः**, कमण्डलूः।

८. **ति**—यह केवल युवन् शब्द से लगता है (यूनस्तिः ४.१.७७)। युवन् + ति = न् का लोप होकर (**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य** ८.२.७) **युवतिः**। यह ङीप् का अपवाद है क्योंकि नकारान्त से ङीप् लगता। यदि युवन् बहुव्रीहि समास का उत्तरपद होकर उपसर्जन बन जाय तो डाप्-प्रत्यय लगेगा–बहवो युवानो यस्यां सा = **बहुयुवा नगरी**।

स्त्रीप्रत्ययों के विशेष नियम—

(क) हलन्त शब्दों से ई–प्रत्यय लगने पर उनके तृतीया-एकवचन जैसा रूप आ जाता है (अन्तर यह है कि तृतीया में 'आ' होता है, स्त्रीलिङ्ग रूप में 'ई' रहता है) जैसे–राजन् + ङीप् = **राज्ञी**, प्राक्–**प्राची**, मघवन्–**मघोनी**, श्वन्–**शुनी**, विद्वस्–**विदुषी**, द्विदामन्–**द्विदाम्नी**, महत्–**महती**।

(ख) अन्तिम अ या इ का लोप हो जाता है–गौर + ई = गौर् + ई = **गौरी**। कुमार-**कुमारी**। **पार्वती**। (**यस्येति च** ६.४.४८)।

(ग) तद्धित प्रत्यय के रूप में किसी प्रातिपदिक (मूल शब्द) के अन्त में य हो तो ई प्रत्यय के पूर्व उस य का लोप हो जाता है–गार्ग्य (गर्ग + यञ्) + ई = **गार्गी**। सूर्य, मनुष्य, मत्स्य आदि के य का भी लोप होता है–**सूरी, मनुषी, मत्सी**।

अभ्यास - १५

१. निम्नलिखित शब्दों का स्त्रीलिङ्ग रूप दें—

(क) भवत् .... चटक .... गौर ....
राजन् .... मातुल .... नायक ....
इन्द्र ....

(ख) अज .... अश्व .... पाचक ....
सूर्य (मानुषी स्त्री) .... मत्स्य .... विद्वस् ....

(ग) कोकिल .... सिंह .... दण्डिन् ....
श्रोतृ .... महत् .... गच्छत् ....
सहचर ....

(घ) तनु .... सुन्दर .... मनुष्य ....
नर्तक .... युवन् .... एकाकिन् ....
श्वन् ....

२. निम्नलिखित शब्द-समूह के स्थान पर एक शब्द दें—

(क) मृगस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः ....
(ख) एकः पतिः यस्याः ....
(ग) गोपस्य स्त्री ....
(घ) स्वयमध्यापयति सा ....
(ङ) सूर्यस्य देवता स्त्री ....
(च) महत् हिमम् ....

(छ) यवनानां लिपिः ....

(ज) बुद्धि अस्याः अस्तीति ....

(झ) शोभनं मुखं यस्याः ....

(ञ) मातुलस्य स्त्री ....

३. **निम्नलिखित युग्मों का अन्तर स्पष्ट करें—**

भवती-भवन्ती पतिवत्नी-पतिमती आचार्या-आचार्यानी

यवनी-यवनानी स्थली-स्थला महाराजी-महाराज्ञी

त्रिफली-त्रिफला

४. **निम्नलिखित का योगफल बताएँ—**

(क) पालक + टाप् ....

(ख) सीमन् + डाप् ....

(ग) पीवन् + ङीप् ....

(घ) तद् + वतु + ङीप् ....

(ङ) पुत्र + मतुप् + ङीप् ....

(च) अतिथि + ढञ् + ङीप् ....

(छ) पुत्र + अञ् + ङीप् ....

(ज) किम् + दृश् + कञ् + ङीप् ....

(झ) साधु + ङीप् ....

(ञ) कुरु + ऊङ् ....

५. **निम्नलिखित शब्दों में लगे हुए स्त्री-प्रत्यय का निर्देश करें—**

रजकी, कथयन्ती, निर्देशिका, गोपी, अग्नायी, मृगाक्षी, अरण्यानी।

६. **निम्नलिखित सूत्रों के दो-दो उदाहरण दें—**

(क) अजाद्यतष्टाप् ....

(ख) ऋन्नेभ्यो ङीप् ....

(ग) उगितश्च ....

(घ) वयसि प्रथमे ....

(ङ) वोतो गुणवचनात् ....

(च) पुंयोगादाख्यायाम् ....

(छ) ऊङुतः ....

*

१३ तद्धित-प्रत्यय-प्रकरण
Secondary Suffixes

धातु से भिन्न, अन्य प्रकार के शब्दों से (अर्थात् संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा अव्यय से) लगने वाले, सुप्–भिन्न प्रत्ययों को **तद्धित** कहते हैं। पाणिनि ने 'तद्धिताः' (४.१.७६) देकर यहाँ से चतुर्थ-पञ्चम अध्यायों में विहित सभी प्रत्ययों को 'तद्धित' कहा है। इन प्रत्ययों के लगने से 'प्रकृति' (मूल शब्द) का अर्थ बदल जाता है, यद्यपि कुछ प्रत्यय 'स्वार्थिक' (उसी अर्थ के) भी होते हैं जैसे–बाल + क = **बालकः**। 'क' प्रत्यय कुछ विशेष परिवर्तन नहीं करता। किन्तु सामान्य तद्धित प्रत्यय अर्थ बदल देते हैं इसीलिए तद्धितार्थ का बहुत महत्त्व है। परिवर्तित होने वाले अर्थों को पाणिनि ने निर्दिष्ट किया है जैसे–**तस्यापत्यम्** (उसकी सन्तान), **तस्य भावः** (उसका होना), **तेन क्रीतम्** (उससे खरीदा गया), **तदस्मिन् अस्ति** (वह उसमें है), **तत्र भवः** (उसमें उत्पन्न), **तत्र साधुः** (उसमें निपुण), **तत आगतः** (वहाँ से आया हुआ) इत्यादि। अण्, अञ्, इञ्, ठक्, ढक्, इमनिच्, त्व, तल्, मतुप्, ष्यञ्, इष्ठन्, ईयसुन्, यत्, मयट् आदि अनेक तद्धित प्रत्यय इन अर्थों में विहित हैं। एक अर्थ में कई प्रत्यय होते हैं और एक प्रत्यय अनेक अर्थों में होता है। वैयाकरणों ने शब्दों को निर्धारित किया है कि अर्थविशेष में उससे प्रत्यय-विशेष हो। कभी-कभी अर्थों के आधार पर तद्धितों का वर्गीकरण किया जाता है जैसे–अपत्यार्थक, रक्ताद्यर्थक, चातुरर्थिक आदि। कभी-कभी प्रत्ययों को आधार बनाया जाता है जैसे–मतुबर्थीय, ठगधिकार, ठञधिकार आदि। आधुनिक काल के संस्कृत वैयाकरण–(i) **विविध तद्धित प्रत्यय**, (ii) **मत्वर्थीय** तथा (iii) **अव्यय बनाने वाले तद्धित** के रूप में तीन वर्ग बनाते हैं। यहाँ वही वर्गीकरण अपनाया गया है।

तद्धित-प्रत्ययों की सामान्य प्रक्रिया

(क) तद्धित प्रत्ययों में भी कृत्प्रत्ययों के समान अनुबन्ध लगे हैं जिनका कार्यावस्था में लोप हो जाता है। यदि प्रत्यय में ण्, ञ् या क् लगा हो तो मूल शब्द के प्रथम स्वर की वृद्धि (अ का आ, इ या ए का ऐ, उ या ओ का औ, ऋ का आर्) हो जाती है जैसे–संसार + ठक् = **सांसारिकः**, शिव+अण् = **शैवः**, सुन्दर + ष्यञ् = **सौन्दर्यम्**, ऋषि + अण् = **आर्षः**। (देखें–**तद्धितेष्वचामादेः** ७.२.११७, **अचो ञ्णिति** ७.२.११५, **किति च** ७.२.११८)। इसी प्रकार एक + ष्यञ् = **ऐक्यम्**, ओषधि + अण् = **औषधम्**।

(ख) यदि शब्द के अन्त में (समास में) हृद्, भग या सिन्धु शब्द हो तो पूर्व और उत्तर दोनों पदों के आदि स्वर (अच्) की वृद्धि होती है–सुहृद् + अण् = **सौहार्दम्,** सुभग + ष्यञ् = **सौभाग्यम्,** सप्तसिन्धु + अण् = **साप्तसैन्धवः**। (**हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च** ७.३.१९)।

(ग) **अनुशतिकादीनां च** (७.३.२०)—इस गण के शब्दों की वृद्धि भी उभयपद में होती है यदि कित्, ञित् या णित् तद्धित प्रत्यय लगे–आधिभौतिकम्। आधिदैविकम्। पारलौकिकम्। त्रैवार्षिकम्। सार्वभौमः। ऐहलौकिकम्।

(घ) **ओर्गुणः** (६.४.१४६)—मूल शब्द के अन्त में उ हो तो अजादि-यकारादि तद्धित प्रत्यय के पूर्व उसका गुण हो जाता है तथा अवादेश सन्धि से होता है। जैसे–मृदु + अण् = **मार्दवम्।** लघु + अण् = **लाघवम्**। गुरु–**गौरवम्**।

(ङ) **टेः** (६.४.१४३)—ड् की इत्संज्ञावाला (डित्) तद्धित लगने पर टि का लोप हो जाता है। जैसे–किम् + डतर = इम् का लोप होकर **कतरः**।

(च) **नस्तद्धिते** (६.४.१४४)—तद्धित प्रत्यय अजादि या यकारादि हो तो नकारान्त शब्द के टि का लोप हो जाता है। आत्मन् + छ (ईय) = **आत्मीयः**। राजन् + यत् = **राज्यम्**। अन्य प्रत्ययों के पूर्व न् का लोप होता है (**नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य**)। जैसे–राजन् + त्व = **राजत्वम्।**

(छ) यदि मूल शब्द (प्रकृति) के आदिस्वर के पूर्व संयुक्तवर्ण के रूप में य्, व् हो तो वृद्धि होने की स्थिति में य् के पूर्व ऐ, व् के पूर्व औ लगता है। जैसे–व्याकरण + अण् (य के पूर्व ऐ) = वैयाकरणः। न्याय + ठक् = नैयायिकः। द्वार + ठक् = (व् के पूर्व औ) = दौवारिकः (द्वारपाल। स्वर + अण् = सौवरः। स्वस्ति + ठक् = सौवस्तिकः।[1]

(ज) **आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्** (७.१.२)—तद्धित प्रत्यय के आदि में फ का आयन, ढ का एय, ख का ईन, छ का ईय और घ का इय आदेश हो जाता है। नर + फक् = **नारायणः**। गङ्गा + ढक् = **गाङ्गेयः**। कुल + ख = **कुलीनः**। त्वद् + छ = **त्वदीयः**। क्षत्र + घ = **क्षत्रियः**। इसी प्रकार ठ का इक आदेश होता है। शेष + ठक् = **शैषिकः**। मर्मन् + ठक् = **मार्मिकः**। (**ठस्येकः** ७.३.५०)

(झ) अजादि–यकारादि तद्धित के पूर्व (अर्थात् भ-संज्ञा में) मूल शब्द के इ, अ वर्णों का लोप हो जाता है (जैसा कि स्त्रीप्रत्यय में नियम है–**यस्येति च** ६.४.१४८)।

---

१. भाषाशास्त्रीय दृष्टि से वहाँ स्वरभक्ति (Anaptyxis) करके नियमतः वृद्धि की व्यवस्था होती है। व्याकरण + अण् = वियाकरण + अ = इ का ऐ–वैयाकरणः। द्वार + ठक् (इक) = दुवार + इक = उ का औ होकर दौवारिकः।

जैसे–शिव + अण्–शैव् + अ = **शैवः**। दशरथ + इञ् = दशरथ् + इ = **दाशरथिः**। सोम + यत् = **सोम्यम्।**

(क) विविध तद्धित प्रत्यय

१. अपत्यार्थक

अपत्य का अर्थ है सन्तान जिससे वंश-परम्परा चलती है। (न पतति विच्छिद्यते वंशः अस्मात् इति अपत्यम्)। इस अर्थ में प्रातिपदिक से 'अण्' प्रत्यय होता है, अपवाद-रूप 'ण्य' आदि भी होते हैं। 'अण्' बहुत व्यापक है जो अपत्य, रक्त (रँगा हुआ), समूह, निर्वृत्त (उससे संपन्न), निवासी, उत्पन्न, संबद्ध (तस्येदम्), विकार आदि अर्थों में भी होता है। जैसे– शिवस्यापत्यं पुमान्–शिव + अण् = **शैवः**, पृथायाः अपत्यं **पार्थः** (कुन्तीपुत्र अर्जुन)। सपत्न्याः अपत्यं **सापत्नः** (सौतेला)। वरुण–**वारुणः**। भूमि + अण् = **भौमः** (भूमिपुत्र मंगल)। **पौरवः** (पुरु + अण्)। रघु–**राघवः**। वसुदेव–**वासुदेवः**। पर्वतस्य अपत्यं स्त्री **पार्वती** (पर्वत + अण् + ङीप्) (**शिवादिभ्योऽण्** ४.१.१२)।

दिति, अदिति तथा पत्यन्त शब्दों से अपत्यादि अर्थों में **ण्य (य)** प्रत्यय होता है– दितेरपत्यम् (दिति + ण्य) = **दैत्यः**। अदिति + ण्य = **आदित्यः**। प्रजापति + ण्य = **प्राजापत्यः**। गणपति + ण्य = **गाणपत्यः** (गणपति से संबद्ध)।

i) **अत इञ्** (४.१.९५)—अकारान्त शब्दों से अपत्यार्थ में **इञ्** प्रत्यय होता है। दक्षस्यापत्यं **दाक्षिः** (दक्ष + इञ्, दक्ष का पुत्र)। दशरथ + इञ् = **दाशरथिः**। द्रोण–**द्रौणिः** (अश्वत्थामा)। रावण–**रावणिः** (मेघनाद)। अर्जुन–**आर्जुनिः**। बाहु आदि शब्दों से भी इञ् (४.१.९६) होने से सुमित्रा+इञ् = **सौमित्रिः** (लक्ष्मण)।

ii) **गर्गादिभ्यो यञ्** (४.१.१०५)—गर्ग आदि शब्दों से गोत्रापत्य में **यञ्** प्रत्यय होता है–गर्ग + यञ् = **गार्ग्यः**। वत्स+यञ् = **वात्स्यः**। पुलस्ति–**पौलस्त्यः** (रावण)। चणक + यञ् = **चाणक्यः**। जमदग्नि + यञ् = **जामदग्न्यः** (परशुराम)। पराशर—**पाराशर्यः** (व्यास)।

iii) **स्त्रीभ्यो ढक्** (४.१.१२०)–अपत्य के अर्थ में स्त्रीवाचक शब्द से ढक् (एय) प्रत्यय होता है। जैसे–गङ्गायाः अपत्यं **गाङ्गेयः** (गङ्गापुत्र भीष्म)। राधायाः अपत्यं **राधेयः** (कर्ण)। कुन्त्याः अपत्यम्–कुन्ती + ढक् = **कौन्तेयः** (मुख्यतः अर्जुन अर्थ में)। विनता + ढक् = **वैनतेयः** (गरुड)। सरमा (कुतिया) + ढक् = **सारमेयः** (श्वान)। भगिन्याः अपत्यम्–भगिनी + ढक् = **भागिनेयः** (भानजा)। विमातृ + ढक् = **वैमात्रेयः** (सौतेला भाई)। पितृष्वसृ और मातृष्वसृ शब्दों से ऋ का लोप हो जाता है–**पैतृष्वसेयः** (फुफेरा भाई), **मातृष्वसेयः** (मौसेरा भाई)।

अग्नि + ढक् = **आग्नेयः** (अग्नि से संबद्ध) जैसे–आग्नेयः मन्त्रः, आग्नेयी ऋक्, आग्नेयं सूक्तम्।

'तत्र साधुः' के अर्थ में पथिन्, अतिथि, वसति और स्वपति शब्द से ढञ् प्रत्यय होता है, जिसमें भी 'एय' होता है–पथि साधु (मार्ग में लाभप्रद) = पथिन् + ढञ् = **पाथेयम्**। अतिथिषु साधुः = **आतिथेयः** (अतिथियों का सेवक, अतिथिप्रेमी–host), स्त्री.–**आतिथेयी**। वसतौ साधुः = वसति + ढञ् = **वासतेयः** (घर में अतिथियों को रखने वाला–host), स्त्री.–**वासतेयी** रात्रिः (आराम देने वाली रात्रि)। स्वपतेः आगतम् = **स्वापतेयं** धनम् (अपने पति से मिला धन)। यह 'तत आगतम्' के अर्थ में है।

iv) **मनोर्जातावञ्-यतौ षुक् च** (४.१.१६१)—मनु शब्द से जाति (समुदाय) के अर्थ में अञ् और यत् प्रत्यय होते हैं, साथ ही षुक् (ष्) आगम भी होता है–मनु + षुक् + अञ् = **मानुषः**। मनु + षुक् + यत् = **मनुष्यः**। अण् प्रत्यय से **'मानवः'** बनता है। यह भी न्यूनाधिक अपत्यार्थक ही है।

२. रक्ताद्यर्थक तद्धित प्रत्यय

'तेन रक्तं रागात्' (४.२.१) सूत्र से राग (जिससे कोई वस्तु रँगी जाय) के वाचक शब्द से अण् आदि प्रत्यय होते हैं यदि उससे रँगे गये पदार्थ का बोध कराना हो–कषायेण रक्तं **काषायं** (कषाय + अण्) वस्त्रम्। लाक्षा + ठक् = **लाक्षिकम्** (लाह से रँगा हुआ), नील्या रक्तम् = नीली + अन् = **नीलम्** (नील से रंगा), पीत + कन् = **पीतकम्**; हरिद्रा + अण् = **हारिद्रम्** (हल्दी से रँगा) वस्त्रम्।

i) **सास्मिन् पौर्णमासीति** (४.२.२१)—'नक्षत्रेण युक्तः कालः' (४.२.३) से किसी नक्षत्रवाचक शब्द से अण् प्रत्यय होता है यदि काल (दिन, रात्रि, पौर्णमासी आदि) का बोध कराना है। जैसे–पुष्येण (नक्षत्रेण) युक्तम् अहः = **पौषम्** अहः, **पौषी** रात्रिः, **पौषी** पौर्णमासी (पुष्य नक्षत्र वाली पूर्णिमा)। ऐसी पौर्णमासी का बोध होने पर उस नक्षत्रवाचक शब्द से 'मास' के अर्थ में अण् प्रत्यय लगता है– पौषी पौर्णमासी यस्मिन् स **पौषः मासः (पुष्य+अण्** = पौषः)। भारतीय महीनों के नाम १२ नक्षत्रों के नाम पर पड़े हैं क्योंकि वह नक्षत्र उसकी पूर्णिमा के दिन पड़ता है। जैसे–मघा + अण् = **माघः** मासः। फल्गुनी + अण् = **फाल्गुनः**। चित्रा–**चैत्रः**। विशाखा–**वैशाखः**। ज्येष्ठा + अण् = ज्यैष्ठः (जेठ महीना)।[१] आषाढ–**आषाढः**। श्रवण–**श्रावणः**। भाद्रपद–**भाद्रपदः** (भादों का महीना)।

१. व्याकरण की दृष्टि से मास अर्थ में **'ज्यैष्ठ'** ही शुद्ध है; **'ज्येष्ठ'** तो प्रशस्य या वृद्ध शब्द से इष्ठन् लगकर सबसे बड़े (Eldest) के अर्थ में है। दोनों में सादृश्य से मास अर्थ में भी 'ज्येष्ठ' रूढ़ हो गया।

अश्विनी–**आश्विनः**। कृत्तिका–**कार्तिकः**। मृगशिरस्–**मार्गशीर्षः**। पुष्य–**पौषः**।

ii) **सास्य देवता** (४.२.२४)—'वह किसी का देवता (देव-देवी) है' इस अर्थ का बोध कराने के लिए देवतावाचक शब्द से अण् प्रत्यय होता है जैसे–इन्द्रो देवता अस्य–इन्द्र + अण् = **ऐन्द्रं** हविः। शिवः अस्य देवता इति **शैवः** जनः। शक्ति + अण् = **शाक्तः**। विष्णुः देवता अस्य–ओर्गुणः से उ का गुण (ओ), अवादेश = **वैष्णवः**।

iii) **तस्य समूहः** (४.२.३७)—'उसके समूह' के अर्थ में षष्ठी–समर्थ शब्द से अण् प्रत्यय होता है। ये शब्द नुपंसकलिङ्ग के होते हैं–काकानां समूहः = काक + अण् = **काकम्**। बकानां समूहः = **बाकम्**। मयूर–**मायूरम्**। कपोत–**कापोतम्**। भिक्षाणां समूहः = **भैक्षम्**। गर्भिणीनां समूहः = **गार्भिणम्**। गोत्रवाचक शब्द, उष्ट्र, अभ्र (मेघ), राज, राजन्य, राजपुत्र, वत्स और मनुष्य शब्द से 'समूह' अर्थ में वुञ् (अक) प्रत्यय लगता है जैसे–**औष्ट्रकम्** (ऊँटों का झुंड), **आभ्रकम्** (मेघसमूह), **राजकम्**, राजन्यकम्, राजपुत्रकम्, वात्सकम्, **मानुष्यकम्**।

ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् (४.२.४३)—ग्राम, जन, बन्धु (तथा सहाय) शब्द से 'समूह' अर्थ में तल् प्रत्यय लगता है। यह स्त्रीलिङ्ग होने से टाप् प्रत्यय लेकर 'ता' बन जाता है–ग्रामाणां समूहः–**ग्रामता**। जनानां समूहः–**जनता**। बन्धूनां समूहः–**बन्धुता**। सहायानां समूहः–**सहायता**। पाश, वात, रथ आदि शब्दों से 'य' प्रत्यय इसी अर्थ में स्त्रीलिङ्ग ही होता है (य + टाप् = या)। जैसे–पाशानां समूहः–**पाश्या** (बन्धनसमूह)। वातानां समूहः–वात + य + टाप् = **वात्या** (आँधी)। रथानां समूहः–**रथ्या** (सड़क, busy road)।

iv) **तदधीते तद्वेद** (४.२.५९)—किसी विषय के अध्येता या ज्ञाता के अर्थ में अध्ययन-विषय के वाचक शब्द से अण् प्रत्यय होता है–व्याकरणम् अधीते वेद वा–व्याकरण + अण् = **वैयाकरणः**। स्मृति = **स्मार्तः**। कुछ शब्दों से ठक् (इक) होता है–न्यायमधीते वेद वा **नैयायिकः** (न्याय + ठक्)। पुराण + ठक् = **पौराणिकः**। शब्द + ठक् = **शाब्दिकः**। तर्क–**तार्किकः**। अलङ्कार–**आलङ्कारिकः** (काव्यशास्त्री)। कहीं-कहीं वुन् (अक) प्रत्यय होता है–मीमांसा + वुन् = **मीमांसकः**।

v) **ग्रामाद् य-खञौ** (४.२.९४)—सप्तमीसमर्थ ग्राम शब्द से 'जातः' (उत्पन्न) आदि अर्थों में य और खञ् (ईन) प्रत्यय होते हैं–ग्रामे जातः–ग्राम + य = **ग्राम्यः**। ग्राम + खञ् = **ग्रामीणः**। इसी प्रकार 'राष्ट्रे भवः' = राष्ट्र + घ (इय) = **राष्ट्रियः (राष्ट्रावारपाराद् घ-खौ** ४.२.९३)

vi) **अव्ययात् त्यप्** (४.२.१०४)—अमा, इह, क्व, तस्-प्रत्ययान्त, त्र-प्रत्ययान्त–इन अव्ययों से 'जातः' के अर्थ में त्यप् प्रत्यय होता है। अमा (सह) + त्यप् = **अमात्यः** (साथ रहने वाला, मन्त्री)। **इहत्यः** (यहाँ का)। **क्वत्यः** (कहाँ का)। **कुतस्त्यः** (कहाँ का)। **ततस्त्यः** (वहाँ का)। **अतस्त्यः** (यहाँ का)। **अत्रत्यः** (यहाँ का)। **तत्रत्यः** = वहाँ का। **कुत्रत्यः** (कहाँ का)। ये शब्द विशेषण होते हैं अतः तीनों लिङ्गों में विशेष्य के आधार पर हो सकते हैं जैसे–**कुतस्त्यः** भवान् (आप कहाँ के हैं)? **अत्रत्यं** कुशलम् (यहाँ का कुशल है)। **इहत्या** छात्रा भवती नास्ति (आप यहाँ की छात्रा नहीं हैं)। दक्षिणा, पश्चात् और पुरस्–ये तीन अव्यय हैं जिनसे त्यक् प्रत्यय लगता है। क् के कारण आदि अच् की वृद्धि होती है। दक्षिण दिशा से संबद्ध या दक्षिण का निवासी–दक्षिणा + त्यक् = **दाक्षिणात्यः**। पश्चात् + त्यक् = **पाश्चात्त्यः** (Western)। पुरस्+त्यक् = **पौरस्त्यः** (पूर्व का, पूर्वनिवासी, Eastern, Oriental)।

vii) **वृद्धाच्छः** (४.२.११४)—जिन शब्दों के आदि अच् (प्रथम स्वर) वृद्धि के अक्षरों वाले (आ, ऐ, औ) हों उन्हें पाणिनि ने **'वृद्ध'** कहा है (वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम् १.१.७३)। ऐसे वृद्ध–संज्ञक शब्दों से 'उसका यह है' (तस्येदम्) अर्थ में छ (ईय) प्रत्यय होता है। जैसे–शालायाः अयम्–शाला + छ = **शालीयः**। पाणिनेः अयं **पाणिनीयः**। त्यद् आदि शब्दों की भी वृद्ध संज्ञा होने से (१.१.७४) इनसे भी छ (ईय) होता है। तव इदम्–त्वद् + छ = **त्वदीयम्**। ममेदम्–मद् + छ = **मदीयम्**। युष्मद्–**युष्मदीयम्**। अस्मद्–**अस्मदीयम्**।

भवतष्ठक्छसौ (४.२.११५)—'तस्येदम्' (उसका यह है) के अर्थ में वृद्ध संज्ञक भवत् शब्द से ठक् और छस् प्रत्यय होते हैं–भवतः अयम्–भवत् + ठक्–**भावत्कः** (आपका)। 'त्यदादीनि च' से भवत् की भी वृद्धसंज्ञा होती है। भवत् + छस् = **भवदीयः**। यदि वृद्ध–संज्ञा न हो तो अण् प्रत्यय लगेगा–भवत् (भू + शतृ) + अण् = **भावतः** (होनहार व्यक्ति से जुड़ा हुआ)। राजन् शब्द से क लगकर 'छ (ईय) होता है–राज्ञः इदं **राजकीयम्**। पर्वत + छ = **पर्वतीयः** (वृद्ध न होने पर भी)।

viii) **कालाट्ठञ्** (४.३.११)—कालवाचक शब्द से 'जातः' इत्यादि अर्थों में ठञ् (इक) प्रत्यय लगता है–वर्षे जातः–**वार्षिकः**। मास–**मासिकः**। पक्ष–**पाक्षिकः**। दिन–**दैनिकः**। संवत्सर–**सांवत्सरिकः**। अहन्–**आह्निकः**।

सायम्, चिरम् तथा अन्य कालबोधक अव्ययों से ट्यु-ट्युल् (अन) प्रत्यय लगते हैं। साथ ही तुट् (त्) आगम भी होता है जिससे 'तन' का रूप हो जाता है–

सायम् + तुट् + ट्यु = **सायन्तनः**, स्त्री.–**सायन्तनी** (टित् के कारण ङीप्) = सायंकाल में होनेवाला/वाली। चिरम्–**चिरन्तनः**, **चिरन्तनी** (बहुत दिनों तक चलनेवाला/वाली)। अद्य–**अद्यतनाः** छात्राः (आजकल के छात्र)। प्राक्–**प्राक्तनः** कालः, **प्राक्तनं** शास्त्रम्, प्राक्तनी विद्या (पहले का/की)। पुरा-**पुरातनः**, **पुरातनम्**, **पुरातनी**। सना (पुराना, तुलनीय–Senile) + तुट् + ट्यु = **सनातनः**, **सनातनम्**, **सनातनी** (पुराने जमाने का, सदा रहने वाला)।

३. अन्य अर्थ

तत्र **जातः** (४.३.२५), **तत्र भवः** (४.३.५३), **तस्येदम्** (४.३.१२०), **तस्य विकारः** (४.३.१३४) इत्यादि तद्धित प्रत्ययों के कुछ प्रमुख अर्थ हैं। 'जातः' का अर्थ है उत्पन्न। भवः = विद्यमान। यह दोनों का अन्तर है। इस प्रकार, ...में उत्पन्न, ...में विद्यमान, ...का सम्बन्धी, ...का विकार इत्यादि अर्थों में मूल शब्द से निर्धारित तद्धित प्रत्यय (अण्, यत्, घ आदि) होते हैं। जैसे—

मथुरायां जातः–मथुरा + अण् = **माथुरः**।
वेदे भवः–वेद् + ठक् = **वैदिकः**।
दिशि भवम्–दिश् + यत् = **दिश्यम्**।
वने भवम्–वन + यत् = **वन्यम्** (वन में वर्तमान)।
आदौ भवम्–आदि + यत् = **आद्यम्**।
रहसि भवम्–रहस् + यत् = **रहस्यम्**।
कण्ठे भवम्–कण्ठ + यत् = **कण्ठ्यम्**।
तालव्यम्, ओष्ठ्यम्, मूर्धन्यम्, दन्त्यम्।
देवस्य अयम्–देव + अण् = **दैवः**।
शर्करायाः इदम्–शर्करा + अण् = **शार्करम्**।
वसन्तस्य अयम्–वसन्त + ठक् = **वासन्तिकम्** (वसन्त से सम्बद्ध)।
ग्रीष्मस्यायम्–ग्रीष्म + अण् = **ग्रैष्मः**।
ऊर्णायाः इदम्–ऊर्णा + अण् = **और्णं वस्त्रम्** (ऊनी कपड़ा)।
शैवं धनुः, **चान्द्रः** मासः।
रजतस्य विकारः–रजत + मयट् = रजतमयम्, रजतमयी (स्त्री.) भूमिः[१]।
सुवर्ण + मयट् = **सुवर्णमयम्** (स्वर्ण का बना)।
वाचो विकारः–वाक् + मयट् = **वाङ्मयम्**।

१. (मयट् प्रत्यय का प्रयोग 'प्रकृतवचन' में भी होता है (प्राचुर्येण प्रस्तुतं प्रकृतम्, तस्य वचनं कथनं प्रकृतवचनम्)। प्रकृतमन्नम् = **अन्नमयम्** (अन्नों के प्राचुर्य से युक्त)। **मिष्टान्नमयं** भोजनम्।

तस्य विकारः–तद् + मयट् = **तन्मयम्**।

चित् + मयट् = **चिन्मयम्** (चैतन्यस्वरूप)।

i) **तेन निर्वृत्तम्** (५.१.७९)—"''के द्वारा पूरा किया गया–इस अर्थ में काल वाचक शब्द से ठञ् प्रत्यय होता है (कालाट्ठञ् ४.३.११)। जैसे–अह्ना निर्वृत्तम् = अहन् + ठञ् = **आह्निकम्, आह्निकः** (पुं.), **आह्निकी** (स्त्री.)। मासेन निर्वृत्तम्–**मासिकम्**। **सांवत्सरिकम्** (एक वर्ष में पूरा किया गया)।

ii) **तस्य भावस्त्व-तलौ** (५.१.११९)—तद्धित के अर्थों में 'तस्य भावः' (....का भाव या होना) प्रमुख है। इस अर्थ में **त्व** और **तल्** प्रत्यय बहुत व्यापक रूप से लगते हैं। जैसे–मनुष्यस्य भावः–**मनुष्यत्वम्, मनुष्यता** (मनुष्य + तल् + टाप्)। अर्थ है–मनुष्य होना। शुक्ल–**शुक्लत्वम्, शुक्लता**। मधुर–**मधुरत्वम्, मधुरता**। जड–**जडत्वम्, जडता** (जड़ होना)। त्व से नुपंसकलिङ्ग और तल् से स्त्रीलिङ्ग ही होता है, अतएव तल् (त) के बाद टाप् (आ) होना आवश्यक है।

पृथ्वादिभ्यःइमनिज्वा (५.१.१२२)—पृथु आदि शब्दों से 'तस्य भावः' के अर्थ में वैकल्पिक **इमनिच् (इमन्)** प्रत्यय होता है। इससे बने शब्द का रूप 'लघिमन् या महिमन्' जैसा होता है (लघिमा, महिमा इत्यादि)। जैसे–पृथोः भावः–पृथु + इमनिच् = **प्रथिमा** (फैलाव)। त्व और तल् भी होंगे–**पृथुत्वम्, पृथुता**। गुरु–**गरिमा, गुरुत्वम्, गुरुता**। महत्–**महिमा, महत्त्वम्, महत्ता**। प्रिय–**प्रेमा, प्रियत्वम्, प्रियता** (प्रिय होना)। स्थिर–**स्थेमा, स्थिरत्वम्, स्थिरता**। अणु–**अणिमा, अणुत्वम्, अणुता**।

वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च (५.१.१२३)–वर्णवाचक शब्द एवं दृढ आदि शब्दों से 'तस्य भावः' के अर्थ में उपर्युक्त प्रत्ययों के अतिरिक्त **ष्यञ्** (य) प्रत्यय भी लगता है। इसमें ष् का उद्देश्य स्त्रीलिङ्ग में ङीष् प्रत्यय लगना है, ञ् का उद्देश्य आदि अच् की वृद्धि है। उदाहरण—

शुक्लस्य भावः–शुक्ल + ष्यञ् = **शौक्ल्यम्** (उजला होना)।

वैकल्पिक रूप–शुक्लिमा, शुक्लत्वम्, शुक्लता।

दृढस्य भावः–दृढ + ष्यञ् = **दार्ढ्यम्** (द्रढिमा, दृढत्वम्, दृढता)।

इसी प्रकार–मधुरस्य भावः–**माधुर्यम्, माधुरी** (स्त्री.)। मधुरिमा इत्यादि।

सहितस्य भावः–**साहित्यम्, साहिती** (स्त्री.)। सहितत्वम्, सहितता।

गुणवचन-ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च (५.१.१२४)—गुणवाचक शब्द एवं ब्राह्मण आदि से **'तस्य भावः'** के अतिरिक्त **'तस्य कर्म'** अर्थ में भी ष्यञ् प्रत्यय लगता है–जडस्य भावः कर्म वा–**जाड्यम्**। ब्राह्मणस्य भावः कर्म वा–

ब्राह्मण्यम्। चपल–**चापल्यम्**। विषम–**वैषम्यम्**। अलसस्य भावः कर्म वा–**आलस्यम्**। चोरस्य भावः कर्म वा–**चौर्यम्**। कवेः कर्म–**काव्यम्**। इसी प्रकार **साम्यम्**। **नैपुण्यम्**। **धैर्यम्**। **वाणिज्यम्** (वणिजः कर्म)। **सामर्थ्यम्**। **पाण्डित्यम्**।

चतुर्वर्ण आदि शब्दों से स्वार्थ में ही ष्यञ् होता है–चतुर्वर्णः एव–**चातुर्वर्ण्यम्**। युगपदेव–**यौगपद्यम्**। त्रिलोकी एव = **त्रैलोक्यम्**।

हायनान्त–युवादिभ्योऽण् (५.१.१३०)–हायन (= वर्ष) से अन्त होने वाले समस्त पद तथा युवन् आदि से भाव अर्थ में अण् प्रत्यय होता है। द्विहायन + अण् = **द्वैहायनम्** (दो वर्षों का हो जाना)। युवन् + अण् = **यौवनम्** (युवा हो जाना, यूनः भावः)। कौतुकम्, कौतूहलम्, कौशलम् (कुशलस्य भावः), चापलम् (चपलस्य भावः)।

iii) **तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्यः इतच्** (५.२.३६)—'····इसमें हो चुका है' (भरा हुआ है) के अर्थ में तारक आदि शब्दों से **इतच्**-प्रत्यय लगता है। तारकाः सञ्जाता अस्य–तारक + इतच् = **तारकितं** नभः (तारों से भरा हुआ आकाश)। पुष्पाणि सञ्जातानि अस्येति = **पुष्पितम्** उद्यानम्। यह आकृतिगण है, अतः इस प्रत्यय की व्याप्ति बहुत है। **फलितः** वृक्षः, **सुखितः** जन्तुः।

iv) **प्रमाणे द्वयसज्-दघ्नञ्मात्रचः** (५.२.३७)—प्रमाण (नाप, Measurement) के अर्थ में **द्वयसच्**, **दघ्नच्** तथा **मात्रच्** ये तीन प्रत्यय लगते हैं। वस्तुतः '**तद् अस्य प्रमाणम्**' (यह उसकी नाप है)–यह अर्थ रहता है जिसका प्रयोग विग्रह-वाक्य में होता है। जैसे–ऊरू प्रमाणमस्य = **ऊरुद्वयसम्**, **ऊरुदघ्नम्**, **ऊरुमात्रं** जलं नद्याम् (नदी में जाँघ भर पानी है)। इन शब्दों से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् लगता है। **जानुदघ्नम्** (घुटने भर)। **प्रस्थमात्रः** तण्डुलः। कियन्मात्रम् = कितना (कियत् प्रमाणमस्य)। **तन्मात्रम्** (उतना)।

v) **यत्तदेतेभ्यः परिमाणे वतुप्** (५.२.३९)—यद्, तद् और एतद् से परिमाण अर्थ में **वतुप्–प्रत्यय** (वत्) लगता है। यत्परिमाणम् अस्य–यद् + वतुप् = **यावत्**, पुं.–**यावान्**, स्त्री.–**यावती** (जितना, जितनी)। तत्परिमाणमस्य–तद् + वतुप् = **तावत्**, **तावान्**, **तावती** (उतना,उतनी)। एतद्–**एतावत्**, **एतावान्**, **एतावती**। किम् और इदम् के बाद वतुप् लगने से व का घ (इय) आदेश होता है–(**किमिदंभ्यां वो घः** ५.२.४०)। अतः, किं परिमाणमस्य–किम् + वतुप् = **कियत्**, **कियान्**, **कियती**। इदम् परिमाणमस्य–**इयत्**, **इयान्**, **इयती**।

vi) **अतिशायने तमबिष्ठनौ** (५.३.५५)—अतिशय (प्रकृष्टता) से विशिष्ट अर्थ (Superlative) का बोध कराने के लिए **तमप्** और **इष्ठन्** प्रत्यय लगते हैं।

जैसे–अयमेषामतिशयेन सम्पन्नः–**सम्पन्नतमः, सम्पन्नतमा** (स्त्री.)। अतिशयेन लघुः–**लघुतमः, लघिष्ठः**। स्त्रीलिङ्ग में टाप्। गुरु (भारी)–**गुरुतमः, गरिष्ठः**। प्रिय–**प्रियतमः, प्रेष्ठः**। पटु–**पटुतमः, पटिष्ठः**। दृढ–**दृढतमः, द्रढिष्ठः**। मृदु–**मृदुतमः, म्रदिष्ठः**।

vii) **द्विवचन-विभज्योपपदे तरबीयसुनौ** (५.३.५७)—दो के बीच एक का प्रकर्ष दिखाने में, दोनों का पृथग्भाव बताने वाले शब्द के योग में प्रातिपदिक तथा तिङन्त शब्द से तरप् प्रत्यय होता है, प्रातिपदिक से ईयसुन् भी लगता है। जैसे–अयमनयोः अतिशयेन लघुः–**लघुतरः**। लघु + ईयसुन् = **लघीयान्** (पुं.), **लघीयसी** (स्त्री.)। गुरु–**गुरुतरः, गरीयान्, गरीयसी**। प्रिय-**प्रियतरः, प्रेयान्, प्रेयसी** (दोनों में अधिक प्रिय)।

तरप् और **तमप्** प्रत्यय 'आम्' के साथ (तराम्, तमाम् बनकर) किम्, एकारान्त, तिङन्त, अव्यय के बाद भी लगते हैं जिससे संस्कृत की मुहावरेदार अभिव्यक्ति होती है–किन्तराम्, किन्तमाम्; पूर्वाह्णेतराम्, पूर्वाह्णेतमाम्; पठतितराम्, पठतितमाम्; सुतराम्, अतितराम्, अतितमाम्। द्रव्य-प्रकर्ष में 'आम्' नहीं होता–**उच्चैस्तरः वृक्षः** (अधिक ऊँचा वृक्ष)। **नीचैस्तमः शासकः** (सबसे नीच शासक)। (५.४.११)।

ईयसुन्, इष्ठन् से शब्दों का परिवर्तन—

अन्तिक (समीप)	नेदीयस्	नेदिष्ठ
युवन् (Young)	यवीयस्, कनीयस्	यविष्ठ, कनिष्ठ
अल्प (थोड़ा)	अल्पीयस्	अल्पिष्ठ
स्थिर (Steady)	स्थेयस्	स्थेष्ठ
उरु (Wide बड़ा)	वरीयस्	वरिष्ठ
वृद्ध (पुराना Old)	वर्षीयस्, ज्यायस्	वर्षिष्ठ, ज्येष्ठ
दीर्घ (Long लम्बा)	द्राघीयस्	द्राघिष्ठ
दूर (Distant)	दवीयस्	दविष्ठ
प्रशस्य (स्तुत्य)	श्रेयस्	श्रेष्ठ
बहु (बहुत Much)	भूयस्	भूयिष्ठ
स्थूल (मोटा)	स्थवीयस्	स्थविष्ठ
क्षुद्र (छोटा)	क्षोदीयस्	क्षोदिष्ठ

संस्कृत में संज्ञाओं और क्रियाओं से भी उत्तरावस्था (Comparative) और उत्तमावस्था (Superlative) में तरप्, तमप् प्रत्यय लगते हैं। जैसे–**गोतरः** (अधिक अच्छी गाय), **गोतमः** (सर्वोत्तम गाय)। पाचकतरः (अधिक अच्छा

रसोइया), **पाचकतमः** (सर्वोत्तम रसोइया)। **पठतितराम्** (अधिक अच्छा पढ़ता है)। **धावतितमाम्** (सबसे अच्छा दौड़ता है)।

viii) **(अभूततद्भावे) कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः** (५.४.५०)—जो नहीं है उसके होने या करने का अर्थ रहने पर कृ, भू, अस् धातुओं के पूर्व प्रातिपदिक से 'च्वि' प्रत्यय लगता है। अवर्ण का च्वि के पूर्व 'ई' होता है। जैसे–अशुक्लः शुक्लः सम्पद्यते, तं करोति = शुक्ल + च्वि (इ > ई) + करोति = **शुक्लीकरोति**। अभस्म भस्म भवति = भस्म + च्वि + भवति = **भस्मीभवति**। च्वि के पूर्व ह्रस्व का दीर्घ हो जाता है (अस्य च्वौ, च्वौ च ७.४.३२, २६)। जैसे–अलघुं लघुं करोति = **लघूकरोति**। अपटुः पटुः भवति = **पटूभवति**। **घनीभूतः, दृढ़ीभावः, वाष्पीकरणम्, स्तम्भीभावः** इत्यादि में यही प्रत्यय है।

च्वि के विषय में **'साति'** (सात्) प्रत्यय भी लगता है, यदि सम्पूर्णता (Entirety) का अर्थ हो। जैसे–लवणम् **उदकसात् भवति, उदकीभवति** (पूरा नमक पानी हो रहा है)। पत्राणि **अग्निसात् करोति** (सभी पत्तों को आग के रूप में बदल देता है)। गृहं **भस्मसात्** भवति।

ix) कुछ प्रत्यय उसी अर्थ में लगते हैं जो मूल-शब्द का अर्थ होता है। 'क' प्रत्यय इनमें प्रमुख है जैसे–बाल एव **बालकः**। अश्वकः। पुत्रकः। कभी-कभी इनसे कुत्सा, अनुकम्पा आदि अर्थ भी प्रकट होते हैं। **अश्वकः** (गर्हणीय घोड़ा)। **पुत्रकः** (अनुकम्पितः पुत्रः, दुलारा पुत्र)। हरिणकः।

(ख) मतुबर्थीय तद्धित प्रत्यय
(Affixes showing Possession)

कुछ तद्धित प्रत्यय 'स्वामित्व या धारण करने का' अर्थ देते हैं। इनमें मुख्य प्रत्यय 'मतुप्' है। अतएव इस अर्थ में आनेवाले प्रत्ययों को **मतुबर्थीय** कहा गया है (५.२.९४-१४०)। इस वर्ग में मतुप्, लच्, इलच्, श, ण, विनि, इनि, अण्, उरच्, र, म, व, ईरन्, वलच्, ठन्, यप्, युस्, ग्मिनि, आलच्, आटच्, अच्, भ इत्यादि प्रत्यय पढ़े गये हैं जो विभिन्न शब्दों से लगकर उन्हें धारण करने का अर्थ देते हैं। यहाँ उपयोगी तथा प्रमुख प्रत्ययों का संक्षिप्त निरूपण किया जाता है।

मतुप्

तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् (५.२.९४)—'तद् अस्य अस्ति' और 'तद् अस्मिन् अस्ति' (= उसे धारण करनेवाला) अर्थों में मतुप् प्रत्यय प्रथमा-समर्थ शब्द से लगता है। मतुप् में मत् या वत् रहता है। अवर्णान्त, अवर्णोपध, मकारान्त और मकारोपध शब्दों से म का व होकर **'वत्'** बन जाता है। अन्य शब्दों से **'मत्'** ही रहता है (**मादुपधायाश्च**

मतोर्वोऽयवादिभ्यः ८.२.९)। गावः अस्य अस्मिन् वा सन्ति = गो + मतुप् = **गोमान्** (गायें रखने वाला), **गोमती** (स्त्री.)। श्रीः अस्य अस्मिन् वा अस्ति–**श्रीमान्, श्रीमती**। धनम् अस्यास्ति = **धनवान्** मनुष्यः, **धनवद्** गृहम्, **धनवती** नगरी। मतिमान्, बुद्धिमान्, पितृमान्। नदीमान् देशः। किम्–**किंवान्** (किस चीज से युक्त)। **विद्यावान्। लक्ष्मीवान्** (उपधा में म होने से व हुआ है)। **भास्वान्, पयस्वान्** (उपधा में अवर्ण है)। यव आदि शब्दों से व नहीं होता–**यवमान्, भूमिमान्, ऊर्मिमान्**।

मतुप् आदि प्रत्यय केवल धारण अर्थ में ही नहीं, अपितु प्राचुर्य (भूमन्), निन्दा, प्रशंसा, नित्ययोग, अतिशय, सम्बन्ध और अस्ति का भी बोध कराने में प्रयुक्त होते हैं जैसे–**यवमान्** (प्रचुर जौ वाला), **कुष्ठी** (निन्दा, कुष्ठ + इनि), **रूपवती** (प्रशंसा), **क्षीरिणो वृक्षाः** (नित्ययोग), **उदरिणी** कन्या (बड़े पेटवाली, अतिशय), दण्डी, छत्री (संसर्ग), अस्तिमान् (अस्ति का बोध)।[१]

मतुप् लगने से कुछ शब्दों में विकृति होती है जैसे–उदक + मतुप् = **उदन्वान्** (समुद्र)। राजन् + मतुप् = **राजन्वान्** (अच्छे राजा वाला), राजवान् (राजा से युक्त)। चर्मन् + मतुप् + ङीप् = **चर्मण्वती** नदी (चम्बल नदी)। विद्युत् + मतुप् = **विद्युत्वान्** (मेघ)।

विनि-प्रत्यय—तपस् + विनि (विन्)–तपःअस्यास्तीति **तपस्वी**, मेधा+विनि = **मेधावी**, यशस्–**यशस्वी**, स्त्री. मेधाविनी, यशस्विनी। माया–**मायावी, मायाविनी**।

उरच्, र—दन्त+उरच् = **दन्तुरः** (उन्नता दन्ताः सन्ति अस्य)। ऊष + र = **ऊषरः** (अनुर्वर)। मधु + र = **मधुरः**। मुख + र = **मुखरः**। कुञ्ज (हाथी का गाल) + र = **कुञ्जरः** (हाथी)। नग + र = **नगरम्**। पांसु + र = **पांसुरः**, **पांसुलः** (धूल से भरा, गन्दा)। पाण्डु-पाण्डुरः = पीला।

केश शब्द से व, इनि, ठञ्, मतुप् चारों लगते हैं–केशवः, केशी, कैशिकः (स्त्री.-कैशिकी वृत्तिः), केशवान्।

ज्योत्स्ना, तमिस्रा, शृङ्गिणः, ऊर्जस्विन्, ऊर्जस्वल, मलिन तथा मलीमस शब्द निपातन से इसी सन्दर्भ में सिद्ध माने गये हैं (५.२.११४) **ज्योत्स्ना**–ज्योतिस् की उपधा का लोप, न प्रत्यय, स्त्रीलिङ्ग में टाप् (ज्योतिरस्यां वर्तते इति)। **तमिस्रा**–तमस् की उपधा का इकार, र प्रत्यय, टाप्। ऊर्जस् से विनि–**ऊर्जस्वी**। वलच् होने पर **ऊर्जस्वलः**। **मलिनः**–मल + इनच्। **मलीमसः**–मल + ईमस।

i) **अत इनिठनौ** (५.२.११५)—अकारान्त शब्द से मत्वर्थीय इनि (इन्) और ठन् (इक) प्रत्यय होते हैं। दण्डः अस्यास्तीति–दण्ड + इनि = **दण्डी**, दण्ड + ठन् =

१. **काशिका** ५.२.९४ में दी गई कारिका—
भूम-निन्दा-प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने। संसर्गेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः॥

दण्डिकः। धन–**धनी, धनिकः**। व्रीहि आदि से भी (जो अकारान्त नहीं है) ये दोनों प्रत्यय होते हैं–व्रीही-व्रीहिकः। मायी-मायिकः।

ii) **इलच् प्रत्यय**—फेन + इलच् = **फेनिलः**। तुन्द् + इलच् = तुन्दिलः (बड़ी तोन्द वाला)। **पिच्छिलः** (फिसलनयुक्त Slippery) पन्थाः। पङ्क + इलच् = पङ्किलः (कीचड़ भरा)। शर्करा + इलच् = **शर्करिलः** (कंकड़ों से भरा) मार्गः। सिकता + इलच् = **सिकतिलः** (बालुकामय) नदीतटः।

iii) वाच् शब्द से बहुत बोलनेवाले के अर्थ में ग्मिनि (= **वाग्ग्मी**), आलच् (= **वाचालः**) तथा आटच् (= **वाचाटः**) प्रत्यय लगते हैं। पिछले दोनों शब्द कुत्सित अर्थ में हैं, जबकि **'वाग्ग्मी'** का प्रयोग सम्यक् बहुभाषी अर्थ में होता है।

iv) जाति अर्थ में 'हस्त' शब्द से और ब्रह्मचारी अर्थ में 'वर्ण' शब्द से **इनि-प्रत्यय** लगता है–**हस्ती** (हाथी), हस्तवान् (हाथ वाला)। **वर्णी** (ब्रह्मचारी), वर्णवान् (वर्ण से युक्त)।

v) अहम् और शुभम् के बाद **युस्-प्रत्यय** होता है। **अहंयुः** = अहंकारी। **शुभंयुः** = शुभ या कल्याण से युक्त।

टिप्पणी–मत्वर्थीय प्रत्ययों को कर्मधारय समास के बाद लगाना वर्जित है (न कर्मधारयान्मत्वर्थीयः)।

(ग) अव्यय बनाने वाले तद्धित प्रत्यय
(Affixes forming Adverbs)

अव्यय की परिभाषा में यह स्पष्ट कहा गया है कि सभी विभक्तियों में रूप ग्रहण न करने वाले तद्धितान्त शब्द 'अव्यय' हैं (**तद्धितश्चासर्वविभक्तिः** १.१.३८), अतः कुछ ऐसे तद्धित प्रत्यय तथाकथित 'स्वार्थिक' माने गये हैं जो वस्तुतः अव्यय का निर्माण करते हैं। यहाँ ऐसे प्रमुख तद्धित प्रत्ययों का परिचय दिया जाता है।

१. कृत्वसुच् (कृत्वः)

संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् (५.४.१७)—किसी क्रिया की आवृत्ति (Repetition) की गिनती का अर्थ हो तो संख्यावाचक शब्द से कृत्वसुच्-प्रत्यय लगता है। जैसे–दिवसे **पञ्चकृत्वः** (पाँच बार) खादति। अहं त्वां **दशकृत्वः** उक्तवान् अस्मि = मैंने तुमसे **दस बार** कहा है। द्वि, त्रि और चतुर् शब्दों से, कृत्वसुच् न लगकर, सुच् (स् = विसर्ग) लगता है। **द्विः** स्वपिति (दो बार सोता है)। **त्रिः** पठति (तीन बार पढ़ता है)। **चतुः** लिखति (चार बार लिखता है)। 'एक' के स्थान में एक बार के लिए 'सकृत्' का प्रयोग होता है–**सकृदेव** लिखति (एक बार ही लिखता है)। **बहुकृत्वः** = अनेक बार। सहस्रकृत्वः = हजार बार।

२. तसिल् (तः)

पञ्चम्यास्तसिल् (५.३.७)—पञ्चमी विभक्ति के स्थान पर **तसिल् (तस्-तः) प्रत्यय** लगता है। जैसे–**ग्रामात् = ग्रामतः** आयाति। किम्+तसिल् = **कुतः** (कहाँ से)। इदम् + तसिल् = **इतः**, **अतः** (इससे, यहाँ से)। **सर्वतः**, **परितः** (चारों ओर)। **अभितः**, **उभयतः** (दोनों ओर)। **आदितः** (आरम्भ से), **मध्यतः** (बीच से), **अन्ततः** (अन्त से, After all)। **वर्णतः** (अक्षरों से), **नगरतः** (शहर से); **निकटतः**, **समीपतः** (पास से)।

इसी प्रसंग में **'अस्तातिं'** (स्तात्) प्रत्यय का प्रयोग दिक् या देश के वाचक कुछ शब्दों से होता है। जैसे–पूर्वस्यां दिशि अथवा पूर्वादिक् = **पुरस्तात्** (पूर्व में, सामने)। **अधस्तात्** (नीचे), **अवस्तात्** (नीचे), **अवरस्तात्** (नीचे), **परस्तात्** (बाद में), **उपरिष्टात्** (ऊपर, उपरि)। **पश्चात्** (पीछे) शब्द 'आति' प्रत्यय से बना है। इसी प्रकार **उत्तरात्**, **दक्षिणात्** आदि शब्द हैं।

३. त्रल्

सप्तम्यास्त्रल् (५.३.१०)—सप्तमी विभक्ति के स्थान में **त्रल्–प्रत्यय** लगता है। जैसे–सर्वेषु स्थानेषु = **सर्वत्र**। कस्मिन् स्थाने = किम् + त्रल् = **कुत्र** (कहाँ)। अस्मिन् स्थाने = इदम् + त्रल् = **अत्र** (यहाँ)। तद् + त्रल् = **तत्र** (वहाँ) यह केवल सर्वनाम से होता है। किम् और इदम् से इसी अर्थ में क्रमशः **'क्व'** और **'इह'** भी होते हैं। **क्व गमिष्यसि** (कहाँ जाओगे)? **इहागच्छ** (यहाँ आओ)। अन्य उदाहरण–**अनेकत्र**, **एकत्र**, **परत्र।**

४. थाल्

प्रकारवचने थाल् (५.३.२३)—किम् आदि सर्वनाम से 'प्रकार' के अर्थ में **थाल् (था)–प्रत्यय** लगता है। जैसे-सर्वैः प्रकारैः = **सर्वथा** (सब तरह से)। तद् + थाल् = **तथा** (उस प्रकार से)। यद्–**यथा** (जिस प्रकार)। किम् और इदम् से थाल् = का थम् आदेश हो जाता है। केन प्रकारेण = किम् + थाल् (थम्) = **कथम्** (किस प्रकार)। अनेन प्रकारेण = इदम् + थाल् (थम्) = **इत्थम्** (इस प्रकार)। इसी अर्थ में **'एवम्'** अव्यय का प्रयोग होता है।

५. दा

सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा (५.३.१५)—सप्तम्यन्त काल अर्थ में सर्व, एक, अन्य, किम्, यद्, तद् इन शब्दों से दा प्रत्यय लगता है। जैसे–सर्वस्मिन् काले–**सर्वदा**। एकस्मिन् काले–**एकदा**। **अन्यदा** (अन्य समय में)। किम् + दा–कस्मिन् काले = **कदा** (कब)। यस्मिन् काले = **यदा** (जब, जिस समय)। तस्मिन् काले = **तदा** (तब, उस समय)। यद् और तद् का नित्य सम्बन्ध होता है (यत्तदोर्नित्यः सम्बन्धः)। **यदा** स आगतः, **तदाहं** गृहे नासम् = जिस समय वह आया, उस समय मैं घर पर नहीं था।

इसी अर्थ में 'इदम्' से र्हिल् प्रत्यय लगकर **एतर्हि** (= अस्मिन् काले) बनता है। स्थान अर्थ में **'इह'** (अस्मिन् स्थाने) ऊपर दिया जा चुका है। 'एतर्हि' का पर्याय **'अधुना'** और **'इदानीम्'** भी है।

कुछ अन्य अव्ययात्मक शब्द इस प्रसंग में पाणिनि (५.३.२२) ने दिये हैं। वे महत्त्व रखते हैं–**सद्यः** (तुरत, उसी समय, उसी दिन, समाने द्यवि), **परुत्** (पूर्वस्मिन् वत्सरे, परसाल), **परारि** (पूर्वतरे वत्सरे, परियार साल), **ऐषमः** (अस्मिन् संवत्सरे, इस साल), **परेद्यवि** (परस्मिन् अहनि, अगले दिन), **अद्य** (अस्मिन् द्यवि, आज के दिन), **पूर्वेद्युः** (पिछले दिन, पूर्वस्मिन् अहनि), **अन्येद्युः** (अन्यस्मिन् अहनि, दूसरे दिन), **उभयेद्युः** (उभयोः अह्नोः, दोनों दिन)।

६. धा

संख्याया विधार्थे धा (५.३.४२)—क्रिया के प्रकार का बोध कराने के लिए संख्यावाचक शब्द से **'धा'-प्रत्यय** होता है। चतुर् + धा = **चतुर्धा** (चार प्रकार से) **द्विधा** = दो प्रकार से, दो टुकड़ों में। **पञ्चधा** = पाँच भागों में। **एकं राशिं पञ्चधा कुरु** = एक संख्या या ढेर को पाँच भागों में विभक्त करो, एक वस्तु के पाँच टुकड़े करो। द्वि और त्रि से कई रूप होते हैं–**द्विधा, द्वेधा, द्वैधम्। त्रिधा, त्रेधा, त्रैधम्**। षष् (षट्) + धा = **षोढा** (छह प्रकार या भाग)। **षोढा सन्निकर्षः** (छह प्रकार के सन्निकर्ष, विषय और इन्द्रिय का संबन्ध)। **सप्तधा, अष्टधा। नवधा भक्तिः** (भक्ति के नौ प्रकार)।

७. वति

तेन तुल्यं क्रिया चेद् वतिः (५.१.११५)—क्रिया का साम्य दिखाने में प्रातिपदिक से वति (वत्) प्रत्यय लगता है जैसे–मित्रेण तुल्यम् = **मित्रवत् आचरति**। गुरुणा तुल्यम् = **गुरुवद् व्यवहारः कर्तव्यः**। वैयाकरणों ने गुण (Quality) की तुल्यता में इस प्रत्यय का निषेध किया है जैसे–'पुत्रेण तुल्यः स्थूलः' यह प्रत्युदाहरण सिद्धान्तकौमुदी में दिया गया है। किन्तु व्यवहार में गुण और द्रव्य के साम्य में भी वति देखा जाता है–चन्द्रवद् धवलः (गुणसाम्य)। कुबेरवद् धनिको राजा (द्रव्य-साम्य)।

८. शस्

बहु और अल्प शब्दों से (तथा इनके पर्यायों से भी), कारक-रूप में रहने पर, विकल्प से **शस्-प्रत्यय** लगता है (५.४.४२)। जैसे–**बहूनि बहुशो वा ददाति। अल्पम् अल्पशो वा पठति। भूरिशः, स्तोकशः** वा ददाति। संख्यावाचक तथा एकवचन से भी वीप्सा (व्याप्ति) अर्थ में यह प्रत्यय लगता है (संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम् ५.४.४३)। जैसे–द्वौ द्वौ मोदकौ ददाति = **द्विशः मोदकौ ददाति** (दो-दो मिठाई देता है)। पादं पादं ददाति = **पादशः ददाति** (एक-एक चौथाई देता है) **अक्षरशः पठति** = एक-एक अक्षर पढ़ता है।

अभ्यास - १६

१. **निम्नलिखित के स्थान में एक तद्धितान्त शब्द दें** (Substitute single words for the following)—

सपत्न्याः अपत्यं पुमान्	....	पर्वतस्यापत्यं स्त्री	....
गर्गस्यापत्यं पुमान्	....	जनानां समूहः	....
व्याकरणमधीते यः	....	पुराणं वेद सः	....
सायं भवः	....	राष्ट्रे जातः	....
मथुरायां भवः	....	पृथिव्या इदम्	....
सुमित्रायाः पुत्रः	....	अतिथिषु साधुः स्त्री	....
पुष्येण युक्ता (पौर्णमासी)	....	शिवोऽस्य देवता सः	....
तत्र जातः	....	वसन्तस्यायम्	....
मासेन निर्वृत्तम्	....	चपलस्य भावः	....
वणिजः कर्म	....	पुष्पाणि संजातानि अस्य	....
मृदुष्वतिशयेन	....	अशुक्लं शुक्लं करोति	....
धनमस्यामस्ति सा	....	यशोऽस्यास्ति	....
केन प्रकारेण	....	कस्मिन् काले	....

२. **इन शब्दों की व्युत्पत्ति लिखें** (Derive the following words)—

गरीयान्	चारुता	तदीयः	तपस्वी	सादृश्यम्	रहस्यम्
गाङ्गम्	वैदिकः	अनेकशः	वर्णी	औत्सुक्यम्	माधुरी
चित्रीकृताः	भवादृशः	अन्यतः	कुतः	स्वागतीकृत्य	मानवः
पुरस्तात्	आसनमात्रम्	दौष्यन्ति	भूयिष्ठम्	पौरुषम्	हरिणकः
औषधम्	दास्यम्	दैत्यः	तामसम्	सात्त्विकः	दाशरथिः
कौन्तेयः	मानी	भावत्कः	सुखितः	ग्रामीणः	स्वर्णमयी

३. **इन शब्दों को जोड़कर शब्द-रचना करें** (Add the following)—

लघु + अण्	....	मृदु + तल्	....
भवत् + छस्	....	पुरा + तुट् + ट्यु	....
आदि + यत्	....	अन्न + मयट् + ङीप्	....
कृत्तिका + अण्	....	न्याय + ठक्	....
तद् + त्रल् + त्यप्	....	पाणिनि + छ	....
अहन् + ठञ्	....	पुरस् + त्यक्	....
महत् + इमनिच्	....	विषम + ष्यञ्	....

४. निम्नलिखित प्रत्ययों के दो-दो उदाहरण दें (Give two examples each of the following suffixes)—

य	....	....	ष्यञ्	....	....
अण्	....	....	ठक्	....	....
मयट्	....	....	त्यक्	....	....
त्यप्	....	....	छ	....	....
इतच्	....	....	वतुप्	....	....

५. इन शब्दों के स्त्रीलिङ्ग-रूप दें (Give feminine forms of the following)—

राजन्वान्	....	कैशिकः	....
मनस्वी	....	कियान्	....
श्रेयान्	....	माधुर्यम्	....
पुरातनः	....	वैष्णवः	....
आतिथेयः	....	मानुषः	....

*

१४ विभक्ति प्रकरण[१]
Case-endings

संस्कृत वाक्य-विज्ञान में विभक्ति महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यही दो पदों को किसी वाक्य में जोड़ती है। यद्यपि विभक्ति सुप् और तिङ् दोनों रूपों की होती है (**विभक्तिश्च** १.४.१०४ सुपः तिङश्च विभक्तिसंज्ञकाः) किन्तु इस प्रकरण में हमारा सम्बन्ध केवल सुप् विभक्तियों से है। ये प्रथमा, द्वितीया आदि सात हैं। प्रत्येक विभक्ति तीन वचनों में विभक्त है इसलिए २१ सुप्-प्रत्यय कहलाते हैं। यहाँ जब किसी विभक्ति का विधान होगा तो उसके तीनों वचनों का बोध होगा। अतः स्थूल रूप से विधान की दृष्टि से सात ही विभक्तियाँ हैं।

विभक्ति द्वारा किसी पद की विशिष्टता या व्यक्तित्व ज्ञात होता है–**विभज्यते = विशेषरूपेण अन्येभ्यः स्वतन्त्ररूपेण ज्ञायते परिचीयते अनया पदम् इति विभक्तिः।** प्रातिपदिक (अर्थतत्त्व, सार्थक शब्द) की पहचान सुप्-विभक्ति ही है (जैसे धातु की पहचान तिङ् से होती है)। विभक्ति ही शब्द के स्वभाव और दूसरे शब्दों से उसके सम्बन्ध को प्रकट करती है। संस्कृत में, प्रत्येक शब्द के विभक्ति-युक्त होने के कारण, वाक्य में पदों के क्रम का बहुत कठोर नियम नहीं है। शब्द कहीं भी हो, उसका सम्बन्ध विभक्ति द्वारा स्पष्ट हो जाता है।

विभक्ति (Case-ending) के दो प्रकार हैं–**कारक विभक्ति** और **उपपद विभक्ति**। **कारक विभक्ति** वह है जिससे क्रिया के साथ किसी शब्द का सम्बन्ध प्रकट होता है। '**बालको हसति**' इस वाक्य में 'बालक' शब्द का हँसने की क्रिया से सम्बन्ध है। बालक उस क्रिया का कर्ता है, उसमें प्रथमा विभक्ति है। यह कारक विभक्ति है। किन्तु क्रिया से भिन्न किसी भी अन्य शब्द के योग में जो विभक्ति लगती है, उसे **उपपद विभक्ति** कहते हैं। जैसे–**दुःखेन विना सुखं न भवति**। इस वाक्य में 'दुःख' शब्द से तृतीया विभक्ति 'विना' के योग में लगी है, 'विना' क्रिया से भिन्न शब्द है। यहाँ तृतीया उपपद विभक्ति है।

---

१. इस प्रकरण की विषय-वस्तु को ध्यान में रखकर व्याकरण-ग्रन्थों में इसके कई प्रकार से शीर्षक दिये गये हैं–**कारकप्रकरण, विभक्त्यर्थप्रकरण, विभक्तिप्रकरण, कारक और विभक्ति** इत्यादि। 'विभक्ति' व्यापक शब्द है जिसमें कारक भी परोक्षतः समाविष्ट हैं। कारक वस्तु की अन्तर्हित या सक्रिय शक्ति है, जिसका प्रकाशन विभक्ति द्वारा होता है। विभक्ति कारकभिन्न स्थितियों में भी होती है। कारकों के विवेचन पर मेरा विस्तृत ग्रन्थ है–**संस्कृत व्याकरण में कारकतत्त्वानुशीलन** (१९९४)।

निष्कर्ष हुआ कि क्रिया से साक्षात् अन्वित कारक विभक्ति है और क्रिया-भिन्न किसी शब्द के योग में होने वाली उपपद विभक्ति है। कारक विभक्ति कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान या अधिकरण–इन छह में से किसी एक सम्बन्ध के कारण होती है। ये ही छह कारक कहलाते हैं।

कारक–करोति क्रियां सम्पादयति इति कारकम्। अर्थात् क्रिया के सम्पादन में जिन-जिन वस्तुओं की सहायता ली जाय वे सब कारक हैं। इसीलिए कारक को क्रिया-निमित्त, क्रियोपकारक, क्रियानिष्पादक या क्रिया से अन्वित होनेवाला (क्रियान्वयि कारकम्) कहा गया है। इस प्रकरण में कारकों की भूमिका सर्वोपरि है इसलिए '**कारकप्रकरणम्**' भी कहते हैं। एक वाक्य लें–**रामस्य माता अग्निना स्थाल्याम् ओदनं पचति।** यहाँ रामस्य' को छोड़कर सभी शब्दों का पाकक्रिया (पचति) के सम्पादन में योगदान है। 'रामस्य' का सम्बन्ध 'पचति' से नहीं अपितु माता के साथ है। इसलिए षष्ठी विभक्ति से बोध्य 'सम्बन्ध' (Possessive) को संस्कृत में कारक नहीं कहते। कः पचति? **माता**। केन पचति? **अग्निना**। कुत्र पचति? **स्थाल्याम्**। किं पचति? **ओदनम्**। इस प्रकार दूसरे सभी शब्द 'पचति' से जुड़े हैं। केवल 'राम' नहीं जुड़ा है।

अतः कारकों की संख्या केवल छह है—

१. **कर्त्ता** (Nominative)
२. **कर्म** (Accusative)
३. **करण** (Instrumental)
४. **सम्प्रदान** (Dative)
५. **अपादान** (Ablative)
६. **अधिकरण** (Locative)

ये कारक वस्तुओं में निहित शक्तियों के रूप में होते हैं जिनका प्रकाशन विभिन्न विभक्तियों से होता है। सामान्यतः कारकों के प्रकाशन के लिए विभक्तियाँ निश्चित हैं किन्तु कभी-कभी अतिक्रमण भी वक्ता की इच्छा से होता है (**विवक्षातः कारकाणि भवन्ति**)। **स्थाली पचति** (बटलोही पका रही है–कर्ता, प्रथमा), **स्थाल्या पचति** (बटलोही द्वारा पकाता है–करण, तृतीया) और **स्थाल्यां पचति** (बटलोही में पकाता है–अधिकरण, सप्तमी)–इन प्रयोगों में इसे देख सकते हैं, यद्यपि सामान्यतः अन्तिम वाक्य ही अधिक प्रयुक्त होता है।

संस्कृत में **सम्बन्ध** (Possessive or Genitive) एवं **सम्बोधन** (Vocative) को कारक नहीं माना जाता क्योंकि इनकी साक्षात् क्रियोपकारकता नहीं होती, दूसरे प्रकार के शब्दों से ये जुड़े होते हैं किन्तु विभक्ति इन्हें मिलती है। सम्बन्ध मात्र में षष्ठी विभक्ति और सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है।

प्रथमा विभक्ति तथा कर्तृकारक (Nominative Case)

१. **प्रातिपदिकार्थ-लिङ्ग-परिमाण-वचन-मात्रे प्रथमा** (२.३.४६)—किसी शब्द के उस अर्थ को प्रातिपदिकार्थ कहते हैं जो उसके साथ अविभाज्य रूप से जुड़ा हो (नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः)। प्रातिपदिकार्थ अर्थात् वस्तु के नाम की प्रतीति हो तो प्रथमा विभक्ति होती है। वाक्य में सम्बन्ध के अभाव में भी किसी शब्द से प्रथमा इसीलिए रहती है। गौः, अश्वः, बालकः, फलम् आदि में प्रथमा लगी है, वाक्य से सम्बन्ध नहीं है। इसे सुविधा के लिए '**अर्थप्रतीतिमात्रे प्रथमा**' कह सकते हैं। इस सूत्र में लिङ्ग, परिमाण और वचन का भी उल्लेख रहने से इन वर्गों में शब्द को आना ही है। अतः वैयाकरणों ने इन वर्गों से बचकर 'प्रातिपदिकार्थ-मात्रे' का उदाहरण **उच्चैः, नीचैः, प्रातः** आदि दिया है। वैसे उपर्युक्त उदाहरण भी उचित हैं। लिङ्ग, परिमाण, वचन-ये अतिरिक्त अर्थ हैं। प्रातिपदिकार्थमात्र के उदाहरण वे शब्द हैं जिनमें लिङ्ग का झंझट नहीं है। या तो लिङ्गरहित अव्यय हैं या निश्चितलिङ्ग वाले शब्द हैं।[१] तदनुसार **कृष्णः, श्रीः, ज्ञानम्**–ये निश्चित लिङ्गवाले शब्द भी प्रातिपदिकार्थमात्रे प्रथमा के उदाहरण हैं।

प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त लिङ्गमात्र के आधिक्य का उदाहरण है–**तटः, तटी, तटम्।** इसमें अनियत लिङ्ग है। परिमाणमात्र का उदाहरण है–**द्रोणो व्रीहिः** द्रोण एक प्रकार का परिमाण (माप) है। प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त केवल परिमाण में प्रथमा होने से 'द्रोणः' का अन्वय 'व्रीहिः' के साथ हो जाता है। अर्थ हुआ–द्रोणरूप परिमाण से नपा हुआ धान (द्रव्य)।

वचन का अर्थ है संख्या। संख्यावाचक शब्दों से संख्या अर्थ में ही प्रथमा विभक्ति होती है जैसे–**एकः, द्वौ, बहवः दश, विंशतिः, पञ्चाशत्, षष्टिः, शतम्** इत्यादि। इन शब्दों से संख्या का बोध तो होता ही था किन्तु विभक्ति के बिना ये 'पद' नहीं होते। अतः 'अपदं न प्रयुञ्जीत' इस उक्ति की रक्षा के लिए प्रथमा विभक्ति का विधान हुआ (इहोक्तार्थत्वाद् विभक्तेरप्राप्तौ वचनम्–सि.कौ.)। कर्तृवाच्य के कर्ता में प्रथमा इसी सूत्र से होती है। **रामः पठति।**

२. **सम्बोधने च** (२.३.४७)—सम्बोधन अर्थ में भी प्रातिपदिक से प्रथमा विभक्ति होती है। किसी ज्ञात पदार्थ को अपनी ओर अभिमुख (मुखातिब) करने को ही **सम्बोधन** कहते हैं (सिद्धस्याभिमुखीभावमात्रं सम्बोधनं विदुः–**वाक्यपदीय**)। जब वह पदार्थ अभिमुख हो जाता है तब उसका विनियोग, सर्वनाम के माध्यम से (त्वम्, यूयम्, भवान् इत्यादि से), क्रियाओं में होता है। इसीलिए केवल अभिमुखीभाव के रूप में स्थित सम्बोधन वाक्यार्थ नहीं होता। सम्बोधन विभक्ति

१. **सिद्धान्तकौमुदी**, सू. ५३३ अलिङ्गा नियतलिङ्गाश्च 'प्रातिपदिकार्थमात्रे' इत्यस्य उदाहरणम्।

का अर्थ तो है, वाक्यार्थ नहीं–यह प्राचीन वैयाकरण सिद्धान्त है। उदाहरण–**हे राम! भो भोः पण्डिताः!** मूलतः प्रथमा विभक्ति होने पर भी सम्बोधन के एकवचन में पद-रचना की दृष्टि से कुछ भेद होता है। जैसे–रामः का **'राम'** (स् लोप)। मुनिः का **'मुने'**। साधुः का **'साधो'**। माता का **'मातः'**। लता का **'लते'** इत्यादि। सम्बोधन के एकवचन को **'सम्बुद्धि'** कहते हैं (एकवचनं संबुद्धिः २.३.४९)। केवल वहीं ये परिवर्तन होते हैं; द्विवचन–बहुवचन में नहीं।

३. **स्वतन्त्रः कर्ता** (१.४.५४)—कर्तृवाच्य में कर्ता कारक में प्रथमा विभक्ति होती है **(अभिहिते कर्तरि प्रथमा)**। अतः कर्ता का लक्षण जानना आवश्यक है। क्रिया की सिद्धि (निष्पत्ति, सम्पादन) में जो पदार्थ स्वतन्त्र रूप से विवक्षित हो, दूसरे कारकों को अपने-अपने काम में लगाये और क्रिया का साक्षात् आश्रय हो, वह **कर्तृकारक** कहलाता है। जैसे–**बालकः** खेलति। **मोहनः** पठति। **शिशुः** शेते। वाच्य के अनुसार कर्ता **अभिहित** (**उक्त** = वचन-पुरुषादि से क्रिया पर प्रभाव डालने वाला) हो सकता है या **अनभिहित** (**अनुक्त** = वचन-पुरुषादि से क्रिया को प्रभावित न करनेवाला)। पहली स्थिति कर्तृवाच्य में होती है, दूसरी स्थिति कर्मवाच्य या भाववाच्य में होगी। पहली स्थिति में, **कर्तृवाच्य या अभिहित होने पर,** कर्ता में प्रथमा विभक्ति लगेगी जैसे—

सूपकारः ओदनं पचति। **राजा** प्रजाः पालयति।
बालकाः गृहं गच्छन्ति। **वयं** कन्दुकेन क्रीडामः।

इन वाक्यों में कर्ता वचन और पुरुष से क्रिया पर प्रभाव डाल रहे हैं। दूसरी स्थिति में, कर्मवाच्य-भाववाच्य में अर्थात् अनभिहित होने पर, कर्ता में तृतीया विभक्ति लगेगी जैसे इन्हीं वाक्यों के कर्म-भाववाच्य में—

सूपकारेण ओदनः पच्यते। **राज्ञा** प्रजाः पाल्यन्ते।
बालकैः गृहं गम्यते। **अस्माभिः** कन्दुकेन क्रीड्यते।

इस विषय में तृतीया विभक्ति में सूत्र (नियम) देखेंगे–**कर्तृकरणयोस्तृतीया**।

यदि कर्म या कोई दूसरा कारक भी अभिहित हो जाय अर्थात् क्रिया को प्रभावित करने की स्थिति में हो तो उसमें भी प्रथमा विभक्ति होती है जैसे–उपर्युक्त वाक्यों में ओदन, प्रजा और गृह शब्दों में है। इसलिए 'प्रातिपदिकार्थमात्रे' को **'अभिधानमात्रे' प्रथमा** कहना या समझना चाहिए।

४. **तत्प्रयोजको हेतुश्च** (१.४.५५)—उपर्युक्त स्वतन्त्र कर्ता को जो कार्य के लिए प्रेरित करता हो, उसे भी **(प्रयोजक) कर्ता** एवं **हेतु** कहते हैं। इस प्रकार प्रेरणार्थक क्रियाओं के प्रयोग में दो कर्ता हो जाते हैं–प्रयोजक कर्ता (या हेतुकर्ता) तथा प्रयोज्यकर्ता। जैसे–गृहस्वामी स्वसेवकं कुर्वन्तं प्रेरयति (प्रयोजयति) =

गृहस्वामी स्वसेवकेन कारयति। गृहस्वामी प्रयोजक या हेतु कर्ता है, सेवक प्रयोज्यकर्ता है। आगे हम देखेंगे कि कुछ क्रियाओं में प्रयोज्यकर्ता में तृतीया होती है, कुछ में द्वितीया। **अध्यापकः छात्रान् पाठयति**–इसमें 'छात्र' प्रयोज्य कर्ता है किन्तु द्वितीया लगी है।

द्वितीया विभक्ति तथा कर्मकारक (Accusative Case)

१. **कर्मणि द्वितीया** (२.३.२)—कर्मकारक में द्वितीया विभक्ति होती है, यदि कर्म अनभिहित (अनुक्त) हो। उक्त या अभिहित कर्म में तो प्रथमा विभक्ति ही होती है। जैसे–**ग्रन्थं** पठति। **हरिं** भजति। **गुरुं** नमति। कर्म का लक्षण आगे दिया जाता है। व्याकरण में सात प्रकार के कर्म होते है;[१] सबमें अनुक्त होने पर द्वितीया ही होती है।

२. **कर्तुरीप्सिततमं कर्म** (१.४.४९)—कर्ता अपनी क्रिया के द्वारा जिसे सबसे अधिक प्राप्त करना चाहता है उसे कर्म कारक कहते हैं। इसलिए कर्म क्रिया के द्वारा व्याप्य होता है (क्रियाव्याप्यं कर्म)। कुछ लोग क्रिया के फल के आश्रय (क्रियाफलाश्रयं) को कर्म कहते हैं। जैसे–रामः **ओदनं** खादति। ओदन कर्म है। **चन्द्रं** पश्यति–इसमें चन्द्र कर्म है। 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र से इनमें द्वितीया विभक्ति लगी है। केवल ईप्सित होना ही कर्म का पूर्ण लक्षण नहीं है, उसे ईप्सिततम (Most desired) होना चाहिए। 'पयसा ओदनं भुङ्क्ते' इस वाक्य में पयस् ईप्सित तो है किन्तु ईप्सिततम नहीं। ईप्सिततम ओदन ही है, पयस् केवल कर्ता को आकर्षित करने वाला या साधनभाव है। **काष्ठानि भस्म करोति**–इसमें 'काष्ठ' विकार्य कर्म है, भस्म निर्वर्त्य कर्म है। इसी प्रकार **स्वर्णं कुण्डलं करोति**–में स्वर्ण (विकार्य) और कुण्डल (निर्वर्त्य) दोनों कर्म हैं। एक मूलरूप है दूसरा उससे बना रूप है। **सूर्यं** नमस्करोति, **गृहं** प्रविशति, **पन्थानं** गच्छति इत्यादि में प्राप्य कर्म है।

३. **तथायुक्तं चानीप्सितम्** (१.४.५१)—क्रिया के साथ, ईप्सिततम के समान, जुड़े हुए द्वेष्य या उदासीन वस्तु को भी कर्म कहते हैं। मुख्य (अभीष्टतम) वस्तु के साथ कभी द्वेष्य वस्तु भी अनजाने में जुड़ती है, तो कभी निरपेक्ष या उदासीन वस्तु। इसे **'अनीप्सित कर्म'** कहते हैं। द्वेष्य का उदाहरण–ओदनं भुञ्जानो **विषं**

१. ये हैं–**निर्वर्त्य** (जैसे–**ओदनं** पचति), **विकार्य** (**तण्डुलान्** पचति), **प्राप्य** (**वृक्षं** पश्यति), **उदासीन** (ग्रामं गच्छन् **तृणं** स्पृशति), **द्वेष्य** (अन्नं भुञ्जानो **विषं** भुङ्क्ते), **अकथित** (**अध्यापकं** प्रश्नं पृच्छति), **अन्यपूर्वक** (अभिनिविशते **सन्मार्गम्**)। (**वाक्यपदीय** ३.७.४५-६)। इनमें प्रथम तीन 'ईप्सिततम' के रूप हैं जबकि शेष दूसरे सूत्रों से लक्षित हैं। इन सब पर यहाँ विचार होगा।

भुङ्क्ते (ओदन खाते हुए विष खा जाता है)। यहाँ ओदन ईप्सित कर्म है, किन्तु अनजाने में वह **विष** खा जाता है जो जानकारी हो जाने पर **द्वेष्य** है। उदासीन का उदाहरण–ग्रामं गच्छन् **तृणं** स्पृशति (गाँव जाते हुए घास छूता है)। यहाँ ग्राम ईप्सित कर्म है, किन्तु तृण का स्पर्श उसे अभीष्ट नहीं। **तृण अनीप्सित** (उदासीन) कर्म है।

४. **अकथितं च** (१.४.५१)—दुह् आदि द्विकर्मक धातुओं के प्रयोग में, अपादान आदि विशेष संज्ञाओं से अविवक्षित (अकथित) कारक को भी कर्म कहा जाता है। अतः उससे भी द्वितीया विभक्ति होती है। द्विकर्मक धातुओं की संख्या १६ है जिसे दो वर्गों में विभक्त किया गया है–१. दुह् (दुहना), याच् (माँगना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्डित करना), रुध् (रोकना), प्रच्छ् (पूछना), चि (चुनना), ब्रू (बोलना, बताना), शास् (उपदेश देना), जि (जीतना), मथ् (मन्थन करना) और मुष् (चुराना) एवं २. नी (ले जाना), हृ (हरण करना), कृष् (खींचना) तथा वह् (ढोना)। इस वर्गीकरण का उद्देश्य कर्मवाच्य में प्रकट होता है।

उदाहरण—

(क) **गां दोग्धि पयः** (गौ से दूध निकालता है)। **गौ** अपादान से अविवक्षित, अकथित या गौण कर्म है; **दूध** मुख्य कर्म है। **बलिं याचते वसुधाम्** (बलि से पृथ्वी माँगता है)। **बलि** (अकथित, गौण कर्म) और **वसुधा** (मुख्य कर्म) ये दो कर्म हैं। **अविनीतं विनयं याचते** (उद्दण्ड से विनय की माँग करता है)। **अविनीत** (गौण) और विनय (मुख्य) कर्म हैं। **तण्डुलान् ओदनं पचति** (चावल से भात बनाता है)। **तण्डुल** गौण कर्म है। **गर्गान् शतं दण्डयति** (गर्ग गोत्रवालों को सौ रुपयों का दण्ड देता है)। **गर्ग** गौण कर्म है क्योंकि मूलतः यह अधिकरण था। **व्रजमवरुणद्धि गाम्** (बाड़े या घेरे के भीतर गाय को रोक रखता है)। **व्रज** अकथित कर्म है, मूलतः अधिकरण था। **छात्रान् प्रश्नं पृच्छति** (छात्रों से प्रश्न पूछता है)। मूलतः अपादान से अविवक्षित **छात्र** अकथित (गौण) कर्म है। **वृक्षं चिनोति फलानि** (वृक्ष से फलों को चुनता या तोड़ता है)। **वृक्ष** गौण कर्म है जो अपादान से अकथित है। **माणवकं धर्मं ब्रूते, शास्ति** (शिष्य को धर्म का उपदेश देता है)। **माणवक** अकथित कर्म है, यह मूलतः सम्प्रदान था। **देवदत्तं शतं जयति** (देवदत्त से सौ रुपये जीत लेता है)। **देवदत्त** अपादान से अविवक्षित कर्म है। अतः गौणकर्म है। **सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति** (अमृत को क्षीरसागर से मथता है)। अपादान से अविवक्षित

क्षीरनिधि अकथित कर्म है। **देवदत्तं शतं मुष्णाति** (देवदत्त से सौ रुपये चुरा लेता है)। देवदत्त अपादान से अकथित गौण कर्म है।[1]

(ख) दूसरे वर्ग की चार धातुओं के उदाहरण—**ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति** (बकरी को गाँव ले जाता है, खींचता है, पहुँचाता है)। इसमें **ग्राम** अधिकरण है, उससे अविवक्षित होकर अकथित कर्म हुआ है। अजा प्रधान कर्म है।

[ऊपर कहा गया है कि द्विकर्मक धातुओं के वर्गीकरण का उद्देश्य कर्मवाच्य में इन वर्गों की विशेष स्थितियाँ हैं। प्रथम बारह धातुओं (दुह् आदि) के प्रयोग में गौण (अकथित) कर्म ही प्रथमा विभक्ति में, कर्मवाच्य में जाता है जैसे—**गौः** दुह्यते पयः, **बलिः** याच्यते वसुधाम्, **गर्गाः** शतं दण्ड्यन्ते, **व्रजः** अवरुध्यते गाम्, **छात्राः** प्रश्नं पृच्छ्यन्ते, देवासुरैरमृतमम्बुनिधिर्ममन्थे (**किरातार्जुनीय** ५.३०)। दूसरी ओर नी, हृ आदि चार धातुओं की स्थिति में प्रधान (ईप्सित) कर्म का ही प्रथमा विभक्ति में रूपान्तरण होता है जैसे—**अजा** ग्रामं नीयते, ह्रियते, कृष्यते उह्यते।][2]

५. **गति-बुद्धि-प्रत्यवसानार्थ-शब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ** (१.४.५२)—**गति** = चलना। **बुद्धि** = समझना, जानना। **प्रत्यवसान** = भोजन। **शब्दकर्म** = ऐसी क्रिया जिसका कर्म शब्दोच्चारण के रूप में हो जैसे—वेदपाठ, शास्त्राभ्यास इत्यादि। इस प्रकार गत्यर्थक, ज्ञानार्थक, भोजनार्थक, शब्दकर्मक तथा अकर्मक धातुओं की अणिजन्त (मूल) अवस्था में जो कर्ता रहता है वह णिजन्त दशा में कर्म-कारक कहा जाता है। क्रमशः उदाहरण दिये जाते हैं—

अणिजन्त दशा	**णिजन्त दशा**
१. **छात्रः** गृहं गच्छति। ('गच्छति' अणिजन्त क्रिया है)	अध्यापकः **छात्रं** गृहं गमयति (= प्रेषयति)। ('गमयति' णिजन्त क्रिया है)
२. **शिष्यः** धर्मं बुध्यते। (शिष्य धर्म को समझता है)	**शिष्यं** धर्मं बोधयति। (शिष्य को धर्म समझाता है)
३. **बालकः** अन्नं भुङ्क्ते। (बालक अन्न खाता है)	**बालकम्** अन्नं भोजयति। (बालक को अन्न खिलाता है)

---

१. दुह्याच् पच् दण्ड् रुधिप्रच्छि-चिब्रूशासिजिमथ्मुषाम्।
कर्मयुक्स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

२. अष्टाध्यायी १.४.५१ पर महाभाष्यप्रदीप की उद्द्योत टीका—
गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्।

४. **पुत्रः** वेदं पठति। (पुत्र वेद पढ़ता है)	**पुत्रं** वेदं पाठयति। (पुत्र को वेद पढ़ाता है)
५. **शिशुः** शेते (अकर्मक)। (बच्चा सोता है)	माता **शिशुं** शाययति। (माता बच्चे को सुलाती है)

इस सूत्र के कई **अपवाद** हैं जहाँ अणिजन्त दशा के कर्ता की णिजन्त दशा में कर्म-संज्ञा नहीं होती अपितु अनुक्त कर्ता के कारण तृतीया विभक्ति होती है।

(क) अद् और खाद् धातुओं से भोजनार्थक होने पर भी—**पुत्रेण अन्नं खादयति, आदयति।** (पुत्र को अन्न खिलाता है)।

(ख) भक्ष् धातु का अहिंसार्थक प्रयोग होने पर—**पुत्रेण** मोदकं भक्षयति पिता। (पिता पुत्र को मिठाई खिलाता है) किन्तु हिंसार्थ में–**वृषभं** सस्यं भक्षयति (बैल से खड़ी फसल चरवा देता है–इससे फसल की हानि होती है)।

(ग) नी और वह् धातुओं से—**भृत्येन** भारं नाययति, वाहयति (नौकर से बोझ ढुलवाता है)। किन्तु नियन्ता कर्ता के रूप में हो तो वह् धातु के णिजन्त से कर्म संज्ञा ही होगी–सूतः **अश्वान्** रथं वाहयति (सारथि घोड़ों से रथ खिंचवाता है)।

सूत्र का अतिदेश (Extension)—जल्पति आदि क्रियाओं और दृश् धातु से भी णिजन्तावस्था होने पर मूल कर्ता की कर्मसंज्ञा होती है। जैसे—

पुत्रः धर्मं जल्पति, भाषते। (पुत्र धर्म की चर्चा करता है)	**पुत्रं** धर्मं जल्पयति, भाषयति देवदत्तः। (देवदत्त पुत्र से धर्म की चर्चा कराता है)
भक्ताः हरिं पश्यन्ति।	**भक्तान्** हरिं दर्शयति।

हृ और कृ धातु के णिजन्त-प्रयोग में यह स्थिति वैकल्पिक है (**हृक्रोरन्यतरस्याम्** १.२.५३)–हारयति कारयति वा **भृत्यं** (**भृत्येन**) कटम्–नौकर से चटाई ढुलवाता है, बनवाता है।

६. **अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञकः** (वार्तिक)—अकर्मक धातुओं का कोई कर्म नहीं होता किन्तु उनसे जुड़े हुए देश (स्थान), काल, क्रिया (भाव) तथा गन्तव्य दूरी के वाचक शब्दों से द्वितीया विभक्ति होती है (अतः वार्तिककार ने इन्हें कर्म कहा है)। जैसे–**कुरून्** स्वपिति (कुरुदेश में सो जाता है–देश), **मासं** तिष्ठति (महीने भर रहता है–काल), **गोदोहमास्ते** (गाय दुहे जाने तक बैठता है–भाव या क्रिया), **क्रोश**मास्ते (एक कोस की दूरी तक, वाहन पर, बैठता है)। वस्तुतः इन सभी वाक्यों में 'व्याप्य' का अर्थ निहित है–कुरून् व्याप्य, मासं व्याप्य इत्यादि।

७. **अधि-शीङ्स्थासां कर्म** (१.४.४६)—अधि उपसर्ग के बाद शीङ् (सोना), स्था (ठहरना) और आस् (बैठना) धातु के अधिकरण-कारक (आधार) की कर्म संज्ञा होती है; अतः इनसे द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे–**शय्याम्** अधिशेते (किन्तु, शय्यायां शेते–अधिकरण)। **वैकुण्ठम्** अधितिष्ठति हरिः (हरि वैकुण्ठ में अधिष्ठित हैं)। **आसनमध्यास्ते** राजा (राजा आसन पर बैठा है)। 'अधि' के अभाव में इन धातुओं के अधिकरण में सप्तमी ही होगी। वस्तुतः द्वितीया की सिद्धि के लिए यह सूत्र बना था।

८. **अभिनिविशश्च** (१.४.४७)—अभि और नि उपसर्ग के बाद (दोनों के संयुक्त प्रयोग की स्थिति में) विश् धातु के आधार की कर्म-संज्ञा होती है (अतः द्वितीया विभक्ति होती है)। जैसे–अभिनिविशते **सन्मार्गम्** (अच्छे आचरण के मार्ग में रुचि रखता है)। कभी-कभी आधार के कारण सप्तमी विभक्ति भी देखी जाती है–पापेऽभिनिवेशः। केवल नि + विश् के प्रयोग में तो सप्तमी ही होती है–निविशते यदि शूकशिखा **पदे** (यदि गेहूँ या धान की शूकशिखा तलवे में घुस जाए–**नैषधकाव्य** ४.११)। प्र + विश्–प्रविशति गृहम् (घर में प्रवेश करता है)।

९. **उपान्वध्याङ्वसः** (१.४.४८)—उप, अनु, अधि या आङ् उपसर्ग के बाद वस्–धातु के आधार की भी कर्मसंज्ञा होती है (अतः उससे द्वितीया विभक्ति होती है) जैसे–वनमुपवसति, नदीमनुवसति, कुटीमधिवसति, नगरमावसति। सबका अर्थ 'निवास करना' है। किन्तु उप + वस् का अर्थ भोजनत्याग (Fasting) हो तो कर्मसंज्ञा नहीं होती; आधार के कारण अधिकरण-संज्ञा एवं सप्तमी विभक्ति होगी–**वने उपवसति** (वन में उपवास करता है)।

उपपद द्वितीया विभक्ति

१. उभयतः, सर्वतः (चारों ओर), धिक्, उपर्युपरि (ऊपर ही ऊपर), अध्यधि (पास में), अधोऽधः (समीप, नीचे-नीचे), अभितः (दोनों ओर), परितः (चारों ओर), समया (निकट), निकषा (समीप), हा (धिक्कार) और प्रति (की ओर)–इन शब्दों के योग में सम्बद्ध शब्द से द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे–**राजमार्ग**मुभयतः वृक्षाः। सर्वतो **ग्रामं** सरोवराः। धिक् **पापिनम्** (पापी को धिक्कार)। उपर्युपरि **नगरं** मेघाः सन्ति। **लोकम्** अध्यधि अधोऽधो वा ईश्वरः (ईश्वर संसार के पास ही है)। उपरि और अधः अकेले हों तो षष्ठी विभक्ति होती है जैसे–**वृक्षस्ययोपरि** (वृक्ष के ऊपर), **वृक्षस्याधः** (वृक्ष के नीचे)। **नदी**मभितः नगरम् (नगर नदी के दोनों ओर बसा है)। **वनं** परितः मार्गाः (वन के चारों ओर रास्ते हैं)। **ग्रामं** समया पर्वतः (गाँव के पास पर्वत है)। **पाटलिपुत्रं** निकषा मम ग्रामः (मेरा गाँव पाटलिपुत्र के समीप है)। हा **कृष्णशत्रुम्** (कृष्ण के

शत्रु को धिक्कार, उसकी दशा शोचनीय है)। **बुभुक्षितं** न प्रतिभाति किञ्चित् (भूखे को कुछ अच्छा नहीं लगता)।

२. **अन्तराऽन्तरेण युक्ते** (२.३.४)—अन्तरा (बीच में) तथा अन्तरेण (बिना) के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। जैसे–**त्वां मां** च अन्तरा हरिः (तुम्हारे और मेरे बीच हरि हैं)। **विद्यामन्तरेण** सुखं नास्ति (विद्या के बिना सुख नहीं है)।

३. **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** (२.३.५)—अत्यन्त संयोग अर्थात् व्याप्ति के अर्थ में कालवाचक और मार्ग (स्थान, दूरी) के वाचक शब्द से द्वितीया विभक्ति होती है। **मासं** निवसति (एक मास तक निरन्तर रहता है)। क्रोशं कुटिला नदी (नदी एक कोस तक निरन्तर टेढ़ी-मेढ़ी है)। यदि व्याप्ति या निरन्तरता का अर्थ न हो तो द्वितीया विभक्ति नहीं लगती–**मासस्य** द्विः पठति (महीने में दो बार पढ़ता है), **क्रोशस्य** एकदेशे पर्वतः (कोसभर में एक स्थान पर पर्वत है)।

४. **कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया** (२.३.८)—अनु, उप, अप, परि, प्रति, आङ्, अभि इत्यादि शब्द विभिन्न अर्थों में पाणिनि द्वारा '**कर्मप्रवचनीय**' कहे गये हैं (१.४.८३-९७)। सामान्यतः ये उपसर्ग के समान प्रतीत होने पर भी उनसे भिन्न शब्द-वर्ग हैं। अंग्रेजी के Preposition के समान शब्दों का सम्बन्ध बताते हैं। इनके योग में सामान्यतः द्वितीया विभक्ति होती है। अप, आङ्, परि तथा कुछ अर्थों में प्रति के योग में पञ्चमी और अधि (स्व-स्वामि-संबन्ध में) के योग में सप्तमी विभक्ति लगती है। **द्वितीया के उदाहरण-जपमनु** मेघो वृष्टः (जप होते ही वर्षा हुई = जप के कारण)। **नदीमनु** सेना निवसति (नदी के साथ-साथ सेना की छावनी हैं)। **अनु हरिं** देवाः (देवगण हरि के पीछे अर्थात् उनके बाद ही हैं)। **हरिमभि** भक्ताः (भक्तगण हरि के साथ हैं)। **गिरिं** प्रति, अनु, परि, अभि विद्योतते विद्युत् (बिजली पर्वत की ओर चमक रही है)। **वृक्षं वृक्षम्** अभि, अनु, प्रति, परि सिञ्चति (एक-एक पेड़ को सींचता है)। लक्ष्मीः **हरिं** प्रति, परि, अनु (लक्ष्मी हरि का भाग या अंश है)। **अति देवान्** कृष्णः (कृष्ण देवताओं से बढ़कर हैं)।[1] पञ्चमी और सप्तमी के उदाहरण उन विभक्तियों के प्रसंग में मिलेंगे।

तृतीया विभक्ति तथा करण कारक (Instrumental Case)

१. **कर्तृकरणयोस्तृतीया** (२.३.१८)—अनुक्त (क्रिया के वचन, पुरुष या लिङ्ग को प्रभावित न करने वाले) कर्तृकारक तथा करणकारक में तृतीया विभक्ति होती

---

१. अनुर्लक्षणे (१.४.८४), तृतीयार्थे (८५), हीने (८६), उपोऽधिके च (८७) लक्षणेत्थंभूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः (९०), अभिरभागे (९१), अतिरति-क्रमणे च (९५) इत्यादि।

है। **अनुक्त कर्ता में–बालकेन** पठ्यते, **बालकैः** पठ्यते, **अस्माभिः** गीयते। **अनुक्त करण में–कुठारेण** वृक्षं छिनत्ति, **चक्षुषा** पश्यति, **हस्तेन** गृह्णाति, **मनसा** चिन्तयति, **लेखन्या** लिखति, **यानेन** आयाति। करण कारक का लक्षण दिया जाता है।

२. **साधकतमं करणम्** (१.४.४२)—क्रिया की सिद्धि (निष्पत्ति, पूर्ति Accomplishment) में जो कारक सर्वाधिक उपकारक हो उसे 'करण' कहा जाता है। अन्य सभी सहायकों के रहने पर भी जिसके आगमन के बाद ही क्रिया की सिद्धि हो (जिसके अभाव में क्रिया पड़ी रहे) वही करण होता है।[1] यही 'साधकतम' का अर्थ है। '**कुठारेण** वृक्षं छिनत्ति' (कुठार से पेड़ काटता है) इस वाक्य में कुठार की विवक्षा करण के रूप में है। इसकी विवक्षा यदि कर्ता के रूप में हो तो 'कुठारः वृक्षं छिनत्ति' इस रूप में प्रथमा विभक्ति होगी, कुठार उक्त या अभिहित हो जाएगा। इसी प्रकार '**स्थाल्या** पचति' (बटलोई से पकाता है) या '**स्थाली** पचति' (बटलोई पकाती है)। **लेखन्या** लिखति (करण), **लेखनी** लिखति (कर्ता)। **यानेन** याति (करण), **यानं** याति (कर्ता)।

३. **दिवः कर्म च** (१.४.४३)—दिव् धातु (खेलना, बेचना, लेन-देन करना इत्यादि) के कर्म की भी करण-संज्ञा होती है; अतः उसमें द्वितीया-तृतीया दोनों हो सकती है। अक्षैः दीव्यति, **अक्षान्** दीव्यति (जुए में पासे खेलता है)।

४. **परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्** (१.४.४४)—'परिक्रयण' का अर्थ है नियत समय के लिए वेतन पर सेवकत्व (नौकरी) ग्रहण करना। इस अर्थ में परि + क्री के प्रयोग में मूल्य (वेतन) वाचक शब्द की करण या सम्प्रदान संज्ञा होती है (अर्थात् तृतीया या चतुर्थी होती है)। जैसे–**शतेन, शताय परिक्रीतः** (सौ रुपयों पर रखा गया)।

उपपद तृतीया विभक्ति

१. **अपवर्गे तृतीया** (२.३.६)—'अपवर्ग' का अर्थ है फलप्राप्ति।[2] यदि निरन्तरता के अतिरिक्त फलप्राप्ति (कार्य पूरा होने) का भी अर्थ हो तो कालवाचक और मार्ग (दूरी) के वाचक शब्द से, द्वितीया के स्थान पर, केवल तृतीया विभक्ति होती है। **मासेन** अधीतं कारकप्रकरणम् (कारक प्रकरण एक मास तक निरन्तर पढ़कर पूरा कर लिया)। **क्रोशेन** अनुवाकोऽधीतः (एक कोस तक जाते-जाते वेद

---

१. **वाक्यपदीय** ३.७.९० **क्रियायाः परिनिष्पत्तिर्यद्व्यापारादनन्तरम्।**
विवक्ष्यते यदा तत्र करणत्वं प्रकीर्तितम्॥

२. अपवर्गः वर्जनम्, फले प्राप्ते सति क्रियायाः त्यागः अपवर्गः।

का एक अनुवाक-अंश-पूरा कर लिया)। केवल अत्यन्तसंयोग में द्वितीया, फलप्राप्ति (काम पूरा हो जाना) में तृतीया-यह भेद है। **मासं पठति, मासेन पठति** का अन्तर इसी रूप में है।

२. **सहयुक्तेऽप्रधाने** (२.३.१९)—सह या इसके अर्थ वाले सार्धम्, साकम्, समम् का प्रयोग होने पर अप्रधान शब्द से तृतीया विभक्ति होती हैं। यहाँ प्रधान तो वह है जो क्रिया से सीधा जुड़ा हो। जैसे–**पुत्रेण सह** पिता गच्छति। पिता 'गच्छति' क्रिया का कर्ता है, प्रधान है किन्तु पुत्र अप्रधान है। सह आदि शब्द कभी-कभी गम्यमान (छिपे हुए) भी रह सकते हैं जैसे–**व्यञ्जनेन** रोटिकां खादति। 'व्यञ्जन' अप्रधान है, 'सह' छिपा हुआ है। दूसरी ओर-**रोटिकया** व्यञ्जनं खादति-इस वाक्य में 'रोटिका' अप्रधान है। मुख्य रूप से वह व्यञ्जन (सब्जी) खा रहा है।

३. **येनाङ्गविकारः** (२.३.२०)—येन अङ्गेन अङ्गधारिणः विकारः (हानिः वृद्धिः वा) लक्ष्यते, तद्वाचकशब्दात् तृतीया भवति। जिस किसी एक अंग की विकृति से पूरे अंगधारी की विकृति लक्षित हो, उसे कोई विशेषण दिया जाए तो अङ्गवाचक शब्द से तृतीया विभक्ति होती है। जैसे–**पादेन** खञ्जः (पैर से लँगड़ा)। विकार एक अंग में है किन्तु 'खञ्ज' अंगधारी को कहा जाता है। यदि पैर को ही खञ्ज कहें तो वह अभिहित होने से प्रथमा विभक्ति ग्रहण करेगा–**पादः खञ्जः अस्य**। अन्य उदाहरण–**चक्षुषा** काणः (किन्तु, काणं चक्षुः)। **शिरसा** खल्वाटः (किन्तु, खल्वाटं शिरः)। **वपुषा** चतुर्भुजः (किन्तु, चतुर्भुजं वपुः)।

४. **इत्थम्भूतलक्षणे** (२.३.२१)—जिस लक्षण (चिह्न Sign) से 'वस्तु इस प्रकार की है (इत्थम्भूतम्)' ऐसा ज्ञात हो उस लक्षण-बोधक शब्द से तृतीया विभक्ति होती है। जैसे–**जटाभि**स्तापसः (जटाओं के लक्षण से वह तपस्वी है)। जटाएँ लक्षण हैं जिनसे तपस्वी होने का बोध होता है। इसी प्रकार '**काकेन** गृहं जानीहि' (गृह की पहचान वहाँ अभी कौए का बैठा होना है)।

५. **संज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि** (२.३.२२)—सम् + ज्ञा धातु के कर्म कारक में विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है जैसे–**मात्रा, मातरं** वा संजानीते (वह अपनी माता को सम्मान देता है या उनके साथ शान्ति से रहता है)। यह वस्तुतः कारक विभक्ति है।

६. **हेतौ** (२.३.२२)—हेतु के अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है। हेतु का अर्थ है कारण (Cause) जो द्रव्य, गुण, क्रिया के कारण अथवा क्रिया के उद्देश्य (फल) रूप में होता है। **द्रव्य का हेतु–दण्डेन** घटः, **धनेन** कुलम्, **विद्यया** यशः। **गुण का हेतु-पुण्येन** गौरवर्णः। **क्रिया का हेतु–पुण्येन** दृष्टः भगवान्।

तेनापराधेन दण्डितश्चौरः (उस अपराध के कारण चोर को दण्ड मिला)। **क्रियोद्देश्य–रूप हेतु–अध्ययनेन** छात्रावासे निवसति (अध्ययन के उद्देश्य से छात्रावास में रहता है)। यहाँ वैयाकरणों ने करण और हेतु का अन्तर स्पष्ट किया है कि द्रव्य, गुण या क्रिया को उत्पन्न करने वाले कारण को 'हेतु' कहते हैं जिसमें किसी प्रकार के व्यापार (Action) की भागीदारी नहीं होती (द्रव्यादिसाधारणं निर्व्यापारसाधारणं च हेतुत्वम्)। 'करण' तो किसी क्रिया के सम्पादन का साधन होता है उसमें व्यापार होना ही चाहिए (करणत्वं तु क्रियामात्रविषयं व्यापारनियतं च)। **यानेन गच्छति**।

७. **प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्** (वार्तिक)—प्रकृति आदि शब्दों से, उपयुक्त अर्थ में, तृतीया विभक्ति होती है। जैसे–**प्रकृत्या** सहिष्णुः (स्वभाव से सहनशील), **प्रायेण** पण्डितः (वह लगभग पण्डित है), **गोत्रेण** गार्ग्यः, **नाम्ना** विपिनचन्द्रः, **सुखेन** तिष्ठति, **समेन** गच्छति, **सहस्रेण** पशून् क्रीणाति (हजार की संख्या में पशुओं को खरीदता है), **कोटिना** ऋणं करोति (करोड़ में ऋण लेता है) इत्यादि।

८. **तृतीया विभक्ति के कुछ विशिष्ट प्रयोग**—

(क) 'अलम्' का अर्थ 'साध्यं नास्ति' (इससे होने योग्य नहीं) हो तो तृतीया होती है जैसे–**श्रमेण अलम्** (= श्रमेण साध्यं नास्ति, परिश्रम करने से कुछ नहीं होगा)। इसकी सिद्धि के लिए पाणिनीय वैयाकरणों ने कारण कारक की शरण ली और कहा है कि कभी-कभी क्रिया श्रूयमाण नहीं होती, गम्यमान होने पर भी कारक विभक्ति को जन्म देती है **(गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका)**। इसलिए 'श्रम' यहाँ 'साधयति' क्रिया का करण है, क्रिया की प्रतीति होती है। इसी सन्दर्भ में किम्, कार्यम्, अर्थः, प्रयोजनम् इत्यादि शब्दों के प्रयोग में भी तृतीया होती है– **धनेन** किम् (धनेन से क्या लाभ)? **तृणेन** कार्यं भवतीश्वराणाम् (समर्थ लोगों का काम घास-फूस से भी हो जाता है)। कोऽर्थः **पुत्रेण जातेन** यो न विद्वान्न धार्मिकः (ऐसे पुत्र के होने से क्या लाभ जो न विद्वान् हो न धर्मात्मा)? **केन जनेन** प्रयोजनं भवतः (आपका काम किस व्यक्ति से है)?

(ख) अतिक्रमण करने, आगे निकल जाने के अर्थ में तृतीया विभक्ति आगे बढ़नेवाले पदार्थ की विशेषता वाले शब्द से होती है–**स्वगुणैः** पूर्वान् पुरुषान् अतिशयितः (अपने गुणों से पूर्व पुरुषों से आगे बढ़ गया)। दूरीकृताः खलु **गुणैरुद्यानलता** वनलताभिः (**अभिज्ञानशाकुन्तलम्** १.१७)।

(ग) क्रय-विक्रय की स्थिति में मूल्यवाचक शब्द से तृतीया होती है–**शतेन** क्रीतः, **सहस्त्रेण** विक्रीतः। आत्मानं सततं रक्षेत्प्राणैरपि धनैरपि।

(घ) हीन, रहित, विकल, संपन्न आदि के योग में भी तृतीया विभक्ति होती है। जैसे–**धनेन** हीनः। **यशसा** रहितः, विकलः। **उपाधिभिः** सम्पन्नः, सनाथः।

चतुर्थी विभक्ति तथा सम्प्रदान कारक (Dative Case)

१. **चतुर्थी सम्प्रदाने** (२.३.१३)—चतुर्थी विभक्ति का मुख्य अर्थ सम्प्रदान कारक है। इसीलिए कहा गया है कि सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे–**ब्राह्मणाय** गां ददाति। 'ब्राह्मण' सम्प्रदान (दा धातु का परोक्ष कर्म) है। अतः उससे चतुर्थी लगी है। शिक्षकः **शिष्याय** ज्ञानं प्रयच्छति। शिष्य सम्प्रदान है। **बालपादपेभ्यो** जलं ददाति। बालपादप सम्प्रदान है। गौण सम्प्रदान से भी चतुर्थी होती है–**शिष्याय** मोदकः रोचते, **धनाय** स्पृहयति, दुष्टः **सज्जनाय** कुप्यति इत्यादि। इस प्रकार सम्प्रदान मुख्य और गौण दो प्रकार का है–मुख्यसूत्र से होने वाला एवं गौणसूत्रों से होनेवाला। इन्हें आगे के सूत्रों में देख सकते हैं।

२. **कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्** (१.४.३२)—यह मुख्य सम्प्रदान का बोधक संज्ञासूत्र है। कर्म के द्वारा कर्ता जिस वस्तु या व्यक्ति को संयोजित करता है (अभिप्रैति) वह सम्प्रदान कहा जाता है; जिसके उद्देश्य से कोई क्रिया होती है वह भी सम्प्रदान है (**क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्**–वार्तिक)। दोनों के उदाहरण पृथक् होते हैं।

i) **कर्म द्वारा प्राप्त करना–विप्राय** गां ददाति। **रजकाय** वस्त्रं ददाति।[1] **शिष्याय** उपदेशं प्रयच्छति। **शिशवे** कथां कथयति। **मूर्खाय** शिक्षा न दातव्या।

ii) **क्रिया द्वारा प्राप्त करना–युद्धाय** संनह्यते (युद्ध के लिए प्रस्तुत होता है)। **राज्ञे** निवेदयति (राजा को निवेदन करता है)। न **कस्मैचित्** सूचय (किसी को सूचित न करो)। सबमें 'सम्प्रदाने चतुर्थी' से चतुर्थी विभक्ति हुई है।

---

१. **रजकाय वस्त्रं ददाति**–इस वाक्य पर अनेक वैयाकरणों को आपत्ति है किन्तु पतञ्जलि इसे शुद्ध मानते हैं क्योंकि कुछ दिनों के लिए वस्त्र का स्वामित्व रजक के पास रहता है। आपत्ति करनेवाले शेषत्व-विवक्षा से 'रजकस्य वस्त्रं ददाति' प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार विवक्षा से 'मा प्रयच्छेश्वरे धनम्' (सप्तमी), 'कस्य किं दीयेत' (षष्ठी), 'अपात्रे दानमनुचितम्' (सप्तमी) इत्यादि भी होते हैं।

३. **रुच्यर्थानां प्रीयमाणः** (१.४.३३)—यहाँ से गौण सम्प्रदान के सूत्र चलते हैं। रुचि (अनुराग या प्रीति) के अर्थवाली क्रियाओं के प्रयोग में प्रसन्न होने वाला (अनुरागवान्) व्यक्ति सम्प्रदान-संज्ञक होता है; अतः उससे चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे–**बालकाय** मोदकः रोचते (बालक को मिठाई अच्छी लगती है)। **नारदाय** कलहः रोचते। **अपां हि तृप्ताय** न वारिधारा, स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा (**नैषधकाव्य** ३.९३ जल से अघा चुके व्यक्ति को स्वादिष्ट, सुगन्धित और शीतल होने पर भी जलधारा नहीं रुचती)।

४. **श्लाघ-ह्नुङ्-स्था-शपां ज्ञीप्स्यमानः** (१.४.३४)—श्लाघ् (प्रशंसा करना), ह्नुङ् (छिपाना), स्था (बैठा रहना) और शप् (शपथ लेना)–इन धातुओं के प्रयोग में, इन क्रियाओं द्वारा बोध्य व्यक्ति को सम्प्रदान कहते हैं (अतः उससे चतुर्थी होती है)। कामुकः **युवत्यै** श्लाघते (कामुक व्यक्ति युवति की प्रशंसा उसे अपने भाव-प्रकाशनार्थ करता है)। गोपी **कृष्णाय** अपह्नुते (गोपी अपने को लीलापूर्वक कृष्ण से छिपाती है)। सीता **रामाय** तिष्ठते (सीता राम को भाव-प्रकाशनार्थ ठहरी हुई है)–यहाँ प्रकाशन अर्थ में स्था धातु से आत्मनेपद है। युवा **प्रियायै** शपते (युवक अपनी प्रेमिका के समक्ष प्रेम की शपथ लेता है)।

५. **धारेरुत्तमर्णः** (१.४.३५)—'धारयति' (ऋण धारण करना to owe) क्रिया के प्रयोग में ऋणदाता (उत्तमर्ण) को सम्प्रदान कहते हैं (अतः उससे चतुर्थी होती है)। जैसे–स **महाजनाय** शतं मुद्राः धारयति (वह ऋणदाता महाजन के सौ रुपये रखे हुए है)। **भक्ताय** धारयति मोक्षं हरिः (हरि भक्त को देने के लिए मोक्ष रखे हुए हैं = भक्त का ऋण हरि पर है)।

६. **स्पृहेरीप्सितः** (१.४.३६)—'स्पृहयति' (इच्छा करना) क्रिया के प्रयोग में अभीष्ट पदार्थ को सम्प्रदान कहते हैं जैसे–**धनाय** स्पृहयति (धन के लिए स्पृहा करता है)। **दुर्ललिताय बालकाय** स्पृहयति मे मनः (मेरा मन इस दुलारे बालक की स्पृहा करता है कि यह मेरा रहता)। विवक्षा से 'धनस्य स्पृहयति' भी होता है। किन्तु ईप्सिततम होने पर कर्म कारक के कारण द्वितीया विभक्ति होगी–**पुष्पाणि** स्पृहयति। ईप्सितमात्र में–**पुष्पेभ्यः** स्पृहयति।

७. **क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः** (१.४.३७)—क्रोध, द्रोह (अपकार), ईर्ष्या (असहिष्णु होना) और असूया (गुणों में दोष ढूँढना) अर्थ की क्रियाओं के प्रयोग में जिसके प्रति कोप हो उसे सम्प्रदान कहते हैं। अतः उससे चतुर्थी विभक्ति होती है। **पुत्राय** क्रुध्यति, कुप्यति पिता। **शत्रवे** द्रुह्यति (शत्रु को हानि पहुँचाता है)। दुष्टः **साधवे** ईर्ष्यति (दुष्ट सज्जन के प्रति असहिष्णु है)। खलः **सज्जनाय** असूयति (खल सज्जन के दोष खोजता है)। '**भार्याम्** ईर्ष्यति' इस

वाक्य में कोप नहीं है, अपितु यह भाव है कि पत्नी को कोई देखे नहीं (मैनामन्यः पश्येत्)। **'रिपौ** कोपः' प्रयोग में अधिकरण-विवक्षा है।

क्रुध् और द्रुह् के पूर्व उपसर्ग हो तो कोप-पात्र की कर्म-संज्ञा होती है (क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म)। अतः द्वितीया होगी—किं **मां** संक्रुध्यसि (मुझ पर क्रोध क्यों करते हो)? **अस्मच्छरीर**मभिद्रोग्धुं यतते (वह राक्षस मेरे शरीर की हानि के लिए प्रयत्नशील है, मुद्राराक्षस, प्रथमाङ्क)। **हरिम**भिद्रुह्यति, अभिक्रुध्यति।

८. **प्रत्याङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता** (१.४.४०)—प्रति और आङ् के बाद श्रु धातु (प्रतिशृणोति, आशृणोति) का प्रयोग होने पर, पूर्व में की गई याचनादि के कर्ता की संप्रदान-संज्ञा होती है (अतः चतुर्थी विभक्ति होगी)। जैसे—सुग्रीवः किष्किन्धाराज्यं याचते। यह प्रार्थना है, अतः पूर्वकर्ता (याचक) सुग्रीव की सम्प्रदान-संज्ञा होने से—रामः **सुग्रीवाय** किष्किन्धाराज्यं प्रतिशृणोति, आशृणोति (राम सुग्रीव को किष्किन्धाराज्य देने का वचन देते हैं)। प्रतिश्रवण, आश्रवण = वचन देना (Promise), वादा करना।

उपपद चतुर्थी विभक्ति

१. (क) **तादर्थ्ये चतुर्थी** (वा.)—एक वस्तु जिस दूसरी वस्तु के लिए हो उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे—**यूपाय** काष्ठम् (खूँटा बनाने के लिए लकड़ी)। **कुण्डलाय** हिरण्यम् (कुण्डल बनाने के लिए सोना)। **रन्धनाय** पात्रम् (भोजन पकाने के लिए बर्तन)। **यशसे** काव्यम् (यश पाने के लिए काव्य)। **मुक्तये** हरिं भजति (मुक्ति के लिए हरि को भजता है)।

(ख) **क्लृपि सम्पद्यमाने च** (वा.)—कल्पते, जायते, भवति आदि क्रियाओं के प्रयोग में उत्पन्न होने वाली वस्तु में चतुर्थी होती है। जैसे—भक्तिः **ज्ञानाय** भवति, कल्पते, जायते, सम्पद्यते। सतां धनानि **लोकहिताय** भवन्ति। पापं **दुःखाय**, पुण्यं **सुखाय** जायते।

(ग) **उत्पातेन ज्ञापिते च** (वा.)—किसी प्राकृतिक दृश्य द्वारा ज्ञात कराये जाने वाले संकट (फल) के वाचक शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे—

वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी ।
पीता **वर्षाय** विज्ञेया **दुर्भिक्षाय** सिता भवेत् ।।

बिजली के रंग से आगामी संकट के समय का ज्ञान होता है।

२. **क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः** (२.३.१४)—किसी गम्यमान (किन्तु अप्रयुक्त) तुमुन्नन्त शब्द के कर्म में चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे—**फलेभ्यो** याति = फलानि आहर्तुं याति। 'आहर्तुम्' अप्रयुक्त (गम्यमान) तुमुन्नन्त शब्द है

उसके कर्म 'फल' से चतुर्थी हुई। इसी प्रकार, **काष्ठाय** (काष्ठमानेतुं) गच्छति। **मशकेभ्यो** (मशकान् अपाकर्तुं) धूमः। **आतपाय** (आतपं निवारयितुं) छत्रम्। **पिपासायै** (पिपासां शमयितुं) जलम्। यहाँ सूत्र में तुमुन्नन्त को 'स्थानी' कहा गया है क्योंकि इन वाक्यों में उसका मौलिक स्थान था भले ही प्रयुक्त नहीं हुआ है (यो भूत्वापि न भवति स स्थानी-पतञ्जलि)। तुमुन्नन्त का प्रयोग क्रियार्थक क्रिया में होता है (तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३.३.१०) अर्थात् एक क्रिया दूसरी क्रिया के लिए हो।

३. **तुमर्थाच्च भाववचनात्** (२.३.१५)—तुमुन् प्रत्यय के समानार्थक भाववाचक घञ्, ल्युट् आदि कृत्प्रत्ययों का प्रयोग हो तो उससे निष्पन्न शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे–**यागाय** याति (= यष्टुं याति)। **पाकाय** (पक्तुम्) अग्निमानयति। **पठनाय** (पठितुम्) गच्छति। **स्नानाय** (स्नातुं) नदीं प्रविशति।

४. **नमः–स्वस्ति–स्वाहा–स्वधालंवषड्–योगाच्च** (२.३.१६)—नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् (पर्याप्त), वषट्–इन अव्ययों के योग में सम्बद्ध शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है। जैसे–**श्रीगणेशाय** नमः। **प्रजाभ्यः** स्वस्ति (प्रजाओं का कल्याण हो)। **प्राणाय** स्वाहा। **पितृभ्यः** स्वधा। देवताओं को 'स्वाहा' से और पितरों को 'स्वधा' से अर्पण किया जाता है। **भोजनाय** अलमेतत् (खाने के लिए यह पर्याप्त है)। इन्द्रो **दैत्याय** अलम् (इन्द्र इस राक्षस के लिए पर्याप्त हैं)। **सूर्याय वषट्** (दीयते इत्यर्थः)।

५. **मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु** (२.३.१७)—अप्राणिवाचक शब्द से दिवादिगणीय मन् धातु (मन्यते) के कर्मकारक में, अनादर अर्थ में, चतुर्थी विभक्ति तथा द्वितीया का विकल्प से प्रयोग होता है। यह कारक विभक्ति है क्योंकि कर्म में विहित है। उदाहरण–न त्वां **तृणाय तृणं** वा मन्ये (तुम्हें मैं तृण-जैसा भी नहीं समझता)। किन्तु 'मन्यते' क्रिया न हो (उसी अर्थ में दूसरी क्रिया हो) तो केवल द्वितीया ही होगी (कर्मणि द्वितीया)–अहं त्वां **तृणं** चिन्तयामि, कल्पयामि।

६. **गत्यर्थकर्मणि द्वितीया-चतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि** (२.३.१२)—गत्यर्थक धातुओं के कर्म में द्वितीया और चतुर्थी का वैकल्पिक प्रयोग होता है, यदि चेष्टा (वास्तविक गति Actual motion) प्रतीत हो और कर्म के रूप में 'मार्ग' न हो। जैसे–**ग्रामं ग्रामाय** वा गच्छति। **वनाय** वनं वा प्रस्थितः (वन को चल पड़ा)। चेष्टा (वास्तविक गति) न होने से केवल द्वितीया होगी–**मोहं** गच्छति (अचेत हो जाता है)। मनसा **हरिं** व्रजति (मन से हरि के पास जाता है)। स्वप्ने **काशीं** गच्छति। मार्ग के प्रयोग में भी केवल द्वितीया होगी–**मार्गं** गच्छति। **पन्थानं**

प्रतिष्ठते (रास्ते पर चल पड़ता है)। यदि कुमार्ग से मार्ग पर जाने का अर्थ हो तो चतुर्थी होगी ही–उत्पथेन **पथे** गच्छति (कुमार्ग से मार्ग पर जाता है)।

पञ्चमी विभक्ति तथा अपादान कारक (Ablative Case)

१. **अपादाने पञ्चमी** (२.३.२८)—अपादान कारक में पञ्चमी विभक्ति होती है। अपादान का अर्थ है–अप पृथक् आदीयते विश्लिष्यते यस्मात् (जिससे पृथक् किया जाय)। अपादान वास्तविक (Actual) और बौद्धिक (Mental) दो प्रकार का होता है। **वृक्षात्पतति** में 'वृक्ष' वास्तविक अपादान है, **चौराद् बिभेति** जैसे वाक्यों में चौरादि बौद्धिक अपादान हैं। सभी अपादानों में (अपादान-संज्ञा होने मात्र से) पञ्चमी विभक्ति लगती है। जैसे–**वृक्षात्** पत्रं पतति। **मेघात्** विद्युत् विद्योतते (मेघ से बिजली चमकती है)। **पापाद्** विरमति (पाप से विरत होता है)। **अध्ययनात्** पराजयते। **धर्मात्** सुखं भवति।

२. **ध्रुवमपायेऽपादानम्** (१.४.२४)—अपाय (विच्छेद, विश्लेष, पूर्वसंयोगनाश) की स्थिति में ध्रुव वस्तु को (जहाँ से विच्छेद का आरम्भ हुआ हो उसे–Point of separation) **अपादान** कहते हैं। यहाँ 'ध्रुव' और 'अपाय' दोनों विशेष अर्थ के हैं। 'ध्रुव' अवधिभूत पदार्थ को कहते हैं, जहाँ से विभाजन का आरम्भ हुआ हो। वह चल-अचल कुछ भी हो सकता है। '**धावतः अश्वात्** पतति' उस उदाहरण में ध्रुव चल है, 'वृक्षात् पतति' में ध्रुव (वृक्ष) अचल है। दोनों स्थितियों में वह विभाजन (Separation) के प्रति उदासीन है।[1] 'अपाय' का सामान्य अर्थ है विभाग। इसमें संयुक्त पदार्थों के संयोग का नाश होता है। यह सूत्र मुख्य या वास्तविक अपादान का लक्षण प्रस्तुत करता है। इसके बाद के नियम बौद्धिक अपादान की प्रस्तुति करते हैं।

(क) **जुगुप्सा–विराम–प्रमादार्थानामुपसंख्यानम्** (वार्तिक)—जुगुप्सा (घृणा), विराम (विरक्ति) और प्रमाद (असावधानी) के अर्थवाली क्रियाओं के प्रयोग में भी अवधिरूप पदार्थ की अपादान-संज्ञा होती है (अतः पञ्चमी विभक्ति होती है)। जैसे–**अधर्माज्जुगुप्सते** (अधर्म से घृणा करता है)। **परिश्रमाद्** विरमति (परिश्रम से हट जाता है)। **कार्यात्** प्रमाद्यति (अपने कार्य से असावधान रहता है)। **उपसंख्यानम्** = जोड़ना, नियम को बढ़ाना। वार्तिकों में इसका बहुत प्रयोग है।

---

१. व्याकरण-ग्रन्थों में भर्तृहरि के नाम से प्रचलित कारिका—
**अपाये यदुदासीन चलं वा यदि वाचलम्।
ध्रुवमेवातदावेशात् तदपादानमुच्यते ॥**

३. **भीत्रार्थानां भयहेतुः** (१.४.२५)—भय और त्राण (रक्षा) अर्थवाली क्रियाओं के प्रयोग में भय का हेतु-रूप कारक 'अपादान' है। अतः उससे पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे-**व्याघ्राद्** बिभेति (बाघ से डरता है)। **चौरात्** त्रस्तः (भीतः) वर्तते। गोपः गां **व्याघ्रात्** रक्षति। **नरकात्** त्रायते व्रतम् (व्रत नरक से बचाता है)। यहाँ व्याघ्र, चौर, नरक भय के हेतु (जनक) हैं। अतः अपादान हैं। 'अरण्ये बिभेति' में अरण्य को भयहेतु नहीं माना गया है, अधिकरण है।

४. **पराजेरसोढः** (१.४.२६)—परापूर्वक जि धातु के प्रयोग में जो पदार्थ असह्य रूप में हो (असोढः = नञ् + सह् + क्त) वह अपादान है, अतः उससे पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे–**अध्ययनात्** पराजयते (अध्ययन से कष्ट पाता है, पढ़ना उसके लिए असह्य है)। यहाँ क्रिया अकर्मक है। परास्त करने के अर्थ में–शत्रून् पराजयते। यह सकर्मक है।

५. **वारणार्थानामीप्सितः** (१.४.२७)—किसी की प्रवृत्ति में रुकावट डालना वारण है (प्रवृत्तिविघातो वारणम्)। वारण (न करने देना) अर्थ की क्रिया के प्रयोग में ईप्सित पदार्थ की अपादान-संज्ञा होती है अतः उससे पञ्चमी विभक्ति लगती है। जैसे–**यवेभ्यो** गां वारयति (गाय को जौ के खेत में जाने से रोकता है)। **अग्नेः** शिशुं वारयति (आग की ओर जाने से बच्चे को रोकता है)। 'यव' और 'अग्नि' निवारण क्रिया के कर्मों को (गाय और बच्चे को) अभीष्ट हैं। अतः वे अपादान हैं। विद्या **पापान्**निवारयति (विद्या पाप से बचाती है)।

६. **अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति** (१.४.२८)—अन्तर्हित होने (छिपने, अन्तर्धि = अन्तः + धा + कि) के अर्थ में क्रिया का प्रयोग होने की स्थिति में, जिस किसी के द्वारा कर्ता अपना दर्शन (दिखाई पड़ना) न चाहता हो उसे अपादान कहते हैं। अतः उससे पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे–**मातुः** निलीयते कृष्णः (कृष्ण माता से छिपते हैं = वे चाहते हैं कि माता उन्हें न देख पाये)। 'इच्छति' का प्रयोग यह अर्थ रखता है कि अदर्शन की इच्छा रहने पर भी यदि दिखाई पड़ जाएँ तो भी यह वाक्य-प्रयोग हो। 'चौरान् न दिदृक्षते' (चोरों को देखना नहीं चाहता)–इस वाक्य-प्रयोग में अन्तर्धि का अर्थ नहीं है। कर्ता स्वयं नहीं छिपता।

७. **आख्यातोपयोगे** (१.४.२९)—उपयोग = नियमपूर्वक विद्या-ग्रहण करना। आख्याता = वक्ता, उपदेशक, शिक्षक। नियमतः विद्याग्रहण के अर्थ में उपदेशक की अपादान-संज्ञा होती है; अतः उससे पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे-**उपाध्यायात्** अधीते। **शिक्षकात्** शृणोति (शिक्षक से नियमतः सुनता है)। किन्तु कभी-कभी सुनने का अर्थ हो तो सम्बन्ध-सामान्य से षष्ठी होती है-**नटस्य** गाथां शृणोति (नट से लोकगीत सुनता है)।

८. **जनिकर्तुः प्रकृतिः** (१.४.३०)—उत्पन्न होने वाले कर्ता के (जायमानस्य कर्तुः) उत्पादक (प्रकृतिः) को अपादान कहते हैं। जैसे–**गोमयात्** कीटाः जायन्ते (गोबर से कीड़े जनमते हैं)। 'कीट' जायमान (उत्पन्न होने वाला) कर्ता है, 'गोमय' उसका उत्पादक (प्रकृति) है इसलिए अपादान है। अतएव उससे पञ्चमी हुई। **बीजात्** अङ्कुरः उत्पद्यते। **धर्मात्** सुखं भवति।

९. **भुवः प्रभवः** (१.४.३१)—भू-धातु के कर्ता के प्रभव (उत्पत्तिस्थल, प्रथम प्रकाशित होने का स्थान) को अपादान कहते हैं (अतः उससे पञ्चमी विभक्ति लगती है)। जैसे–**हिमालयाद्** गङ्गा प्रभवति। **वल्मीकाग्रात्** प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य (**मेघदूत** १.१५ दीमक की बाम्बी से इन्द्रधनुष निकल रहा है)।

उपपद पञ्चमी विभक्ति

१. **अन्यारादितरर्ते–दिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहि–युक्ते** (२.३.२९)—अन्य, इतर (एवं इस अर्थवाले शब्दों), आरात् (निकट या दूर), ऋते (बिना), दिग्वाचक शब्द, अञ्चु धातु वाले शब्दों (प्राक्, प्रत्यक् आदि), आच् और आहि (जैसे–दक्षिणा, उत्तरा, दक्षिणाहि, उत्तराहि) शब्दों के योग में पञ्चमी होती है। जैसे–**तस्मादन्यः,** इतरः भिन्नः। आराद् **वनात्** (वन के समीप या दूर)। ऋते **रामान्न** सुखम् (राम के बिना सुख नहीं)। **ग्रामात्पूर्वः** उत्तरो वा। **धनपतिगृहादुत्तरेण** मम गृहम्। **परीक्षायाः** प्राक् (परीक्षा से पहले)। **हिमालयाद्** दक्षिणा भारतवर्षम्। **ग्रामादुत्तराहि** नदी वर्तते।

(क) प्रभृति, आरभ्य, बहिः, अनन्तरम्, परम्, ऊर्ध्वम् इत्यादि शब्दों के योग में भी पञ्चमी विभक्ति होती है। जैसे–**तस्माद्दिवसात्** प्रभृति (उस दिन से लेकर)। **तद्दिनादारभ्य** (उस दिन से आरम्भ करके)। **ग्रामाद्** बहिः (गाँव के बाहर)। **प्रस्थानाद्** अनन्तरम्, परम्, ऊर्ध्वम् (चलने के बाद)। **ततः** परम् (उसके बाद)। अतोऽनन्तरम् (इसके बाद = अस्मात् अनन्तरम्)।

२. **पृथग्विना–नानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम्** (२.३.३२)—पृथक्, विना और नाना शब्द के प्रयोग में पञ्चमी, द्वितीया और तृतीया इन तीनों विभक्तियों का वैकल्पिक प्रयोग होता है। जैसे–पृथक् **रामात्, रामं, रामेण** वा (राम से अलग या उनके बिना)। नाना **रामात् रामं रामेण** वा (राम के बिना)। **रामात् रामं रामेण** वा विना। नाना **नारीं** निष्फला लोकयात्रा (नारी के बिना लौकिक जीवन निरर्थक है)।

३. **दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम्** (२.३.३४)—दूर और निकट के वाचक शब्दों के योग में पञ्चमी और षष्ठी विभक्तियों का वैकल्पिक प्रयोग होता है। जैसे–**ग्रामात् ग्रामस्य** वा दूरम्। **तव त्वद्** वा अन्तिकम्, निकटम्, समीपम्।

(क) दूर और अन्तिक अर्थवाले शब्दों में द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी ये तीनों विभक्तियाँ हो सकती हैं (दूरान्तिकेभ्यो द्वितीया च २.३.३५)। जैसे–नदी ग्रामस्य **दूरं, दूरेण, दूराद्** वा। **अन्तिकम्, अन्तिकेन, अन्तिकाद्** वा नद्याः।

४. **विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्** (२.३.२६)—'हेतु' अर्थ में होनेवाली तृतीया के प्रसंग में यह सूत्र कहता है कि गुणवाचक हेतु यदि स्त्रीलिङ्ग न हो तो उससे तृतीया के अतिरिक्त पञ्चमी विभक्ति भी हो सकती है। जैसे–**जाड्येन जाड्याद्** वा स बद्धः (अपनी मूर्खता के कारण वह बाँधा गया)। जाड्य गुणवाचक शब्द है, स्त्रीलिङ्ग नहीं है। बाँधे जाने का हेतु है। **मौनात् मौनेन** वा मूर्खः कथ्यते (मौन रहने से कोई मूर्ख माना जाता है)। गुणवाचक हेतु न रहने से केवल तृतीया होगी–**धनेन** कुलम्। स्त्रीलिङ्ग का गुणवाचक हेतु रहने से भी केवल तृतीया होगी–**विद्यया** यशो लभ्यते।

५. **पञ्चम्यपाङ्परिभिः** (२.३.१०)—अप, आङ् और परि–इन कर्मप्रवचनीय शब्दों के योग में, द्वितीया न होकर, पञ्चमी विभक्ति होती है। अप और परि वर्जन (छोड़ना–Exclusion) अर्थ में ही कर्मप्रवचनीय होते हैं, आङ् मर्यादा (उस वस्तु को छोड़कर–Exclusion) और अभिविधि (व्याप्ति, उस वस्तु को लेकर–Inclusion) अर्थ में कर्मप्रवचनीय है। उदाहरण–अप **हरेः**, परि **हरेः** संसार (हरि को छोड़ना ही संसार-चक्र है)। अप **पाटलिपुत्रात्** वृष्टः मेघः (पाटलिपुत्र को छोड़कर पानी बरसा)। आ **हिमालयाद्** भारतवर्षम् (हिमालय तक भारतवर्ष है)। आ **समुद्रात्** तस्य राज्यम् (सागर तक, उसे छोड़ते हुए, उसका राज्य है)। आ **मुक्तेः** संसारः; आ **सकलाद्** ब्रह्म (ब्रह्म सबको लेकर है; मुक्ति की स्थिति के पूर्व तक संसार है)।

६. **पञ्चमी विभक्ते** (२.३.४२)—निर्धारण (किसी वर्ग या समुदाय से एक वस्तु या व्यक्ति का पृथक्करण)[१] की स्थिति में जब निर्धारित होने वाले पदार्थ का केवल विभाजन (भेद) दिखाया जाय अर्थात् केवल तुलना की जाय तो अवधिरूप पदार्थ के वाचक शब्द से पञ्चमी विभक्ति लगती है। जिससे पार्थक्य दिखाएँ उसमें यह विभक्ति होती है जैसे–जननी जन्मभूमिश्च **स्वर्गादपि** गरीयसी। **ज्ञानाद्** भक्तिः विशिष्यते (ज्ञान से भक्ति बढ़कर)। **धनाद्** विद्या श्रेयसी। माथुराः **पाटलिपुत्रकेभ्यः** आढ्यतराः (मथुरा के लोग पाटलिपुत्र के लोगों से अधिक सम्पन्न हैं)। इन तुलनाओं में विभाग (भेद) निहित है (Implied)। ज्ञान

१. जाति-नाम-गुण-क्रियाणाम् उत्कर्षेण अपकर्षेण वा सजातीयपदार्थेभ्यः एकांशस्य पृथक्करणं निर्धारणम्।

भक्ति नहीं है, भक्ति ज्ञान नहीं है। तुलनीय पदार्थों में वर्ग का भेद है (जनन्यां स्वर्गत्वं न, स्वर्गे जननीत्वं न इत्यादि)।

७. **ल्यब्-लोपे कर्मण्यधिकरणे च** (वार्तिक)—जब किसी वाक्य में ल्यप्-प्रत्ययान्त शब्द का लोप किया जाता है (ऐसा अर्थ निहित रहता है) तो उस शब्द के कर्म और अधिकरण में पञ्चमी विभक्ति लगती है। जैसे-**प्रासादात्** प्रेक्षते (= प्रासादमारुह्य प्रेक्षते), महल पर चढ़कर देखता है। **आसनात्** प्रेक्षते (= आसने उपविश्य प्रेक्षते), आसन पर बैठकर देखता है। प्रासाद कर्म है, आसन अधिकरण। दोनों के बाद ल्यप्-प्रत्ययान्त शब्द लुप्त हैं। अतः इनमें पञ्चमी लगी है।

(क) जिससे कालगत या मार्गगत दूरी का निरूपण हो उससे पञ्चमी होती है। मार्गगत दूरी के वाचक शब्द से प्रथमा या सप्तमी होगी, किन्तु कालगत दूरी के वाचक शब्द से केवल सप्तमी।[१] जैसे-**वनात् ग्रामो योजनं योजने वा। कार्तिक्या आग्रहायणी मासे** (कार्त्तिक पूर्णिमा से अगहन की पूर्णिमा एक महीना दूर है)। **प्रयागात् पञ्चाशत्क्रोशाः (पञ्चाशत्क्रोशेषु वा) वाराणसी** = प्रयाग से वाराणसी पचास कोस दूर है। **माघात् तृतीये मासि** (माघ से तीन महीने की दूरी पर)। **विवाहात् दशमे दिने** (विवाह से दस दिन दूर)।

षष्ठी विभक्ति (Genitive Case)

१. **षष्ठी शेषे** (२.३.५०)—कारकों तथा प्रातिपदिकार्थ से भिन्न स्व-स्वामिभाव आदि सम्बन्ध को 'शेष' कहा गया है (उक्तादन्यः शेषः)। इस अर्थ में शब्द से षष्ठी विभक्ति लगती है। यह सूत्र पाणिनि ने सब प्रकार के विशेष संबन्धों वाली विभक्तियों के विधान के बाद दिया है, अतः स्वभावतः शेष संबन्ध-सामान्य का बोधक है (संबन्धसामान्ये षष्ठी)। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय (३.७.१५६) में कहा है—

सम्बन्धः कारकेभ्योऽन्यः क्रियाकारकपूर्वकः।
श्रुतायामश्रुतायां वा क्रियायां सोऽभिधीयते ॥

तदनुसार सम्बन्ध कारकों से भिन्न होता है। क्रिया चाहे श्रुत हो या अश्रुत (गम्यमान) हो वह सम्बन्ध क्रिया और कारक को मानकर ही विविध रूपों में प्रकट होता है। 'राज्ञः पुरुषः' (राजा का कर्मचारी) इस प्रयोग में राजा दान, कर-ग्रहण इत्यादि क्रियाओं के कर्ता का रूप गम्यमान है; राजा और पुरुष के बीच

१. वार्तिक-यतश्चाध्वकालनिर्माणं तत्र पञ्चमी। तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ। कालात् सप्तमी च वक्तव्या। (**सिद्धान्तकौमुदी**, सूत्र ५९५ के अन्तर्गत)

स्व-स्वामिभाव या उपकार्य-उपकारक भाव प्रतीत होता है। 'मातुः स्मरति' में स्मरण-क्रिया श्रुत है उसके कर्म के रूप में सम्बन्ध की प्रतीति होती है।

कर्म आदि कारकों की जब केवल संबन्धमात्र-विवक्षा होती है तो षष्ठी विभक्ति लगती है जैसे–**सतां गतम्** (सज्जनों का चलना, 'सज्जन' कर्ता हैं)। **सर्पिषो जानीते** (केवल घी से ही प्रवृत्त होता है; 'घी' करण है)। **मातुः स्मरति** ('माता' कर्म है)। **एधो दकस्योपस्कुरुते** (इन्धन जल को गुणों से भरता है, 'उदक' कर्म है)। **भजे शम्भोश्चरणयोः** (शिव के चरणों को भजता हूँ, 'चरण' कर्म है)। **फलानां तृप्तः** (फलों से सन्तुष्ट, 'फल' करण है)–इस प्रकार कारकों की शेषत्व (संबन्ध सामान्य)–विवक्षा से षष्ठी विभक्ति होती है। आगे के सूत्र इसी के प्रपञ्चमात्र (केवल विस्तार) हैं—

२. **ज्ञोऽविदर्थस्य करणे** (२.३.५१)—जानने के अर्थ से भिन्न अर्थवाली ज्ञा धातु के करण कारक में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे–**सर्पिषो जानीते** (घी द्वारा प्रवृत्त होता है)। **मधुनः** जानीते (मधु से प्रवृत्त होता है)। इन द्रव्यों की रिश्वत लेकर काम करने के लिए तैयार होता है। यहाँ ज्ञा धातु लक्षणा-वृत्ति से 'कारण-रूप पदार्थ के ज्ञान से प्रवृत्ति' के अर्थ में प्रयुक्त होती है।

३. **अधीगर्थ–दयेशां कर्मणि** (२.३.५२)—अधि + इक् + अर्थ = स्मरणार्थक। स्मरणार्थक धातुओं, दय्–धातु (दया करना) और ईश्–धातु (शासन करना) के कर्म कारक में षष्ठी विभक्ति होती है। जैसे–**मातुः** स्मरति (माता का स्मरण करता है)। **निर्धनानां** दयते (निर्धनों पर दया करता है)। **लोकस्य** ईष्टे (संसार पर शासन करता है)। यदि शेषत्व-विवक्षा न हो, कर्मत्व-विवक्षा हो तो द्वितीया ही होती है–**मातरं** स्मरति।

४. **कृञः प्रतियत्ने** (२.३.५३)—प्रतियत्न = गुण बढ़ा देना, दूसरा गुण ला देना। इस अर्थ में कृ धातु के कर्म में षष्ठी होती है। अग्निः **स्वर्णस्य** उपस्कुरुते (आग सोने में गुण बढ़ा देती है, चमक ले आती है)। एधः **उदकस्य** उपस्कुरुते (इन्धन से, गर्म करने से, जल में विशेष गुण आ जाता है)। कर्मत्व-विवक्षा हो तो द्वितीया होगी। गुण बढ़ाने (भूषित करना) के अर्थ में ही कृ धातु के पूर्व सुट् लगता है यदि सम्, परि, उप–इन तीन उपसर्गों में से किसी एक का प्रयोग हो–संस्करोति, परिष्करोति, उपस्कुरुते।

५. **दिवस्तदर्थस्य** (२.३.५८)—द्यूतक्रीड़ा और लेन-देन (क्रय-विक्रय) के अर्थ में दिव्-धातु प्रयुक्त हो तो उसके कर्म में षष्ठी होती है। जैसे–**शतस्य** दीव्यति (सौ रुपयों का क्रय-विक्रय करता है, सौ रुपये जुए में लगाता है)। अन्य अर्थों में द्वितीया ही होगी–**ब्राह्मणं दीव्यति** (ब्राह्मण की स्तुति करता है)। उपसर्गपूर्वक

दिव्–धातु उपर्युक्त अर्थ में हो तो कर्म में षष्ठी विकल्प से होती है–**शतस्य शतं वा** प्रतिदीव्यति (सौ रुपये जुए में लगता है)।

६. **कर्तृकर्मणोः कृति** (२.३.६५)—कृत्प्रत्ययान्त क्रिया के अनुक्त कर्ता और अनुक्त कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यह 'शेष षष्ठी' से भिन्न नियम है। यह कारक विभक्ति है। **तिङन्त क्रिया** के कर्ता में प्रथमा और कर्म में द्वितीया होती है, किन्तु **कृदन्त क्रिया** के कर्ता और कर्म में षष्ठी होती है। 'कर्तरि षष्ठी' का उदाहरण–**कृष्णस्य** गतिः। **छात्रस्य** जिज्ञासा। **पृथिव्याः** कम्पनम्। **आचार्यस्य** अध्यापनम्। 'कर्मणि षष्ठी' का उदाहरण–**पत्रस्य** लेखकः। **समाचारस्य** वाचनम्। **ग्रन्थस्याध्ययनम्। चन्द्रस्य** दर्शनम्। **धनस्य** दानम्। **अन्नस्य** पाकः।

(क) **उभयप्राप्तौ कर्मणि** (२.३.६६)—जब एक ही वाक्य में कृत्प्रत्ययान्त क्रिया के कर्ता और कर्म दोनों में षष्ठी विभक्ति होने का प्रसंग आ जाय तब केवल कर्म में षष्ठी होती है, अनुक्त कर्ता में तो तृतीया-विभक्ति लगेगी। जैसे–कृष्णेन **चन्द्रस्य** दर्शनम्। 'कृष्ण' दर्शन-क्रिया के कर्ता हैं (तृतीया हुई), 'चन्द्र' कर्म है उसमें षष्ठी लगी। इसका प्रसिद्ध उदाहरण है–आश्चर्यः **गवां** दोहः अगोपेन (किसी गोप-भिन्न व्यक्ति के द्वारा गायों का दुहा जाना आश्चर्य की बात है)। 'दोहः' कृदन्त शब्द है–दुह्+घञ्। अन्य उदाहरण–शिशुना **पयसः** पानम्। कालिदासेन **प्रकृते**र्निरीक्षणम्। छात्रेण **व्याकरणस्य** पाठः।

अपवाद (Exceptions)—

i) यह नियम उन कृत्प्रत्ययों के साथ नहीं लगता जो 'अक' और 'अ' के रूप में होकर स्त्रीलिङ्ग-रूप बन गये हों। जैसे–भेदिका बिभित्सा वा **रुद्रस्य जगतः** (रुद्र का जगत् को नष्ट करना या उनकी जगत् को नष्ट करने की इच्छा)। रुद्र कर्त्ता है, जगत् कर्म है। दोनों में षष्ठी लगी है। **भेदिका**–भिद् + ण्वुल् (धात्वर्थ निर्देशे) + टाप् = भिन्न किया जाना। **बिभित्सा**–भिद् + सन् + अ + टाप् = भिन्न करने की इच्छा।

ii) कुछ विद्वान् मानते हैं कि केवल स्त्रीवाचक कृत्प्रत्ययों से यह नियम नहीं लगता कि केवल कर्म में षष्ठी हो। कर्ता में भी विकल्प से षष्ठी या तृतीया हो सकती है (शेषे विभाषा, स्त्रीप्रत्यय इत्येके)। जैसे–**पाणिनेः** (पाणिनिना वा) **सूत्राणां** कृतिः (पाणिनि द्वारा सूत्रों की रचना)। **आचार्यस्य** (आचार्येण वा) **शब्दानाम्** अनुशासनम् ('शेषे विभाषा' से)। **मम** (मया वा) **चन्द्रस्य** दिदृक्षा (मेरी चन्द्रमा देखने की इच्छा)। देखें–**सिद्धान्तकौमुदी**, सूत्र (**उभयप्राप्तौ कर्मणि**)।

७. **क्तस्य च वर्तमाने** (२.३.६७)—वर्तमानकाल के अर्थवाले क्त-प्रत्यय के योग में षष्ठी होती है। जैसे—**राज्ञां** मतः (अभीष्ट), बुद्धः (ज्ञात), पूजितः, अर्चितः, विदितः (राजा उसे चाहते हैं, जानते हैं, आदर देते हैं)। इच्छार्थक, ज्ञानार्थक और पूजार्थक धातुओं से वर्तमान काल में क्त प्रत्यय होता है (३.२.१८८ **मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च**)। उसी का यहाँ निर्देश है। क्त-प्रत्यय भाव (क्रिया) अर्थ में नपुंसकलिङ्ग से विशिष्ट रहता है (**नपुंसके भावे क्तः** ३.३.११४)। जैसे—जल्पितम् (बकबक करना), शयितम् (सोना), हसितम् (हँसना), रुदितम् इत्यादि। इनके योग में उपर्युक्त **'कर्तृकर्मणोः कृति'** से कर्ता में षष्ठी होती ही है—**मूर्खस्य** जल्पितम्, **शिशोः** शयितम्, **तस्य** हसितम्, रुदितम् इत्यादि।

(क) **अधिकरणवाचिनश्च** (२.३.६८)—अधिकरण अर्थ में भी क्त प्रत्यय होता है। उसके योग में भी क्रिया के कर्ता में षष्ठी विभक्ति लगती है। जैसे—**इदं तेषाम् आसितम्** (यह वह जगह है जहाँ वे बैठते थे)। इदं **मुकुन्दस्य शयितम्** (सोने का स्थान)। आसितम् = आसनम्। शयितम् = शय्या।

८. **न लोकाव्यय-निष्ठा-खलर्थ-तृनाम्** (२.३.६९)—'कर्तृकर्मणोः कृति' का यह अपवाद-सूत्र है। कृत्प्रत्ययों में लकार के स्थान वाले (शतृ, शानच्), उ-प्रत्यय (जैसे—जिज्ञासुः, भिक्षुः, पिपासुः), उक-प्रत्यय (कामुकः, अभिलाषुकः), अव्यय बनाने वाले प्रत्यय (क्त्वा, तुमुन् आदि), निष्ठा (क्त, क्तवतु)—प्रत्यय, खलर्थ प्रत्यय (दुष्करः, सुकरः आदि) और तृन्—प्रत्यय (दाता, द्रष्टा) से बने कृदन्तों के प्रयोग में कर्ता और कर्म से षष्ठी विभक्ति नहीं होती। न होने की स्थिति में अनुक्त कर्ता में तृतीया और कर्म में द्वितीया होगी। उदाहरण—

i) **लकारस्थानीय**—ग्रामं गच्छन्। वेदं पठन्। शास्त्रमधीयानः। कष्टं सहमानः।

ii) **उप्रत्ययान्त**—दुःखं सहिष्णुः। धर्मं जिज्ञासुः। जलं पिपासुः। पदं स्पृहयालुः।

iii) **उकप्रत्ययान्त**—पदवीम् अभिलाषुकः। किन्तु **'लक्ष्याः** कामुकः' अपवाद है।

iv) **अव्ययकृदन्त**—गृहं गत्वा। धनमादाय। देवं द्रष्टुम्।

v) **निष्ठा (क्त क्तवतु)**—तेन जलं पीतम्। बालकः अन्नं भुक्तवान्।

vi) **खलर्थप्रत्यय**—मूर्खेण दुर्गमः धर्मः। तेन सुकरं कार्यम्। (देखें—कृत्प्रकरण)

vii) **तृन् प्रत्यय**—शिवः मोक्षं दाता। दोषं द्रष्टा। यदि कर्म में षष्ठी हो तो तृच् प्रत्यय मानना चाहिए। जैसे—**मोक्षस्य** दाता शिवः। **ग्रन्थस्य** कर्ता।

९. **कृत्यानां कर्तरि वा** (२.३.७१)—कृत्य-प्रत्ययान्त (कृदन्त) शब्दों के प्रयोग में कर्ता से विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है, षष्ठी के विकल्प में अनुक्त कर्ता से तृतीया होगी। जैसे–कृष्णः **तव त्वया** वा अर्चनीयः। गन्तव्या ते (त्वया वा) वसतिरलका। **राक्षसेन्द्रस्य** संरक्ष्यं **मया** लव्यमिदं वनम् (**भट्टिकाव्य** ८.१२९)। हनुमान् अशोक वन के विषय में कहते हैं कि यह वन रावण के लिए रक्षणीय है किन्तु मेरे लिए उजाड़ने योग्य (लव्यम्–लू + यत्) है। षष्ठी तृतीया दोनों का क्रमशः प्रयोग है।

१०. **तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम्** (२.३.७२)—तुल्य (समानता Equality) अर्थ वाले शब्दों के प्रयोग में, जिससे तुलना की जाती है उससे षष्ठी के अतिरिक्त तृतीया विभक्ति भी होती है किन्तु 'तुला' और 'उपमा' इन दो शब्दों के योग में केवल षष्ठी ही होती है। **कृष्णस्य** (कृष्णेन वा) समानः, तुल्यः, सदृशः समः नास्ति कश्चित् (कोई भी कृष्ण के समान नहीं है)। तुला और उपमा के योग में–**कृष्णस्य तुला उपमा वा नास्ति** (कृष्ण की समानता नहीं है)।

कुछ काव्यों में तुला और उपमा के योग में तृतीया का प्रयोग हुआ है जैसे–**तुलां यदारोहति दन्तवाससा** (**कुमारसंभव** ५.३४) तुम्हारे ओठ की तुलना के लिए वह ऊँचा उठता है। **स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना** (**शिशुपालवध** १.४) स्पष्टतः भस्म से धवल शिव से तुलना किये जाने योग्य। इन स्थलों में 'सहयुक्तेऽप्रधाने' से तृतीया का समर्थन हो सकता है।

११. **षष्ठी हेतुप्रयोगे** (२.३.२६)—'हेतु' शब्द के प्रयोग में, हेतु की प्रतीति होने पर, दोनों शब्दों से षष्ठी होती है–हेतु शब्द से तथा हेतु रूप दी गई वस्तु के वाचक शब्द से। जैसे–**अन्नस्य हेतोः** वसति। **अल्पस्य हेतो**र्बहु हातुमिच्छन् (**रघुवंश** २.४७ थोड़ी चीज के लिए तुम बहुत चीजें छोड़ना चाह रहे हो)। रोदिषि **कस्य हेतोः** (किस चीज के लिए से रहे हो)?

(क) **सर्वनाम्नास्तृतीया च** (२.३.२७)—सर्वनाम से जुड़े हेतुशब्द के प्रयोग में दोनों से षष्ठी के अतिरिक्त तृतीया विभक्ति भी होती है। जैसे–**तस्य हेतोः, तेन हेतुना** (उसके लिए)। **केन हेतुना** वसति? **कस्य हेतोः** समागतः? वार्तिक में कहा गया है कि हेतु या निमित्त (Purpose) के पर्याय का प्रयोग होने पर सभी विभक्तियों का प्रयोग देखा जाता है जैसे–किं निमित्तम्, केन कारणेन, कस्मै निमित्ताय, कस्मात् कारणात्, कस्य प्रयोजनस्य, कस्मिन् निमित्ते तव आगमनम्?

१२. **षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन** (२.३.३०)—तस् प्रत्यय से बने शब्दों के तथा उस अर्थ में आने वाले दिशा (Direction) के बोधक शब्दों के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। 'दिक्शब्द' के कारण होनेवाली पञ्चमी का यह अपवाद है। उदाहरण-**ग्रामस्य** दक्षिणतः (गाँव की दक्षिण दिशा में)। **वनस्य** पुरः, पुरस्तात् (वन के पूर्व ओर या सामने)। **वृक्षस्योपरि,** उपरिष्टात् (वृक्ष के ऊपर की ओर)।

(क) **एनपा द्वितीया** (२.३.३१)—'एन' से युक्त दक्षिणेन, उत्तरेण आदि शब्दों के योग में षष्ठी और द्वितीया विभक्तियाँ विकल्प से होती हैं। जैसे दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा। उत्तरेण **नदीं नद्याः** वा (नदी के उत्तर की ओर)। दक्षिणतः, उत्तरतः से तो केवल षष्ठी ही होगी।

सप्तमी विभक्ति तथा अधिकरण कारक (Locative Case)

१. **सप्तम्यधिकरणे च** (२.३.३६)—अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति होती है। 'च' का प्रयोग दूर और अन्तिक के अर्थवाले शब्दों का ग्रहण करने के लिए है–वनस्य **दूरे, समीपे, निकटे, अन्तिके** इत्यादि। इनमें सप्तमी भी होती है। देखें–उपपद पञ्चमी विभक्ति, सूत्र सं. (३)। 'अधिकरण' एक पारिभाषिक शब्द है जिसे आगे दिखाया जाता है। प्रस्तुत सूत्र के उदाहरण हैं–**वने** वसति। **भूमौ** तिष्ठति। **सरोवरे** स्नाति इत्यादि।

२. **आधारोऽधिकरणम्** (१.४.४५)—क्रिया के आधार को अधिकरण कारक कहते हैं। अधिकरण क्रिया का आधार परम्परा-सम्बन्ध से (Indirectly) होता है, सीधा नहीं। कर्ता या कर्म का आश्रय के रूप में यह रहता है अर्थात् कर्ता या कर्म जिस पर आश्रित रहकर क्रिया की निष्पत्ति करें वही अधिकरण है। 'वृक्षे वानरः तिष्ठति' में कर्ता (वानर) का आधार 'वृक्ष' अधिकरण है। 'स्थाल्याम् ओदनं पचति' में कर्म (ओदन) का आधार 'स्थाली' (बटलोई) अधिकरण है। इसीलिए कहा गया है कि कर्ता या कर्म के माध्यम से क्रिया को परोक्षतः धारण करते हुए क्रिया-सिद्धि में उपकार करने वाला कारक अधिकरण है—

कर्तृकर्मव्यवहितामसाक्षाद् धारयत्क्रियाम्।
उपकुर्वत् क्रियासिद्धौ शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्॥

(वाक्यपदीय ३.७.१४८)

आधार के तीन भेद हैं—

१. **औपश्लेषिक या ऐकदेशिक** जैसे–**वने** वसति, **नद्यां** स्नाति, **गृहे** तिष्ठति, **शय्यायां** शेते। इन सबमें आधार का केवल एक भाग ही क्रिया का आश्रय है।

२. **अभिव्यापक** जब आधार पूर्णतः क्रिया द्वारा व्याप्त हो, कर्ता या कर्म पूरे आधार में रहे जैसे–**तिलेषु** तैलम् अस्ति, **दुग्धे** मधुरता वर्तते, **अग्नौ** उष्णता भवति।

३. **वैषयिक–धर्मे** वेदाः प्रमाणम् (धर्म के विषय में वेद प्रमाण हैं)। **मोक्षे** (मोक्ष के विषय में) इच्छा अस्ति। **कलासु** (कलाओं के विषय में) रमेशः कुशलोऽस्ति। लक्षणा से **सामीप्य के रूप में** भी आधार होता है जैसे–**गङ्गायां** घोषः (गङ्गा के समीप या तट पर गोपालकों की बस्ती है)। **यमुनायां** व्रजभूमिः (यमुना नदी के पास व्रजभूमि है)।

सप्तमी विभक्ति के अन्य प्रयोग

१. (क) **साध्वसाधुप्रयोगे** (वार्तिक)—साधु और असाधु के प्रयोग में भी सप्तमी विभक्ति होती है–साधुः कृष्णो **मातरि,** असाधुः **मातुले** (कृष्ण माता के विषय में लाभकर या अच्छे हैं, अपने मामा कंस के विषय में हानिकर या बुरे हैं)।

(ख) **निमित्तात् कर्मयोगे** (वार्तिक)—निमित्त या कारण के बोधक शब्द से सप्तमी होती है यदि कर्म के साथ वे अनिवार्यतः जुड़े हों–**चर्मणि** द्वीपिनं हन्ति (मनुष्य चर्म प्राप्त करने के निमित्त बाघ को मारता है)। पूरा श्लोक है—

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति, **दन्तयोर्हन्ति** कुञ्जरम् ।
केशेषु चमरीं हन्ति, **सीम्नि** पुष्कलको हतः ।।

बाघ को चर्म के लिए, हाथी को दाँत के लिए, चमरी (Yak) को उसके झब्बेदार केशों के लिए और कस्तूरी के लिए पुष्कलक मृग को मारा जाता है। सभी निमित्त (चर्मादि) उन-उन पशुओं से जुड़े रहते हैं।

२. **यस्य च भावेन भावलक्षणम्** (२.३.३७)—जिस व्यक्ति या पदार्थ की क्रिया से (भावेन) दूसरे की क्रिया लक्षित हो, उस क्रियायुक्त (व्यक्ति या पदार्थ) के बोधक शब्द से सप्तमी विभक्ति होती है। **सूर्ये उदिते** विहगाः कूजन्ति। सूर्य की उदय–क्रिया से पक्षियों की कूजन-क्रिया लक्षित होती है अतः 'सूर्य' से सप्तमी हुई। **शिक्षके आगते** छात्राः समुत्थिताः (शिक्षक के आने पर छात्र खड़े हो गये)। **गोषु दुह्यमानासु** (जब गायें दुही जा रही थीं) स गतः। **अवसन्नायां रात्रौ** (जब रात बीत गयी) गृहमागच्छत्। इस प्रकार के प्रयोगों को 'भावे सप्तमी' कहते हैं।

टिप्पणी—

i) जब **एक ही कर्ता एक ही समय में** दो क्रियाओं से जुड़ा हो तो एक क्रिया में शतृ या शानच् का प्रयोग होता है। जैसे–**रामः** गच्छन् हसति (राम जाते

हुए हँसता है)। इसे 'गच्छति च हसति च' भी कह सकते हैं। **कष्टं सहमानः रोदिति** (कष्ट सहते हुए रोता है, सहते च रोदिति च)।

ii) जब **एक ही कर्ता** दो क्रियाओं से **आगे-पीछे** जुड़ता है तो पूर्व क्रिया में क्त्वा या ल्यप् प्रत्यय लगता है। जैसे–**बालकः पुस्तकं पठित्वा गृहं गच्छति।** इसे 'अत, अनन्तरम्' इत्यादि से भी प्रकट कर सकते हैं–बालकः पुस्तकं पठति, अथ (अनन्तरं, ततः परं) गृहं गच्छति।

iii) जब **दो कर्ता पृथक् क्रियाओं** से जुड़ें तब **'भावे सप्तमी'** होती है। वे एक ही समय कार्य करें तो शतृ-शानच् का प्रयोग होगा जैसे–**गर्जति मेघे बालकः बिभेति** = जब मेघ गरजता है, तब बालक डर जाता है; **गोषु दुह्यमानासु स गतः।** यदि वे आगे-पीछे काम करें तो 'क्त-क्तवतु' का प्रयोग होगा जैसे–**उदिते सूर्ये स जागर्ति** = सूर्य के उगने पर वह जागता है; **गतवतीषु छात्रासु शिक्षिकापि गता** = जब छात्राएँ चली गई तब शिक्षिका भी चली गई।

३. **षष्ठी चानादरे** (२.३.३८)—यदि एक की क्रिया से दूसरे की क्रिया में अनादर (अवज्ञा, उपेक्षा Contempt or Disrespect) प्रकट हो तो पूर्वकर्ता में षष्ठी भी होती है, सप्तमी तो होगी ही। जैसे-रुदति शिशौ, **रुदतो वा शिशोः** माता जगाम (बच्चा जब रो रहा था, उसे छोड़कर माता चली गई)। **रुदति पुत्रे, रुदतः पुत्रस्य** वा पिता प्राव्राजीत् (रोते हुए पुत्र की उपेक्षा करते हुए पिता ने संन्यास-ग्रहण कर लिया)।

(क) स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद (सम्पत्ति में हिस्सा लेने वाला), साक्षी (गवाह, Witness), प्रतिभू (जमानतदार Surety) तथा प्रसूत-इन सात शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी दोनों विकल्प से होती है। **गवां, गोषु** वा स्वामी (गायों का मालिक), ईश्वरः, अधिपतिः। **काश्यपे, काश्यपस्य** वा दायादः (काश्यप का हिस्सेदार)। **पित्रंशे, पित्रांशस्य** वा दायादः (पिता की संपत्ति में हिस्सेदार)। **व्यवहारे, व्यवहारस्य** वा साक्षी (न्यायालय की कार्यवाही में साक्षी)। **ऋणबद्धे जने, ऋणबद्धस्य जनस्य** वा प्रतिभूः (ऋणग्रस्त व्यक्ति की जमानत लेने वाला)। **पुत्रे, पुत्रस्य** वा प्रसूतः (पुत्र की देखभाल के लिए जन्म लेने वाला)। **गोषु, गवां** वा प्रसूतः गोपः (गायों के लिए जन्मा हुआ गोपालक)।

(ख) **आयुक्त-कुशलाभ्यां चासेवायाम्** (२.३.४०)—आसेवा = क्रिया की आवृत्ति। इस अर्थ में आयुक्त और कुशल के योग में षष्ठी-सप्तमी का प्रयोग वैकल्पिक है। धनवान् **भोगेषु, भोगस्य** वा आयुक्तः (धनी व्यक्ति

भोग-विलास में सदा लगा होता है)। विद्यार्थी **अध्ययने, अध्ययनस्य** वा कुशलः (छात्र अध्ययन में सदा तत्पर रहता है)। किन्तु 'गौः शकटे आयुक्तः' (बँधा है) इसमें 'आसेवा' का अर्थ नहीं है।

४. **यतश्च निर्धारणम्** (२.३.४१)—जाति, गुण, क्रिया या संज्ञा (Proper name) द्वारा किसी एक को पूरे समुदाय (Class) से पृथक् करें तो उसे 'निर्धारण' कहते हैं। ऐसे निर्धारण अर्थ में उस समुदाय-वाचक शब्द से षष्ठी सप्तमी विभक्ति विकल्प से होती है। **जाति द्वारा निर्धारण—नराणां, नरेषु** व क्षत्रियः शूरतमः। **गुण द्वारा निर्धारण-गवां, गोषु** वा कृष्णा बहुक्षीरा (गायों में काली गाय बहुत दूध देती है)। 'कृष्णा' गुणवाचक है। **क्रिया द्वारा निर्धारण—अध्वगानाम्, अध्वगेषु** वा धावन् शीघ्रतमः (मार्ग पर चलने वालों दौड़ने वाला सबसे तेज है)। 'धावन्' क्रियावाचक है। **संज्ञा द्वारा निर्धारण—छात्राणां, छात्रेषु वा** मैत्रः पटुः (विद्यार्थियों में मैत्र बहुत कुशल है)। 'मैत्र' छात्र का नाम है।

विभक्ति-विषयक सामान्य तथ्य

१. **निवृत्तौ च क्रियायाः प्रवृत्तिवत्**—निषेधात्मक (Negative) वाक्यों में भी प्रवर्तक (Affirmative) वाक्यों के समान विभक्तियाँ होती हैं। जैसे—**फलानि** न पतन्ति। **चन्द्रं** न पश्येत्। **लेखन्या** न लिखति। **निर्धनेभ्यो** न ददाति। **अश्वात्** न पतति। **परिश्रमात्** न विरमति। **दुष्टस्य** नास्ति सहायः। वने मा निवस।

२. **विवक्षावशात् कारकाणि भवन्ति**—कारकों की प्रवृत्ति में वक्ता की इच्छा कभी-कभी नियामक होती है किन्तु सदैव नहीं, अन्यथा अराजकता हो जायगी। कारक वस्तुतः वस्तु की शक्ति है, क्रिया को सम्पन्न करने वाली शक्ति है। वह सब प्रकार से सदा आविर्भूत हो सकती है इसलिए जिस शक्ति के जिन-जिन रूपों में प्रकट होने की स्थिति दिखाई पड़ती है वहाँ विवक्षा काम करती है। इस विषय में भर्तृहरि कहते हैं—

शक्तिमात्रासमूहस्य विश्वस्यानेकधर्मणः ।
सर्वदा सर्वथा भावात् क्वचित् किञ्चिद् विवक्ष्यते ॥

(वाक्यपदीय ३.७.२)

इसीलिए कहीं तो सूत्र ही विकल्प देते हैं, कहीं शिष्ट प्रयोग से विवक्षा व्यक्त होती है। इसीलिए, **गृहं** गच्छति, **गृहे** गच्छति, **गृहाय** गच्छति—ये तीन प्रयोग संभव हैं। **शत्रवे** कुप्यति, **शत्रौ** कुप्यति। **नृपं** धनं याचते, **नृपात्** धनं याचते।

सम्पन्नाय (सम्पन्ने) धनं न देहि। **अनपराधम् (अनपराधे)** मा प्रहर्तुं शक्नोषि। **बालकाय, बालकं, बालकस्य** वा स्पृहयसि। गुरुः **प्राज्ञे, प्राज्ञाय** वा विद्यां वितरति। **वृक्षस्य, वृक्षात्** वा पर्णं पतति। **बुभुक्षितं, बुभुक्षितस्य** वा न प्रतिभाति किञ्चित्। **स्थाली, स्थाल्या, स्थाल्यां** वा पचति। ये सब विवक्षा के विकल्प हैं।

३. **विभक्तिः पुनरेका स्यादुपमानोपमेययोः**—उपमान और उपमेय में समान विभक्ति होती है। जैसे–**चन्द्रस्येव नृपस्य। चन्द्र** इव **मुखम्। पद्मस्येव मुखस्य** गन्धः। **पुत्रे** इव **शिष्ये** स्नेहः। **पिञ्जरादिव जगज्जालात्** मुक्तौ भवति।

४. **उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी**—उपपद विभक्ति से कारक विभक्ति अधिक प्रबल होती है। 'नमः' के योग में चतुर्थी उपपद विभक्ति है, किन्तु नमस् + कृ (नमस्कार करना) के कर्म में द्वितीया होना कारक विभक्ति है। अतः '**मुनिं नमस्करोति**' में कारक विभक्ति की प्रबलता के कारण द्वितीया होती है। वहाँ 'नमः' की पृथक् सत्ता नहीं; वह 'करोति' क्रिया का अङ्ग है।

अभ्यास - १७

१. **कारक की परिभाषा देकर उसके भेदों का सोदाहरण उल्लेख करें।**

२. **कारक और विभक्ति का भेद बताएँ।**

३. **आधार के भेदों का सोदाहरण उल्लेख करें।**

४. **कर्मकारक के भेदों का उदाहरण-सहित परिचय दें।**

५. **निम्नलिखित सूत्रों की उदाहरण-सहित व्याख्या करें—**

(क) कर्तुरीप्सिततमं कर्म
(ख) कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे
(ग) अपवर्गे तृतीया
(घ) हेतौ
(ङ) रुच्यर्थानां प्रीयमाणः
(च) धारेरुत्तमर्णः
(छ) तुमर्थाच्च भाववचनात्
(ज) भीत्रार्थानां भयहेतुः
(झ) वारणार्थानामीप्सितः
(ञ) पञ्चमी विभक्ते
(ट) कर्तृकर्मणोः कृति
(ठ) क्तस्य च वर्तमाने
(ड) कृत्यानां कर्तरि वा
(ढ) यस्य च भावेन भावलक्षणम्
(ण) यतश्च निर्धारणम्

६. **निम्नलिखित वाक्यों में रेखाङ्कित पदों की विभक्तियों का सकारण निर्देश करें—**

(क) i) **प्रकृत्या** मधुरं गवां पयः।
ii) **धनेन** कार्यं नास्ति।

iii) **प्रयत्नेन** सेवां करोति।
iv) अलं **श्रमेण**।
v) **उत्तरेण** गच्छ।
vi) **त्वया** विना नैव सुखं प्रकल्पितम्।

(ख) i) **तपसे** गता सा।
ii) कल्पसे **रक्षणाय**।
iii) **हरये** रोचते भक्तिः।
iv) **ग्रामादारात्**।
v) **प्रासादात्**प्रेक्षते।
vi) नाहं त्वां **तृणाय** मन्ये।

(ग) i) **मम** गन्तव्यं तत्र नास्ति।
ii) **मासस्य** द्विः अधीते।
iii) **रुदतः शिशोः** माता जगाम।
iv) **कवीनां** कालिदासः श्रेष्ठः।
v) **कलहात्** भीतोऽस्मि।
vi) **दरिद्रस्य** दयते।

(घ) i) अस्तंगते **सूर्ये** गतः।
ii) **गृहे** निवासः।
iii) **व्याकरणे**ऽधीती।
iv) **पुत्रे** माता स्निह्यति।
v) **चर्मणि** द्वीपिनं हन्ति।
vi) **त्वयि** मे पूर्णः विश्वासः।

(ङ) i) **ग्रामाय** गच्छति।
ii) **मह्यं** मिष्टान्नं रोचते।
iii) **श्वशुरात्** जिह्रेति।
iv) **सर्वेषां** पूजितो बुधः।
v) **मया** ओदनो भुज्यते।
vi) त्राहि मां **दुष्टात्**।

७. निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करें—

(क) i) मैं गुरु से व्याकरण पढ़ता हूँ।
ii) मुझे विवाद अच्छा नहीं लगता।
iii) वह एक आँख का काना है।
iv) गंगा हिमालय से निकलती है।
v) बाण गद्य-लेखकों में श्रेष्ठ है।
vi) उनके आने पर तुम जाना।

(ख) i) कुएँ में अधिक जल नहीं है।
ii) शिक्षक घूमने के लिए चले गये।
iii) छात्रा परीक्षाफल देखकर प्रसन्न हुई।
iv) तुम निर्धन को कपड़े देते हो।
v) वे लोग शीघ्र आ रहे हैं।
vi) उन्होंने तीन उपन्यास लिखे।

(ग) i) राम के बिना अयोध्या शून्य हो गई।
ii) वस्त्रों से वह सज्जन लगता है।

iii) वह महीने भर व्याकरण पढ़ता रहा।
iv) राम के साथ सीता वन गई।
v) कष्ट पाकर वह जी रहा है।
vi) दुःखों को सहते हुए भी छात्र पढ़ते हैं।

(घ) i) तुम स्नान के लिए नदी तक क्यों नहीं जाते?
ii) किस वर्ष से वह काम कर रहा है?
iii) यह फल खाने के लिए नहीं, शोभा की वस्तु है।
iv) नेता लोग पदों के लिए राजनीति में जाते हैं।
v) यह शहर एक कोस तक सीधा फैला है।
vi) गाँव के दोनों ओर पहाड़ हैं।

८. कोष्ठकों से सही शब्द चुनकर रिक्त स्थानों को भरें—

(क) .... पर्वतः दृश्यते। (रामेण, रामः, रामस्य)
(ख) शिक्षकः .... प्रश्नान् पृच्छति। (छात्रान्, छात्राणाम्, छात्रेभ्यः)
(ग) .... धनं दातव्यम्। (निर्धनेषु, निर्धनेभ्यः, निर्धनात्)
(घ) मोहनः .... पटुतमः। (बालकेभ्यः, बालकैः, बालकेषु)
(ङ) पण्डितः .... उपदिशति। (आसनेन, आसनात्, आसनस्य)

*

१५ समास-प्रकरण
Compounds

संस्कृत भाषा की विशिष्टताओं में समास भी महत्त्वपूर्ण है। समास का अर्थ है अनेक शब्दों का एक साथ संक्षिप्त बनकर अवस्थित रहना (सम् = एक साथ, ग्रीक भाषा–syn, sym = together; **आस**–अस्–धातु = होना)। समास को व्याकरण में 'एकपदीभावः' (अनेक पदों का एक पद होना) कहा गया है। इससे अभिव्यक्ति में कसाव (Compactness) आ जाता है, भाषा का सौन्दर्य बढ़ता है, उसमें प्रौढ़ता प्रकट होती है। संसार की कुछ ही भाषाओं में समास की व्यवस्था है किन्तु संस्कृत के समान लम्बे और मुहावरेदार (Idiomatic) अभिराम समास कहीं नहीं हैं। संस्कृत गद्यकाव्यों में तो समासों की विपुल वर्षा हुई है। दण्डी ने अपने ग्रन्थ **काव्यादर्श** में कहा है कि ओज गुण समास की विपुलता का नाम है और यही गद्य का प्राण है (**ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्**)। इसका परिणाम है कि आवश्यकता से अधिक समासों का उद्वेगजनक प्रयोग संस्कृत में होता रहा। दक्षिण भारत की एक कवयित्री तिरुमलाम्बा ने तो अपने काव्य **वरदाम्बिका-परिणयचम्पू** (पृ.१८) में संस्कृत का संभवतः सबसे लम्बा समास प्रस्तुत किया है जिसमें ६४ शब्द हैं और उद्यान का सम्पूर्ण शब्दचित्र खींचा गया है।

समास अनेक पदों को एक पद में परिणत कर देता है। वे अनेक पद समास का **'विग्रह'** कहलाते हैं। समासों को समझने के लिए उनको विग्रह-वाक्य में तोड़कर प्रकट किया जाता है जैसे–**'राजपुरुषः'** एक समास है, इसका विग्रह है–राज्ञः पुरुषः (राजा का पुरुष)। विग्रह में दो पद हैं जिनमें पृथक् पृथक् विभक्तियाँ हैं। समास में एक ही पद रह गया क्योंकि विभक्ति एक ही स्थान पर है। कई समासों में घटक पदों के अतिरिक्त शब्द भी विग्रह वाक्य में आते हैं। जैसे–**'लम्बोदरः'** का विग्रह है–लम्बम् उदरं यस्य सः। ऐसा समास के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है। कभी-कभी विग्रह में दूसरे पद आते हैं जैसे–**'यथाशक्ति'** का विग्रह करने में 'शक्तिम् अनतिक्रम्य' ऐसा कहा जाता है। वस्तुतः 'यथा' शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए 'अनतिक्रम्य' का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार **'कालान्तरम्'** का विग्रह होता है–अन्यः कालः। यहाँ भी 'अन्यः' का प्रयोग 'अन्तरम्' के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए है। निष्कर्ष यह हुआ कि विग्रह का काम समास को तोड़कर उसके अर्थ को स्पष्ट करना भी है। वस्तुतः विग्रह-वाक्य और समास (समस्त पद) समान अर्थ में होने पर भी वाक्य में प्रयोग की दृष्टि से समान नहीं हैं। समास से जो सौन्दर्य-वृद्धि तथा अभिव्यक्ति वाक्य में होती है वह विग्रह-वाक्य से नहीं होती। 'नमामि लम्बोदर-पाद-

पङ्कजम्' इस पंक्ति में जो अभिव्यक्ति का लालित्य है वह 'नमामि लम्बमुदरं यस्य तस्य पङ्कजरूपं चरणद्वयम्' कहने से नहीं आता। अभिव्यक्ति बिखर जाती है। अतः समास का महत्त्व और सौन्दर्य अनुभव का विषय है जो अभ्यास से आता है।

समास के भेद (Kinds)

सामान्यतः समास के चार भेद हैं–**अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि** तथा **द्वन्द्व**। **कर्मधारय** और **द्विगु** समास तत्पुरुष के ही भेद हैं। इस प्रकार स्थूलतः छह भेदों में आरम्भिक छात्र समास को समझते हैं। एक श्लेषयुक्त पद्य में इनके नाम दिये गये हैं। एक याचक राजा से कहता है—

द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं मद्गेहे नित्यमव्ययीभावः ।
तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्यां बहुव्रीहिः ।।

अर्थात् मैं द्वन्द्व (एक जोड़ा, पति-पत्नी) हूँ, मेरे पास दो गायें हैं (द्विगुः = द्वे गावौ यस्य सः)। मेरे घर में निरन्तर (नित्यम्) अव्ययीभाव है (कुछ है ही नहीं कि उसके व्यय का प्रश्न उठे = पूरा दरिद्र हूँ)। अतः हे पुरुष, आप वह कर्म (तत् कर्म) धारण करें (धारय = कीजिए) जिससे मैं बहुव्रीहि (बहुत अन्न वाला, बहवो व्रीहयः यस्य सः) बन जाऊँ।

तत्पुरुष समास बड़े परिवार का है जिसके अनेक सदस्य हैं। उसी में नञ् समास, अलुक् समास, उपपद समास, एकदेशी समास, गतिसमास और प्रादि समास हैं। उसी का एक भेद कर्मधारय है जिसके अवान्तर भेद रूपक, उपमानपूर्वपद और उपमानोत्तर पद भी हैं। द्विगु के भी तद्धितार्थ, उत्तरपद और समाहार के रूप में तीन भेद हैं।

द्वन्द्व समास के इतरेतर और समाहार ये दो भेद हैं। एकशेष यद्यपि एक पृथक् वृत्ति (शब्द-रचना) है किन्तु कुछ लोगों ने इसे द्वन्द्व के अन्तर्गत रखा है। अध्ययन के स्तर की दृष्टि से उपर्युक्त भेदों का ज्ञान कराया जाता है।

अव्ययीभाव समास (Adverbial Compound)

पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः—अव्ययीभाव समास में प्राय पूर्वपद के अर्थ की प्रधानता होती है और बना हुआ समास अव्यय के रूप में आ जाता है। सामान्यतः पूर्वपद अव्यय रहता है किन्तु यह नियम नहीं है।

i) पूरा समस्त पद नपुंसक लिङ्ग एकवचन का होता है जैसे–**प्रतिदिनम्, यथाशक्ति**।

ii) यदि उत्तरपद दीर्घ हो तो उसे ह्रस्व कर देते हैं जैसे–**उपनदि** (नदी के पास), **अनुवधु** (बहू के पीछे)।

iii) ओ औ का ह्रस्व उ होता है जैसे–गोः समीपम् = **उपगु** (गाय के पास)। **उपनु** (नौका के निकट)।

iv) अन् से अन्त होने वाले शब्दों के अन् का लोप करके टच् (अ) प्रत्यय लगाकर अकारान्त रूप किया जाता है जैसे–राज्ञः समीपम् = **उपराजम्। अध्यात्मम्, उपचर्मम्** (**उपचर्म** भी)।

v) अन्य हलन्त शब्दों से टच् (अ) लगाकर अकारान्त रूप किया जाता है। जैसे– **उपशरदम्, प्रतिसरितम्** (प्रत्येक नदी में), **प्रतिदिशम्** इत्यादि।

vi) नदी, पौर्णमासी, समिध् आदि शब्दों से टच् लगना वैकल्पिक है अतः **उपनदम्** (टच्), **उपनदि। प्रतिपौर्णमासम्** (टच्), **प्रतिपौर्णमासि। उपगिरम्** (टच्), **उपगिरि। उपसमिधम्** (टच्), **उपसमित्। उपदृषदम्** (टच्), **उपदृषद्** (पत्थरों के निकट)।

अव्ययं विभक्ति-समीप-समृद्धि-व्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रति-शब्दप्रादुर्भाव-पश्चाद्-यथानुपूर्व्य-यौगपद्य-सादृश्य-सम्पत्ति-साकल्यान्त-वचनेषु (२.१.६)— इस लम्बे सूत्र को अव्ययीभाव का प्रधान नियम कहा जाता है। इसमें अव्यय का समास विभक्ति, समीप आदि अर्थों में समर्थ (= समास के योग्य) शब्दों के साथ कहा गया है। 'अव्यय' शब्द प्रथमा विभक्ति में है, अतः यह 'उपसर्जन' कहा जाएगा और समास के पूर्व पद के रूप में प्रयुक्त होगा (प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्, उपसर्जनं पूर्वम्)। उदाहरण दिये जाते हैं—

(क) **विभक्ति अर्थ के अव्यय का समास**—स्त्रीषु (विषये) = **अधिस्त्रि** कथा वर्तते (स्त्रियों के विषय में बात चल रही है)। कृष्णे इति = **अधिकृष्णम्**। सप्तमी विभक्ति के अर्थ में 'अधि' अव्यय का समास हुआ। इसी प्रकार, मालिनीतीरे इति = **अनुमालिनीतीरम्** आश्रमः (मालिनी नदी के तीर पर आश्रम है)। आत्मनि इति = **अध्यात्मम्**। हरौ इति = **अधिहरि**। कन्धरे इति = **अधिकन्धरम्** (कन्धे पर)। 'न चक्रमस्याक्रमताधिकन्धरम्' (**शिशुपालवध**, १.५४)। **अधिगङ्गम्** (गंगा में)।

(ख) **समीप अर्थ के अव्यय का समास**—कण्ठस्य समीपे = **उपकण्ठम्**। अक्ष्णोः समीपे = **समक्षम्** (सामने, सम् अव्यय का अक्षि के साथ समास)। गङ्गायाः समीपे = **उपगङ्गम्। उपोद्यानम्, उपगृहम्** (घर के पास)। **उपनगरम्** (नगर के समीप)।

(ग) **समृद्धि अर्थ के अव्यय का समास**—मद्राणां समृद्धिः = **सुमद्रम्**। भारतस्य समृद्धिः = सुभारतम्।

(घ) **व्यृद्धि (वि + ऋद्धि, ऋद्धिहीनता, निर्धनता, नाश)**—यवनानां व्यृद्धिः = **दुर्यवनम्**।

(ङ) **अर्थाभाव (किसी वस्तु का अभाव)**—भिक्षायाः अभावः = दुर्भिक्षम्। मक्षिकाणामभावः = **निर्मक्षिकम्** (सुनसान अर्थ का मुहावरा)। जनानाम् अभावः = **निर्जनम्**। विघ्नानामभावः = **निर्विघ्नम्**।

(च) **अत्यय (अतिक्रमण, नाश) के अर्थ के अव्यय का समास**—हिमस्य अत्ययः = **अतिहिमम्**। **अतिवसन्तम्**। **अतियौवनम्**। **अतिमात्रम्** (मात्रा का अतिक्रमण करते हुए)।

(छ) **असम्प्रति अर्थ के अव्यय का समास**—निद्रा सम्प्रति न युज्यते = **अतिनिद्रम्** समयः। **अतिकम्बलं** (जब कम्बल का प्रयोग ठीक न हो) कालः। **अतिशोकम्** (अलं शोकेन इति)।

(ज) **शब्दप्रादुर्भाव (शब्द का प्रकाश) अर्थ के अव्यय का समास**—हरिशब्दस्य प्रकाशः = इतिहरि (जब सर्वत्र हरि का ही नाम हो रहा हो)।

(झ) **पश्चात् अर्थ के अव्यय का समास**—विष्णोः पश्चात् = **अनुविष्णु** (विष्णु के पीछे)। अनुविष्णु सर्वे देवाः। गृहस्य पश्चात् = **अनुगृहम्, अनुमन्दिरम्** (मन्दिर के पीछे) तव गृहम्।

(ञ) **'यथा' के अर्थ के अव्ययों का समास**—यथा के चार अर्थ हैं—

i) योग्यता
ii) वीप्सा (व्याप्ति)
iii) पदार्थानतिवृत्ति (किसी वस्तु सीमा के अन्दर रहना) एवं
iv) सादृश्य। इन चारों अर्थों के अव्ययों का समास समर्थ सुबन्त के साथ होता है। जैसे–रूपस्य योग्यम् = **अनुरूपम्**। अर्थमर्थं प्रति = **प्रत्यर्थम्** (एक-एक विषय में); दिनं दिनं प्रति = **प्रतिदिनम्, अनुदिनम्**। शक्तिमनतिक्रम्य = **यथाशक्ति** (शक्ति की सीमा के भीतर)। कालमनतिक्रम्य = **यथाकालम्** (समय के भीतर)। हरेः सादृश्यम् = **सहरि** (हरि की समानता से)।

(ट) **आनुपूर्व्य (क्रम से) अर्थ के अव्यय का समास**—ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण = **अनुज्येष्ठम्** (वरीयताक्रम से, According to seniority) प्रविशन्तु भवन्तः।

(ठ) **यौगपद्य (एक ही समय में) अर्थवाले अव्यय का समास**—चक्रेण युगपत् (चक्र के साथ-साथ) = **सचक्रम्** गदां धारय हे विष्णो।

(ड) **सादृश्य अर्थ के अव्यय का समास**—सख्या सदृशः = **ससखि** व्यवहर मां प्रति (मुझसे मित्रवत् व्यवहार करो)।

(ढ) **सम्पत्ति[1] (सम्पन्नता) अर्थ के अव्यय का समास**—क्षत्राणां सम्पत्तिः = **सक्षत्रम्**।

(ण) **साकल्य** (पूरा का पूरा Entirely)—तृणमपि अपरित्यज्य = **सतृणम्** अत्ति (पूरा का पूरा खा जाता है)। यह मुहावरा है, तृण खाने का अर्थ नहीं।

(त) **अन्त (वहाँ तक) के अर्थ के अव्यय का समास**—अग्निग्रन्थपर्यन्तम् = **साग्नि** अधीते (अग्नि के अध्याय तक पढ़ता है)।

अव्ययीभाव समास के कुछ अन्य उदाहरण

समस्त पद	विग्रह	अर्थ
परोक्षम्	अक्ष्णः परम्	आँख से परे
अभ्यग्नि	अग्निं लक्षीकृत्य	आग की ओर
शाकप्रति	शाकस्य लेशः	थोड़ी सब्जी
अनुवनम् (अशनिः)	वनस्य समीपम्	वन के पास
अनुगङ्गम् (वाराणसी)	गङ्गाया अनु	गंगा के किनारे-किनारे
आसमुद्रम्	आ समुद्रात्	समुद्र तक
आहिमालयम्	आ हिमालयात्	हिमालय तक
अपदिशम्	दिशयोर्मध्ये	दो दिशाओं के बीच
प्रत्यक्षम्	अक्ष्णः प्रति	आँख के सामने
अन्वक्षम्	अक्ष्णः अनु	आँख की ओर
तिष्ठद्गु	तिष्ठन्ति गावो यस्मिन् काले	गायों के दुहे जाने का समय
पारेगङ्गम्	गङ्गायाः पारम्	गङ्गा के पार
मध्येसमुद्रम्	समुद्रस्य मध्यम्	समुद्र के बीच (**पारे मध्ये**)
मध्येगङ्गम्	गङ्गायाः मध्यम्	गंगा के बीच (**षष्ठ्या वा**)
त्रिमुनि (व्याकरणम्)	त्रयो मुनयो वंश्याः	एक ही विद्या से जुड़े तीन मुनि (**संख्या वंश्येन**)
सप्तगङ्गम्	सप्त–गङ्गा यत्र	देश-विशेष के नाम (विग्रह नहीं होता)
उन्मत्तगङ्गम्	उन्मत्ता–गङ्गा यत्र	
लोहितगङ्गम्	लोहिता–गङ्गा यत्र	
उपसमिधम्	समिधः समीपम्	यज्ञकाष्ठ के निकट
उपसमित्	समिधः समीपम्	

[1]. समृद्धि और सम्पत्ति में अन्तर है–अधिक ऋद्धि **समृद्धि** है, अनुकूल धन होना **सम्पत्ति** है।

उपशरदम्[१]	शरदः समीपम्	शरद् के पास
अध्यात्मम्	आत्मनि इति	आत्मा के विषय में
उपनदि, उपनदम्	नद्याः समीपम्	नदी के पास
उपगिरि, उपगिरम्	गिरेः समीपम्	पहाड़ के निकट

टिप्पणी—इन आदर्शों पर दूसरे उदाहरण भी बनते हैं। इस समास में कहीं-कहीं समासान्त टच् (अ) प्रत्यय लगकर पद को अकारान्त बना देताहै जिससे अम् हो जाता है। जैसे–उपनदम्, प्रत्यक्षम्, अध्यात्मम्, उपराजम् इत्यादि। इकारान्त-उकारान्त अव्ययीभाव नपुंसक लिङ्ग होने के कारण वारि और मधु के ढाँचे में आ जाते हैं जैसे–यथाशक्ति उपवाराणसि, उपगिरि, अनुविष्णु, तिष्ठद्गु इत्यादि।

तत्पुरुष समास (Determinative Compound)

ऊपर संकेत दिया गया है कि इसका परिवार बड़ा है। पाणिनि ने सर्वाधिक सूत्र इसी में लगाये हैं। सामान्य रूप से इसका लक्षण है–**उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः**।

जिस समास में उत्तरपद के अर्थ की प्रधानता होती है वह तत्पुरुष समास होता है। इसे समझ लें। तत्पुरुष समास के पद से एक वाक्य लें–**राजपुरुषो गच्छति**। 'गच्छति' क्रिया का अन्वय किससे है? राजा से या पुरुष से? राजा उससे सम्बद्ध नहीं, पुरुष ही जा रहा है। दूसरा उदाहरण लें–**नीलकमलं पश्यति**। यहाँ 'पश्यति' का कर्म नील नहीं, अपितु कमल है। कमल को ही वह देख रहा है। नील तो कमल का गुण है, दर्शन का विषय नहीं।

तत्पुरुष के मूल रूप से दो भेद हैं–**व्यधिकरण** (जिसमें दोनों पदों की विभक्तियाँ भिन्न प्रकार की हों जैसे–**राजपुरुषः** = राज्ञः पुरुषः (राजन् में षष्ठी है, पुरुष में प्रथमा) तथा **समानाधिकरण** (जिसमें दोनों पदों की विभक्तियाँ समान हों जैसे–**नीलकमलम्** = नीलं च तत् कमलम्; दोनों में प्रथमा है)। 'तत्पुरुषः' शब्द के विग्रह में ही ये दोनों प्रकार प्रकट होते हैं। व्यधिकरण दृष्टि से 'तस्य पुरुषः = तत्पुरुषः' (षष्ठी समास)। दूसरी ओर समानाधिकरण दृष्टि से 'स पुरुषः = तत्पुरुषः' (कर्मधारय समास)। समानाधिकरण तत्पुरुष को कर्मधारय नाम दिया गया है (**तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः** १.२.४३)। तत्पुरुष समास के प्रायः सभी भेद इन्हीं दोनों वर्गों से जुड़े हैं।

व्यधिकरण तत्पुरुष ही मौलिक तत्पुरुष के रूप में बताया जाता है। इसके द्वितीया, तृतीयादि सात भेद हैं (एकदेशी तत्पुरुष लगाकर)—

१. **अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः** (५.४.१०७)–इस समास में शरद्, विपाश् (व्यास नदी), अनस् (बैलगाड़ी), मनस्, दिव्, दिश्, दृश् (आँख), चेतस् आदि शब्दों के बाद समासान्त टच् (अ) प्रत्यय लगता है।

१. **द्वितीया तत्पुरुष** : इसमें पूर्वपद द्वितीयान्त रहता है। समास होने पर उसका लोप हो जाता है। उत्तरपद के रूप में श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त (निक्षिप्त = फेंका गया), प्राप्त और आपन्न शब्द रहते हैं (**द्वितीया श्रितातीतपतित-गतात्यस्तप्राप्तापन्नैः** २.१.२४)। जैसे–वृक्षं श्रितः = **वृक्षश्रितः**। **कृष्णाश्रितः, ग्रामाश्रितः**। लोकम् अतीतः = **लोकातीतः**। इन्द्रियाणि अतीतः = **इन्द्रियातीतः** ('अतीन्द्रियः' प्रादि समास है)। भूमिं पतितः = **भूमिपतितः**। **कूपपतितः**। ग्रामं गतः = **ग्रामगतः** (गाँव में गया हुआ)। साहित्यं गतः = **साहित्यगतः** (साहित्यविषयक)। **देशगतः** (देश सम्बन्धी), **राज्यगतः (राज्यविषयक** Pertaining to the state)। विपदं गतः = विपद्गतः (संकट में पड़ा हुआ)। तरङ्गान् अत्यस्तः = **तरङ्गात्यस्तः** (तरंगों में फेंका गया), **वनात्यस्तः**। जीविकां प्राप्तः = **जीविकाप्राप्तः**। जीविकाम् आपन्नः = **जीविकापन्नः**।

टिप्पणी—प्राप्त और आपन्न इन शब्दों को पूर्वपद के रूप में भी रखा जाता है तथा तब यह समस्त पद विशेषणात्मक हो जाता है अर्थात् विशेष्य का लिङ्ग, वचन, विभक्ति लेता है (**प्राप्तापन्ने च द्वितीयया**)–**प्राप्तजीविकः आपन्नजीविकः** पुरुषः। वह तत्पुरुष समास (व्यधिकरण) तो है, किन्तु द्वितीया तत्पुरुष नहीं कहा जाता।

द्वितीया तत्पुरुष के कुछ अन्य उदाहरण–मुहूर्तं सुखम् = **मुहूर्तसुखम्**। वर्षम् भोग्यः = **वर्षभोग्यः** (शापः)। ग्रामं गमी = **ग्रामगमी** (गाँव जाने वाला)। अन्नं बुभुक्षुः = **अन्नबुभुक्षुः**।

२. **तृतीया तत्पुरुष** : तृतीयान्त पद का समास किसी समर्थ सुबन्त से हो तो उसे तृतीया तत्पुरुष कहते हैं। इसके कई नियम हैं—

i) **कर्तृकरणे कृता बहुलम्** (२.१.३२) अर्थात् कर्ता और करण कारक में होने वाली तृतीया विभक्ति के पद का समास कृदन्त के साथ होता है। जैसे–कविना कृतः = **कविकृतः**। कालिदासेन रचितम् = **कालिदासरचितम्**। व्याघ्रेण हतः = **व्याघ्रहतः**। शरेण भिन्नः = **शरभिन्नः**। नखैः निर्भिन्नः = **नखनिर्भिन्नः** (नाखूनों से चीरा गया)।

ii) **तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन** (२.१.३०)—तृतीयान्त पद का समास उसी तृतीयान्त पद के अर्थ द्वारा उत्पन्न गुणवाचक शब्द के साथ और अर्थ शब्द के साथ भी होता है जैसे–शंकुलया खण्डः = **शंकुलाखण्डः** (सरौते से किया गया टुकड़ा)। गुणवाचक 'खण्ड' तृतीयान्त अर्थ से ही उत्पन्न है। धान्येन अर्थः = **धान्यार्थः**।

पूर्व, सदृश, सम, ऊन (कम) के अर्थ वाले शब्द, कलह, निपुण, मिश्र, श्लक्ष्ण (चिकना–Polished) तथा अवर शब्द के साथ भी तृतीयान्त पद का समास होता है जैसे–मासेन पूर्वः = **मासपूर्वः** (एक मास पहले)। पित्रा सदृशः, समः = **पितृसदृशः, पितृसमः**। **भ्रातृसदृशः, मातृसमः**। एकेन ऊनः = **एकोनः** (एक कम)। पुण्येन हीनः = **पुण्यहीनः**। सुखेन रहितः = **सुखरहितः**। **पत्नीविरहितः**। वाचा कलहः = **वाक्कलहः** (वाणी से झगड़ा)। **आचारनिपुणः** (आचार पालन में निपुण)। गुडेन मिश्रः = **गुडमिश्रः** (गुड़ मिलाया हुआ)। वाचा श्लक्ष्णः = **वाक्श्लक्ष्णः** (बतियाने में चिकना–Polished in speech)। अन्य उदाहरण–**गुरुतुल्यः, अङ्गविकलः, मासावरः** (एक मास छोटा Junior by a month)। **भयविह्वलः। गमनमन्थरः** (चलने से धीमा, सुस्त)। **विरहकातरः। गुणाधिकः, स्नेहार्द्रः, विरहविधुरः, भयशून्यः**।

३. **चतुर्थी तत्पुरुष**[१]—इसमें पूर्वपद चतुर्थी विभक्ति का होता है। तदर्थ में विकारवाचक शब्द का समास प्रकृतिवाचक शब्द के साथ होता है–यूपाय दारु = **यूपदारु** (खूँटे की लकड़ी)। कुण्डलाय हिरण्यम् = **कुण्डलहिरण्यम्**। हिरण्य प्रकृति है, उत्तरपद में गया। विकृतिवाचक कुण्डल चतुर्थी में है, पूर्वपद हुआ। इसी प्रकार चतुर्थ्यन्त पद का 'अर्थ' शब्द के साथ समास होता है। किन्तु विग्रह वाक्य में उत्तर पद अयम्, इयम्, इदम् के रूप में होकर समास को विशेषण रूप बना देता है जैसे—

अध्ययनाय अयम् = **अध्ययनार्थः** ग्रन्थः (अध्ययन के लिए ग्रन्थ)
विप्राय इयम् = **विप्रार्था** कुटी (विप्र के लिए कुटिया)
जनेभ्यः इदम् = **जनार्थं** राज्यम् (जनता के लिए राज्य)

जब अपने पदों से विग्रह नहीं होता तो इसे **'नित्य समास'** कहते हैं। यह समास की एक प्रक्रिया (Method) है, समास का भेद नहीं। उपर्युक्त समास इसीलिए नित्य कहा गया है–अर्थशब्देन चतुर्थ्यन्तस्य नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता च।

बलि, हित, सुख और रक्षित शब्दों के साथ भी चतुर्थ्यन्त पद का समास होता है। जैसे–भूतेभ्यो बलिः = **भूतबलिः** (भूतों को उपहार)। गवे हितम् = **गोहितम्**। गवे सुखम् = **गोसुखम्**। गवे रक्षितम् = **गोरक्षितम्** = गाय के लिए रखा गया खेत, अन्न आदि।

४. **पञ्चमी तत्पुरुष**—इसके पूर्वपद में पञ्चमी विभक्ति होती है। भय अर्थ वाले शब्दों के साथ पञ्चम्यन्त पद का समास होता है (**पञ्चमी भयेन २.१.३७**)।

१. चतुर्थी तदर्थार्थबलिहित–सुखरक्षितैः (२.१.३६)

जैसे–चौराद् भयम् = **चौरभयम्**। वृकाद् भीतिः = **वृकभीतिः**। दण्डाद् भीतः = **दण्डभीतः**। इसी प्रकार अन्य समर्थ शब्दों के साथ भी पञ्चम्यन्त का समास होता है–सुखाद् अपेतः = **सुखापेतः** (सुख से रहित)। कल्पनायाः अपोढः = **कल्पनापोढः** (कल्पना से रहित)। **बन्धनमुक्तः** (बन्धन से छूटा हुआ)। **धर्मच्युतः** (धर्म से गिरा हुआ)। **आचारभ्रष्टः** (आचार से गिरा हुआ)। गृहात् निर्गतः = **गृहनिर्गतः** (घर से निकला हुआ)। पदात् च्युतः = **पदच्युतः** (पद से हटा हुआ)। वेदाद् बाह्यः = **वेदबाह्यः** (वेद के बाहर) विषयः।

स्तोक (थोड़ा), अन्तिक, दूरार्थक और कृच्छ्र (कष्ट) शब्द पञ्चमी में हों तो क्त-प्रत्ययान्त शब्द के साथ इनका समास होता है। यहाँ विभक्ति का लोप नहीं होता। (अतः 'पञ्चमी अलुक् तत्पुरुष' कहते हैं) जैसे–**स्तोकान्मुक्तः** (थोड़ा सा से बचा, बाल-बाल बचा)। **अन्तिकादागतः** (समीप से आया हुआ)। **दूरादागतः** (दूर से आया हुआ)। **विप्रकृष्टादागतः** (दूर से आया हुआ)। **कृच्छ्रान्मुक्तः** (कष्ट से बचा हुआ)।

५. **षष्ठी तत्पुरुष**[१]—इसका पूर्वपद षष्ठी विभक्ति का होता है। किसी भी समर्थ पद के साथ षष्ठ्यन्त शब्द का समास होता है। जैसे–राज्ञः पुरुषः = **राजपुरुषः**। दूसरे तत्पुरुष भेदों में शब्द निर्धारित हैं किन्तु षष्ठी-समास का क्षेत्र बहुत व्यापक है। जैसे–गृहस्य स्वामी = **गृहस्वामी**। **सीतापतिः, द्वाररक्षकः, कपोतराजः, कुबेरसखः** (इन दोनों में समासान्त टच् प्रत्यय लगा है)। षष्ठी समास में कुछ निषेध के नियम अवश्य दिये गये हैं। जैसे—

(क) **न निर्धारणे** (२.२.१०)—निर्धारण अर्थ में विहित षष्ठी का समास नहीं होता जैसे–नराणां क्षत्रियः शूरतमः, गवां कृष्णा बहुक्षीरा–इन स्थितियों में समास नहीं होता।

(ख) पूरणार्थक शब्द, गुणवाचक शब्द, सुहित, शतृ-शानच् से बने शब्द, अव्यय शब्द, तव्य प्रत्ययान्त तथा समानाधिकरण (एक ही विभक्तिवाले) शब्द के साथ षष्ठ्यन्त का समास नहीं होता (२.२.११)। जैसे–छात्राणां षष्ठः (छात्रों में छठा), पटस्य शुक्लः, जलस्य शीतलम् (गुणवाचक), फलानां सुहितः, क्षत्रियस्य कुर्वन्-कुर्वाणः, (शतृ-शानच्), पण्डितस्य कृत्वा-कर्तुम् (अव्यय), तातस्य कर्तव्यम्, तक्षकस्य सर्पस्य (समानाधिकरण)–इन सबमें समास नहीं हुआ। विशेषण रूप षष्ठ्यन्त का विशेष्यरूप षठ्यन्त के साथ समास इसी समानाधिकरणता के कारण अशुद्ध है। अतः **सुन्दरस्य बालकस्य** पिता, **सम्पन्नस्य राज्ञः गजः**, **सूत्रकारस्य पाणिनेः** प्रसिद्धिः–इनमें समास सम्भव नहीं।

१. षष्ठी (२.२.८)

गुण के साथ कभी-कभी षष्ठ्यन्त के समास होते हैं जैसे–मम सुखम् = **मत्सुखम्**। तव दुःखम् = **त्वद्दुःखम्**। बुद्धेः मन्दता = **बुद्धिमन्दता**। बालस्य चापलम् = **बालचापलम्**। मनसः मालिन्यम् = **मनोमालिन्यम्**। पदानां लालित्यम् = **पदलालित्यम्**। अर्थस्य गौरवम् = **अर्थगौरवम्**। 'सूत्रकारश्चासौ पाणिनिः' ऐसा कर्मधारय में विग्रह करके **सूत्रकारपाणिनिः** बना सकते हैं जो षष्ठी विभक्ति में जा सकता है। **'स्वकर्तव्यम्'** में तव्यत्-प्रत्यय कहकर समास बना सकते हैं; निषेध 'तव्य' का है तव्यत् का नहीं।

(ग) **प्रतिपद-विधाना षष्ठी न समस्यते** (**महाभाष्य** २.२.८)—'शेषे षष्ठी' को छोड़कर जो भी षष्ठी के विधान हैं उन्हें प्रतिपदविधान कहते हैं। ऐसी षष्ठी वाले शब्दों का समास नहीं होता। सर्पिषः ज्ञानम्, मातुः स्मरणम् इत्यादि का समास नहीं होता। मति-बुद्धि-पूजार्थ में जो वर्तमानकालिक क्त प्रत्यय होता है उसमें भी षष्ठ्यन्त का समास वर्जित है (**क्तेन च पूजायाम्** २.२.१२)। राज्ञां मतः, बुद्धः पूजितः का समास नहीं होता।

(घ) **तृजकाभ्यां कर्तरि** (२.२.१५)—कर्ता अर्थ में तृच् और अक (ण्वुल्) प्रत्यय से बने शब्दों के साथ भी षष्ठ्यन्त पद का समास निषिद्ध है। जैसे–कटस्य कर्ता, जगतः स्रष्टा, पयसः याचकः, गुरोः सेवकः, ओदनस्य पाचकः इत्यादि। किन्तु याजकादि गण में पठित शब्दों के साथ षष्ठ्यन्त का समास होता है (**याजकादिभिश्च** २.२.९) भले ही उसमें तृच् और अक-प्रत्यय के शब्द हैं। इस गण में ये शब्द हैं–याजक, पूजक, परिचारक, परिवेषक (परोसनेवाला), स्नापक, अध्यापक, उत्साहक, उद्वर्तक (उबटन लगाने वाला), होतृ, भर्तृ, रथगणक, पत्तिगणक। अतः देवानां याजकः = **देवयाजकः, मूर्तिपूजकः, राजपरिचारकः, साहित्याध्यापकः**, भुवः भर्ता = **भूभर्ता** इत्यादि उदाहरण होते हैं।

६. **सप्तमी तत्पुरुष**—इसमें पूर्वपद सप्तमी विभक्ति में रहता है। शौण्ड आदि शब्दों के साथ सप्तम्यन्त पद का समास होता है (**सप्तमी शौण्डैः** २.१.४०)। जैसे–अक्षेषु शौण्डः = **अक्षशौण्डः** (जुए में निपुण)। शास्त्रे प्रवीणः = **शास्त्रप्रवीणः**। सभायां पण्डितः = **सभापण्डितः**। कार्ये पटुः = **कार्यपटुः**। व्यवहारे कुशलः = **व्यवहारकुशलः**। इस गण में 'अधि' शब्द भी आया है जिससे ख (ईन) प्रत्यय लगकर 'अधीन' बनता है। अतः इसके भी उदाहरण हैं–स्वस्मिन् अधि = **स्वाधीनः** (अपने में रहने वाला)। राजनि अधि = **राजाधीनः** (राजा के वश में स्थित)। त्वयि अधि = **त्वदधीनः**।

(क) **सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च** (२.२.४१)—सिद्ध, शुष्क, पक्व और बन्ध इन चार शब्दों के साथ भी सप्तम्यन्त पद का समास होता है। जैसे–काश्यां सिद्धः = **काशीसिद्धः** (काशी में पढ़कर सिद्ध हो गया विद्वान्)। आतपे शुष्कः = **आतपशुष्कः** (धूप में सुखाया या सूखा हुआ)। **वृक्षपक्वम्** (पेड़ का पका फल)। चक्रे बन्धः = **चक्रबन्धः** (चक्र की आकृति में बँधा हुआ श्लोक)। **कटाहसिद्धः** (कढ़ाई में सिझाया गया), **घृतपक्वम्** (घी में पका)।

(ख) **ध्वाङ्क्षेण क्षेपे** (२.१.४२)—निन्दा अर्थ प्रकाशित होने पर सप्तम्यन्त पद का समास ध्वाङ्क्ष (कौआ) वाचक शब्दों के साथ होता है। जैसे–तीर्थे ध्वाङ्क्ष इव = **तीर्थध्वाङ्क्षः, तीर्थकाकः** (तीर्थस्थान में कौए के समान यात्रियों को लूटने-ठगने में लगा हुआ–पण्डा या पुजारी)। **नगरकाकः, नगरवायसः**।

(ग) **कृत्यैर्ऋणे** (२.१.४३)—ऋण या अन्य किसी आवश्यक कार्य के अर्थ में सप्तम्यन्त का कृत्य प्रत्ययान्त शब्द के साथ समास होता है। जैसे–मासे एवावश्यं देयम् = **मासेदेयम् ऋणम्** (एक महीने में अनिवार्यतः वापस किया जाने वाला ऋण), सप्तमी का वैकल्पिक अलुक्–**मासदेयम्** भी। **पूर्वाह्णेगेयं** साम (पूर्वाह्ण में अवश्य गाने योग्य साममन्त्र)। **वर्षेदेयम्**। **दिवसकरणीयम्** (कार्य)।

क्त प्रत्ययान्त के साथ भी दिनरात (अहोरात्र) के भागों का समास होता है– अपररात्रे कृतम् = **अपररात्रकृतम्**। अपराह्णे कृतम्–**अपराह्णकृतम्**।

(घ) **पात्रेसमितादयश्च** (२.१.४८)—इस प्रसंग में 'पात्रेसमित' आदि शब्दों की भी स्वीकृति निपातन से की गई है, यदि निन्दा का अर्थ हो। **पात्रेसमिताः** (भोजन के समय आ जाने किन्तु कार्य में अनुपस्थित रहने वाले)। **गेहेशूरः** (केवल घर के लिए वीर)। कूपे मण्डूक इव = **कूपमण्डूकः** (जो आसपास को जाने, बाहर का कुछ नहीं जाने)। **गेहेनर्दी** (केवल घर का वीर)। **पात्रेकुशलः** (केवल खाने में निपुण)। **गोष्ठेशूरः** (शेखी बघारनेवाला)। **गोष्ठेपण्डितः** (केवल गोशाला में विद्वान्, आडम्बरी)।

एकदेशी तत्पुरुष समास

षष्ठी तत्पुरुष समास में जब उत्तरपद में षष्ठी विभक्ति रहे तो उसे एकदेशी तत्पुरुष कहते हैं। इसके पूर्वपद में एकदेश (Part) का बोधक शब्द रहता है, उत्तरपद में षष्ठ्यन्त एकदेशी या पूरी वस्तु (Whole) का बोधक शब्द होता है। जैसे–पूर्वं कायस्य = **पूर्वकायः**

(शरीर का अगला भाग)। 'पूर्व' भागबोधक है, 'काय' पूरी वस्तु (एकदेशी) का बोधक है। स्वगत भेद होने से यह व्यधिकरण तत्पुरुष है। इसके कई सूत्र हैं—

१. **पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे** (२.२.१)—पूर्व, अपर, अधर तथा उत्तर इन चार शब्दों का समास एकदेशी (पूर्ण वस्तु Whole) के वाचक षष्ठ्यन्त शब्द के साथ होता है। दोनों (पूर्ण वस्तु तथा उसका खण्ड) एक ही वस्तु (अधिकरण Locus) के हों। जैसे–पूर्वं कायस्य = **पूर्वकायः** (शरीर का अगला भाग)। अपरं कायस्य = **अपरकायः** (शरीर का पिछला भाग)। इसी प्रकार पूर्वं रात्रेः = **पूर्वरात्रः** (रात्रि का पहला भाग)। अपरं रात्रेः = **अपररात्रः** (रात्रि का पिछला भाग)। पूर्वम् अह्नः = **पूर्वाह्णः**। अपरम् अह्नः = **अपराह्णः**। इसी प्रकार **मध्याह्नः, मध्यरात्रः** इत्यादि भी बनते हैं। रात्रि शब्द से समासान्त टच् प्रत्यय लगकर 'रात्र' बना है और अहन् शब्द से टच् (अ) लगकर अह्न हुआ है।[१]

२. **अर्धं नपुंसकम्** (२.२.२)—अर्ध शब्द जब समान अंशों का बोधक होता है तो नपुंसक लिङ्ग में रहता है किन्तु केवल खण्ड या टुकड़े का बोध कराता है तो पुंल्लिङ्ग होता है। नपुंसक अर्ध शब्द का पूर्ण वस्तु के बोधक शब्द के साथ एकदेशी समास होता है। जैसे–अर्धं पिप्पल्याः = **अर्धपिप्पली** (पीपल का ठीक आधा अंश)। पिप्पली एक फल है जिसका आयुर्वेद में प्रयोग होता है। इसी प्रकार, अर्धम् आसनस्य = **अर्धासनम्** (आधा आसन)। किन्तु पुंल्लिङ्ग अर्ध के साथ षष्ठी तत्पुरुष समास ही होता है–ग्रामस्य अर्धः = ग्रामार्धः। अर्धं रात्रेः = **अर्धरात्रः** (आधी रात–एकदेशी समास)।

(क) **प्राप्तापन्ने च द्वितीयया** (२.२.४)—प्राप्त और आपन्न शब्द का द्वितीयान्त शब्द के साथ समास होता है–प्राप्तः जीविकाम् = **प्राप्तजीविकः**। आपन्नः जीविकाम् = **आपन्नजीविकः**। इसे द्वितीया तत्पुरुष के प्रसंग में बताया जा चुका है।

कर्मधारय समास (Appositional Compound)

१. **तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः** (२.१.४२)—एक ही पदार्थ के बोधक विशेषण-विशेष्यभाव वाले शब्दों का तत्पुरुष समास 'कर्मधारय' कहा जाता है। इसे समानाधिकरण तत्पुरुष कहते हैं क्योंकि दोनों पदों से एक ही वस्तु का बोध होता है (समानम् अधिकरणम् आश्रयः)। अतः विशेषण-विशेष्य की विभक्ति भी समान रहती है। द्वन्द्व समास में भी विभक्ति की समानता होती है

---

१. अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः (५.४.८७), अह्नोऽह्न एतेभ्यः (५.४.८८)।

किन्तु वहाँ दोनों पद स्वतन्त्र रहते हैं जबकि कर्मधारय में दोनों पदों का आश्रय एक ही होता है। नीलम् उत्पलम् = **नीलोत्पलम्**। पूर्वपद का नील उत्तरपद के उत्पल से भिन्न अस्तित्व नहीं रखता। इसी प्रकार नवम् अन्नम् = **नवान्नम्;** मुखं चन्द्र इव = **मुखचन्द्रः** (एकमात्र मुख ही आश्रय है)। महान् पुरुषः = **महापुरुषः**।

(क) **विशेषणं विशेष्येण बहुलम्** (२.१.५७)—विशेषण का समास विशेष्य के साथ बहुल रूप से होता है। 'बहुल' के तीन अर्थ हैं—

१. **वैकल्पिक** जैसे नीलं कमलम् = नीलकमलम्। विग्रह या समास दोनों समानार्थक हैं।

२. **नित्य** जैसे कृष्णः सर्पः = **कृष्णसर्पः**। विग्रह का अर्थ है कोई काला साँप, समास का अर्थ है सर्पविशेष, गेहुमन या नाग। नित्यसमास का विग्रह नहीं होता। होता है तो वही अर्थ नहीं रहता।

३. **समास न होना** जैसे–दाशरथिः रामः। विशेषण-विशेष्य होने पर भी दोनों का समास होना प्रयोगसिद्ध नहीं।

कर्मधारय के उदाहरण–परमश्चासौ आत्मा = **परमात्मा**। नीलं च तदुत्पलम् = **नीलोत्पलम्**। पीतं च तदम्बरम् = **पीताम्बरम्** (पीला वस्त्र)। कृष्णाश्च ते तिलाः = **कृष्णतिलाः** (काले तिल)। उष्णं च तदुदकम् = **उष्णोदकम्**। मधुरं च तद् वचनम् = **मधुरवचनम्**। नवश्चासौ मेघः = **नवमेघः**।

कर्मधारय समास में विशेषण यदि स्त्रीलिङ्ग हो तो उसका पुंल्लिङ्ग रूप हो जाता है (**पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु** ६.३.४२)। जैसे–सुन्दरी चासौ कन्या = **सुन्दरकन्या**। प्रिया चासौ दुहिता = **प्रियदुहिता**। पाचिका चासौ स्त्री = **पाचकस्त्री**।

(ख) पूर्व, अपर, प्रथम, चरम, जघन्य, समान, मध्य, मध्यम तथा वीर–इन विशेषणों का उपयुक्त विशेष्य शब्दों के साथ समास होता है (२.१.५८)–पूर्वे च ते पुरुषाः = पूर्वपुरुषाः (पूर्वज लोग)। **प्रथमपुरुषः**, **मध्यमपुरुषः**, **समानपुरुषः**, **वीरपुरुषः** इत्यादि।

(ग) पूर्वकाल के कार्य का परवर्ती काल के कार्य से, एक ही व्यक्ति में बोध होने पर समास होता है। जैसे–पूर्वं स्नातः पश्चात् अनुलिप्तः = **स्नातानुलिप्तः** (नहा कर पाउडर लगाया व्यक्ति)। पूर्वं पीतः पश्चात् प्रतिबद्धः = **पीतप्रतिबद्धः** (दूध पी लेने पर बाँध दिया गया बछड़ा)। पूर्वं गतः

पश्चादागतः = **गतागतः** पुरुषः। पूर्वं दत्तं पश्चाद् अपहृतम् = **दत्तापहृतम्** (दे कर छीन लिया गया) धनम्। इसी प्रकार एक, सर्व, जरत् (पुराना), पुराण, नव तथा केवल–इन विशेषणों का भी उपयुक्त विशेष्य शब्दों के साथ समास होता है। जैसे–एकः नाथः = **एकनाथः** (एकमात्र स्वामी)। **सर्वयाज्ञिकाः**। **जरन्नैयायिकाः** (पुराने नैयायिक)। **पुराणमीमांसकाः** (प्राचीन मीमांसक)। **नवधनिकाः** (नये धनिक)। **केवलवैयाकरणाः** (केवल व्याकरण जाननेवाले)।

(घ) **क्तेन नञ्विशिष्टेनानञ्** (२.१.६०)—नञ् के साथ क्त प्रत्ययान्त शब्द के साथ नञ्–रहित क्त प्रत्ययान्त का समास होता है। वह भी कर्मधारय है। जैसे–कृतं च तद् अकृतं च = **कृताकृतम्**। ईश्वरः कृताकृतस्य द्रष्टास्ति = ईश्वर किये–अनकिये सब को देखता है। **पीतापीतम्, भुक्ताभुक्तम्, श्रुताश्रुतम्, हिताहितम्, दृष्टादृष्टम्**।

(ङ) **सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः** (२.१.६१)—सत्, महत्, परम, उत्तम तथा उत्कृष्ट इन पाँच विशेषण-शब्दों का पूज्यमान अर्थ वाले विशेष्य शब्दों के साथ समास होता है। जैसे–सँश्चासौ (सन् + च + असौ) पुरुषः = **सत्पुरुषः**। महान् चासौ वीरः = **महावीरः**।[१] परमः पुरुषः = **परमपुरुषः**। **उत्तमपुरुषः**। उत्कृष्टजनः।

(च) **किं क्षेपे** (२.१.६४)—निन्दा के अर्थ में उपयुक्त विशेष्य के साथ 'किम्' शब्द का समास होता है जैसे-कुत्सितः राजा = **किंराजा** (जो राजा निन्दनीय है, प्रजापालन नहीं करता)। कुत्सितः सखा = **किंसखा** (निन्दनीय मित्र)। कुत्सितः पुरुषः = **किम्पुरुषः** (कापुरुषः भी होता है)। **किन्नरः**। किम् का समास होने पर समासान्त प्रत्यय (टच्) नहीं लगता– **किमः क्षेपे** (५.४.७०)।

(छ) **वर्णो वर्णेन** (२.१.६९)—वर्णवाचक शब्द का दूसरे वर्णवाचक शब्द के साथ कर्मधारय समास होता है। यहाँ दोनों ही विशेषण रहते हैं। जैसे– नीलश्चासौ लोहितः = **नीललोहितः**। कृष्णश्चासौ सारङ्गः = **कृष्णसारङ्गः**। श्वेतश्चासौ रक्तश्च = **श्वेतरक्तः** (उजला और लाल)। इसे **विशेषणोभयपद कर्मधारय** कहते हैं।

---

१. **आन्महतः समानाधिकरण-जातीययोः** (६.३.४६) सूत्र से महत् के त् का आकार हो जाता है यदि समान विभक्ति वाला विशेष्य उत्तरपद में हो। **महापुरुषः, महादेवः, महाराजः, महाराष्ट्रः**। किन्तु महतः सेवा = **महत्सेवा** (क्योंकि समानाधिकरण शब्द उत्तरपद में नहीं)। यह षष्ठी तत्पुरुष हुआ।

२. **उपमानानि सामान्यवचनैः** (२.१.५५)—उपमान वाचक शब्द (जिस अप्रस्तुत पदार्थ से प्रस्तुत की तुलना हो) का समास समानता (सादृश्य) के बोधक शब्द के साथ होता है। जैसे–घन इव श्यामः = **घनश्यामः** (मेघ जैसा काला)। नवनीतमिव कोमलम् = **नवनीतकोमलम्** (मक्खन जैसा कोमल)। **कनकगौरः** (सोने जैसा गौरवर्ण)। **तुषारशीतलम्** (बर्फ जैसा शीतल, सुखद)। **चन्द्रोज्ज्वलः**। **किसलयकोमलः**। **अर्णवगम्भीरः** (समुद्र जैसा गम्भीर)। इसे **उपमानपूर्वपद कर्मधारय** कहा जाता है। कुछ लोग 'उपमान कर्मधारय' भी कहते हैं।

३. **उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे** (२.१.५६)—जिस प्रस्तुत पदार्थ की तुलना की जाती है उसे उपमित या उपमेय कहते हैं। इस उपमित (उपमेय) का समास व्याघ्र आदि उपमान (अप्रस्तुत)–वाचक शब्दों के साथ होता है यदि उपमान-उपमेय के बीच की समानता के बोधक (सम, तुल्य, सदृश, समान आदि) शब्द का प्रयोग न हो। जैसे–पुरुषः व्याघ्र इव = **पुरुषव्याघ्रः** (श्रेष्ठ व्यक्ति)। **पुरुषसिंहः**। पुरुषः ऋषभ इव = पुरुषर्षभः (श्रेष्ठपुरुष)।[1] उपमानवाचक व्याघ्रादि गण में इन शब्दों के अतिरिक्त चन्दन, वृक, वृष, वराह, हस्ती, पुण्डरीक, चन्द्र, पद्म, कमल, किसलय आदि शब्द हैं जो साहित्यिक सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं। जैसे–**करकिसलयम्, मुखकमलम्, राजेन्द्रः** (राजा इन्द्र इव), **तनुयष्टिः (तनुः यष्टिरिव), गात्रलता** (पतला शरीर)। इसमें सामान्य (समानता) का वाचक शब्द नहीं रहना चाहिए जैसे–पुरुषः व्याघ्र इव शूरः–ऐसे विग्रह में समास नहीं होगा। '**शूरः**' समानता का बोधक है। इस समास को 'उपमित कर्मधारय' या '**उपमानोत्तरपद कर्मधारय**' कहते हैं।

(क) इस समास में जब विग्रह-वाक्य में 'इव' के स्थान पर 'एव' का प्रयोग करें तो यह '**रूपक कर्मधारय**' हो जाता है। उपमालंकार के स्थान पर रूपकालंकार की श्रेणी आ जाती है। जैसे–मुखमेव चन्द्रः = **मुखचन्द्रः** (मुखरूपी चन्द्र)। चरणौ एव कमले = **चरणकमले** (चरणरूपी कमल)। पाद एव पद्मम् = **पादपद्मम्**। विद्या एव धनम् = **विद्याधनम्**। भाष्यमेव अब्धिः = **भाष्याब्धिः** (भाष्यरूपी सागर)। शोकः एव सागरः = **शोकसागरः**। दुःखमेव अग्निः = **दुःखाग्निः**। इस समास को '**अवधारणापूर्वपद कर्मधारय**' भी कहा गया है।

---

१. **अमरकोश** ३.१.५९—
स्युरुत्तरपदे व्याघ्र-पुंगवर्षभकुञ्जराः। सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः॥
उत्तरपद में व्याघ्र, पुंगव, ऋषभ, कुञ्जर, सिंह, शार्दूल, नाग आदि शब्द लगाये जायँ तो श्रेष्ठता के बोधक होते हैं। ये पुंल्लिङ्ग ही होते हैं।

४. **शाकपार्थिवादि समास**—कुछ कर्मधारय समासों में पूर्व पद (जो स्वयं समास रहता है) के उत्तर पद का लोप करके किसी विशेष्य पद के साथ समास किया जाता है। जैसे–शाकप्रियः चासौ पार्थिवः = (उत्तर पद 'प्रिय' का लोप करके) **शाकपार्थिवः**। देवपूजकश्चासौ ब्राह्मणः = देवब्राह्मणः। पलमिश्रम् अन्नम् = **पलान्नम्**। सिंह–चिह्नितम् आसनम् = **सिंहासनम्**। स्वर्णनिर्मितम् कङ्कणम् = **स्वर्णकङ्कणम्**। सप्ताधिकाः दश = **सप्तदश**। छायायुक्तः तरुः = **छायातरुः**। विन्ध्यनामा गिरिः = **विन्ध्यगिरिः**। तर्कप्रधाना विद्या = **तर्कविद्या**। व्याकरणनाम शास्त्रम् = **व्याकरणशास्त्रम्**। माघनामा कविः = **माघकविः**। यद्यपि इसे वार्तिककार कात्यायन ने **'उत्तरपदलोपी समास'** कहा है (शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः, **अष्टाध्यायी** २.१.६० का वार्तिक), फिर भी यह **'मध्यमपदलोपी समास'** के रूप में अधिक लोकप्रिय है।

५. **मयूरव्यंसकादयश्च** (२.१.७२)—मयूरव्यंसकादि गण में ऐसे अनेक समस्तपदों का निपातन (Irregular formation) किया गया है जो किसी नियम के अन्तर्गत नहीं। कर्मधारय से इतर भी ये हैं। जैसे–मयूरश्चासौ व्यंसकः (धूर्तः) = **मयूरव्यंसकः** (धूर्त मोर, विशेषण का परनिपातन)। उदक् च अवाक् च = **उच्चावचम्** (ऊँचा-नीचा)। निश्चितं च प्रचितं च = **निश्चप्रचम्**। अन्यः देशः = **देशान्तरम्**। अन्यः कालः = **कालान्तरम्** (अन्य का परिवर्तन 'अन्तर' और परनिपातन)। चित् एव = **चिन्मात्रम्**। नास्ति किञ्चन यस्य सः = **अकिञ्चनः**। नास्ति कुतो भयं यस्य सः = **अकुतोभयः** (बहुव्रीहि का रूप)। इस गण में कुछ ऐसे शब्द भी हैं जिनमें तिङन्त पदों का समास होता है। कहा गया है–**आख्यातमाख्यातेन क्रियासातत्ये** अर्थात् एक क्रिया (तिङन्त) का दूसरी क्रिया (तिङन्त) के साथ क्रिया की निरन्तरता (Continuity) प्रकट करते हुए समास होता है। जैसे–अश्नीत पिबत इत्येवं सततं यत्राभिधीयते सा = **अश्नीतपिबता** ('खाओ-पिओ' की जहाँ निरन्तर ध्वनि हो ऐसी पार्टी)। **खादत-मोदता** (खाओ-आनन्द करो की ध्वनि वाली क्रिया)। **पचतभृज्जता** (पकाओ-भूँजो की आवाज वाली क्रिया)।

द्विगु समास (तत्पुरुष)

१. **संख्यापूर्वो द्विगुः** (२.१.५२)—जिस कर्मधारय समास के पूर्व पद में संख्यावाचक शब्द हो उसे 'द्विगु' कहते हैं। 'द्विगु' शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार की है–(क) द्वाभ्यां गोभ्यां क्रीतः = द्विगुः (दो गायों का मूल्य चुका कर खरीदा गया)–इस स्थिति में यह तद्धितार्थ द्विगु समास है। (ख) द्वौ गावौ यस्य सः =

द्विगुः (जिसके पास दो गायें हैं)–इस स्थिति में यह बहुव्रीहि समास है। त्रिभुवनम्, पञ्चपात्रम्, त्रिलोकी, द्विवेदी आदि द्विगु के उदाहरण हैं। द्विगु समास के तीन भेद हैं–तद्धितार्थ, उत्तरपद और समाहार। इन्हें अगले सूत्र में समझाया जाता है—

२. **तद्धितार्थोत्तरपद-समाहारे च** (२.१.५१)—दिग्वाचक और संख्यावाचक शब्दों का समास तद्धित-प्रत्यय के अर्थ में, उत्तरपद परे रहने पर एवं समाहार अर्थ में होता है। इनमें दिग्वाचक का समास तो तत्पुरुष के रूप में होता है किन्तु संख्यावाचक का तीनों अर्थों में द्विगु समास होता है। यहाँ दोनों के उदाहरण दिये जाते हैं।

दिग्वाचक का समास तद्धितार्थ में–पूर्वस्यां शालायां भवः = **पौर्वशालः** (पूर्व वाले मकान में उत्पन्न)। पूर्वशाला+ञ (अ) = पौर्वशालः। उत्तर पद परे रहने पर–पूर्वा शाला प्रिया यस्य सः = **पूर्वशालाप्रियः**। समाहार में दिग्वाचक का समास नहीं देखा जाता।

संख्यावाचक का समास—

१. **तद्धितार्थ में**–पञ्चभिः गोभिः क्रीतः = **पञ्चगुः**। द्विगुः, नवगुः इत्यादि। षण्णां मातृणामपत्यम् = **षाण्मातुरः** (कार्तिकेय जिन्हें छह माताओं ने पाला था)। द्वयोः मात्रोः अपत्यम् = **द्वैमातुरः** (गणेश जिनकी दो माताएँ थीं)। मातृ का उकारादेश तथा तद्धित अण् प्रत्यय (मातुरुत् संख्या-सम्-भद्रपूर्वायाः ४.१.११५)।

२. **उत्तरपद के परे रहने पर**–पञ्च गावो धनं यस्य सः = **पञ्चगवधनः** (जिसके पास धन रूप में केवल पाँच गायें हैं)। उत्तरपद में धन रहने पर बहुव्रीहि-समास है किन्तु उसके पूर्व 'पञ्चगव' द्विगु है। इसी प्रकार 'त्रयाणां लोकानां नाथः' = **त्रिलोकनाथः**। पञ्च नावः प्रियाः यस्य = **पञ्चनावप्रियः**। द्वौ मासौ जातस्यास्य = **द्विमासजातः**। चतसृणां दिशामीशाः = **चतुर्दिगीशाः**।

३. **समाहार में**–त्रयाणां भुवनानां समाहारः = **त्रिभुवनम्**। त्रयाणां लोकानां समाहारः = **त्रिलोकी** (स्त्रीलिङ्ग में)। **चतुर्युगम्**। **पञ्चगवम्** (पाँच गायों का समूह)। **सप्तशती, अष्टाध्यायी, पञ्चश्लोकी** (ये सब स्त्रीलिङ्ग)।

नियम—

i) अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः–पञ्चवटी, त्रिलोकी, चतुष्पदी।

ii) पात्रादिभ्यः प्रतिषेधः–पञ्चपात्रम्, त्रिभुवनम्, त्रिसखम्, चतुष्पथम् (चौराहा), त्रिरात्रम्, नवरात्रम् (संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्)।

iii) द्विगुरेकवचनम्, स नपुंसकम् (समाहारद्विगुः)।

नञ् तत्पुरुष समास

नञ् (२.२.६)—निषेधार्थक नञ् शब्द का समास निषेध्य सुबन्त शब्द के साथ होता है। हलादि शब्द के पूर्व नञ् के न् का लोप हो जाता है (**नलोपो नञः** ६.३.७३) किन्तु अजादि शब्द के पूर्व लुप्तनकार से बचे अ के बाद नुट् (न्) लगता है (**तस्मान्नुजचि** ६.३.७४)। इस प्रकार व्यञ्जन के पूर्व न का 'अ' और स्वर के पूर्व 'अन्' रहता है। जैसे-न पण्डितः = **अपण्डितः**। न धार्मिकः = **अधार्मिकः**। अशुक्लः, अविद्या, अज्ञानम्, असुरः, अयोग्यः, अमूर्खः, अशेषः, अनिवार्यः। स्वर के पूर्व अन् होकर–न अन्तः = **अनन्तः**। न आर्यः = **अनार्यः**। न आदरः = **अनादरः**। न एकः = **अनेकः**। न ईश्वरः = **अनीश्वरः**।

कुछ स्थितियों में 'न' का परिवर्तन नहीं होता। तब **'सुप्सुपा समास'** माना जाता है जैसे–न एकधा = **नैकधा**। न अतिशीतोष्णः = **नातिशीतोष्णः**। **नाकः** (न अकः) = स्वर्ग। नञ् नहीं, अपितु 'न' निपात का यहाँ समास है।

गति तत्पुरुष समास

कुगतिप्रादयः (२.२.१८)—इस सूत्र द्वारा कु शब्द, गति-संज्ञक शब्द और प्रादि उपसर्ग का समास समर्थ शब्द के साथ होता है। इनमें 'कु' का समास कर्मधारय की संज्ञा पाता है–कुत्सितः पुरुषः = **कुपुरुषः**। यह कु कभी-कभी कत्, का या किम् का रूप ले लेता है–कदन्नम्, कापुरुषः, कातन्त्रम्, किम्पुरुषः।

'गति' एक संज्ञा (Technical term) है जिसे अनेक सूत्रों में निर्दिष्ट किया गया है। गतिसंज्ञक शब्दों का समास समर्थ कृदन्त शब्दों के साथ होता है। प्रायः इसके उदाहरण में ल्यप्-प्रत्ययान्त शब्द दिये जाते हैं क्योंकि समास होने पर क्त्वा के स्थान में ल्यप् होता है। प्रमुख सूत्रों के साथ इसके उदाहरण हैं—

(क) **ऊर्यादिच्विडाचश्च** (१.४.६१)—ऊरी, उररी आदि शब्द, च्वि-प्रत्ययान्त शब्द और डाच् प्रत्ययान्त शब्द गति हैं। क्त्वा के साथ इनका समास हो तो ल्यप् हो जाता है जैसे–**ऊरीकृत्य** (स्वीकार करके), उररीकृत्य (=स्वीकृत्य)। अशुक्लः शुक्लः भूत्वा = **शुक्लीभूय** (उजला बनकर)। अशुक्लं शुक्लं कृत्वा = **शुक्लीकृत्य** (उजला बनाकर)। इन दोनों में च्वि प्रत्यय है (शुक्ल+च्वि)। डाच् का उदाहरण–पटत् पटत् इति कृत्वा = **पटपटाकृत्य** (पट पट ऐसी ध्वनि करके)।

(ख) **भूषणेऽलम्** (१.४.६४)—भूषण अर्थ में 'अलम्' गतिसंज्ञक है। अतः **अलंकृत्य** (विभूषित करके)। अन्य अर्थ में–अलं कृत्वा (करना व्यर्थ है)।, अलं पठित्वा (पढ़ना व्यर्थ होगा)। समास नहीं हुआ।

(ग) **तिरोऽन्तर्धौ** (१.४.७१)—छिपने के अर्थ में 'तिरस्' गतिसंज्ञक है। अतः– **तिरोभूय**। कृ धातु के पूर्व यह विकल्प से 'गति' है। इसलिए तिरःकृत्वा = तिरस्कृत्वा, तिरस्कृत्य दोनों सम्भव है। साक्षात् भी वैकल्पिक गति है–साक्षात् कृत्वा या साक्षात्कृत्य।

(घ) **नित्यं हस्ते-पाणावुपयमने** (१.४.७७)—'हस्ते' और 'पाणौ' ये दोनों शब्द विवाह (उपयमन) का अर्थ प्रकट होने पर गति-संज्ञक होते हैं। **हस्तेकृत्य, पाणौकृत्य** (= विवाह करके, पाणिग्रहण करके)। **कन्यां हस्तेकृत्य (पाणौकृत्य) वरः स्वगृहं ययौ** (कन्या से विवाह करके वर अपने घर चला गया)।

(ङ) प्र आदि उपसर्ग क्रियायोग में 'गति' भी कहलाते हैं (प्रादयः, उपसर्गाः क्रियायोगे, गतिश्च १.४.५८-६०)। अतः आ + दा + ल्यप् = **आदाय**। यह भी गति समास है। इसी प्रकार ल्यप्-प्रत्ययान्त सभी शब्द इस समास के उदाहरण हैं– परित्यज्य, प्रहृत्य, विहाय, आगम्य, अधीत्य, निपीय, प्रविश्य, उपनीय इत्यादि। गति समास के कारण ही क्त्वा का ल्यप् आदेश होता है (समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७.१.३७)।

प्रादि-तत्पुरुष समास

उपर्युक्त '**कुगतिप्रादयः**' सूत्र से प्र आदि शब्दों का सुबन्त के साथ नित्य समास होता है। वार्तिकों में इस समास के विधान विस्तार से हुए हैं।

i) **प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया**—प्र आदि का गत आदि अर्थ में प्रथमान्त शब्द के साथ समास–**प्रशंसा में**–प्रकृष्टः आचार्यः = **प्राचार्यः**। प्रकृष्टः भावः = **प्रभावः**। **प्रपुरुषः**। शोभनो जनः = **सुजनः**। **सुराजा, सुपन्थाः** (समासान्त प्रत्यय का निषेध)। **निन्दा में**–अपकृष्टः शब्दः = **अपशब्दः**। दुष्टो जनः = **दुर्जनः**। दुष्टः पन्थाः = **दुष्पथम्**। विकृतः पन्थाः = **विपथम्**। **अधिकार्थ में**– अधिगतः ईश्वरः = **अधीश्वरः**। **असाक्षात् अर्थ में–उपमाता, उपपतिः**। विशिष्टो भावः = **विभावः**।

ii) **अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया**—क्रान्त आदि अर्थ में अति आदि शब्दों का द्वितीयान्त के साथ समास–खट्वामतिक्रान्तः = **अतिखट्वः**। मालामतिक्रान्त = **अतिमालः** (माला से आगे निकला हुआ)। **अतिनदि** जलम् (नदी से बाहर जल। **अतिवेलः** (वेलामतिक्रान्तः)। भावमनुगतः = **अनुभावः**।

iii) **अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया**—क्रुष्ट आदि अर्थ में अव आदि का समास तृतीयान्त शब्द के साथ–अवक्रुष्टं कोकिलया = **अवकोकिलम्** (कोकिल से

कूजित) वनम्। अक्षेण (इन्द्रियेण) प्रतीतः = **प्रत्यक्षः** घटः। **प्रत्यक्षा** देवी। वेलया सुसंगतः = **सुवेलः** सागरः (अच्छे तट वाला समुद्र)।

iv) **पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या**—ग्लान आदि अर्थ में परि आदि शब्दों का चतुर्थ्यन्त शब्द के साथ समास-परिग्लानः अध्ययनाय = **पर्यध्ययनः** (अध्ययन से थका हुआ)। पर्याप्तं कुमार्यै = **अलंकुमारि**।

v) **निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या**—क्रान्त आदि अर्थ में निर् आदि शब्दों का पञ्चम्यन्त के साथ समास–निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः = **निष्कौशाम्बिः** (कौशाम्बी से निकल चुका व्यक्ति)। निष्क्रान्तः वाराणस्याः = **निर्वाराणसिः**।

उपपद तत्पुरुष समास

उपपद एक संज्ञा (पारिभाषिक शब्द) है जिसे पाणिनि ने **'तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्'** (३.१.९२) द्वारा परिभाषित किया है। इसके अनुसार वे शब्द 'उपपद' कहलाते हैं जो धातु से होने वाले प्रत्ययों (विशेष रूप से कृत्प्रत्ययों) के सूत्रों में सप्तमी विभक्ति में आये हुए शब्दों के उदाहरण हैं।[1] जैसे–**कर्मण्यण्** (३.२.१)। 'कर्मणि' सप्तम्यन्त है। इसका उदाहरण है 'कुम्भम्' आदि। धातु से अण् प्रत्यय तभी हो सकता है जब कुम्भ आदि कर्मकारक के शब्द पूर्व में रहें। इसी प्रकार **'सप्तम्यां जनेर्डः'** इस सूत्र से जन् धातु से ड (अ) प्रत्यय तभी लग सकता है जब सप्तम्यन्त कोई पद पहले रहे। यही पद उपपद है। सरसि + जन् + ड (अ) = **सरसिजम्**। (देखें–कृत्प्रत्यय प्रकरण)।

इस शास्त्रीय प्रक्रिया की अपेक्षा सरल विधि से 'उपपद' समझें। कोई कृत्प्रत्यय धातु से लगने के समय जब अनुबन्ध (शर्त–Condition) रखे कि अमुक या अमुक प्रकार का शब्द धातु के पूर्व रहे तभी उस प्रत्यय की प्रवृत्ति होगी, तब उसी अनुबन्धित पद को उपपद कहेंगे।

उपपद का समास समर्थ कृदन्त के साथ होता है (**उपपदमतिङ्** २.२.१९)। जैसे-कुम्भं करोति = कुम्भ + कृ + अण् = **कुम्भकारः**। पहले उपपद समास हो जाता है तब सुप् विभक्ति लगती है। कृ से अण् लगकर 'कार' तभी बनेगा जब पहले (उपपद रूप में) कुम्भ आदि कोई कर्म उपस्थित हो। अन्य उदाहरण–जले जातम् = **जलजम्** (जल + जन् + ड)। मनसि जातः = **मनोजः** (कामदेव)। जलं वहति = **जलवाहः** (जल + वह् + अण्)। स्वस्मिन् तिष्ठति = **स्वस्थः** (स्व + स्था + क)। प्रियं वदतीति = **प्रियंवदः** (प्रिय + वद् + खच्)। पादैः (मूलैः) पिबति = **पादपः** (पाद + पा + क)। कृत्प्रत्ययों में बहुत से सोपपद (उपपद रहने का अनुबन्ध रखने वाले) हैं। इसे उस प्रकरण में दिखाया गया है।

---

१. धातु-प्रत्यय-प्रकरण-सूत्रेषु यत् यत् पदं सप्तम्या निर्दिष्टं कृतम्, तत्तत् 'उपपदम्' इत्युच्यते। उप = समीपे उच्चारितं पदम् उपपदम्।

तत्पुरुष समास के कुछ विशेष तथ्य

(क) **समासान्त प्रत्यय**—ये वैसे तद्धित प्रत्यय हैं जो कुछ समासों के अन्त में विहित हैं। इनसे कोई विशेष अर्थ नहीं निकलता किन्तु समास के अन्त में इनका लगना बहुत आवश्यक है। इसीलिए इन्हें स्वार्थिक तद्धित के अन्तर्गत रखा गया है। यहाँ कुछ समासान्त प्रत्ययों का निरूपण किया जाता है—

i) तत्पुरुष समास में संख्यावाचक तथा अव्यय के बाद अङ्गुलि शब्द आये, तो नियमतः 'अच्' प्रत्यय लगता है जिससे 'अङ्गुल' ऐसा रूप हो जाता है। जैसे–द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य = **द्व्यङ्गुलं** काष्ठम् (तद्धितार्थ द्विगु)। निर्गतमङ्गुलिभ्यः = **निरङ्गुलम्** (अंगुलियों से निकला हुआ–प्रादि समास) अङ्गुलीयकम्। अङ्गुलिम् अतिक्रान्तम् = **अत्यङ्गुलम्**। तत्पुरुष समास न होने पर–षडङ्गुलिः हस्तः (छह अंगुलियों वाला हाथ–षट् अङ्गुलयो यस्य सः = बहुव्रीहि समास)।

ii) अहः, सर्व, एकांशवाचक शब्द (मध्य, पूर्व, अपर आदि), सर्व, संख्यात तथा पुण्य शब्द के बाद उत्तरपद में 'रात्रि' हो तो अच् प्रत्यय लगकर 'रात्र' बन जाता है। अहः का रात्रि के साथ द्वन्द्व समास में भी ऐसा होता है– अहश्च रात्रिश्च = **अहोरात्रः** (दिन-रात)। शेष तत्पुरुष समास में होते हैं। सर्वा चासौ रात्रिश्च = **सर्वरात्रः** (सभी रातें, सारी रात)। पूर्वं रात्रेः = **पूर्वरात्रः** (रात का पहला भाग)। अपरं रात्रेः = **अपररात्रः** (रात का पिछला भाग)। **मध्यरात्रः** (आधी रात)। **संख्यातरात्रः** (गिनी हुई रातें)। **पुण्यरात्रः** (पवित्र रात)।

iii) **राजाहः सखिभ्यष्टच्** (५.४.९१)—राजन्, अहन् और सखि शब्द तत्पुरुष समास के उत्तरपद के रूप में हो तो समासान्त टच् (अ) प्रत्यय लगकर 'राज', 'अह' और 'सख' बन जाता है। जैसे–महान् चासौ राजा = **महाराजः**। देवानां राजा = **देवराजः**। परमम् अहः = **परमाहः** (श्रेष्ठ दिवस)। सप्तानाम् अह्नां समाहारः = **सप्ताहः** (Week)। इन्द्रस्य सखा = **इन्द्रसखः**। प्रियश्चासौ सखा = **प्रियसखः**। त्रयाणां सखीनां समाहारः = **त्रिसखम्** (द्विगु)। अन्य समासों में ऐसा नहीं होगा–सख्युः समीपम् = उपसखि (अव्ययीभाव)। कृष्णः सखा यस्य सः = **कृष्णसखा** (बहुव्रीहि)।

अव्यय के बाद या एकांशवाचक शब्द के बाद अहन् शब्द 'अह्न' बन जाता है। जैसे–अतिक्रान्तमहः = **अत्यह्नः** (एक दिन से अधिक)। पूर्वम् अह्नः = **पूर्वाह्णः**। **अपराह्णः**, **मध्याह्नः**। **सायाह्नः**। (एकदेशी तत्पुरुष)।

iv) गो शब्द के बाद तत्पुरुष में समासान्त टच् (अ) लगकर 'गव' बनता है, किन्तु तद्धित प्रत्यय के लोप की स्थिति में नहीं लगता। जैसे–पञ्चानां गवां समाहारः = **पञ्चगवम्**। पुमान् गौरिव = **पुङ्गवः** (श्रेष्ठ)। **पञ्चगवधनः**। किन्तु पञ्चभिः गोभिः क्रीतः = **पञ्चगुः** दुकूलपटः (पाँच गायों के मूल्य पर खरीदी गई रेशमी चादर)। यह तद्धितार्थ द्विगु समास है, तद्धित प्रत्यय ('तेन क्रीतम्' से होने वाला) लुप्त है। इसी प्रकार, द्वौ गावौ यस्य सः = **द्विगुः** (बहुव्रीहि समास)। गोः समीपम् = **उपगु** (अव्ययीभाव)।

v) ऋच्, पुर्, अप् (जल), धुर् तथा पथिन् शब्द के साथ समासान्त 'अ' प्रत्यय लगकर क्रमशः ये शब्द ऋच, पुर, ईप (अप् का ईकार), धुर और पथ बन जाते हैं। सभी समासों में यह नियम है। किन्तु अक्ष शब्द पूर्वपद में हो तो यह प्रत्यय नहीं लगता (ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे ५.४.७४)। उदाहरण–अर्धम् ऋचः = **अर्धर्चः** (आधी ऋचा)। राज्ञः पूः = **राजपुरम्** (राजा का नगर)। **त्रिपुरम्** (द्विगु)। द्वयोः दिशोः आपः यस्य तत् **द्वीपम्** (Island)। **अन्तरीपम्, समीपम्**। **प्रतीपम्**। राज्ञः धूः (भार) = **राजधुरा**। विगता धूः (चिन्ता) यस्याः सा = **विधुरा**। **दक्षिणापथः उत्तरापथः**। **राजपथः**। चतुर्णां पथां समाहारः = **चतुष्पथम्** (चौराहा)। **बहुपथः** देशः (बहवः पन्थानः यस्मिन् सः)।

(ख) **समासान्त निषेध**–कहीं कहीं समासान्त प्रत्यय नहीं लगता—

i) **नञस्तत्पुरुषात्** (५.४.७१)—नञ्–तत्पुरुष समास में समासान्त प्रत्यय नहीं लगता। जैसे–न राजा = **अराजा**। न सखा = असखा। किन्तु बहुव्रीहि समास में लगेगा–नास्ति धूः यस्य तत् = **अधुरं** राज्यम्। **अधुरं** शकटम्। **अपन्थाः**–नञ् समास।

ii) **न पूजनात्** (५.४.६९)—पूजनार्थक शब्द के बाद उत्तरपद से समासान्त प्रत्यय नहीं लगता। जैसे–शोभनो राजा = **सुराजा**। **अतिराजा**।

iii) **किमः क्षेपे** (५.४.७०)—निन्दा अर्थ में किम् शब्द के बाद उत्तरपद से समासान्त प्रत्यय नहीं लगता। जैसे–**किंराजा**। **किंसखा**। **किंगौः** (कुत्सित गाय)। निन्दा अर्थ न हो तो समासान्त होगा। कः राजा यस्य सः = **किंराजः** देशः? (इस देश के राजा कौन हैं?)–बहुव्रीहि समास।

iv) **पथो विभाषा** (५.४.७२)—नञ् तत्पुरुष समास में पथिन् शब्द से वैकल्पिक समासान्त प्रत्यय लगता है जैसे–न पन्थाः = **अपन्थाः**, **अपथम्** (मार्ग का अभाव)। अन्यत्र तो समासान्त होगा ही–नास्ति पन्थाः यस्मिन् सः = **अपथो देशः**। **अपथं** वर्तते (अव्य.)

(ग) तत्पुरुष समास में लिङ्ग-विचार—

i) **परवल्लिङ्गं द्वन्द्व-तत्पुरुषयोः** (२.४.२६)—द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में उत्तरपद के अनुसार पूरे समास का लिङ्ग होता है। जैसे–पूर्व कायस्य = **पूर्वकायः** (पूं.)। राज्ञः स्त्री = **राजस्त्री**। मुखं चन्द्रः इव = **मुखचन्द्रः**। द्वन्द्व समास में–फलं च घटश्च = **फलघटौ** (पुं.)। घटश्च फलं च = **घटफले** (नपुं.)। कुक्कुटश्च मयूरी च = **कुक्कुटमयूर्यौ** (स्त्री.)।

ii) **रात्राह्नाहाः पुंसि** (२.४.२९)—रात्र, अह्न और अह शब्द उत्तरपद में रहने पर पुंल्लिङ्ग ही होते हैं। जैसे–**अहोरात्र, पूर्वरात्रः**। **मध्याह्नः, अपराह्णः**। **त्र्यहः, सप्ताहः, नवाहः**। संख्यापूर्वक रात्र शब्द नपुंसक लिंग में होता है–**द्विरात्रम्, पञ्चरात्रम्, नवरात्रम्**। यह केवल समाहार द्विगु में होता है। तद्धितार्थ द्विगु में द्विरात्रः (दो रातों में सम्पन्न) त्रिरात्रः इत्यादि।

iii) **स नपुंसकम्** (२.४.१७)—समाहार अर्थ में द्विगु और द्वन्द्व दोनों ही समास नपुंसकलिंग में होते हैं–**पञ्चगवम्, पाणिपादम्** (द्वन्द्व)। अकार से अन्त होने वाला द्विगु स्त्रीलिङ्ग होता है–**त्रिलोकी**। **अष्टाध्यायी**। **सप्तशती**।

iv) **सभा राजाऽमनुष्यपूर्वा** (२.४.२३)—राजन् शब्द से भिन्न राजा का कोई पर्याय तथा राक्षस, पिशाच आदि अमनुष्यवाचक शब्द के बाद उत्तरपद में सभा शब्द नपुंसक होता है अतः ह्रस्व हो जाता है। जैसे–ईश्वराणां सभा = **ईश्वरसभम्**। **प्रभुसभम्**। **राक्षससभम्**। **नृपसभम्**। किन्तु **राजसभा, चन्द्रगुप्तसभा**। **मनुष्यसभा**।

सभा का अर्थ 'गृह' (शाला) न हो तो उससे अन्त होने वाला तत्पुरुष समास नपुंसकलिङ्ग होता है। जैसे–स्त्रीणां सभा = स्त्रीसभम् (स्त्रियों का समूह)। **दासीसभम्, बालकसभम्**। किन्तु, **धर्मसभा** (= धर्मशाला)।

v) सेना, सुरा, छाया, शाला और निशा शब्द से अंत होने वाला तत्पुरुष समास विकल्प से नपुंसकलिङ्ग होता है। शत्रुसेना, शत्रुसेनम्। यवसुरा, यवसुरम् (जौ की शराब Beer)। तरुच्छाया, तरुच्छायम् (एक वृक्ष की छाया)। यदि पूर्वपदार्थ बहुवचन हो छायान्त तत्पुरुष नपुंसक ही होता है–इक्षूणां छाया = **इक्षुच्छायम्**। गोशाला, गोशालम्। श्वनिशा, श्वनिशम् (कुत्तों की रात)।[1] नञ्, कर्मधारय तथा बहुव्रीहि में यह नियम नहीं लगता।

१. **श्वनिशा, श्वनिशम्**–प्रसिद्धि है कि भाद्रपद मास की कृष्ण चतुर्दशी की रात में कुछ कुत्ते कुछ भी नहीं खाते। वही कुत्तों की रात मानी जाती है।

अतः–असेना (नञ्), परमसेना (कर्मधारय), दृढ़सेनः (दृढा सेना यस्य सः) राजा।

(घ) **अलुक् समास**—सामान्यतः समास में पूर्वपद की विभक्ति लुप्त हो जाती है। लोप को पाणिनि 'लुक्' कहते हैं जब पूर्वपद की विभक्ति का लोप नहीं होता तो इसे 'अलुक् समास' कहा जाता है। इसके कई विधान पाणिनि ने किये हैं जो संस्कृत भाषा की वाग्धारा (Idiom) के सूचक हैं। यहाँ विभिन्न विभक्तियों के अलुक् के उदाहरण दिये जाते हैं—

i) तृतीया—**ओजसाकृतम्** (शक्ति से किया गया), **अञ्जसाकृतम्** (ईमानदारी से किया गया)। **जनुषान्धः** (जन्म से ही अन्धा)। **आत्मनापञ्चमः** (अपने से पाँचवाँ)। **मनसारामः** (अपने राम, मैं स्वयम्)।

ii) चतुर्थी—**आत्मनेपदम्,** आत्मनेभाषा। **परस्मैपदम्,** परस्मैभाषा।

iii) पञ्चमी—**स्तोकान्मुक्तः** (बाल-बाल बचा), अन्तिकादागतः, **दूरादागतः** (दूर से आया हुआ)।

iv) षष्ठी—चौरस्यकुलम् (निन्दा अर्थ में मुहावरा), **देवानांप्रियः** (मूर्ख), वाचोयुक्तिः (निपुण वाणी, वाक्कौशल), **पश्यतोहरः** (देखते-देखते ठग लेने वाला, स्वर्णकार), **दिवोदासः** (काशी के एक राजा), शुनःशेपः (एक ऋषि), दास्याः पुत्रः (एक गाली)। **पितुःस्वसा,** पितृष्वसा; **मातुःस्वसा,** मातृष्वसा (मौसी)। **वाचस्पतिः, बृहस्पतिः**।

v) सप्तमी—**गेहेशूरः** (केवल घर में गरजने वाला), **अरण्येतिलकाः** (जंगली तिल), **पात्रेकुशलः** (केवल खाने में कुशल), **युधिष्ठिरः, गविष्ठिरः** (आकाश में स्थिर), **हृदिस्पृक्** (हृदयस्पर्शी), **दिविस्पृक्** (आकाश छूनेवाला), **कण्ठेकालः** (शिव), **कुशेशयम्** (कमल, जल में रहने वाला), **जलेशयः** (मत्स्य)। **सरसिजम्,** (सरोजम् भी)। **प्रावृषिजः** (वर्षा में होनेवाला), **शरदिजः,** कालेजः (समय पर होने वाला), **दिविजः**।

बहुव्रीहि समास (Adjectival or Attributive Compound)

अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः—बहुव्रीहि समास में घटक पदों से भिन्न पद के अर्थ की प्रधानता होती है। वाक्य में उसी अन्यपद के अर्थ की मुख्यता रहती है। इसीलिए बहुव्रीहि समास विशेषणात्मक (Adjectival) होता है, किसी विशेष्य की ओर निर्दिष्ट करता है। उसी का लिङ्ग और वचन इस समास को धारण करना पड़ता है (**विशेष्यं यादृशं यत्र**

तादृशं हि विशेषणम्)। पीतानि अम्बराणि यस्य–**पीताम्बरो** हरिः। पीतानि अम्बराणि यस्याः–**पीताम्बरा** देवी। इन उदाहरणों में हरि के पुंल्लिङ्ग होने से 'पीताम्बरः' भी पुंल्लिङ्ग है, उधर देवी के स्त्रीलिङ्ग होने से 'पीताम्बरा' स्त्रीलिङ्ग हुआ है। इस समास में घटक पद भी अपना लिङ्ग त्यागकर उसी अन्य पद के अनुसार ग्रहण कर लेते हैं जैसे 'यशः धनं यस्याः सा = **यशोधना** तापसी'। स्त्रीलिङ्ग तापसी (तपस्विनी) के समक्ष यश और धन के लिङ्ग (नपुंसक) समर्पित हो गये, समास स्त्रीलिङ्ग रूप का हो गया।

बहुव्रीहि प्रथमतः **समानाधिकरण** और **व्यधिकरण** दो प्रकार का होता है। जब घटक पदों की विभक्तियाँ समान हों तो समानाधिकरण बहुव्रीहि होता है जैसे–पीतानि अम्बराणि यस्य = **पीताम्बरः**। दूसरी ओर घटक पदों की विभक्तियाँ भिन्न होने से व्यधिकरण बहुव्रीहि होता है जैसे–वीणा पाणौ यस्याः सा = **वीणापाणिः**।

१. **समानाधिकरण बहुव्रीहि**—पाणिनि ने इसे ही लक्षित करते हुए सूत्र दिया है–**अनेकमन्यपदार्थे** (२.२.२४)। इसके अनुसार अनेक प्रथमान्त पदों का समास अन्य पद (अर्थात् प्रथमान्त से भिन्न पद) के अर्थ में होता है। तत्पुरुष समास में द्वितीया आदि पदों के समास का विधान था। इसलिए शेष रूप से बचे हुए प्रथमान्त पदों का इस बहुव्रीहि समास में और आगे चलकर द्वन्द्व समास में विधान हुआ है। यही शेषत्व का रहस्य है–**शेषो बहुव्रीहिः** (२.२.२३)। अन्य पदार्थ के रूप में जो समास होगा उसमें विग्रह वाक्य में यं सः, यां सा, येन सः, यया सा इत्यादि सप्तमी तक के बोधक सर्वनामों का प्रयोग होता है। जैसे—

द्वितीया—आरूढः वानरः यं सः = **आरूढवानरः** वृक्षः (जिस पर बन्दर चढ़ा हुआ है)। प्राप्तमुदकं यं सः = **प्राप्तोदकः** ग्रामः (जिस गाँव को जल मिला हुआ है।)

तृतीया—कृतं कार्यं येन सः = **कृतकार्यः** पुरुषः (जो काम कर चुका है वह)। पठितो ग्रन्थः **यया** सा = **पठितग्रन्था** नारी (जिस नारी ने ग्रन्थ पढ़ा है)।

चतुर्थी—दत्तं धनं **यस्मै** सः = **दत्तधनः** पुरुषः (जिसे धन दिया गया है)।

पञ्चमी—निर्गता दया **यस्मात्** सः = **निर्दयः** जनः (जिससे दया निकल चुकी है)। उद्धृतः ओदनः **यस्याः** सा = **उद्धृतौदना** स्थाली (जिस बटलोई से चावल निकाला जा चुका है)।

षष्ठी—पीतान्यम्बराणि **यस्य** सः = **पीताम्बरो** हरिः। सर्वं शुक्लं **यस्याः** सा = **सर्वशुक्ला** सरस्वती।

सप्तमी—बहूनि नक्षत्राणि **यस्मिन्** सः = **बहुनक्षत्रः** आकाशः। वीराः पुरुषाः **यस्मिन्** सः = **वीरपुरुषको** ग्रामः।

समानाधिकरण बहुव्रीहि समास के अन्य उदाहरण हैं–दीर्घलोचनः, महाबाहुः, त्रिलोचनः, चतुर्भुजः, बहुव्रीहिः, बहुपुत्रः, जितेन्द्रियः (जितानि इन्द्रियाणि येन सः), लम्बकर्णः (गर्दभः), लम्बोदरः (गणेशः) इत्यादि।

२. **व्यधिकरण बहुव्रीहि**—इसमें घटक पदों के बीच विशेष्य-विशेषण सम्बन्ध नहीं रहता, अपितु उनमें भिन्न विभक्तियाँ रहती हैं। जैसे–कण्ठे स्थितः कालः यस्य सः = **कण्ठेकालः** (शिव)। उरसि लोमानि यस्य सः = **उरसिलोमा** (पुरुषः)। चन्द्रः शेखरे यस्य सः = **चन्द्रशेखरः** (शिव)। चक्रं पाणौ यस्य सः = **चक्रपाणिः** (विष्णु)।

बहुव्रीहि के प्रकारान्तर से दो भेद हैं–**तद्गुणसंविज्ञान और अतद्गुणसंविज्ञान**। जब घटक पदों का अर्थ समास के वाच्यार्थ में वर्तमान रहता है तो उसे तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि कहते हैं। जैसे–**त्रिलोचनः**। समास का वाच्यार्थ जो शिव है वहाँ तीन और लोचन दोनों के अर्थ अवस्थित हैं–शिव में तीन आँखें वर्तमान हैं। इसी प्रकार **चतुर्भुजो** विष्णुः, **पीताम्बरः** पुरुषः, **लम्बोदरो** गणेशः, **लम्बकेसरः** सिंहः, **नवपुष्पो** वृक्षः इत्यादि।

जब घटक पदों के अर्थ समास के वाच्यार्थ में विद्यमान न हों वह अतद्गुण-संविज्ञान बहुव्रीहि है। जैसे–दृष्टः सागरः येन सः = **दृष्टसागरः** पुरुषः। यहाँ पुरुष में दृष्ट और सागर के वाच्यार्थ विद्यमान नहीं है। चित्रा गावो यस्य सः = **चित्रगुः** गोपः (जिसके पास रंग-बिरंग की गायें हैं)। गोप इन गायों को सदा अपने साथ लिये नहीं चलता। उसके वाच्यार्थ में घटक पदार्थ नहीं हैं।

बहुव्रीहि के अन्य रूप

१. **नञ्-बहुव्रीहि**—नञ् तथा अविद्यमान शब्द का समर्थ सुबन्त के साथ बहुव्रीहि समास (अन्य पदार्थ में) होता है। अविद्यमानः पुत्रः यस्य सः = **अविद्यमानपुत्रः** अथवा **अपुत्रः**। अविद्यमानं धनं यस्य सः = **अधनः** मनुष्यः।

२. **अस्ति और नास्ति का समास**—अव्यय, अस्ति और नास्ति का समर्थ सुबन्त के साथ अन्य पदार्थ में बहुव्रीहि समास होता है। जैसे–उच्चैः मुखं यस्य सः = **उच्चैर्मुखः**। अस्ति क्षीरं यस्याः सा = **अस्तिक्षीरा** धात्री (दूध पिलानेवाली धाई माँ)। **नास्तिधनः** भिक्षुः। इसी प्रकार प्रादि समास के समान क्रिया के अर्थ में बहुव्रीहि होता है। जैसे–प्रपतितानि पर्णानि यस्य सः = **प्रपर्णः** वृक्षः। 'पतित' क्रिया का अर्थ है। उद्गता कन्धरा यस्य सः = **उत्कन्धरः** (ऊँचे कन्धोंवाला)। उद्गतो बाहुः यस्य सः = **उद्बाहुः** (बाँह ऊपर उठाये हुए व्यक्ति)।

३. **सहार्थ बहुव्रीहि–तेन सहेति तुल्ययोगे** (२.२.२८)—समान क्रिया करने के अर्थ में सह शब्द का समास समर्थ सुबन्त के साथ हो तो यह भी बहुव्रीहि है।

जैसे–पुत्रेण सह = **सपुत्रः, सहपुत्रो** वा आगतः पिता। सह का 'स' आदेश विकल्प से हुआ है (वोपसर्जनस्य)। समान क्रिया करना कभी-कभी न भी हो तो यह समास होता है–सकर्मकः, सरस;, सलोमकः, सवत्सा गौः (वत्सेन सह विद्यमाना)।

४. **संख्यार्थ बहुव्रीहि–संख्ययाऽव्ययासन्नादूराधिकसंख्याः संख्येये** (२.२.२५)—संख्यावाचक शब्द के साथ अव्यय-शब्द, आसन्न, अदूर, अधिक तथा संख्यावाचक शब्द का समास बहुव्रीहि में होता है। **अव्यय**–दशानां समीपे ये सन्ति ते = **उपदशाः** (लगभग दस)। विंशतेः आसन्नाः = **आसन्नविंशाः**। **अदूरत्रिंशाः** (तीस के लगभग)। **अधिकचत्वारिंशाः** (चालीस से अधिक)। **संख्या का संख्या से समास**–द्वौ वा त्रयो वा = **द्वित्राः** (दो-तीन)। त्रीणि वा चत्वारि वा = **त्रिचतुराणि** पदानी (तीन-चार कदम)। पञ्च वा षड्वा = **पञ्चषाः** (पाँच-छह)। द्विः आवृत्ताः दश = **द्विदशाः** (दो बार दस अर्थात् बीस)। चतुर्णां समीपे ये सन्ति ते = **उपचतुराः** (चार के आसपास)। समीपार्थक अव्यय 'उप' का समास है। इन शब्दों से किसी विशेष्य (संख्येय = जिसकी गणना हो) वस्तु का बोध होना चाहिए।

५. **कर्मव्यतिहार बहुव्रीहि–तत्र तेनेदमिति सरूपे** (२.२.२७)—'इदम्' का अर्थ है परस्पर एक ही क्रिया से युक्त युद्ध (परस्परमेकक्रियाकरणं युद्धम् इदम्)। **तत्र** = दो सप्तम्यन्त शब्द जो ग्रहण-क्रिया से जुड़े हों। **तेन** = दो तृतीयान्त शब्द जो प्रहार-क्रिया से जुड़े हों। इस प्रकार ग्रहण-विषयक दो सप्तम्यन्त पदों का एवं प्रहरण-विषयक दो तृतीयान्त पदों का समास, 'इदं युद्धं प्रवृत्तम्' (यह युद्ध हुआ) के अर्थ में होता है। जैसे–केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम् = **केशाकेशि**। दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम् = **दण्डादण्डि**। इसमें पूर्वपद का दीर्घ और उत्तरपद में समासान्त इच् प्रत्यय लगता है (इच् कर्मव्यतिहारे ५.४.१२७)। अन्य पदार्थ की प्रधानता के कारण यह बहुव्रीहि समास है किन्तु स्वरूपतः अव्ययीभाव है।[१] अन्य उदाहरण हैं–बाहूबाहवि। मुष्टीमुष्टि। मुसलामुसलि। हस्ताहस्ति। छत्राछत्रि (छाता-छतौअल)।

बहुव्रीहि-विषयक कुछ तथ्य

(क) **पुंवद्भाव**—बहुव्रीहि समास के पूर्वपद के स्त्रीलिङ्ग शब्द का पुंलिङ्ग अनेक स्थितियों में हो जाता है। किन्तु कुछ स्थितियों में यह वर्जित है। स्त्रीलिङ्ग का पुंलिङ्ग होना व्याकरण में 'पुंवद्भाव' कहलाता है। इसके उदाहरण–सुन्दरी भार्या यस्य सः = **सुन्दरभार्यः** (पुरुषः)। रूपवती भार्या यस्य सः = **रूपवद्भार्यः**

१. सि.कौ., सूत्र ८४८ तिष्ठद्गुप्रभृतिषु इच् प्रत्ययस्य पाठाद् अव्ययीभावत्वमव्ययत्वं च।

(पुरुषः)। स्थिरा बुद्धिः यस्य सः = **स्थिरबुद्धिः**। वृद्धा पत्नी यस्य सः = **वृद्धपत्नीकः**। किन्तु स्त्री के नाम का पुंवद्भाव नहीं होता–गङ्गा भार्या यस्य सः = **गङ्गाभार्यः**। उत्तरपद भी उसी विभक्ति का होना चाहिए (समानाधिकरण) और उसे स्त्रीलिङ्ग होना चाहिए। इसीलिए, सुन्दर्याः बुद्धिः = **सुन्दरीबुद्धिः**, नारी एव धनं यस्य सः = **नारीधनः**, नारीजनः, मानिनीजनः इत्यादि शब्दों में पुंवद्भाव नहीं हुआ।

i) इसी प्रकार पूरणार्थक शब्दों के पूर्व और प्रियादि गण में पठित शब्दों के पूर्व पुंवद्भाव नहीं होता। जैसे–कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः = **कल्याणी-पञ्चमा** रात्रयः। **कल्याणीप्रियः**। प्रियादि गण में मनोज्ञा, सुभगा, भक्ति, सचिवा, स्वसा, दुहिता, कान्ता, वामा आदि शब्द हैं। इनके पूर्व पुंवद्भाव नहीं होता।

ii) उपधा में क रहे, व्यक्तिवाचक शब्द हो, पूरणी संज्ञा हो, स्वाङ्गवाचक शब्द हो या जातिवाचक शब्द हो तो इनका भी पुंवद्भाव नहीं होता। क्रमशः उदाहरण हैं–रसिकाभार्यः, पाचिकाभार्यः, मन्दोदरीभार्यः, पञ्चमीभार्यः (पाँचवीं स्त्री वाला पुरुष); सुकेशीभार्यः, ब्राह्मणीभार्यः, शूद्राभार्यः।

(ख) **समासान्त प्रत्यय**—अन्य समासों के समान इस समास में भी अनेक प्रकार के समासान्त प्रत्यय लगते हैं। ये सभी स्वार्थिक प्रत्यय हैं।

१. सक्थि (जंघा) और अक्षि (आँख) शब्द स्वाङ्गवाचक हों तो इनसे समासान्त **षच् (अ)** प्रत्यय लगता है। जैसे–दीर्घे सक्थिनी यस्य सः = **दीर्घसक्थः** (लम्बी जंघा वाला पुरुष या प्राणी)। पुण्डरीके इव अक्षिणी यस्य सः = **पुण्डरीकाक्षः**। विशाले अक्षिणी यस्य सः = **विशालाक्षः**, **विशालाक्षी** (स्त्री.)। **मीनाक्षी** (मछली के समान नेत्रों वाली)। **सरोजाक्षः**, **सहस्राक्षः**।

२. प्रजा और मेधा से अन्त होने वाले बहुव्रीहि से समासान्त **असिच् (अस्) प्रत्यय** लगकर वेधस् के समान रूप हो जाता है। नास्ति प्रजा यस्य सः = **अप्रजाः** (मूल-अप्रजस्)। शोभना मेधा यस्य सः = **सुमेधाः**। यद्यपि न, सु और दुः के बाद ही यह नियम है किन्तु अल्पमेधाः, मन्दमेधाः इत्यादि भी देखे जाते हैं।

३. धर्म शब्द अकेला ही उत्तरपद में हो तो इससे **अनिच्-प्रत्यय** लगता है (धर्मादनिच् केवलात् ५.४.१२४)। जैसे–कुत्सितो धर्मः यस्य सः = **कुधर्मा**। **कल्याणधर्मा**, **सुधर्मा**। किन्तु–कृतमुनिधर्मः। परमस्वधर्मः।

यदि त्रिपद बहुव्रीहि समास हो तो अनिच् लग सकता है–**साक्षात्कृतधर्मा, सन्दिग्धसाध्यधर्मा** (साध्य पदार्थ का सन्दिग्ध होना जिसका धर्म है)।

४. ऊधस् (गाय का धन Udder) और धनुस् शब्द को **अनङ् (अन्) आदेश** हो जाता है। जैसे–ऊधस् (अनङ्) = ऊधन् होकर, घटः इव ऊधः यस्याः सा = **घटोध्नी गौः**। गृहीतं धनुः येन सः = **गृहीतधन्वा**। अधिज्यं धनुः यस्य सः = **अधिज्यधन्वा** (जिसके धनुष की डोरी चढ़ी हो)। यदि व्यक्ति का नाम प्रकट हो तो धनुस् का अनङ् वैकल्पिक होता है। जैसे–गाण्डीवं धनुर्यस्य सः = **गाण्डीवधन्वा, गाण्डीवधनुः** (अर्जुनः)। **पुष्पधन्वा, पुष्पधनुः** (कामदेवः)।

५. **जायाया निङ्** (५.४.१३४) : बहुव्रीहि के उत्तर पद में जाया शब्द हो तो इसके या के स्थान में **'नि' आदेश** हो जाता है। जैसे–युवतिः जाया यस्य सः = **युवजानिः** (पुंवद्भाव भी हुआ है)। **सीताजानिः** (राम)। **वृद्धजानिः**। **रुक्मिणीजानिः** (कृष्ण)।

६. गन्ध शब्द का **इकार अन्तादेश** होता है, यदि उत्, पूति, सु, सुरभि शब्द अथवा उपमानवाचक शब्द पूर्व में हो। जैसे–**उद्गन्धिः** (तेज गन्धवाला)। **सुगन्धिः** (अच्छी गन्धवाला)। **पूतिगन्धि** भोजनम् (दुर्गन्धयुक्त भोजन)। **सुरभिगन्धि**। किन्तु दुर्गन्धः। गन्ध का इकारादेश उसके अविभाज्य रहने की स्थिति में होता है, कृत्रिम रूप से गन्ध आये तो–**सुगन्धं जलम्**। **सुगन्धि पुष्पम्**–यहाँ गन्ध अविभाज्य रूप से जुड़ा है। पद्मस्य गन्ध इव गन्धः यस्य सः = **पद्मगन्धिः**। यदि अल्पता का बोध हो तो भी गन्ध का इकारादेश होता है जैसे–**घृतगन्धि भोजनम्** (भोजन में अल्प घृत है)। **मधुगन्धिषु वनेषु** (मधु की गन्ध वाले वनों में)।

७. **कप्-प्रत्ययः** बहुव्रीहि समास में लगने वाला यह व्यापक समासान्त प्रत्यय है। उरस्, सर्पिस् (घृत), उपानह् (जूते), दधि, मधु, शालि, पुंस्, नौ, लक्ष्मी इत्यादि शब्दों से कप्-प्रत्यय लगता है। जैसे–व्यूढं (विस्तृत) उरः (वक्षः) यस्य सः = **व्यूढोरस्कः** (चौड़ी छाती वाला)। प्रियं सर्पिः यस्य सः = **प्रियसर्पिष्कः** (जिसे घी प्रिय है)। उपानद्भ्यां सह वर्तमानः = **सोपानत्कः** (जूते पहने हुए)। पीतं पयो येन सः = **पीतपयस्कः** (दूध पी चुका बछड़ा या पुरुष)। **भाषितपुंस्कः** (जिसका पुंलिङ्ग रूप भी प्रचलित हो वह शब्द)। **अप्रियदधिकः** (अप्रियं दधि यस्य सः, जिसे दही पसंद नहीं)। अर्चिता लक्ष्मीर्येन सः = **अर्चितलक्ष्मीकः** (जिसने लक्ष्मी की अर्चना की हो)। **(उरः प्रभृतिभ्यः कप्** ५.४.१५१)।

नदी-संज्ञक शब्दों तथा ऋकारान्त शब्दों से भी बहुव्रीहि समास में समासान्त कप्-प्रत्यय लगता है। अविद्यमाना पत्नी यस्य सः = **अपत्नीकः**। पत्न्या सह वर्तमानः = **सपत्नीकः**। बह्व्यः स्त्रियो यस्मिन् तत् = **बहुस्त्रीकं गृहम्**। **बहुनदीकः देशः**। नदी माता यस्मिन् सः = **नदीमातृकः देशः** (केवल नदी से सिंचाई वाला देश)। प्रोषितः भर्ता यस्याः सा = **प्रोषितभर्तृका नारी** (जिसका पति परदेश गया हो)। **मूर्खभ्रातृकः** (जिसका भाई मूर्ख हो)। किन्तु वन्दनीय भ्राता होने पर कप् नहीं लगता–**पण्डितभ्राता** पुरुषः, **पुण्यभ्राता** विप्रः। (**नद्यृतश्च** ५.४.१५३; **वन्दिते भ्रातुः–न** ५.४.१५७)।

यशस्, शिरस्, धन आदि शब्द उत्तरपद में रहें तो वैकल्पिक रूप से कप् होता है–लब्धयशाः, लब्धयशस्कः (पुरुषः)। मुण्डितशिराः, मुण्डितशिरस्कः।

(ग) **पूर्वनिपात**—बहुव्रीहि समास में दोनों पद उपसर्जन होते हैं अतः पूर्व पद कौन रहेगा, यह समस्या होती है। अव्ययीभाव या तत्पुरुष में उपसर्जन ही पूर्व में रहता है (उपसर्जनं पूर्वम्)। अतः बहुव्रीहि और द्वन्द्व में पूर्व निपात के कुछ नियम सूत्रों में बताये गये हैं—

i) **सप्तमी-विशेषणे बहुव्रीहौ** (२.२.३५)—बहुव्रीहि समास में सप्तम्यन्त और विशेषण शब्द पूर्वपद में रहता है। जैसे–**कण्ठेकालः** (शिव), **धर्मवृत्तिः** (धर्म में वृत्ति रखने वाला); **उरसिलोमा** (छाती पर केशवाला)। विशेषण–**दीर्घबाहुः** (लम्बी भुजाओं वाला, दीर्घौ बाहू यस्य सः)। **चित्रगुः**–चित्रा गावो यस्य सः (रंग-बिरंगी गायों वाला)। **बहुव्रीहिः** (बहवो व्रीहयो यस्य सः, बहुत अन्न वाला)।

वार्तिक-सर्वनामसंख्ययोरुपसंख्यानम्–सर्वनाम और संख्यावाचक शब्द भी बहुव्रीहि में पूर्वपद होते हैं। जैसे–सर्वं शुक्लं यस्याः सा = **सर्वशुक्ला सरस्वती**। द्वौ शुक्लौ यस्य सः = **द्विशुक्लः पुरुषः** (जिसकी दो चीजें उजली या निर्मल हैं)। **वा प्रियस्य** (वार्तिक)–प्रिय शब्द विकल्प से पूर्व में होता है। गुडः प्रियो यस्य सः = **गुडप्रियः**, **प्रियगुडः**। **ग्रन्थप्रियः**, **प्रियग्रन्थः** पण्डितः।

ii) **निष्ठा** (२.२.३६)—बहुव्रीहि में क्त-प्रत्ययान्त शब्द पूर्वपद होता है। जैसे–कृतः अर्थः (कार्यं) येन सः = **कृतार्थः**, **कृतकार्यः**। जिताः शत्रवो येन सः = **जितशत्रुः**। **अधीतवेदः**, **उत्तीर्णपरीक्षः** (जो परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुका हो)। **दृष्टसागरः**, **पक्वकेशः**, **श्रुतशास्त्रः** (श्रुतानि शास्त्राणि

येन)। **पीतोदकः, जग्धतृणः** (जिसने घास खा ली हो)। **नष्टधनः, लब्धकीर्तिः**।

वार्तिक-प्रहरणार्थेभ्यः परे निष्ठा-सप्तम्यौ-प्रहरण (शस्त्र) वाचक शब्दों के बाद ही बहुव्रीहि में निष्ठान्त तथा सप्तम्यन्त पद होते हैं (अर्थात् ये उत्तरपद में होंगे) जैसे-दण्डः .पाणौ यस्य सः = **दण्डपाणिः**। **शूलहस्तः, शूलपाणिः, दण्डहस्तः**। **पिनाकपाणिः, चक्रपाणिः लगुडहस्तः**। इसी क्रम में **वीणापाणिः**।

(घ) **उत्तरपद में विकृति**—बहुव्रीहि समास में कुछ निश्चित शब्दों में, उत्तरपद में रहने पर, विकृति होती है। इन्हें सूत्रों में बताया गया है। जैसे-हस्ति, अश्व, अज, कपोत, दासी आदि से भिन्न शब्दों के बाद उपमानवाचक 'पाद' शब्द हो तो उसके अन्तिम स्वर का लोप हो जाता है-व्याघ्रस्य पादौ इव पादौ यस्य सः = **व्याघ्रपात्** (बाघ के समान पैरों वाला)। **सिंहपात्**। गूढाः पादाः यस्य सः = **गूढपात् सर्पः**। किन्तु, **हस्तिपादः, अश्वपादः, गण्डपादः** (गैंडे के समान पैरों वाला), **कपोतपादः**। (**पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः** ५.४.१३८)।

संख्यावाचक शब्द तथा सु के बाद भी बहुव्रीहि समास में पाद के अन्तिम स्वर का लोप हो जाता है। जैसे-चत्वारः पादा यस्य सः = **चतुष्पात्** प्राणी। द्विपात्। **सहस्रपात्**। शोभनौ पादौ यस्य सः = **सुपात्** (सुन्दर पैरों वाला, वाली)। इन्हीं शब्दों के बाद, यदि अवस्था (Age) का बोध हो तो, दन्त शब्द का 'दत्' आदेश हो जाता है। जैसे-द्वौ दन्तौ यस्य सः = **द्विदन् शिशुः** (मूल शब्द-द्विदत्)। **सुदती तरुणी**। अवस्था बोध न होने पर, **द्विदन्तः हस्ती, सुदन्तः पुरुषः**।

मित्र अर्थ में 'सुहृद्' और शत्रु अर्थ में 'दुर्हृद्' का निपातन (अनियमित रचना) होता है। अर्थात् हृदय का हृद् आदेश हो जाता है-शोभनं हृदयं यस्य सः (मित्रम्)-**सुहृद्**। दुष्टं हृदयं यस्य सः (अमित्रम्)-**दुर्हृद्**। सामान्य अर्थ में **सुहृदयः** साधुः, **दुर्हृदयः** दस्युः-ये प्रयोग होते हैं।

द्वन्द्व समास (Copulative Compound)

उभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः—जब समास में दोनों पदों के अर्थों की प्रधानता हो तो उसे 'द्वन्द्व' कहते हैं। जैसे-**हरिहरौ** नमति। यहाँ हरि और हर का द्वन्द्व समास है। दो वाक्यों को मिलाया गया है-हरिं नमति, हरं नमति। दोनों पदों का अन्वय क्रिया के साथ है। द्वन्द्व समास बहुत से पदों का हो सकता है। यही स्थिति बहुव्रीहि की भी है। द्वन्द्व समास का मुख्य सूत्र है-**चार्थे द्वन्द्वः** (२.२.२९)।

तदनुसार 'च' (और) के अर्थ में अनेक पदों का समास होता है, उसे 'द्वन्द्व' कहते हैं। 'च' के संस्कृत में चार अर्थ होते हैं—

१. **समुच्चयः** परस्पर निरपेक्ष अनेक विषयों का एक में अन्वय जैसे-**ईश्वरं गुरुं च भजस्व**। दोनों का भजन (वन्दन) निरपेक्ष है, किन्तु एक क्रिया में अन्वय हो रहा है।

२. **अन्वाचयः** दो में से एक का आनुषंगिक होना जैसे–**भिक्षां चर गां चानय**। मुख्य भिक्षाटन है, गौ को लाना आनुषंगिक है। इन दोनों अर्थों में समास नहीं होता है क्योंकि सामर्थ्य नहीं होता।

३. **इतरेतरयोगः** मिलित पदार्थों का अन्वय जैसे–रामश्च कृष्णश्च = **रामकृष्णौ**। बिल्वश्च पलाशश्च = **बिल्वपलाशौ**।

४. **समाहार** अर्थात् सामूहिक अर्थ जैसे–पाणी च पादौ च = **पाणिपादम्**। संज्ञा च परिभाषा च = **संज्ञापरिभाषम्**। इन्हीं दोनों अर्थों में समास हो पाने के कारण द्वन्द्व समास के दो भेद होते हैं–**इतरेतरद्वन्द्व** तथा **समाहारद्वन्द्व**।

इतरेतर द्वन्द्व समास में उत्तर पद के अनुसार लिङ्ग होता है (परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः)। उसका वचन समस्त पदों की संख्या के अनुसार होता है। जैसे–मूयरश्च कुक्कुटी च = **मयूरकुक्कुट्यौ**। यदि मयूर बाद में हो तो '**कुक्कुटीमयूरौ**' होगा। पहली स्थिति में द्विवचन स्त्रीलिङ्ग है, दूसरी स्थिति में द्विवचन पुंलिङ्ग है। 'रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नाः' में चार पद हैं। बहुवचन हुआ।

समाहार द्वन्द्व समास में पूरा शब्द एकवचन और नपुंसकलिङ्ग होता है (**स नपुंसकम्** २.४.१७)। यह संस्कृत वाग्धारा (Idiom) पर आश्रित है कि किन शब्दों का समाहार द्वन्द्व होगा। फिर भी पाणिनि ने कुछ प्राचीन नियम दिये हैं। कालक्रम से अन्य प्रयोग भी होते गये।

द्वन्द्व समास में शब्दों का अनुक्रम (Sequence)

१. **द्वन्द्वे घि** (२.२.३२)—घि-संज्ञक (पति, सखि छोड़कर इकारान्त उकारान्त) शब्द द्वन्द्व समास में पहले आते हैं। यदि अनेक ऐसे शब्द हों तो एक को पूर्वपद बनाकर अन्य शब्दों को कहीं भी रख सकते हैं। जैसे–हरश्च हरिश्च = **हरिहरौ**। **रविचन्द्रौ**। **शम्भुकृष्णौ**। **मृदुदृढौ** (कोमल और मजबूत)। हरिश्च गुरुश्च हरश्च = **हरिगुरुहराः**, **हरिहरगुरवः**। **गुरुहरिहराः**, **गुरुहरहरयः**।

२. **अजाद्यदन्तम्** (२.२.३३)—द्वन्द्व समास में स्वरवर्ण से आरम्भ होने वाला अकारान्त शब्द पूर्वपद में रखा जाता है। जैसे–**ईशकृष्णौ**। **अम्लतिक्तौ** (खट्टा तीता)। **अनलपवनौ** (अग्नि और वायु)। **अच्युतशंकरौ**। यहाँ भी ऐसे अनेक

शब्दों की स्थिति में एक में नियम-पालन अनिवार्य है, अन्य में नहीं। जैसे– अश्वरथेन्द्राः, इन्द्राश्वरथाः।

धर्मादि शब्दों में इनका अनियम है–**धर्मार्थौ,** अर्थधर्मौ। चन्द्रार्कौ, अर्कचन्द्रौ। **गुणवृद्धी,** वृद्धिगुणौ। अर्थशब्दौ, **शब्दार्थौ**। वधूवरौ, वरवध्वौ (इसका समाहार भी होता है–**वधूवरम्**)।

३. **अल्पाच्तरम्** (२.२.३४)—द्वन्द्व समास में अपेक्षाकृत कम स्वरवर्ण वाला शब्द पूर्व में रखा जाता है। जैसे–**शिवकेशवौ**। **गोमहिषौ**। **काककोकिलौ**। **भ्रातृभगिन्यौ**। **अम्लमधुरौ**। अनेक ऐसे शब्द हों तो एक में ही नियम लगेगा– शंखवीणादुन्दुभयः, शंखदुन्दुभिवीणाः।

४. **अभ्यर्हितं पूर्वम्** : आदरवाचक शब्द पूर्व में होता है–**मातापितरौ**। प्रायः स्त्रीलिङ्ग को पूर्व में रखते हैं–सीतारामौ, राधाकृष्णौ, पार्वतीपरमेश्वरौ। लक्ष्मीनारायणौ। लघु अक्षर युक्त शब्द भी पूर्व में होते हैं–नलनीलौ, कुशकाशम्। भाइयों के नामों में वरीयता रखी जाती है–युधिष्ठिरार्जुनौ। बलदेवकृष्णौ।

समाहार-द्वन्द्व की स्थितियाँ

१. **द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्** (२.४.२)—प्राणियों, वाद्यों तथा सेना के अङ्ग वाचक शब्दों का द्वन्द्व समास समाहार अर्थ में (अर्थात् एकवचन और नपुंसक लिङ्ग में) होता है। जैसे-पाणी च पादौ च = **पाणिपादम्**। **मुखनासिकम्**। **हस्तपादम्**। **शिरोग्रीवम्** (शिरश्च ग्रीवा च)। **अक्षिशिरोमुखम्**। मार्दङ्गिकाश्च पाणविकाश्च = **मार्दङ्गिकपाणविकम्** (मृदंग और पणव नामक वाद्य बजानेवाले)। हस्तिनश्च अश्वाश्च रथाश्च पदाताश्च = **हस्त्यश्वरथपदातम्** (चतुरंगिणी सेना)। रथिकाश्च पदाताश्च = **रथिकपदातम्**।

२. **विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः** (२.४.७)—भिन्न लिङ्ग वाले नदीवाचक शब्दों का तथा देशवाचक शब्दों का द्वन्द्व समास समाहार रूप होता है किन्तु ग्रामवाचक का नहीं। जैसे–गङ्गा च शोणश्च = **गङ्गाशोणम्**। ब्रह्मपुत्रश्च चन्द्रभागा च = **ब्रह्मपुत्रचन्द्रभागम्**। कुरवश्च कुरुक्षेत्रं च = **कुरुकुरुक्षेत्रम्**। किन्तु समान लिङ्ग होने से–**गङ्गायमुने** (इतरेतर द्वन्द्व), **मद्रकेकयाः**–इनमें एकवद्भाव नहीं हुआ।

३. क्षुद्रजन्तुओं का तथा परस्पर सदा विरोधी प्राणियों का द्वन्द्व समास एकवत् (समाहार अर्थ में) होता है। (क्षुद्रजन्तवः, येषां च विरोधः शाश्वतिकः)। जैसे यूका च लिक्षा च = **यूकालिक्षम्** (जोंक और लीख)। अहिश्च नकुलश्च =

अहिनकुलम्। **काकोलूकम्**। **मार्जारमूषिकम्**। किन्तु **देवासुराः**, **कुरुपाण्डवाः** इत्यादि में सामयिक विरोध होने से समाहार द्वन्द्व नहीं हुआ।

४. कुछ अन्य उदाहरणः गवाश्वम्, पुत्रपौत्रम्, गोमहिषम्, हंसचक्रवाकम्, दासीदासम्, मांसशोणितम्, कुब्जवामनम्, दर्भशरम्। (गवाश्वप्रभृतीनि च २.४.११)।

पूर्व पद में विकृति

१. **आनङ् ऋतो द्वन्द्वे** (६.३.२५)—विद्या तथा परिवार के सम्बन्ध के वाचक ऋकारान्त शब्दों का द्वन्द्व समास होने पर पूर्वपद का आनङ् आदेश (ऋ का आ) हो जाता है। जैसे–होता च पोता च = **होतापोतारौ** (ये वैदिक यज्ञकर्ता हैं)। माता च पिता च = **मातापितरौ**। पुत्र के पूर्व भी यह होता है–**पितापुत्रौ**। **मातापुत्रौ**।

२. **देवताद्वन्द्वे च** (६.३.२६)—यज्ञ में एक साथ आहूत देवता-युग्म का द्वन्द्व समास होने पर पूर्वपद का आनङ् आदेश (अ या इ का आ) होता है जैसे–मित्रश्च वरुणश्च = **मित्रावरुणौ**। **इन्द्राबृहस्पती**। **सूर्याचन्द्रमसौ**। **अग्नामरुतौ** (अग्निश्च मरुतश्च)। **अग्नाविष्णु**। सोम और वरुण के पूर्व अग्नि का 'ई' होता है–**अग्नीषोमौ** (षत्व होकर)। **अग्नीवरुणौ**।

३. **जायाया जम्भावो दम्भावो वाः** जाया च पतिश्च = **जायापती, जम्पती, दम्पती** (पति और पत्नी–Couple)। यह द्विवचनान्त द्वन्द्व समास है।

एकशेष-वृत्ति

यद्यपि प्राचीन वैयाकरणों ने अनेक शब्दों के स्थान में एक शब्द के शेष रह जाने को एक प्रकार की वृत्ति (शब्द-रचना की प्रक्रिया Word-formation) माना है किन्तु आधुनिक विद्यालयी लेखकों ने इस एकशेष को द्वन्द्व समास के भेद में स्वीकार कर लिया है। पाणिनि ने इसके लिए सूत्र दिया है–**सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ** (१.२.६४)

समान विभक्ति होने पर, अनेक समान रूपवाले शब्दों में से, एक ही शब्द अवशिष्ट रहता है। जैसे–रामश्च रामश्च = **रामौ**। द्विवचन, बहुवचन में यह एकशेष प्रतीत होता है। कभी-कभी स्त्रीलिङ्ग के साथ पुंल्लिङ्ग शब्द हो तो संबद्ध पुंल्लिङ्ग ही शेष रहता है। जैसे–हंसी च हंसश्च = **हंसौ** विचरतः। देवीं च देवं च प्रणम = **देवौ** प्रणम। पुत्री च पुत्रश्च = **पुत्रौ** ममेतौ।

i) भ्रातृ और पुत्र शब्द शेष रहते हैं यदि इनका योग क्रमशः स्वसृ (बहन) और दुहितृ (पुत्री) के साथ हो (१.२.६८)। जैसे–भ्राता च स्वसा च = **भ्रातरौ** (भाई-बहन)। पुत्रश्च दुहिता च = **पुत्रौ** (बेटा-बेटी)।

ii) **पिता मात्रा, श्वशुरः श्वश्र्वा** (१.२.७०-७१)—मातृ शब्द के योग में 'पिता' और श्वश्रू (सास) शब्द के योग में 'श्वशुर' शब्द शेष रहते हैं। जैसे–माता च पिता च = **पितरौ**। श्वश्रूश्च श्वशुरश्च = **श्वशुरौ**। विकल्प से इतरेतर द्वन्द्व समास भी होता है–**मातापितरौ**। **श्वश्रूश्वशुरौ**।

अभ्यास - १८

१. निम्नलिखित समस्त पदों का विग्रह करें तथा समास का नाम दें—

(क) उपकृष्णम् उपगङ्गम् यथाशक्ति यथाक्रमम्
अनुदिनम् यथेष्टम् प्रत्येकम् निर्जनम्
निर्मक्षिकम् निर्विघ्नम् अनुरूपम् सचित्रम्
सानन्दम् मध्येगङ्गम्

(ख) शरणागतः अस्तंगतः साहित्यगतः मासपूर्वः
कालिदासकृतम् एकोनः धनहीनः आचाररहितः
नखभिन्नः देशभक्तिः (च.त.) शरविद्धः
पाठशाला (च.त.) चोरभयम् राजभीतिः
पदमुक्तः स्वर्गच्युतः राजकार्यम् राजपुरुषः
राजादेशः सुरेन्द्रः देवेशः शिवमन्दिरम्
गुरुभक्तिः (ष.त.) सूर्योदयः शंखध्वनिः
गृहमध्ये जीवनरक्षा युद्धवीरः कर्मवीरः
दानवीरः कार्यकुशलः त्रिलोकी सप्तशती
हितोपदेशः (च.त.)

(ग) अधर्मः अनाचारः अनल्पः अनेकः
अनर्थः अनन्तः पीताम्बरम् (कर्म.)
अपवित्रः अयोग्यः नीलकमलम्
शीतलच्छाया (कर्म)
मधुरवचनम् घनश्यामः कमलकोमलः विद्याधनम्
शोकसागरः पुरुषसिंहः कुम्भकारः प्राचार्यः
शुक्लीकृतः द्रवीकरणम् घनीभूतः शताब्दी
पञ्चतन्त्रम् अष्टाध्यायी सप्तश्लोकी

(घ) पीताम्बरः चन्द्रशेखरः शंखपाणिः षडाननः
गजाननः दृष्टसागरः सर्वशुक्ला अपुत्रः
सरसः द्वित्राः पञ्चषाः दुष्टबुद्धिः
अधीतवेदः पाणिपादम् व्याघ्रपात् जायापती
मातापितरौ भवानीशङ्करौ गङ्गाशोणम् दशाननः

२. निम्नलिखित विग्रह वाक्यों के समस्त पद लिखें और समास का नाम भी दें—

(क) तृणमपि अपरित्यज्य ....
दण्डैश्च दण्डैश्च प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तम् ....
गङ्गायाः पारम् ....
चित्रा गावो यस्य सः (चित्रगुः, बहु.) ....
खट्वामतिक्रान्तः ....
आत्मानमधिकृत्य ....
वाचा कलहः ....
विरहेण कातरः ....
शरेण भिन्नः ....
अर्धं पिप्पल्याः ....

(ख) पूर्वं कायस्य ....
राजनि अधि ....
शाकप्रियः पार्थिवः ....
माघनामा कविः ....
पञ्चभिः गोभिः क्रीतः ....
नवानां रात्रीणां समाहारः ....
मुखं कमलमिव ....
कुत्सितम् अन्नम् ....
कुत्सितः पुरुषः ....
न शुक्लः ....

(ग) न ईश्वरः ....
अशुक्लं शुक्लं कृत्वा ....
शोभनः पन्थाः (समासान्त-निषेध) ....
अपकृष्टः शब्दः ....
असाक्षात् माता ....
असाक्षात् गुरुः ....
असाक्षात् पतिः ....
सरसि जातम् ....
मनसि जायते इति ....
पादैः पिबति ....

(घ) अहश्च रात्रिश्च ....
रात्रेः पूर्वः भागः ....
गोः समीपम् ....
पञ्च गावो धनं यस्य ....
द्वयोः दिशोः आपो यस्य तत् (द्वीपम्) ....
अन्तर्गताः आपः यस्य तत् (आ का ई) ....
चतुर्णां पथां समाहारः ....
इक्षूणां छाया ....
नृपाणां सभा ....
स्त्रीणां सभा ....

(ङ) निर्गता दया यस्मात् सः ....
चत्वारो भुजाः यस्य सः ....
उष्ट्रस्य मुखमिव मुखं यस्य ....
मृगस्य नयने इव नयने यस्याः (टाप्) ....
त्रीणि वा चत्वारि वा ....
केशेषु केशेषु गृहीत्वेदं युद्धं प्रवृत्तम् ....
विचित्रा गतिः यस्य सः ....
अन्यः कालः ....
नास्ति किञ्चन यस्य सः ....
कर्मणा सह वर्तमानः ....

(च) वीरेण भोग्या ....
वीरः पुत्रो यस्याः सा ....
विशाले अक्षिणी यस्याः सा ....
साक्षात्कृतो धर्मो येन सः ....
युवतिर्जाया यस्य सः ....
पीतं पयो येन सः ....
पत्न्या सह वर्तमानः ....
गावश्च अश्वाश्च ....
अहयश्च नकुलाश्च ....

३. **समास के मुख्य भेदों का सोदाहरण उल्लेख करें।**

४. **तत्पुरुष समास का लक्षण समझाकर इसके भेदों का सोदाहरण उल्लेख करें।**

५. **अव्ययीभाव समास को सोदाहरण स्पष्ट करें।**

६. **बहुव्रीहि समास का लक्षण देकर इसे समझाएँ।**

७. **इन पर सोदाहरण टिप्पणी लिखें—**

(क) नञ् समास
(ख) मयूरव्यंसकादि
(ग) प्रादि तत्पुरुष
(घ) समाहार द्वन्द्व
(ङ) अलुक् समास
(च) एकशेष वृत्ति
(छ) शाकपार्थिवादि
(ज) द्विगु समास

*

रचना-विचार (Composition)

१६ वाच्य और उसका परिवर्तन
Voice and its Change

'वाच्य' का अर्थ कथित अथवा साक्षात् अभिव्यक्ति (Directly expressed) होता है। संस्कृत भाषा के वाक्यों में क्रिया को प्रभावित करने की स्थिति वाच्य है। क्रिया कभी कर्ता से प्रभावित होती है (कर्तृवाच्य में), कभी कर्म से प्रभावित होती है (कर्मवाच्य में) और कभी केवल अपने आप से (क्रिया से) प्रभावित होती है (भाववाच्य में)। वस्तुतः वाच्य वाक्य-रचना की पद्धति है। कोई भी संस्कृत वाक्य तीन प्रकार के वाच्यों में प्रकट होता है—कर्तृवाच्य (Active Voice), कर्मवाच्य (Passive Voice) तथा भाववाच्य। जैसे—**बालकाः** ग्रन्थान् पठन्ति (कर्तृवाच्य)। बालकैः **चित्राणि** दृश्यन्ते (कर्मवाच्य)। मया कुत्रापि न **स्थीयते** (भाववाच्य)। प्रथम वाक्य में क्रिया कर्ता से प्रभावित है, उसी के वचन के अनुसार है। द्वितीय वाक्य में क्रिया का रूप बदला हुआ है और वह कर्म को प्रधानता देकर उसका अनुसरण कर रही है। तृतीय वाक्य में कर्म है ही नहीं, कर्ता भी प्रधान नहीं है, क्रिया ही स्वयं प्रधान है। इस प्रकार वाक्य में अभिधान या प्रधानता के आधार पर वाच्यों की व्यवस्था होती है। कौन प्रधान (क्रिया पर हावी) है—यही वाच्य का रहस्य है।

१. यह स्मरणीय है कि वाच्य में केवल तीन शब्दों पर ध्यान देना है—**कर्ता, कर्म** और **क्रिया**। अन्य शब्द अर्थात् कोई अन्य कारक या विभक्ति या अव्यय वाच्य की व्यवस्था में हस्तक्षेप नहीं करते। वाच्य-परिवर्तन में भी ये यथापूर्व रहते हैं। उपर्युक्त तीनों पर ही वाच्य का सारा भार है।

२. यह भी स्मरणीय है कि क्रिया केवल तिङन्त (जैसे गच्छति, पठतु, अपश्यत् इत्यादि) ही नहीं, कृदन्त भी होती है (जैसे—पठितः, पठितवान्, पठितव्यम् इत्यादि)। तिङन्त क्रिया तो कर्ता या कर्म के लिङ्ग से प्रभावित नहीं होती (जैसे—रामः गच्छति, सीता पश्यति, फलं पतति) किन्तु कृदन्त क्रिया पर लिङ्ग का प्रभाव पड़ता है (जैसे—रामो गतवान्, सीता गतवती, फलं पतितम्)। इसीलिए **तिङन्त क्रिया पर कर्ता या कर्म के केवल वचन और पुरुष का प्रभाव पड़ता है** किन्तु **कृदन्त क्रिया पर पुरुष का तो नहीं, केवल लिङ्ग और वचन का प्रभाव पड़ता है।** यह बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य है।

कर्तृवाच्य (Active Voice)

इस वाच्य में क्रिया केवल कर्ता से प्रभावित होती है। तदनुसार कर्ता का **वचन, पुरुष** (केवल तिङन्त क्रिया में) और **लिङ्ग** (केवल कृदन्त क्रिया में) क्रिया में भी होता है। कर्ता

में प्रथमा विभक्ति, कर्म में द्वितीया विभक्ति तथा क्रिया सकर्मक या अकर्मक कोई भी हो सकती है। वह क्रिया व्याकरण की दृष्टि से 'कर्तरि' (कर्ता को समर्पित) कही जाती है। इन उदाहरणों को देखें—

कर्ता का वचन

१. **रामो** गृहं गच्छति (एकवचन)–सकर्मक।
२. **बालकौ** धावतः (द्विवचन)–अकर्मक।
३. **फलानि** जले पतन्ति (बहुवचन)–अकर्मक।

कर्ता का पुरुष (तिङन्त क्रिया में)

१. **स** रात्रौ न खादति (प्रथम पुरुष, एकवचन, सकर्मक)।
२. **ते** सर्वथा विलपन्ति (प्रथम पुरुष, बहुवचन, अकर्मक)।
३. **त्वं** किं वदसि (मध्यम पुरुष, एकवचन, सकर्मक)?
४. **यूयं** कदा गमिष्यथ (मध्यम पुरुष, बहुवचन, सकर्मक)?
५. **अहं** लेखं लिखामि (उत्तम पुरुष, एकवचन, सकर्मक)।
६. **वयं** सायं कन्दुकेन खेलामः (उत्तम पुरुष, बहुवचन, अकर्मक)।

कर्ता का लिङ्ग (कृदन्त क्रिया में)

१. **छात्रः** पुस्तकं पठितवान् (पुंल्लिङ्ग, एकवचन, सकर्मक)।
२. **बालकाः** गृहं गतवन्तः (पुंल्लिङ्ग, बहुवचन, सकर्मक)।
३. **सीता** पाठशालां च गता (स्त्रीलिङ्ग, एकवचन, सकर्मक)।
४. **पत्राणि** भूमौ पतितानि (नपुं., बहुवचन, अकर्मक)।

मिश्रित

१. **वयमिह** धावामः (उत्तम पुरुष, बहुवचन, अकर्मक)।
२. **तौ** रात्रौ सुप्तवन्तौ (पुंल्लिङ्ग, द्विवचन, अकर्मक)।
३. **बालिकाः** परीक्षाम् उत्तीर्णवत्यः (स्त्रीलिङ्ग, बहुवचन, सकर्मक)।
४. **एतानि पुष्पाणि** रात्रौ विकसन्ति (नपुंसकलिङ्ग, बहुवचन, अकर्मक)।

इस वाच्य में क्रिया का वही रूप सभी लकारों में रहता है जिसे हम धातु-रूपावली में सामान्यतः पाते हैं। सभी धातुगणों में कर्तृवाच्य की क्रिया के ही रूप दिये जाते हैं। जैसे-यूयं किं कुरुथ? वयमिह न स्थास्यामः। विद्या कीर्तिं तनोति। कर्तृवाच्य का सूत्ररूप निरूपण इन पद्यों में देख सकते हैं—

लक्षणं कर्तृवाच्यस्य प्रथमा कर्तृकारके।
कर्मणि तु द्वितीया स्यात् कर्त्रधीनं क्रियापदम्॥

सकर्मकाकर्मकेभ्यः कर्तरि प्रत्ययो मतः।[१]

कर्मवाच्य (Passive Voice)

जिस वाक्य में क्रिया कर्म की अनुगामिनी होती है उसे कर्मवाच्य कहते हैं (कर्म एव वाच्यं प्रधानम् अभिहितं वा यत्र)। कर्म का लिङ्ग, वचन एवं पुरुष क्रिया में भी रहता है। इस वाच्य में कर्ता अनभिहित होने के कारण तृतीया विभक्ति में होता है, कर्म अभिहित होने से प्रथमा विभक्ति में रहता है। क्रिया 'कर्मणि' अर्थात् कर्म के अनुसार विशेष प्रकार की (गम्यते, पठ्यते, अलभ्यत इत्यादि जैसी) होती है। वह सदा आत्मनेपद रूप की होती है (**भावकर्मणोः** १.३.१३ अर्थात् भाववाच्य और कर्मवाच्य में क्रिया आत्मनेपदी ही होती है)।

कर्मवाच्य में केवल सकर्मक क्रिया का प्रयोग होता है क्योंकि उसी में कर्म कारक की व्यवस्था होती है। इसी प्रकार भाववाच्य में केवल अकर्मक क्रिया का ही उपयोग होता है, उसी में भाव (क्रिया) अपने स्वाभाविक रूप में स्फुरित होता है (**लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः** ३.४.६९)।[२] यह कहा जा चुका है कि कर्तृवाच्य में सकर्मक-अकर्मक दोनों प्रकार की धातुओं का प्रयोग होता है।

कर्मवाच्य के उदाहरण दिये जाते हैं—

कर्म का वचन

१. छात्रेण **व्याकरणं** पठ्यते (एकवचन)।

२. त्वया **पञ्च निबन्धाः** लिख्यन्ते (बहुवचन)।

३. मया **छात्रौ** आनीयेते (द्विवचन)।

कर्म का पुरुष (केवल तिङन्त क्रिया में)

१. त्वया **बालकः** पाठ्यते (प्रथम पुरुष)।

२. सीतया **त्वम्** दृश्यसे (मध्यम पुरुष)।

३. अध्यापकेन **वयं** पाठ्यामहे (पढ़ाये जाते हैं–उत्तमपुरुष)।

(प्रायः कर्मवाच्य में प्रथम पुरुष के वाक्य ही प्रयुक्त होते हैं, अन्य पुरुषों के प्रयोग में बहुधा कृदन्त क्रियाएँ लगायी जाती हैं जिनमें पुरुष का संकट नहीं रहता–वयं पाठिताः, यूयं पाठिताः, ते पाठिताः, अहं पाठितोऽस्मि)।

---

१. Prof. S.N. Bhattacharya–**Essentials of Sanskrit Grammar,** p. 92

२. **सिद्धान्तकौमुदी,** सू. २१५२ (भ्वादिप्रकरण)–लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युः, अकर्मकेभ्यः भावे कर्तरि च।

कर्म का लिङ्ग (केवल कृदन्त क्रियाओं में)

१. बालकेन **पुस्तकं** पठितम् (नपुंसकलिङ्ग, एकवचन)।
२. त्वया **पत्राणि** दृष्टानि (नपुंसकलिङ्ग, बहुवचन)।
३. जनकेन **सीता** आनीता (स्त्रीलिङ्ग, एकवचन)।
४. शिक्षकेण **छात्राः** आहूताः (पुंल्लिंग, बहुवचन)।
५. युष्माभिः **समयः** पालनीयः (पुंल्लिंग, एकवचन)।
६. तैः **विद्यालयः** दृश्यमानः अस्ति (पुंल्लिंग, एकवचन)।

टिप्पणी—कृदन्त क्रियाओं में केवल **क्त, शानच्** और **कृत्य** प्रत्यय ही कर्मवाच्य के लिए उपयोगी हैं जिन्हें लगाकर ये क्रियाएँ बन सकती हैं।[१] क्तवतु, शतृ–इन दोनों प्रत्ययों को केवल कर्तृवाच्य में लिया जा सकता है।

परवर्ती संस्कृत भाषा में (६०० ई. के बाद) बहुत तेजी से प्राकृत के प्रभाव से कृदन्त क्रियाएँ प्रयुक्त होने लगी थीं। आज भी ये सार्वत्रिक हैं–स गतः (वह गया), त्वया पठनीयः ग्रन्थः, छात्रैः सदाचारिभिः भवितव्यम् (छात्रों को सदाचारी होना चाहिए)। इत्यादि। इनमें तिङन्त (आख्यात) पद हैं ही नहीं। भाषा में परिवर्तन सदा होता रहता है। यह संस्कृत का सौभाग्य है कि विकृतियों के होने पर भी, आज भी इसका मूल ढाँचा पाणिनीय है। प्रायः चार सहस्र वर्षों तक जीवित रहने वाली, संस्कृत के अतिरिक्त, कोई भाषा विश्व में नहीं है।

कर्मवाच्य का सूत्रमय निरूपण इस प्रकार किया गया है—

कर्मवाच्ये प्रयोगः स्याद् धातूनां हि सकर्मणाम्।
कर्मवाच्यप्रयोगे तु तृतीया कर्तृकारके॥
कर्मणि प्रथमा प्रोक्ता कर्माधीनं क्रियापदम्।
आत्मनेपदमेव स्याद् वाच्ययोः कर्म-भावयोः॥[२]

भाववाच्य (Intransitive passive)

यह वाच्य केवल अकर्मक धातुओं से होता है। क्रिया कर्मवाच्य जैसी होती है अर्थात् सार्वधातुक लकारों में (लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् में) धातु से 'यक्' (य) प्रत्यय लगकर आत्मनेपद रूप होते हैं। अन्य लकारों में नियम के अनुसार प्रत्यय लगकर आत्मनेपद ही चलता है।

इसमें भाव या क्रिया ही वाच्य होती है इसलिए कर्ता या कर्म के अनुसरण का प्रश्न ही नहीं होता। तिङन्त क्रिया सदा प्रथमपुरुष-एकवचन की होती है। जैसे–स्थीयते, भूयते,

---

१. **तयोरेव कृत्यक्त-खलर्थाः** ३.४.७० तयोरेव = कर्मवाच्ये भाववाच्ये च।
२. **Essentials of Sanskrit Grammar**, p. 92

हस्यते, सुप्यते। यदि कृदन्त क्रिया का प्रयोग हो तो सदा एकवचन नपुंसकलिङ्ग होता है। जैसे–तेन **स्थितम्, सुप्तम्।** बालकैः **रुदितम्।** आतपे **धावितं** छात्रैः। बालकैः सुशीलैः **भवितव्यम्।** संकटेऽपि न **रोदितव्यम्, रोदनीयम्।**

वाच्य-परिवर्तन

१. यदि सकर्मक क्रिया का प्रयोग हो तो केवल कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य में ही परस्पर वाच्य-परिवर्तन संभव है। इसे ध्यान से देखें—

कर्तृवाच्य—

(क) कर्ता में प्रथमा **बालकः**

(ख) कर्म में द्वितीया **ग्रन्थम्**

(ग) क्रिया का सामान्य रूप (कर्ता के अनुसार) **पठति**

कर्मवाच्य—

(क) कर्ता में तृतीया **बालकेन**

(ख) कर्म में प्रथमा **ग्रन्थः**

(ग) क्रिया का कर्मभाव वाच्य रूप **पठ्यते** (तिङन्त क्रिया)

अन्य उदाहरण—

त्वं चन्द्रं पश्यसि	–	त्वया चन्द्रः दृश्यते। (लट्)
शिक्षकाः वेदं पठन्ति	–	शिक्षकैः वेदः पठ्यते। (लट्)
अहं वृक्षान् अपश्यम्	–	मया वृक्षाः अदृश्यन्त। (लङ्)
यूयं देवीम् अपूजयत	–	युष्माभिः देवी अपूज्यत। (लङ्)
त्वं चन्द्रं दृष्टवान्	–	त्वया चन्द्रः दृष्टः। (कृदन्त क्रिया)
सा ग्रन्थान् पठितवती	–	तया ग्रन्थाः पठिताः (कृदन्त क्रिया)

उपर्युक्त नियमों पर ध्यान रखकर सावधानी से वाच्य बदलें।

कर्मवाच्य	**कर्तृवाच्य**
बालकेन माता पूजिता	बालकः मातरं पूजितवान्। (कृदन्त क्रिया)
केन पाठशाला न दृश्यते	कः पाठशालां न पश्यति? (तिङन्त क्रिया)

२. यदि अकर्मक क्रिया का प्रयोग हो तो केवल कर्तृवाच्य और भाववाच्य में ही परस्पर वाच्य-परिवर्तन सम्भव है।

कर्तृवाच्य—

(क) कर्ता में प्रथमा **छात्रः**

(ख) क्रिया का सामान्य रूप (कर्ता के अनुसार) **खेलति**

भाववाच्य—

(क) कर्ता में तृतीया **छात्रेण**

(ख) क्रिया का कर्मभाववाच्य रूप **खेल्यते** (तिङन्त क्रिया)

अन्य उदाहरण—

त्वं तिष्ठसि रात्रौ	– त्वया **स्थीयते** रात्रौ। (लट्)
वयम् उत्तीर्णाः **अभवाम**	– अस्माभिः उत्तीर्णैः **अभूयत**। (लङ्)
छात्राः दिवसे न **स्वपन्ति**	– छात्रैः दिवसे न **सुप्यते**। (लट्)
यूयं कुतः **हसथ?**	– युष्माभिः कुतः **हस्यते?** (लट्)
भाववाच्य	**कर्तृवाच्य**
एतैर्जनैः उच्चैः रुद्यते	एते जनाः उच्चैः रुदन्ति।
मया निरन्तरं **शोच्यते**	अहं निरन्तरं **शोचामि।**

टिप्पणी–कुछ लकारों में कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य या भाववाच्य बनाने के लिए धातुओं के विशेष रूप हो जाते हैं, सामान्य 'यक्' से काम नहीं चलता। लृट् लकार में तो स्य (ष्य) से ही काम हो जाता है जैसे–रामः ग्रन्थं **पठिष्यति** (कर्तृवाच्य)–रामेण ग्रन्थः **पठिष्यते** (कर्मवाच्य)। लुङ् लकार में चिण् (इ) प्रत्यय लगता है जैसे–वयं पूजनीया अभूम (हम पूजनीय हो गये–कर्तृवाच्य)–अस्माभिः पूजनीयैः **अभावि** (भाववाच्य)। ते कार्यम् **अकार्षुः** (उन्होंने कार्य किया)–तैः कार्यम् **अकारि** (कर्मवाच्य)।

वाच्य-परिवर्तन के कुछ संक्षिप्त सूत्र

१. सबसे पहले क्रिया देखकर निश्चित करें कि वाक्य किस वाच्य में है। यदि सन्देह हो तो कर्ता को देखें कि प्रथमा या तृतीया में है। प्रथमा में हो तो कर्तृवाच्य होगा; तृतीया में होने पर कर्मवाच्य या भाववाच्य में होगा। इन दोनों का सन्देह भी क्रिया की प्रकृति (सकर्मक या अकर्मक) देखकर मिटा लें।

२. वाच्य का निश्चय हो जाने पर कर्ता, कर्म (यदि हो) और क्रिया को रेखांकित कर लें। कर्ता और कर्म के यदि विशेषण भी हों तो उन्हें भी रेखांकित कर लें। शेष शब्दों को बदले हुए वाच्य में ज्यों का त्यों छोड़ दें। उन्हें नहीं बदलना है, अपितु उतार लेना है।

३. जिस वाच्य में वाक्य को ले जाना है, उसमें नियमों का पालन करें जैसे—

(क) कर्तरि प्रथमा	कर्मणि द्वितीया	सामान्य क्रिया (**कर्तृवाच्य में**)
(ख) कर्तरि तृतीया	कर्मणि प्रथमा	कर्मवाली (य) क्रिया (**कर्मवाच्य में**)
(ग) कर्तरि तृतीया	कर्मणि प्रथमा	कर्मवाच्य जैसी क्रिया (**भाववाच्य में**) (केवल प्रथमपुरुष एकवचन में)

ग्रामात् मोहनः बसयानेन नगरं गत्वा विद्यालये पठिष्यति यह कर्तृवाच्य है, सकर्मक क्रिया है, किन्तु कर्म नहीं है।

अब इसे कर्मवाच्य में ही ढालना होगा। केवल कर्ता 'मोहनः' और क्रिया 'पठिष्यति' को बदलना होगा, अन्य किसी को नहीं।

ग्रामात् मोहनेन बसयानेन नगरं गत्वा विद्यालये पठिष्यते।

एक विशेषण-युक्त कर्ता और कर्मवाला वाक्य लें—

उद्योगी व्यक्ति अपने स्वीकृत कामों को अवश्य पूर्ण करते हैं।

उद्योगिनः पुरुषाः स्वीकृतानि कार्याणि अवश्यं पूरयन्ति। (कर्तृवाच्य)

उद्योगिभिः पुरुषैः स्वीकृतानि कार्याणि अवश्यं पूर्यन्ते। (कर्मवाच्य)

यहाँ कुछ धातुओं के परिवर्तन के स्वरूप लट् लकार में दिये जाते हैं। लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् लकारों में लभ् धातु के ढंग पर इनके रूप चलेंगे—

धातु	कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य भाववाच्य	धातु	कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य भाववाच्य
पठ्	पठति	पठ्यते	क्रीड्	क्रीडति	क्रीड्यते
गम्	गच्छति	गम्यते	लिख्	लिखति	लिख्यते
कृ	करोति	क्रियते	दृश्	पश्यति	दृश्यते
स्था	तिष्ठति	स्थीयते	सेव्	सेवते	सेव्यते
हृ	हरति	ह्रियते	लभ्	लभते	लभ्यते
नी	नयति	नीयते	पा	पिबति	पीयते
जि	जयति	जीयते	श्रु	शृणोति	श्रूयते
पूज्	पूजयति	पूज्यते	दा	ददाति	दीयते
स्मृ	स्मरति	स्मर्यते	कथ	कथयति	कथ्यते
नम्	नमति	नम्यते	पच्	पचति	पच्यते
ग्रह्	गृह्णाति	गृह्यते	गै	गायति	गीयते
हस्	हसति	हस्यते	रुद्	रोदिति	रुद्यते
घ्रा	जिघ्रति	घ्रायते	खाद्	खादति	खाद्यते
हन्	हन्ति	हन्यते	गर्ज्	गर्जति	गर्ज्यते
स्वप्	स्वपिति	सुप्यते	वच्	वक्ति	उच्यते
वद्	वदति	उद्यते	वह्	वहति	उह्यते
क्री	क्रीणाति	क्रीयते	कुप्	कुप्यति	कुप्यते
क्रुध्	क्रुध्यति	क्रुध्यते	वन्द्	वन्दते	वन्द्यते
प्रति+ईक्ष्	प्रतीक्षते	प्रतीक्ष्यते	द्विष्	द्वेष्टि	द्विष्यते

अभ्यास - १९

१. **निम्नलिखित वाक्यों का वाच्य-परिवर्तन करें—**

(क) अहम् ओदनं पचामि।
(ख) रमेशेन पिता प्रणम्यते।
(ग) त्वं कुत्र गच्छसि?
(घ) आचार्यः शिष्यान् उपदिशति।
(ङ) अहं पुस्तकानि पश्यामि।
(च) युष्माभिः अत्र कथं न स्थितम्?
(छ) बालिकाः आतपे धावितवत्यः।
(ज) तव पुत्र्या कुतः क्रीडितम्?
(झ) शिशवः स्वभावेन हसन्ति।
(ञ) मया त्वं प्रतीक्ष्यसे।

२. **इन क्रियाओं का कर्मवाच्य-भाववाच्य रूप लिखें (प्रथम पुरुष एकवचन)—**

खेलामि, अपठः, लिखतु, अभवत्, हसन्ति, स्वपिति, वन्दते, द्रक्ष्यति, स्थास्यन्ति, अपश्याम।

३. **निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करें—**

(क) तुमने आज क्या-क्या पढ़ा?
(ख) बताओ, किसके द्वारा यह काम किया गया।
(ग) तुम्हारी क्या विवशता है कि रो रहे हो?
(घ) हमारा मन पढ़ने में नहीं लगता (रुचिः)।
(ङ) पुलिस द्वारा (आरक्षिभिः) सब कुछ देख लिया गया।

४. **इन वाक्यों का हिन्दी रूपान्तर करें तथा वाच्य का निर्धारण करें—**

(क) कठिनेन श्रमेण विद्या लभ्यते।
(ख) न रत्नमन्विष्यति, मृग्यते हि तत्।
(ग) इतस्ततो मृगा वने धावन्ति।
(घ) शिवराजवीरः कूटनीत्या म्लेच्छान् नाशितवान्।
(ङ) गृहेऽप्यशान्तचित्तेन प्राप्यते न सुखं खलु।

५. **निम्नलिखित क्रियाओं के कर्तृवाच्य रूप (केवल प्रथमपुरुष एकवचन में) दें—**

क्रुध्यते, लिख्यते, अभूयत, पठ्यताम्, गीयते, सेव्यन्ते, अस्थीयत, दृश्यताम्, सुप्यते, हन्यते।

*

१७ विशेषण-विशेष्य-संबन्ध
Adjective and Noun

संस्कृत वाक्य रचना में विशेषण और विशेष्य के सम्बन्ध का बहुत महत्त्व है। छात्रगण इस विषय में अशुद्धियाँ बहुत करते हैं। अतः रचना की दृष्टि से इस पर ध्यान देना आवश्यक है। संस्कृत भाषा में प्रतिपाद्य विषय को 'विशेष्य' कहा जाता है। उसकी विशेषता, अन्य विषयों में विलक्षणता (Peculiarity) बताने वाले शब्द विशेषण होते हैं। संस्कृत के शब्द व्याकरण की अनेक कोटियों (Categories) से सम्पन्न होते हैं जैसे–लिङ्ग, विभक्ति, वचन। ये जिस प्रकार से विशेष्य में रहेंगे वैसे ही विशेषण में भी। अन्य भाषाओं के समान विशेषण अपने को एकरूप नहीं रखता, विशेष्य के अनुसार रूप ले लेता है। हिन्दी में देश भी विशाल है, अरण्य भी विशाल है और नगरी भी विशाल कही जाएगी। किन्तु संस्कृत में **विशालः देशः, विशालम् अरण्यम्** और **विशाला नगरी** का प्रयोग होगा। यदि कहना है 'विशाल देश का' तो 'विशालस्य देशस्य' संस्कृत में होगा। विशाल नगरी में–**विशालायां नगर्याम्** कहा जाएगा। इससे सूत्र बना–

विशेष्यं यादृशं यत्र तादृशं हि विशेषणम्।

इसे हम शब्दों के परस्पर सम्बन्ध की 'योग्यता' के अन्तर्गत रखते हैं। संस्कृत में योग्यता, आकांक्षा और आसत्ति (सन्निधि) से युक्त पद-समूह को वाक्य कहा जाता है (**वाक्यं स्याद् योग्यताकांक्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः**, साहित्यदर्पण, २.१)। विशेषण या क्रिया की योग्यता दूसरे शब्द (विशेष्य या कारक) के साथ मिलने की होनी ही चाहिए। 'बालकः' (विशेष्य) के साथ 'कुशलेन' (विशेषण) या 'गच्छन्ति' (क्रिया) के जुड़ने की योग्यता नहीं है। उन्हें 'कुशलः' तथा 'गच्छति' रूप में आना पड़ेगा।

निम्नलिखित अभिव्यक्तियों में विशेषण–विशेष्य की योग्यता पर ध्यान दें—

रमणीयः	सरोवरः	श्वेतेषु	वस्त्रेषु
विचित्राणि	पुष्पाणि	पठन्तं	छात्रम्
लघूनि	चित्राणि	प्रवहन्त्यां	नद्याम्
सुन्दर्यः	बालिकाः	दुर्बलानाम्	अश्वानाम्
अस्मिन्	विद्यालये	कुशलयोः	छात्रयोः
एतस्य	जनस्य	निपुणाभ्यः	छात्राभ्यः
मूर्खायाः	दास्याः	मन्दबुद्धेः	जनस्य

विशेषण-सूची

नीचे कुछ मुख्य तथा उपयोगी विशेषण दिये जाते हैं। पुंल्लिङ्ग में 'देव' के समान (इकारान्त, उकारान्त होने पर मुनि और साधु के समान), स्त्रीलिङ्ग में 'लता' के समान और नपुंसकलिङ्ग में 'फल' के समान रूप चलायें।

१. रंग उजला = श्वेतः, धवलः, उज्ज्वलः। काला = कृष्णः, श्यामः। पीला = पीतः, लाल = अरुणः, रक्तवर्णः। हरा = हरितः। नीला = नीलः। गुलाबी = पाटलः। चितकबरा = चित्रवर्णः। भूरा = बभ्रुवर्णः।

२. स्वभाव अच्छा = सुशीलः, उत्कृष्टः, सज्जनः, शोभनः, सुन्दरः (अर्थ के अनुसार)। सबसे अच्छा = श्रेष्ठः। सुस्त = मन्दः, अलसः। मूर्ख = मूर्खः, मन्दबुद्धिः। चालाक = चतुरः, कुशलः, प्रवीणः, निपुणः। चंचल = चञ्चलः, चपलः। तेज = तीक्ष्णबुद्धिः, कुशाग्रः, तीव्रः, शीघ्रगः (वाहन आदि)। बुरा = निन्दनीयः, दुष्टः, खलः। पढ़ा-लिखा = शिक्षितः। होशियार = पटुः, निपुणः।

३. गुण कड़ा = कठोरः, कठिनः। मजबूत = दृढः, प्रबलः। कमजोर = दुर्बलः, बलहीनः। गीला = आर्द्रः। सूखा = शुष्कः। ठंडा = शीतलः, शीतः। गर्म = उष्णः, तप्तः। मुलायम = कोमलः, मृदुः, मदुलः। महीन = सूक्ष्मः। मोटा = स्थूलः। रूखा = रूक्षः। चिकना = चिक्कणः, मसृणः। कड़वा = कटुः, कटुकः। मीठा = मधुरः। खट्टा = अम्लः। कसैला = कषायः। धनी = धनिकः। साफ = स्वच्छः, निर्मलः। गहरा = गम्भीरः। बूढ़ा = वृद्धः। जवान = युवकः, तरुणः (स्त्री.–तरुणी)।

विशेषण-रूप सर्वनाम

किम्, इदम्, अदस् आदि सर्वनाम तथा तादृश, एतादृश, मादृश, कीदृश, त्वादृश आदि उनसे निष्पन्न कृदन्त शब्द भी विशेषण का काम करते हैं। अतः इनका प्रयोग भी विशेष्य के अनुसार लिङ्ग, वचन, विभक्ति लगाकर होता है। ये प्रयोग देखें—

किम्

कः छात्रः गमिष्यति?
का बालिका आगच्छति?
कस्याः छात्रायाः गृहमस्ति?
केषां बालकानां गृहेषु विद्युत् नास्ति?

केषु वृक्षेषु फलानि सन्ति?
कानि पुष्पाणि सम्प्रति प्रस्फुटन्ति?
कयोः पुस्तकयोः नामनी जानासि?
(= किन दो पुस्तकों के नाम तुम जानते हो?)

इदम् (निकटवर्ती के लिए)

अयं बालकः आगतः।
इयं बालिका तीक्ष्णबुद्धिः अस्ति।
इमे छात्राः पठन्ति।
इमं ग्रन्थं पठ।
इमाः नगर्यः भारते सन्ति।
अनेन पुस्तकेन ज्ञानं भवति।
अनया स्थाल्या सह त्वमागतोऽसि
(= तुम इस बटलोही के साथ आए हो)।
इमानि पुष्पाणि सुन्दराणि सन्ति।
एभ्यः छात्रेभ्यः पुरस्कारं देहि।
आभ्यः बालिकाभ्यः छात्रावासो वर्तते
(= इन लड़कियों के लिए छात्रावास है)।
एषां ग्रामाणां जनाः निर्धनाः सन्ति।
आसु नगरीषु शोभनाः मार्गाः वर्तन्ते।

अदस् (दूरवर्ती के लिए)

असौ ग्रामः सम्पन्नः अस्ति।
अमी छात्राः निर्गताः
(= वे छात्र निकल गये)।
अमू बालिकाः निर्धनाः सन्ति
(= वे लड़कियाँ निर्धन है)।
अमुष्य देशस्य (उस देश का) नाम जानासि किम्?

तादृश (उस प्रकार का)

तादृशः बालकः कदापि नागतः।
(= वैसा लड़का कभी नहीं आया)।
तादृशी छात्रापि मया न दृष्टा।
(= वैसी छात्रा भी मैंने नहीं देखी)।

तादृशानां गुरूणाम् अद्याभावः।
(= वैसे गुरुओं का आज अभाव है)।
कुत्र **तादृश्यो नद्यः?**
(= वैसी नदियाँ कहाँ)?
तादृशेषु पर्वतेषु एव मेघाः वर्षन्ति।
(= वैसे पहाड़ों पर ही मेघ बरसते हैं)।
तादृश्यां नगर्यां वसितुमिच्छामि।
(= वैसी नगरी में रहना चाहता हूँ)।

कीदृश (किस तरह का)

कीदृशः शिक्षको भवान्?
(= आप कैसे शिक्षक हैं)?
कीदृशी नगरी तुभ्यं रोचते?
(= आपको कैसा शहर अच्छा लगता है)?
कीदृशे पुस्तके इदं पठितम्?
(= कैसी पुस्तक में यह पढ़ा)?
कीदृशानां जनानां/कीदृशीनां स्त्रीणां सभा अभवत्?
(= कैसे लोगों की या कैसी स्त्रियों की सभा हुई थी)?
कीदृश्याः नद्याः जलं प्रदूषितमस्ति?
(= किस प्रकार की नदी का जल प्रदूषित है)?

त्वादृश/मादृश (तुम्हारे जैसा/मेरे जैसा)

अहं **त्वादृशं छात्रम्** इच्छामि।
मादृशः सेवकः दुर्लभः अस्ति।
मादृशेन छात्रेण इदं न क्रियते।
(= मेरे जैसे छात्र से यह नहीं किया जा सकता)।
त्वादृशी स्त्री मया न दृष्टा।
(= तुम्हारे जैसी स्त्री मैंने नहीं देखी है)।
मादृश्यां बालिकायां तव विश्वासो मम गौरववर्धकः अस्ति।
(= मेरे जैसी लड़की में तुम्हारा विश्वास मेरा गौरव बढ़ाता है)।

टिप्पणी–तादृश आदि शब्द कञ् प्रत्यय से बने हैं (**त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च** ३.२.६०)। विकल्प से क्विन्-प्रत्यय लगकर हलन्त शब्द भी होते हैं–कीदृक्, तादृक्, मादृक् आदि। इनके रूप पृथक् होते हैं। उसके विस्तार से हम बचें।

अनिश्चयवाचक सार्वनामिक विशेषण

प्रश्नवाचक 'किम्' शब्द से चित्, चन लगाकर अनिश्चयवाचक सार्वनामिक विशेषण बनाये जाते हैं। कभी-कभी जैसे 'किम्' के रूपों का स्वतन्त्र प्रयोग होता है (जैसे–किं पठसि? कः धावति? का आगता?) उसी प्रकार इससे संयुक्त चित्-चन रहने पर भी स्वतन्त्र प्रयोग होता है जैसे–**कश्चित् आगतः अस्ति** (कोई आया है)। **किञ्चित् लिख** (कुछ लिखो)। तब ये शुद्ध सर्वनाम रूप के हैं। किन्तु विशेष्य के साथ काम करने पर, उसके लिङ्ग-वचन-विभक्ति धारण करने पर ये शब्द विशेषणरूप होते हैं। चित् या चन लगने पर शब्द एकात्मक हो जाता है, अतः सन्धि अनिवार्य होती है (संहितैकपदे नित्या)। निम्नांकित उदाहरणों को देखें—

कः + चित् = **कश्चित् बालकः धावति** (कोई लड़का दौड़ता है)।

के + चित् = **केचित् विद्वांसः समागताः** (कुछ विद्वान् आये हैं)।

कान् + चित् = **कांश्चित् छात्रान् पाठयति** (कुछ छात्रों को पढ़ाता है)।

कैः + चित् = **कैश्चित् जनैः संकुलः** (कुछ लोगों से भरा हुआ)।

केभ्यः + चित् = **केभ्यश्चित् छात्रेभ्यः देहि** (कुछ छात्रों को दे दो)।

कस्मैचित् तस्मै नमः = किसी उस परमेश्वर को नमस्कार।

कस्यचित् ग्रामस्य ग्रामणीः = किसी गाँव का मुखिया।

केषाञ्चित् पर्वतानां मध्ये = कुछ पहाड़ों के बीच।

केषुचित् दुर्लभेषु नरेषु धर्मः तिष्ठति = कुछ दुर्लभ मनुष्यों में धर्म रहता है।

किञ्चित् फलमानय = कुछ भी फल ले आओ।

कानिचन (कानिचित्) पुष्पाणि शोभन्ते = कुछ फूल शोभ रहे हैं।

काचित्पुरी तत्र विशालरम्या = वहाँ कोई पुरी विशाल और रमणीय थी।

काश्चिन्नद्यो वारिपूर्णा विभान्ति = कुछ नदियाँ जल से भरी शोभ रही हैं।

काभिश्चित् स्त्रीभिः इदं कृतम् = कुछ स्त्रियों द्वारा यह किया गया।

कस्याश्चित् सभायाः कार्यक्रमश्चलति = किसी सभा की कार्यवाही चल रही है।

कासुचित् नगरीषु सम्पन्नाः वणिजः आसन् = कुछ शहरों में सम्पन्न व्यापारी लोग थे।

चन के साथ भी इसी प्रकार सन्धियाँ होती हैं तथा प्रयोग किये जाते हैं। 'अपि' के साथ भी अनिश्चयवाचक विशेषण बनते हैं किन्तु वहाँ दो पद हो जाते हैं जैसे–**कोऽपि, कस्यापि, केषामपि, कस्यामपि** इत्यादि। चित् और चन से एकपदत्व ही रहता है। वाक्य-रचना में

तीनों का समान महत्त्व है जैसे–**कासुचित् नगरीषु, कासुचन नगरीषु, कास्वपि नगरीषु** = कुछ नगरियों में। हिन्दी के 'किसी' या 'कुछ' का अनुवाद इन्हीं के प्रयोग से होता है। जैसे—

यह पुस्तक किसी पुस्तकालय की थी = **इदं पुस्तकं कस्यचित् (कस्यचन, कस्यापि) पुस्तकालयस्य आसीत्।**

किसी गली में वह रहता है = **स कस्याञ्चित् (कस्याञ्चन, कस्यामपि) वीथ्यां निवसति।**

तुम्हारे घर में कोई अतिथि आया है = **तव गृहे कश्चित् (कश्चन, कोऽपि) अतिथिः आगतः अस्ति** (कश्चिदतिथिरागतोऽस्ति)।

ध्यान दें कि चित्, चन या अपि लगाने पर **इनकी पूर्वशब्द से सन्धि अवश्य करें।**

टिप्पणी–प्रश्नवाचक सर्वनाम से जिस प्रकार चित्, चन या अपि लगाकर अनिश्चयवाचक शब्द बनते हैं, वैसे ही प्रश्नवाचक अव्ययों से भी ऐसा करके अनिश्चयार्थक शब्द-रचना होती है। जैसे–**कदा**–कदाचित्, कदाचन, कदापि (= कभी)। **क्व**–क्वचित्, क्वचन, क्वापि (= कहीं, कभी)। **कुत्र**–कुत्रचित्, कुत्रचन, कुत्रापि (= कहीं)। **कुतः**–कुतश्चित्, कुतश्चन, कुतोऽपि (= कहीं से) **कथम्**–कथञ्चित्, कथञ्चन, कथमपि (= किसी तरह)।

अभ्यास - २०

१. **कोष्ठकगत विशेषणों में उचित विभक्ति, वचन, लिङ्ग लगाकर रिक्त स्थानों की पूर्ति करें—**

(क) इदानीं (सर्व) उद्यानेषु (विविध) पुष्पाणि दृश्यन्ते।
(ख) (इदम्) पुरस्कारः (किञ्चित्) (निपुण) छात्राय दातव्यः।
(ग) (इदम्) सरोवरे (बहु) कमलानि शोभन्ते।
(घ) (इदम्) अतिथिः (किञ्चित्) नगर्याः समागतः अस्ति।
(ङ) (कीदृश) नद्यां स्नानं कर्त्तुमिच्छसि?

२. **रेखाङ्कित विशेषणों को शुद्ध करें—**

(क) अनेन विद्यालये सहस्राधिकेन छात्राः पठन्ति।
(ख) कुशलस्य अध्यापकानां सर्वत्र महान् प्रशंसा जायते।
(ग) संस्कृतम् अतीव मधुरं भाषा विद्यते।
(घ) अत्र त्वं बहुमूल्यं पुस्तकानि न द्रक्ष्यसि।
(ङ) रक्ष त्वं सर्वं स्वकीयं परिवारजनान्।

३. संस्कृत में अनुवाद करें—

(क) कुछ लोगों में हम विचित्र लक्षण देखते हैं।

(ख) क्षुद्र स्वार्थ के लिए बड़े लाभ का त्याग उचित नहीं है।

(ग) अच्छे ग्रन्थ सबको प्रिय होते हैं।

(घ) स्थूल दृष्टि से देखने पर सर्वत्र यही मिलेगा।

(ङ) निरर्थक शोक से कोई लाभ नहीं।

(च) रुग्ण व्यक्ति (जन) की सेवा का अच्छा परिणाम मिलता है।

*

१८ संस्कृत में पत्र-लेखन
Letter writing in Sanskrit

अपने विचारों को यदि किसी व्यक्ति तक पहुँचाना हो तो यह संवाद या सन्देश का प्रेषण कहा जाता है। आज इसके लिए दूरभाष (Telephone, Mobile) अथवा इन्टरनेट की सुविधा हो गयी है किन्तु एक समय लिखित पत्र ही इसके साधन थे। उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी कि वे अभिलेख (Record) के रूप में सुरक्षित होते थे। आगामी पीढ़ियों में इतिहास के वे स्रोत हो जाते थे। पत्र-लेखन लिखित भाषा का एक महत्त्वपूर्ण अंग पहले तो था ही, आज भी इसका महत्त्व सुरक्षित है। सभी भाषाओं के समान संस्कृत में भी पत्र-लेखन की आधुनिक पद्धति स्वीकृत हो चुकी है। प्राचीन संस्कृत पत्रों का ऐसा स्वरूप नहीं था।

पत्र के निम्नलिखित चार भाग होते हैं–१. सम्बोधन या ऊपरी भाग २. अभिवादन तथा औपचारिक भाग ३. मुख्य निबन्धात्मक भाग तथा ४. समापन भाग। इनमें मुख्य भाग को छोड़कर शेष तीनों अत्यधिक औपचारिक (Formal) एवम् औचित्य (Propriety) पर आश्रित हैं। अतः उनमें नियमों का पालन आवश्यक है।

१. **सम्बोधन-बड़े लोगों के लिए**–मान्याः, पूज्यवराः, श्रद्धेयाः, आदरणीयाः, वन्दनीयाः, पूज्याः इत्यादि श्रद्धा या आदरसूचक शब्दों का प्रयोग यथासाध्य बहुवचन में करना चाहिए (पूजायां बहुवचनम्)। **समान श्रेणी के लोगों या मित्रों के लिए**–प्रिय, मित्र, मित्रवर, सुहृद्वर, बन्धुवर अथवा नाम के साथ प्रिय (रमेश, मोहन, श्यामलि इत्यादि) शब्द का प्रयोग करना चाहिए। **अपरिचितों के लिए या औपचारिक कार्यालयीय पत्रों में**–महोदय, माननीय, मान्यवर इत्यादि लिखें। **छोटे लोगों को**–आयुष्मन्, प्रिय इत्यादि से सम्बोधित किया जाता है। सभी सम्बोधनों के बाद विस्मयादि बोधक चिह्न (!) या अल्पविराम (,) लगायें।

२. **अभिवादन**–इसमें भी बड़ों को–सादरं प्रणामाः, चरणयोः प्रणामाः, नमस्काराः, प्रणतयः इत्यादि लिखें। समान स्तर वालों को–नमस्ते, नमो नमः, सादरं नमामि, अभिवादये इत्यादि लिखें। औपचारिक रूप से अपरिचितों को या कार्यालयीय पत्रों में–सप्रेम अभिवादनम्, प्रणामाः, नमस्काराः इत्यादि लिखते हैं। छोटों को–आयुष्मान् भव, चिरंजीव, आशीर्वादाः इत्यादि लिखा जाता है।

३. **समापन**–बड़ों को भवदीयः, भावत्कः, कृपाभाजनम्, स्नेहाभिलाषी, विधेयः, भवदाज्ञाकारी इत्यादि लिखें। मित्रों या समान स्तरवालों को भवद्बन्धुः, भवन्मित्रम्, भवदीयः सुहृद्, शुभाकाङ्क्षी, शुभाभिलाषी, शुभेच्छुः इत्यादि लिखकर अपना नाम दें। अपरिचितों के लिए भवदीयः ही पर्याप्त है। छोटों को त्वदीयः शुभचिन्तकः, शुभाभिलाषी इत्यादि लिखें।

पत्र का मध्यभाग बड़ा और निबन्धात्मक होता है। इसे आवश्यकतानुसार बड़ा या छोटा रख सकते हैं। कई पत्र-लेखक इसमें डायरी, अपना पूरा विवरण, यात्रावृत्तान्त, साहित्य की गतिविधि, राजनीति या अपने आन्तरिक भावों का प्रकाशन भी करते हैं। इसीलिए अनेक पत्र साहित्य तथा इतिहास के अमूल्य धरोहर बन जाते हैं। पत्र-लेखन भी इसी भाग के कारण आज साहित्य के प्रकार के रूप में स्वीकृत हो चुका है। छात्रों को इसे छोटा ही रखना चाहिए।

आज पत्रों की विषय-वस्तु अनेक प्रकार की हो गई है। आवेदन, निमन्त्रण पत्र, प्रार्थना-पत्र, उपालम्भ (उलाहना, शिकायत) तथा सूचना–ये सब पत्र के अन्तर्गत हैं। अतः पत्र का स्वरूप, उद्देश्य आदि पर ध्यान देना आवश्यक है। यहाँ पत्रों के कुछ प्रमुख आदर्श (Sample, नमूने) दिये जाते हैं जो उपयोगी होंगे।

१. विद्यालय में प्रवेश पाने के लिए प्रधानाध्यापक को आवेदन

सेवायाम्,

श्रीमन्तः प्रधानाचार्यमहाभागाः

………………विद्यालयः/महाविद्यालयः

(स्थाननाम)।

महोदयाः,

सविनयं निवेदनं वर्तते यत् अहं……..विद्यालयात् दशमकक्षाम् उत्तीर्णवानस्मि। मम परीक्षाफलं सन्तोषावहं/प्रकृष्टं वर्तते। मम पितुः स्थानान्तरणं सम्प्रति नगरेऽस्मिन् जातम्। अतः भवतां विख्याते (महा) विद्यालये एकादशकक्षायां प्रवेशमिच्छामि। प्रार्थनास्ति यद् भवन्तो मह्यं स्वविद्यालये (महाविद्यालये) तस्यां कक्षायां नामाङ्कनस्य अनुमतिं दातुं कृपां करिष्यन्ति। तदर्थमहं सर्वदा भवतां कृतज्ञो भविष्यामि।

दिनाङ्कः ……………

भवतां कृपाकाङ्क्षी छात्रः

……….(नाम)……….

२. अपने जन्म-समारोह में आने के लिए मित्र को आमन्त्रण

(स्थाननाम)

दिनाङ्कः ....

प्रिय मित्र,

सस्नेहं नमस्ते।

सर्वमिह कुशलं वर्तते। आशासे (आशा करता हूँ) त्वमपि कुशलयुक्तोऽसि। सप्रमोदमहम् अनेन पत्रेण सूचयामि यत् आगामिनि १९ जुलाई तिथौ (.......वासरे) मम नवीने गृहे मम जन्मदिनोत्सवः समारोहपूर्वकं भविष्यति। तत्र बन्धुभिः सह तवोपस्थितिं प्रार्थये, येन ममोत्साहस्य वर्धनं स्यात्। स्वस्यागमनस्य पूर्वसूचना त्वया दातव्या, यतः रेलस्थानके (बसस्थानके) एव तव स्वागतार्थम् उपस्थितो भवेयम्।

तवाभिन्नः सुहृद्

..........(नाम)..........

३. परीक्षा-फल के विषय में अपने पिता को पत्र

(स्थाननाम)

दिनाङ्कः ....

पूज्यवर्येषु पितृचरणेषु,

सादरं प्रणतयः। अहमत्र सर्वथा सकुशलः। तत्रापि सर्वे कुशलिनः सन्तीति वर्तते मम विश्वासः। विशेषतः इदमेव सूचयितुं पत्रमिदं लिखामि यत् नवमकक्षायाः परीक्षापरिणामः प्रकाशितः। तत्र स्वकक्षायां प्रथमं स्थानं मया लब्धम्। इदानीमधिकेन परिश्रमेणाहं पठामि। अस्मिन् वर्षे दशमकक्षायाः बोर्डपरीक्षा भविष्यति। अतएव तत्रैव उत्कृष्टपरिणामलाभाय परिश्रमः अपेक्षितः अस्ति।

मातृचरणेषु मम प्रणामाः।

भवतामात्मजः

..........(नाम)..........

४. विद्यालय में समारोह का वर्णन करते हुए मित्र को पत्र

(स्थाननाम)

दिनाङ्कः ....

प्रिय मित्र विनोद,

सप्रेम नमस्ते।

तव पत्रं मया इदानीमेव प्राप्तम्। सर्वं कुशलं ज्ञातम्। अत्र विद्यालये एकः विशिष्टः समारोहः आयोजितः आसीत्। तस्मिन् विद्यालयस्य अनेके छात्राः शिक्षकैः सह व्यस्ता आसन्। अहमपि सभायाः अलङ्करणस्य कार्ये नियुक्तः आसम्। समारोहे नगरस्य प्रमुखः अन्ये च विशिष्टाः जनाः आगताः। तेषां भाषणं बहु उत्साहप्रदम् अभवत्। अस्माकं विद्यालयस्य कार्यक्रमस्य ते महतीं प्रशंसां कृतवन्तः। योग्येभ्यः छात्रेभ्यः पुरस्कारा अपि प्रदत्ताः।

पितृचरणयोः मातृचरणयोश्च मम प्रणामं निवेदय।

तव सुहृद्

(..........)

५. नगर की टूटी सड़क के निर्माण के लिए नगर-प्रमुख को पत्र

कदमकुआँ, पटना-०३

दिनाङ्कः.............

श्रीमान् नगरप्रमुखमहोदयः

पटना-०१

महोदय,

सूचनीयं यत् अस्माकं नगरोपखण्डस्य (मुहल्ले का) कदमकुआँ-स्थितस्य लोहानीपुरनामकस्य मुख्यो राजपथः यत्र-तत्र भग्नोऽस्ति। क्वचित्-क्वचित् भूगर्भप्रणालिकायाः मुखानि च आवरणहीनानि वर्तन्ते। इतस्ततः प्रणालिकाजलं राजपथे प्रवहति। तेन पदयात्रिणां बहु असौविध्यं (असुविधा) भवति।

अतएव श्रीमन्तं प्रार्थये यत् सर्वं स्वयं निरीक्ष्य, विज्ञाय च स्थितिं राजपथस्य निर्माणाय परिमार्जनाय च आदेशं भवान् ददातु, अस्माकं कष्टं च निवारयतु।

निवेदकः

(नाम)

अन्ये च उपखण्डवासिनः

६. मित्राय विवाहस्य निमन्त्रणपत्रम् (रिक्त स्थान-पूर्ति)

पटना

दिनाङ्कः ....

प्रिय मित्र मनोहर,

सस्नेहं प्रणामः।

इह सर्वं (.....कुशलं) तवापि कुशलं (कामये)। प्रियवर, इदं ज्ञात्वा (त्वम्) अतिप्रसन्नो (भविष्यसि) यत् मम (विवाहः) आगामिनः फरवरी (मासस्य) पञ्चदश (दिनाङ्के) निश्चितः कृतः। तस्मिन्नेव (दिवसे) इतः पाटलिपुत्रतः वरयात्रा गया (नगरं) बसयानेन (गमिष्यति)। अस्मिन् माङ्गलिके (अवसरे) दिनत्रयं/त्रीणि दिनानि पूर्वमेव (आगत्य) त्वया सहयोगः करणीयः इति मम (कामना) वर्तते।

त्वदभिन्नः सुहृद्

....

७. प्रधानाचार्यं प्रति अवकाशार्थम् आवेदनम्

श्रीमन्तः (प्रधानाचार्याः),

.........विद्यालयः/महाविद्यालयः

(स्थाननाम)।

महोदयाः,

सेवायां निवेदनमस्ति यत् मम माता रुग्णा वर्तते। तस्याः सेवार्थं मम आवश्यकता निरन्तरम् अपेक्षितास्ति। मम गृहे कश्चिदन्यः पुरुषः सम्प्रति नास्ति। अतः अहं सप्ताहं यावत् विद्यालयं गन्तुं न समर्थः। भवान् कृपया मह्यमेकसप्ताहस्य अवकाशं ददातु इति प्रार्थनां करोमि। तदर्थमहं भवतः कृतज्ञो भविष्यामि।

भवदीयः आज्ञाकारी छात्रः

....

टिप्पणी–यदि विवरणात्मक हो तो अन्य पाठों की सामग्री का उपयोग किया जा सकता है। जैसे–विजयादशमी का वर्णन, तीर्थयात्रा, व्यक्ति विशेष का वर्णन, विद्यालय की ओर से आयोजित भ्रमण कार्यक्रम इत्यादि। पत्र का ढाँचा अवश्य ही रहेगा।

अभ्यास - २१

१. स्वमित्रं प्रति आत्मनः अस्वस्थतायाः वर्णनं कुर्वन् पत्रं लिख।

२. यात्रावर्णनं कुर्वन् पितरं प्रति पत्रं लिख।

३. मित्रं प्रति पत्रं लिखन् तस्मै सान्त्वनाप्रदानं कुरु।

४. प्रकाशकं प्रति पत्रं लिखन् पुस्तक-प्रेषणादेशं देहि।

५. कमपि लेखकं प्रशंसन् तं पत्रं लिख।

सहायता-संकेत

१. अत्यन्तं कष्टेन सूचयामि यत् मम स्वास्थ्यं सम्प्रति अनुकूलं नास्ति। पाचनक्रिया सम्यक् न भवति, किञ्च रात्रौ ज्वरोऽपि जायते। वैद्यः समुचितम् औषधं ददाति, भोजने संयमस्य (परहेज) परामर्शमपि करोति। आशासे तयोः प्रभावः शरीरे शीघ्रं भविष्यति। परिवारजनाः अपि ममारोग्याय प्रयासवन्तः सन्ति। स्वास्थ्यलाभे सति (स्वस्थ हो जाने पर) त्वां सूचयिष्यामि।

२. विगते मासे मम विद्यालयस्य पक्षतः (ओर से) संक्षिप्ता शिक्षणयात्रा आयोजिता अभवत्। अहमपि तस्यां सम्मिलितः आसम्। वयं त्रिंशत् छात्राः द्वौ च अध्यापकौ तस्यां गताः आसन्। एकं बसयानं विद्यालयस्य मुख्यद्वारे आगतम्। तस्मिन्नेव वयं सर्वे पावापुरी, नालन्दा, राजगृहम्–इति त्रयाणां स्थलानां भ्रमणं कृतवन्तः। पावापुरी जैनतीर्थंकरस्य महावीरस्य निर्वाणस्थली अस्ति। तत्र कमलयुक्तस्य सरोवरस्य मध्ये भव्यं धवलं महावीरप्रतिमायुक्तं मन्दिरमस्ति। नालन्दायां विशालः विश्वविद्यालयस्य भग्नावशेषः वर्तते। तस्य भ्रमणे होराद्वयं यापितम्। अन्ततः राजगृहं वयं गताः। तत्र तप्तकुण्डे केचित् स्नानं कृतवन्तः। तदनन्तरं विश्वशान्तिस्तूपं गताः। स पर्वते वर्तते। तदारोहणाय विद्युच्चालितः रज्जुमार्गः वर्तते। तेनैव यानेन रात्रौ अष्टवादने वयं स्वगृहमागताः। स्मरणीया इयं यात्रा।

३. श्रुतं मया यत् तव मञ्जूषा (पेटी, बक्सा) यात्रायां केनापि अपहृता। अतीव कष्टस्यायं विषयः। एतादृशेन अनुभवेन तव मनोदशां ज्ञातुं शक्नोमि। तथापि लोकयात्रायां तादृश्यः स्थितयः भवन्त्येव इति सार्वजनिकः अनुभवः। अहं तु एतदेव कथयितुं शक्नोमि–"गतस्य चिन्ता न करणीया। दुःखस्य विस्मरणम् एव औषधमस्ति।"

४. निवेदयामि यत् भवता प्रकाशितं 'संस्कृतव्याकरण-निकर' नामकं पुस्तकम् अस्मिन् उपनगरे (कस्बे में) उपलब्धं नास्ति। वयं छात्राः अस्य गुणैः अभिभूताः सन्तः तत् क्रेतुमिच्छामः। कृपया एतस्य पुस्तकस्य पञ्चाशत्संख्यायां प्रेषणं विद्यालयेऽस्माकं कृत्वा अस्मान् कृतकृत्यान् करोतु भवान्।

५. सविनयं प्रणमामि। भवता रचितं नवीनमुपन्यासं पठित्वा मनो मे मोदं लभते। यद्यपि भवतः सर्वा एव रचनाः मनोरञ्जिन्यः उपदेशप्रदाः, तथापि अस्मिन् उपन्यासे मानवजीवनस्य यत् चित्रणं विद्यते तद् अतीव यथार्थम् अस्ति। सर्वेऽपि अनेन चित्रणेन अभिभूताः भवेयुः इति मम विश्वासः। आशासे यत् एतादृशैः रचनासमूहैः भवान् समाजस्य दर्पणं विधास्यति।

*

परिशिष्ट - १

अनुच्छेद-लेखन
(Paragraph-Writing)

आधुनिक भाषाविषयक शिक्षण-कार्यक्रम में रचना की दृष्टि से अनुच्छेद-लेखन बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया है। यद्यपि यह पहले से चले आ रहे निबन्ध-लेखन के कार्यक्रम का ही एक अंग है किन्तु निबन्ध (Essay) और अनुच्छेद (Paragraph) में बहुत अन्तर है। निबन्ध में लेखक अत्यधिक स्वतन्त्र है, विषय को छोड़कर कुछ दूसरी बातें भी ला सकता है किन्तु अनुच्छेद एक कसी हुई रचना है जिसमें अनुशासन का आद्यन्त वर्चस्व है, विषयान्तर में भटकने का अल्प भी स्थान नहीं। इसीलिए शिक्षा में अनुशासन की महत्ता की दृष्टि से सभी भाषाओं की परीक्षाओं में अनुच्छेद-लेखन को स्थान दिया गया है।

अनुच्छेद-लेखन में ध्यातव्य बातें

१. अनुच्छेद-लेखन के विषय का संयत भाषा में पूर्ण परिचय मिले।
२. अनुच्छेद एकात्मक हो, एक ही खण्ड में मुख्य बातें आ जाएँ।
३. भाषा, भाव और विषयों की प्रस्तुति परस्पर बँधी हो।
४. विषय-वस्तु के अनुरूप शैली का चयन हो।
५. अनुच्छेद-लेखन तर्कपूर्ण (Logical) हो। यथासाध्य भाषा सरल हो।

यहाँ शीर्षकों के अन्तर्गत कुछ अनुच्छेद दिये जाते हैं।

(क) वर्णनप्रधाना अनुच्छेदाः

१. मम ग्रामः

भारतवर्षं ग्रामाणां देशः अस्ति। अहमपि मूलतः ग्रामवासी अस्मि। मम ग्रामः बिहारराज्यस्य गयामण्डलस्य मध्यभागे वर्तते। अस्य नाम.....अस्ति। अस्य वामभागे आम्रवृक्षाणाम् उद्यानं विद्यते। ततोऽग्रे एका उपनदी अस्ति। तस्यां जलं षडेव मासान् तिष्ठति। सा उपनदी पुनपुननद्याः सहायिका वर्तते। मम ग्रामे सहस्राधिका जनाः निवसन्ति। केचित् नगरे प्रतिदिनं गत्वा विविधानि कार्याणि कुर्वन्ति। ग्रामः नगरेण राजपथेन संयुक्तः अस्ति। ग्रामे बहूनां जनानां जीविकासाधनं कृषिरेवास्ति। विविधानि अन्नानि व्यञ्जनानि च कृषिकार्येण जायन्ते। दुग्धं दधि च प्राचुर्येणात्र प्राप्यते। वर्षाकाले शीते वसन्ते च ग्रामस्य शोभा वर्धते।

२. अस्माकं देशः

अस्माकं देशस्य नाम भारतवर्षमिति अस्ति। अयं देशः अतीव विशालः। अस्य उत्तरस्यां दिशि पर्वतराजो हिमालयः, यत्र नाना नदीनाम् उद्‌गमः अस्ति। ताः नद्यः भारतस्य उत्तरभूभागं सिञ्चन्ति। गङ्गा यमुना सरयू गण्डकी कोशी-प्रभृतयः नद्यः तासु प्रधानाः। भारतस्य दक्षिणभागः पर्वतीयः वर्तते। तत्र नर्मदा गोदावरी कावेरी इत्यादयः प्रधानाः नद्यः पूर्वस्मिन् पश्चिमे वा समुद्रे मिलन्ति। पूर्वापर-सागरयोः तटवर्तिप्रदेशाः मनोरमाः सन्ति। भारते तीर्थनगराणि यथा-काशी, मथुरा, प्रयागः, हरिद्वारम् इत्यादीनि नदीतटे सन्ति। एवमेव औद्योगिकनगराणि कोलकाता, मुम्बई, चेन्नई, कानपुर, दुर्गापुर, जमशेदपुर-प्रभृतीनि देशस्य समृद्धिं वर्धयन्ति। अयं देशः ग्रामप्रधानः कृषिप्रधानः च वर्तते किन्तु शनैः शनैः उद्योगानां प्रधानतां गृह्णाति। अस्मिन् देशे प्राचीनता नवीनता च सहैव तिष्ठेते इति अस्य विशिष्टता वर्तते।

३. ऋतुराजो वसन्तः

भारतवर्षे षड् ऋतवो भवन्ति। तेषु वसन्तः ऋतुराजः अस्ति। फाल्गुनचैत्र मासयोः अयं तिष्ठति। इदानीं च शीतस्याधिक्यं न च ग्रीष्मस्य प्रचण्डता भवति। समशीतोष्णतया अयमृतुः सर्वेभ्यो रोचते। सर्वे प्राणिनः वनस्पतयश्च अस्मिन् ऋतौ प्रमुदिताः भवन्ति। वृक्षेषु नवपल्लवाः नवकुसुमानि च शोभन्ते। वासन्तिकानि सस्यानि (रब्बी फसलें) क्षेत्रेभ्यः खले (खलिहान में) आनीयन्ते, अन्नानि च लभ्यन्ते। अतएव कृषकाः प्रसन्नाः भवन्ति। वसन्ते केचन रोगाः प्रभवन्ति। वसन्तस्य प्राकृतिकं सौन्दर्यं नगरेषु दुर्लभं भवति। उद्यानेषु ग्रामेषु चास्य शोभा दर्शनीया भवति।

४. वर्षा ऋतुः

ऋतुषु वर्षा ऋतुः बहुमोदकरो भवति। विशेषरूपेण कृषिप्रधानेऽस्माकं देशे कृषकाणामुल्लासः दर्शनीयः वर्षासु। कृषिकार्याय वृष्टिः अपेक्षिता भवति। वर्षाकाले ग्रीष्मकालस्य उष्णता अल्पीभवति। शीतलो वायुः वहति। आकाशे मेघाः भ्रमन्ति। यत्र-तत्र ते वर्षन्ति। वृष्ट्या जलाशयाः पूर्यन्ते। नद्यः जलपूर्णाः वहन्ति। यदा कदा अतिवृष्ट्या नदीषु जलवृद्धिः जायते। मार्गाश्च अवरुद्धाः भवन्ति। किन्तु सामान्यतः पृथ्वी हरितैः तृणैः सस्यैश्च शोभामयी भवति। रात्रौ तडागेषु मण्डूकाः क्रन्दन्ति। वाल्मीकिः किष्किन्धाकाण्डे कथयति—

रजः प्रशान्तं सहिमोऽद्य वायुः, निदाघदोष-प्रसराः प्रशान्ताः।

५. अस्माकं विद्यालयः

अस्माकं विद्यालयः विशालः वर्तते। अस्य ख्यातिः सम्पूर्णक्षेत्रे विद्यते। अत्र प्रधानाध्यापकः अनुशासनप्रियः विद्यालयस्य विकासाय च निरन्तरं प्रयत्नं करोति। शिक्षकाः स्वस्वकर्मसु कुशलाः छात्रेषु लोकप्रियाः सन्ति। अतएव अस्य परीक्षाफलं सदैव उत्कृष्टं जायते। क्रीडाक्षेत्रेऽपि अस्य छात्राः यशः वर्धयन्ति। यदा कदा उत्सवाः समारोहाश्च

विद्यालयेऽस्मिन् भवन्ति। तेषु नगरस्य प्रतिष्ठिताः जना आहूयन्ते। विद्यालये सर्वे कक्षाः स्वच्छाः सन्ति, बाह्यपरिसरश्च निर्मलः अस्ति। विद्यालये एकं प्रशस्तं क्रीडाक्षेत्रमस्ति, हरितदूर्वाच्छन्नं च। छात्राणां सर्वविधो विकासः विद्यालयस्य लक्ष्यमस्ति। स एव विद्यालयः श्रेष्ठो भवति यत्र शिक्षकाः छात्राश्च प्रसन्नाः सन्ति। तादृश एवास्माकं शिक्षालयः।

६. गङ्गानदी

भारतस्य देशस्य सर्वासु नदीषु गङ्गा श्रेष्ठा पवित्रतमा च मन्यते। इयं पर्वतराजात् हिमालयात् निःसृत्य उत्तरभारतस्य विविधान् प्रदेशान् उत्तीर्य (पार होकर Crossing) वंगोपसागरे पतति। अस्यास्तीरे अनेकाः प्राचीनाः नगर्यः स्थिताः सन्ति यथा–हरिद्वारम्, कानपुरम्, प्रयागः, वाराणसी, पाटलिपुत्रम्, मुद्गलगिरिः (मुंगेर), भागलपुरम् इत्यादयः। एतासु नगरीषु सभ्यता संस्कृतिश्च भारतीया विकसिताऽभूत्। गङ्गा हिमालयस्य ओषधीनां गुणान् गृहीत्वा जलं धारयति। अतः गङ्गाजलमिति पावनतायाः नामान्तरमस्ति। सा नदी देवनदी इत्यपि कथ्यते। गङ्गास्नानं गङ्गाजलसेवनं गङ्गोच्चारणं च देवपूजनवत् पवित्रं मन्यते। कथ्यते च–गङ्गास्मरणमात्रेण पापं नश्यति नश्यति। किन्तु जनानां स्वदोषेण सम्प्रति तस्याः जलं शनैः शनैः प्रदूषितं भवतीति दुःखस्य विषयः।

७. विजयादशमी (दुर्गापूजा)

आश्विनमासस्य शुक्लपक्षे दुर्गापूजा-समारोहः प्रतिवर्षं भारतेऽनुष्ठीयते। पूर्वाः नव रात्रयः 'नवरात्रम्' इति नाम्ना प्रसिद्धाः। नव दिनानि यावत् दुर्गामन्दिरेषु प्रतिमास्थापन-स्थलेषु च दुर्गापाठः क्रियते। बहुषु स्थानेषु दुर्गायाः सपरिकरायाः (दूसरी मूर्तियों के साथ) प्रतिमा मृन्मयी स्थापिता भवति। त्रीणि दिनानि प्रतिमानां पूजनं भवति। विजयादशम्यां विसर्जनं क्रियते। विसर्जनं पूजनं च भव्यसमारोहेण भवति। एतेषु दिवसेषु उत्तरभारतस्य नगराणि मेलायाः आयोजनं कुर्वन्ति। महान् जनसम्मर्दः (भीड़) भवति। यद्यपि दुर्गापूजनेन इदं पर्व सम्बद्धं वर्तते तथापि विजयादशमी विजयस्य उत्सवः अपि मन्यते। कथ्यते यद् भगवान् रामः अधर्मरूपस्य रावणस्योपरि विजयं प्राप्तवान्, तस्यैव विजयस्य स्मृतौ अयमुत्सवो भवति। भारतस्य सर्वेषु राज्येषु विजयादशमी-महोत्सवोऽनुष्ठितः।

८. दीपावली

प्रतिवर्षं कार्तिकमासस्य अमावास्यातिथौ दीपावली-महोत्सवः भारते सर्वत्र आयोजितो भवति। अस्मिन् महोत्सवे गृहं गृहं निर्मलीक्रियते, रात्रौ च गृहस्य परिसरे दीपमाला प्रज्वालिता भवति। अपूर्वं दृश्यं सर्वत्र प्रतिभाति। दीपज्वालनं प्रमोदस्य लक्षणं भवति। कथ्यते यत् रावणं विजित्य यदा रामः अयोध्यामागतः, तदा पुरवासिनः सर्वत्र दीपान् प्रज्वाल्य हर्षं प्रकटितवन्तः। तदा प्रभृति (तब से आरम्भ करके) अयं महोत्सवः प्रतिवर्षम् आयोजितो जायते। दीपावल्याः समीपे अन्येऽपि उत्सवदिवसाः सन्ति। यथा धन्वन्तरिजयन्ती (कार्तिकत्रयोदश्याम्),

हनुमज्जन्मोत्सवः (चतुर्दश्याम्), नरकचतुर्दशी, लक्ष्मीपूजनम्, अन्नकूटः, गोवर्धनपूजा (प्रतिपदि), चित्रगुप्तपूजा-यमद्वितीया चेति। एवं दीपावली वस्तुतः उत्सवावली वर्तते।

९. उपवनम्, पुष्पवाटिका, उद्यानम्

वनस्पतीनां लतानां पुष्पाणां च परिसरे सर्वेषां मनो रमते। अतएव सम्प्रति गृहे गृहे उपवनं दृश्यते। किञ्च नगरोपखण्डेषु (मुहल्लों में), कार्यालयेषु, मन्दिरादिपरिसरेषु, विद्यालयादिषु च उद्यानं विशेषरूपेण व्यवस्थाप्यते। तेन परिसरस्य रमणीयता हृदयम् आवर्जयति। उद्यानेषु हरितानि क्षेत्राणि तृणपूर्णानि भवन्ति, तानि परितः पंक्तिषु पुष्पवृक्षाः आरोपिताः। पुष्पवाटिकायाः रक्षणाय व्यवस्थायै च मालाकारः (माली) नियुक्तो भवति। मालाकारः सम्पूर्णं परिसरं रमणीयं रक्षति, पुष्पाणां फलानां च वृक्षान् वर्धयति। उद्याने बहवो जनाः प्रातः भ्रमणं कुर्वन्ति, शुद्धवायुसेवनं च कुर्वन्ति। नगरेषु उद्यानानां महती आवश्यकता वर्तते, यतः तत्रैव शुद्धः वायुः सुलभः। अस्माकं गृहेऽपि लघु उद्यानं विद्यते यत्र प्रतिदिनं पुष्पाणि प्रस्फुटन्ति।

१०. हिमालयः

कालिदासः कथयति-हिमालयो नाम नगाधिराजः। वस्तुतः संसारस्य सर्वेषु पर्वतेषु श्रेष्ठः हिमालयः अस्ति। उच्चतमः पर्वतोऽयम्, दीर्घतमश्च। अस्माकं प्राचीनेषु ग्रन्थेष्वपि अस्य महिमा गीयते स्म। भारतस्य उत्तरभागे स्थितोऽयं पर्वतराजः बहूनां नदीनाम् उद्‌गमस्थानं वर्तते। अस्य तुषारैः तृप्ताः ताः उत्तरं भारतं सिञ्चन्ति। हिमालये नाना तीर्थस्थलानि सन्ति यथा गंगोत्तरी, यमुनोत्तरी, केदारनाथः, बदरीनाथः, वैष्णवीदेवी इत्यादीनि। तत्र प्रतिवर्षं ग्रीष्मे श्रद्धालवः गच्छन्ति। किञ्च हिमालये बहूनि नगराणि अवस्थितानि सन्ति यथा–श्रीनगरम्, शिमला, मनाली, मसूरी, नैनीताल, दार्जिलिङ्ग, गंतोक इत्यादीनि। हिमालयः भारतं शत्रुभ्यः शीतेभ्यो वायुभ्यश्च रक्षति। अयं बहूनि भेषजयुक्तान् वनस्पतीन् अस्मभ्यं ददाति। अस्य सम्पूर्णः विशालः परिसरः प्राकृतिकीभिः सुषमाभिः परिपूर्णः वर्तते।

११. रेलयानयात्रा

अस्मिन् वर्षे ग्रीष्मावकाशेऽहं पाटलिपुत्रतः राँचीं यावत् रेलयानेन गतः आसम्। जनशताब्दीनामकम् द्रुतयानं मया गृहीतम्। तद् अतिवेगेन राँचीं प्राप्नोति इति ज्ञात्वा मनः उत्साहितमासीत्। पटना रेलस्थानकात् प्रातः षड्वादनात् परम् इदं यानं चलितम्। वातायनपार्श्वे स्थितः अहं नाना दृश्यानि अपश्यम्। गयास्थानकं होराद्वयेन इदं प्राप्नोत्। तत्र इञ्जनपरिवर्तनं जातम्, यानं च दिशं परिवर्त्य चलितम्। मार्गे अनेकाः गुहाः मिलिताः यासु अल्पकालं यावत् अन्धकारः अभवत्। कतिपयानि स्थानकानि मध्ये मिलितानि। तत्र यानं किमपि स्थित्वा पुनः गन्तव्यं प्रति प्रवृत्तम्। मूरीस्थानकात् परं रेलमार्गः आरोहणपरः जातः, यानगतिश्च किमपि शिथिला जाता। अपराह्णे सार्धैकवादनेऽहं राँचीं प्राप्तवान्। तत्र स्थानके एव मम सहोदरः अग्रजः उपस्थितः आसीत्। स मां नीत्वा स्वगृहं गतः।

१२. सरस्वतीपूजा (वसन्तपञ्चमी)

प्रतिवर्षं माघशुक्ल-पञ्चमीतिथौ विद्यायाः अधिष्ठात्री देवी सरस्वती पूज्यते। प्रायेण सर्वेषु विद्यालयेषु देव्याः सरस्वत्याः मृन्मयी प्रतिमा आनीयते, तस्याः विधिपूर्वकं पूजनं च भवति। सर्वशुक्ला सरस्वती शारदापि कथ्यते। तस्याः वाहनं हंसः विवेकं सूचयति। तस्याः करयोः वीणा वर्तते। अतः सा वीणावादिनी इति कथ्यते। छात्राः मनोयोगेन सरस्वतीपूजनं कुर्वन्ति, विद्यायाम् उत्कर्षं च तां देवीं याचन्ते। रात्रौ यत्र तत्र विद्यालयेषु छात्रावासेषु च सांस्कृतिकः कार्यक्रमः आयोजितो भवति। अन्यस्मिन् दिवसे नृत्यगीतपूर्वकं प्रतिमायाः विसर्जनं क्वचित् जलाशये क्रियते। अस्माकं विद्यालये (महाविद्यालये)ऽपि समारोहेण सरस्वतीपूजनं भवति। अयमवसरः वसन्तस्य ऋतोः आगमनस्य भवति। वासन्तिकानि गीतानि अद्य प्रभृति प्रारभन्ते। अतः अस्य नामान्तरं 'वसन्तपञ्चमी' इत्यपि वर्तते।

१३. शिक्षकदिवसः

भारतवर्षे आधुनिककालस्य महान् विद्वान् दार्शनिकः सर्वपल्ली राधाकृष्णन् इति। स भारतस्य राष्ट्रपतिरपि निर्वाचितः अभवत्। आजीवनं स विभिन्नेषु विश्वविद्यालयेषु शिक्षकरूपेण प्रसिद्धः आसीत्। कृतज्ञो देशः तस्यैव जन्मदिवसं सितम्बरमासस्यं पञ्चमदिनाङ्कं 'शिक्षकदिवसः' इति रूपेण आयोजयति। तस्मिन् दिवसे न केवलं राधाकृष्णन्महोदयस्य वैदुष्यं शिक्षाक्षेत्रे योगदानं च स्मरन्ति जनाः, अपितु समान्यरूपेण स्व-स्व-शिक्षकाणां सम्मानमपि कुर्वन्ति। शिक्षकाः समाजस्य निर्मातारः सन्ति। शास्त्रेषु गुरवः पितृरूपेण पूजनीयाः मन्यन्ते। 'आचार्यदेवो भव' इति उपनिषदः उपदेशः। अतः शिक्षकदिवसे गुरुः देवरूपः पूजनीयः, आदरणीयश्च।

१४. ग्रीष्मकालः

वसन्ताद् अनन्तरं ग्रीष्मकालो भवति। तदा जलाशयाः क्रमशः शुष्यन्ति। दिनानि दीर्घाणि, रात्रयश्च संक्षिप्ताः भवन्ति। वायुमण्डले तापः वर्धते। सूर्यकिरणाः प्रखराः असह्याश्च। सर्वे प्राणिनः पिपासया व्याकुलाः जायन्ते, मध्याह्ने छायाम् अभिलषन्ति। हरिताः वनस्पतयः लताः कुसुमानि च म्लायन्ते। मनुष्याः दिवसे गृहेषु तिष्ठन्ति, विवशाः एव बहिर्गच्छन्ति। अतएव विद्यालयेषु ग्रीष्मावकाशः दीयते। ग्रीष्मावकाशे भ्रमणाय केचित् पर्वतीयस्थलानि गच्छन्ति। तत्र वातावरणं शीतलं भवति। अतस्तेषु स्थलेषु जनसम्मर्दः जायते। निवासाय स्थानं च दुर्लभं भवति। आधुनिके वैज्ञानिके युगे ग्रीष्मतापनिवारणाय तापनियन्त्रणयन्त्रं (ए.सी.) विकसितम्। सम्पन्नानां जनानां गृहेषु तद् दृश्यते। किन्तु साधारणाः जनाः विद्युद्व्यजनेन (पंखे से) तापं दूरीकुर्वन्ति। फ्रिजनामकम् उपकरणमपि जलं शीतलीकरोति। किन्तु ग्रामेषु घटस्य महत्त्वं वर्तते।

१५. पाटलिपुत्रम् (नगरम्)

बिहारराज्यस्य राजधानी पाटलिपुत्रं वर्तते। तद् अधुना 'पटना' इति कथ्यते। प्राचीनकाले अस्य नाम पुष्पपुरी कुसुमपुरी वा आसीत्। मौर्यकाले अस्य नगरस्य अद्भुतः विकासः अभवत्, यद्यपि बुद्धस्य समये इदं ग्राममात्रम् आसीत्। मध्ययुगे अस्य नगरस्य पतनं प्रारब्धम्, किन्तु पुनः पञ्चदशशतकाद् अस्योद्धारः कृतः। सम्प्रति अस्य विस्तारः विपुलः वर्तते। गङ्गायाः दक्षिणे तीरे स्थिते पाटलिपुत्रे गङ्गासेतुः, सचिवालयः, उच्चन्यायालयः, संग्रहालयः, जन्तुशाला, गोलगृहं, विश्वविद्यालयस्य अनेके महाविद्यालयाश्चेति प्रसिद्धाः सन्ति। राजभवने राज्यपालः सपरिकरः निवसति। सत्ताकेन्द्रं पाटलिपुत्रं सम्प्रति प्रतिष्ठितं वर्तते। मन्त्रिणाम् अधिकारिणां तथा अन्येषां वासिनां निवासाय विपुलानि विशालानि च भवनानि इह वर्तन्ते।

१६. बिहारराज्यम् (अस्माकं राज्यम्)

अस्माकं राज्यं 'बिहार'-नाम्ना प्रसिद्धमस्ति। प्राचीनकाले बौद्धानां बहवो विहाराः अत्रासन्। ततः एवास्य नामेदं बभूव। अस्मिन् एव प्रदेशे भगवान् बुद्धः निर्वाणं प्राप्तवान्। तस्य कर्मक्षेत्रम् अत्रैव मुख्यतः आसीत्। अपि च जैनतीर्थंकरः महावीरः अत्रैव जन्मग्रहणं कृतवान्, अत्रैवास्य निधनं पावापुरीनामकं स्थाने जातम्। किञ्च सिखधर्मगुरोः गोविन्दसिंहस्य जन्म पटनानगरेऽभवत्। गयानगरं प्रसिद्धं धर्मस्थलमपि बिहारे वर्तते। बिहारस्य राजधानी पटनानगरे वर्तते। बिहारस्य जनाः कर्मठाः सरलप्रकृतयः सन्ति। अत्र भूमिः उर्वरा नदीजलैः सिक्ता भवति। गङ्गा नदी प्रदेशस्य मध्ये पश्चिमात् पूर्वस्यां वहति। तस्याः सहायिकाः गण्डकी, बागमती, कोशी, शोणः, पुनःपुना इत्यादयो नद्यः वामतो दक्षिणतो वा तस्यां पतन्ति। राज्येऽस्मिन् अशोकः, समुद्रगुप्तः, शेरशाहः इत्यादयः प्रसिद्धाः नृपतयो बभूवुः। आधुनिकयुगे राजेन्द्र प्रसादः, जयप्रकाशनारायणः इत्यादयो नेतारो जाताः।

१७. मेलाभ्रमणम्

अस्मिन् देशे तीर्थेषु धर्मस्थलेषु विशिष्टपर्वादिसमये यद् जनसम्मेलनं भवति, तदेव 'मेला' इति नाम धारयति। सम्मेलनस्य व्यवस्थायै आपणादयः अपि आयोजिताः भवन्ति। बिहारराज्यस्य प्रसिद्धा मेला गङ्गा-गण्डकी-संगम-स्थले सोनपुरे कार्तिकपूर्णिमायां भवति। सा च पञ्चदशदिवसान् तिष्ठति। अहमेकदा तत्र गतोऽस्मि। मेला-परिसरः अतीव विशालः अस्ति। नदीसंगमे 'हरिहरमन्दिरं' वर्तते। अतएव इयं मेला 'हरिहरक्षेत्रमेला' इति नाम्नापि प्रसिद्धास्ति। मेलापरिसरे क्रयविक्रयस्य व्यवस्था पृथक् समीचीना चास्ति। एकतः वस्त्रापणाः, अपरतः मनोरञ्जनव्यवस्था, अन्यत्र कृषेः उपकरणविक्रयः, इतः पशूनां पृथक् पृथक् मेला वर्तते। महती आम्रवाटिकापि मेलापरिसरे वर्तते यत्र भ्रमणार्थिनः विश्राम्यन्ति। अत्र गमनागमनस्य प्रचुरा सुविधा विद्यते।

१८. रामायणम् (आदिकाव्यम्)

महर्षिणा वाल्मीकिना रचितं रामायणं संस्कृतभाषायाः आदिकाव्यं वर्तते। अत्र संस्कृतकवितायाः प्रथमं दर्शनं भवति ललितेषु पद्येषु। रामस्य जीवनस्य विविधाः पक्षाः अस्मिन् काव्ये प्रकटिताः सन्ति। काव्यमिदं सप्तसु काण्डेषु विभक्तम्। प्रतिकाण्डं च सर्गेषु विभागः दृश्यते। सम्पूर्णे काव्ये चतुर्विंशतिसहस्राणि श्लोकाः सन्ति इति मन्यते। काव्ये नगरवर्णनम्, अरण्यवर्णनम्, ऋतुवर्णनम्, पात्राणां संवादाः, युद्धवर्णनम्, समुद्रादिजलाशयानां वर्णनम्–इति नाना वर्णनानि सन्ति। सर्वाणि मनोरमाणि विद्यन्ते। धार्मिकाः जनाः अस्य काव्यस्य पारायणं कुर्वन्ति, केचित् हनुमच्चरितप्रधानं सुन्दरकाण्डं पठन्ति। रामायणेन संस्कृतकाव्यस्य परम्परा प्रवर्तिता।

१९. महात्मा गाँधी

आधुनिकेषु महापुरुषेषु महात्मा गाँधी अतीव लोकप्रियः अस्ति। अस्य सम्पूर्णं नाम 'मोहनदास कर्मचन्द गान्धी' इति आसीत्। अस्य जन्म गुजरात-प्रदेशे पोरबन्दर-नामके पत्तने १८६९ ईस्वीवर्षे अक्टूबरमासस्य द्वितीयदिवसेऽभवत्। भारते प्रारम्भिकीं शिक्षां प्राप्य आंग्लदेशे बैरिस्टररूपेण स शिक्षितः। ततः दक्षिणाफ्रिकायां गतः। तत्र सत्याग्रहेण मूलवासिनां भारतीयानां च उपरि शासकानामत्याचारं भेदभावं प्रति विरोधं प्रकटितवान्। कालान्तरे भारतेऽपि स चम्पारण्यक्षेत्रे सत्याग्रहस्य महत्त्वं दर्शितवान्। सत्यमहिंसा चास्य शस्त्रद्वयम् आसीत्। सविनयम् अवज्ञान्दोलनं च कृत्वा बहून् भारतीयान् प्रेरितवान्। तस्याहिंसान्दोलनेन १९४७ ई. वर्षे भारतम् आंग्लानां शासनात् मुक्तं स्वतन्त्रं चाभवत्। अद्यापि गान्धीवादः अहिंसायाः शक्तिशालि शस्त्रम् अस्ति।

(ख) विचारप्रधाना अनुच्छेदाः

१. देशभक्तिः

स्वदेशः कस्य न प्रियो भवति। यस्मिन् देशे जन्म भवति, पालनं जायते, निवासः लभ्यते, समाजः प्राप्यते स वस्तुतः प्रियः पूजनीयश्च। देशस्य यशसा तत्रत्यः एकैकः जनो गौरवान्वितो भवति। एवमेव एकस्यापि जनस्य यस्मिन् कस्मिन्नपि क्षेत्रे कीर्तिः जायते तदा देशः गौरवं लभते। ये जनाः स्वार्थसाधनाय देशस्याहितं कुर्वन्ति, ते देशद्रोहिणः कथ्यन्ते। अधमा एवैते जनाः। अस्माकं देशस्य भारतस्य गौरवं वर्धितवन्तः अनेके आधुनिका विद्वांसः महापुरुषाश्च। यथा-विवेकानन्दः, रवीन्द्रनाथ ठाकुरः, महात्मा गाँधी, राधाकृष्णन्, सी.वी. रमणः इत्यादयः। भारतस्य स्वतन्त्रतासंग्रामे नाना देशभक्ताः स्वप्राणान् त्यक्तवन्तः। देशस्य कीर्तिवर्धनं देशभक्तानां परमं कर्तव्यं भवति। स्वदेशः मातृवत् पूजनीयः। उक्तं च—

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

२. छात्रधर्मः (छात्राणां कर्तव्यम्)

जीवनस्य आरम्भिकः भागः छात्रजीवनमेव भवति। विद्यार्जनं बलार्जनं च तत्र परमं कर्तव्यं भवति। शास्त्रं कथयति-छात्राणामध्ययनं तपः। गृहस्थजीवनस्य दृढा पीठिका अस्मिन् काले स्थापिता भवति। अतएव चरित्रस्य शिक्षा इहैव लभ्यते। अनुशासनम्, नियमानां पालनम्, ज्ञानं प्रति दृढः अनुरागः, गुरुभक्तिः, कर्मठता, समाजस्य सेवा, आतुरस्य (कष्टापन्नस्य) सहायता, कर्तव्यनिष्ठा इत्यादयः गुणाः छात्रं लोकप्रियं कुर्वन्ति। छात्राः एव युवावस्थां प्राप्य वैज्ञानिकाः शिक्षकाः राजनीतिज्ञा भविष्यन्ति। देशरूपायाः नौकायास्ते कर्णधाराः सन्ति। अतएव तेषाम् अनुशासितं रूपं देशहिताय भवति। ते विदेशेषु देशस्य ख्यातिं कुर्युः इति आशया तेषां तपःपूर्णं जीवनं सर्वथा प्रशंसनीयं स्यात्।

३. परोपकारः

परोपकारः मनुष्यस्य समाजे महान् गुणः वर्तते। परोपकारेणैव मानवस्य सामाजिकता ज्ञायते। परस्य हिताय कृतं कर्म परोपकारः इति भवति। स्वकीयं सुखं तु सर्वे प्राणिनो वाञ्छन्ति किन्तु परस्य सुखं कामयमानः पुरुषः आदर्शः भवति। आत्मनः हितमपि त्यक्त्वा परस्य सेवाकरणे निरताः जनाः धन्याः कथ्यन्ते, सर्वे तं कालान्तरे देशान्तरे च स्मरन्ति। अयं दैविकः गुणः वर्तते। परोपकारं विना क्षणमपि समाजः देशः वा न तिष्ठेत्। समाजस्य देशस्य च कल्पनैव न भविष्यति। अचेतना अपि परोपकारव्रते लग्नाः सन्ति। नद्यः परस्यार्थे जलं वहन्ति, वृक्षाः परस्यार्थे फलानि प्रयच्छन्ति। मेघाः अपि भूमेः हिताय वर्षन्ति। अतः–परोपकाराय सतां विभूतयः। संसारस्य सर्वेषु धर्मेषु परोपकारस्य प्रशंसा अनिवार्यता च दर्शिता।

४. संस्कृतभाषा (तस्याः महत्त्वम्)

संसारस्य जीवितभाषासु संस्कृतं प्राचीनतमा वर्तते। सर्वाङ्गपूर्णेयं भाषा यस्याम् एकैकस्य वर्णस्य व्याख्या भवति। व्याकरणपुष्टा साहित्यराशिपरिपूर्णा भाषेयं स्वस्थिरतया अमरभाषा सुरभारती देवभाषा वा कथ्यते। चतुःसहस्रवर्षेभ्यः इयं प्रचलिता वर्तते। अस्याः भाषाया रूपद्वयं वर्तते-वैदिकं लौकिकं च। वैदिकरूपे वेदाः उपनिषदश्च वर्तन्ते। लौकिकस्य रूपस्य तु नियामकं पाणिनीयं व्याकरणम्। अस्मिन् लौकिके रूपे रामायणं महाभारतं काव्य-नाटक-गद्यादीनि सन्ति। शास्त्राणि दर्शन-ज्योतिषायुर्वेद-वास्तुशास्त्रसंगीतादीनि अपि लौकिक-संस्कृतभाषायां सन्ति। इह शब्दसम्पत्तिर्विशाला, नूतनाः शब्दा अपि निर्मातुं शक्यन्ते। वैज्ञानिकदृष्ट्या इयं भाषा सर्वश्रेष्ठा गण्यते। अस्या एव भारतस्य सर्वाः भाषा निर्गताः, अस्याः प्रभावं च स्वीकुर्वन्ति। किञ्च यूरोपीय-ईरानीभाषाश्च सर्वाः संस्कृतभाषया पारिवारिकसम्बन्धेन संयुक्ताः सन्ति इति भाषातत्त्ववेत्तारः स्वीकुर्वन्ति।

५. सदाचारः

सज्जनाः समाजस्य महापुरुषा यथा आचरन्ति तत्सर्वं सदाचारः कथ्यते। अस्माभिरपि पालनीयानि तानि कर्माणि। उपनिषदि ऋषिः स्नातकान् उपदिशति-सत्यं वद, धर्मं चर, यानि

अस्माकं सुचरितानि तानि सेवितव्यानि। मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव इत्यादि। एवं सर्वेषु सात्त्विकग्रन्थेषु आचरणस्य शिक्षा प्रदत्ता वर्तते। सर्वेषां संकलनमेव सदाचारः। गुरूणाम् आदरः, सर्वजनानां सेवा, इन्द्रियसंयमः, क्षमाशीलता, सहिष्णुता, परोपकारः, अतिथिसेवा, अलोभः, अद्रोहः, अनीर्ष्या इत्यादयः गुणाः सदाचारस्य घटकाः सन्ति। सदाचारसम्पन्नः जनः मधुरभाषी भवति, आलस्यरहितः स सदा कर्मठः परेषामादरस्य पात्रं भवति। सदाचारेण कदाचिद् देशस्य प्रतिष्ठा आसीत्। अत्रैव रामकृष्णप्रभृतयः महापुरुषाः वन्दनीयाः अभवन्। वस्तुतः सदाचारग्रहणेन मानवः देवो भवति।

६. व्यायामः

शरीरस्य आलस्यत्यागपूर्वकं विशेषरूपेण संचालनं 'व्यायामः' कथ्यते। अत्र भ्रमणं धावनं क्रीडनम् इत्यादिकः श्रमः अन्तर्भूतः। व्यायामः प्रतिदिनं करणीयः। अनेन शरीरं पुष्टं जायते, रोगाः न प्रभवन्ति। सम्पूर्णे शरीरे यथेष्टं रक्तसञ्चरणं भवति। तेन शरीरे कान्तिः स्फुरति, स्वेदैः आन्तरिकं विषं पलायते, शरीरस्य स्थूलता विनश्यति। व्यायामः सन्तुलितः नियमितश्च फलप्रदो भवति, नानियमितः। यथाशक्ति व्यायामः करणीयः, अधिकेन व्यायामेन कायः रोगं प्राप्नोति। प्रातर्भ्रमणं श्रेष्ठः व्यायामः मन्यते। तेन शरीरं मनश्च स्वास्थ्यं प्राप्नुतः। स्वस्थे चित्ते बुद्धिः वर्धते।

७. उद्यमः (श्रमः, उद्योगः)

'उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः' इति नीतिकाराः कथयन्ति। अतः चिन्तितस्य कार्यस्य फलप्राप्तये उद्यमः उद्योगो वा करणीयः। 'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः' इति भर्तृहरिः कथयति। अतः दैवं भाग्यं वा तिरस्कृत्य उद्यमः (पुरुषार्थः) आश्रीयते। उद्यमेन एव वैज्ञानिकम् अनुसन्धानं जायते। तस्य परिणामं वयं दैनिकजीवने संचारव्यवस्थायां यातायातप्रणाल्यां च पश्यामः। यत् किञ्चिद् दृश्यते सर्वं बहूनाम् उद्यमेन प्राप्तमस्ति। कृषेः अन्नम्, यन्त्रागारेभ्यः (कारखानों से) नाना वस्तूनि, रेलयानादीनां संचालनम् इत्यादि सर्वम् उद्यमस्यैव फलं वर्तते। प्रकृतौ सर्वे प्राणिनः उद्योगं कुर्वन्ति स्वाहाराय, पिपीलिकाप्रभृति गजपर्यन्तम्। ते सुप्ता एव दिनं न नयन्ति। श्रमहीनः पुरुषः अस्वस्थः जायते, अतः शरीरानुसारेण श्रमः करणीयः।

८. सत्संगतिः

'सतां सद्भिः संगः कथमपि हि पुण्येन भवति' इति भवभूतिः कथयति। सज्जनानां संसर्गेण सर्वदा मानवस्य विचाराः पुष्टाः शुद्धाश्च भवन्ति। सन्तः निर्मलहृदया भवन्ति। अतः ते सर्वेषां कल्याणं कामयन्ते। तैः सह स्थित्वा दुष्टस्यापि चित्तं निर्मलं जायते। हितोपदेशः कथयति—

काचः काञ्चनसंसर्गाद् धत्ते मारकतीं द्युतिम्।
तथा सत्सन्निधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम्।।

इदं सत्संगतेः फलं सर्वत्र दृश्यते। सामान्यः पुरुषोऽपि महतां सम्पर्केण असामान्यः जायते। दुष्टसंगतिः पापाय भवति, सत्संगतिः पुण्याय कल्पते इति नीतिरस्ति। सत्संगतिः सम्मानं ददाति, सदोत्कर्षम् आनयति। भोजप्रबन्धे कविः कथयति–सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्।

९. विद्याया महत्त्वम्

विद्या (शिक्षा) मानवस्य श्रेष्ठम् आभूषणं धनं च भवति। अनया ज्ञातुं शक्यते किं सत् किञ्चासत्। विद्या प्रच्छन्नं धनं वर्तते यस्य हरणं विभाजनं च कर्तुं न शक्यते। विद्याया उपयोगेन अस्या विकासो वृद्धिर्वा जायते। विद्यायाः आदरं सर्वे कुर्वन्ति, मूर्खाः एवास्याः तिरस्कारं कुर्वन्ति। वस्तुतः विद्याहीनाः जनाः पशुतुल्या भवन्ति। विदेशेषु विद्वान् पूज्यते अर्थात् विदेशे बन्धुकार्यं करोति विद्या। अद्यापि ये शिक्षिता भारतीयाः सन्ति ते विदेशेषु प्रचुरं धनार्जनं कुर्वन्ति, तत्रादरं लभन्ते, देशस्य च मानं वर्धयन्ति। अतः विद्यायाः महत्त्वं प्राचीनकालेऽपि आसीत्, अद्यापि वर्तते एव। नीतिकारः कथयति–विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्।

टिप्पणी—इसी प्रकार अनेक विषयों पर अनुच्छेद-लेखन हो सकते हैं जैसे–महापुरुषों पर (बुद्धः, महावीरः, दयानन्दः, सुभाषः, जवाहरलालः, राजेन्द्रप्रसादः), छात्रजीवन के पक्षों पर (क्रीडायाः महत्त्वम्, शिक्षा, मम प्रियः अध्यापकः, मम प्रियं पुस्तकम्, मम गृहम्, प्रियः कविः, आदर्शः छात्रः), कृषिः, नगरम्, ग्रामस्य समस्या इत्यादि।

*

परिशिष्ट - २

व्यावहारिक शब्दकोश

(Practical Dictionary)

इस कोश में व्यावहारिक शब्दों का संस्कृत पर्याय दिया गया है जिनकी आवश्यकता सामान्य जीवन में संस्कृत वाग्व्यवहार में होती है। कुछ ऐसे सांस्कृतिक शब्दों को भी दिया गया है जो सामान्यतः लोगों को ज्ञात नहीं हैं। यथासाध्य इसे उपयोगी बनाने का प्रयास है। शब्दों का वर्गीकरण भी व्यावहारिक आधार पर ही है।

१. शिक्षा-विषयक (Educational)

अच्छा लेख	– सुलेखः	प्रोफेसर	– आचार्यः
इम्तहान	– परीक्षा	मैनेजर	– प्रबन्धकः
इंस्पेक्टर	– निरीक्षकः	याद करना	– स्मरणम्
इंस्ट्रक्टर	– प्रशिक्षकः	यूनिवर्सिटी	– विश्वविद्यालयः
कालेज	– महाविद्यालयः	रजिस्ट्रार	– कुलसचिवः
किरानी (क्लर्क)	– लिपिकः	रीडर	– प्रवाचकः
क्लास टीचर	– कक्षाध्यापकः	लेक्चरर	– व्याख्याता
चांसलर	– कुलाधिपतिः	वाइसचांसलर	– कुलपतिः
छुट्टी	– अवकाशः	सलाह	– परामर्शः
जमात, क्लास	– कक्षा, वर्गः	सवाल	– प्रश्नः
डिसिप्लीन	– अनुशासनम्	हाजिर	– उपस्थितः
पढ़ना	– पठनम्, अध्ययनम्	हाजिरी	– उपस्थितिः
पढ़ाना	– पाठनम्, अध्यापनम्	होस्टल	– छात्रावासः
प्रिंसिपल	– प्रधानाचार्यः	सिलेबस	– पाठ्यक्रमः

२. लेखन सामग्री (Writing)

कलम	– कलमः, लेखनी	जिल्द	– प्रावरणम्, आबन्धनम्
कागज	– कर्गदः, पत्रम्	डस्टर	– मार्जकः
कापी	– लिपिपुस्तिका	पट्टी	– काष्ठपट्टिका
दावात	– मसीपात्रम्	बस्ता	– वेष्टनम्
निब	– लेखनीमुखम्	बैग	– स्यूतः

पन्ना	– पत्रम्	ब्लैकबोर्ड	– श्यामफलकः
पेज	– पृष्ठम्	रजिस्टर	– पञ्जिका
पेंसिल	– तूलिका	रबर	– घर्षकः
फाइल	– पत्रसंचिका	स्याही	– मसी
फाउंटेन पेन	– धारालेखनी	स्याही की पेंसिल	– मसीतूलिका (बालपेन)

३. खेल-कूद (Sports)

आँखमिचौनी	– निमीलक्रीडा	चिड़िया	– पत्री (पत्रिन्)
कबड्डी	– कपर्दी, कबड्डी	मैच	– क्रीड़ाप्रतियोगिता
गेंद	– कन्दुकः	रेफरी	– निर्णायकः
फुटबाल	– पादकन्दुकः	रैकेट	– काष्ठपरिष्करः
वालीबाल	– क्षेपकन्दुकः	शतरंज	– चतुरङ्ग-क्रीडा
बैडमिंटन	– पत्रिक्रीडा	हाकी	– यष्टिक्रीडा

४. पारिवारिक सम्बन्ध (Family Relations)

अम्मा, माँ	– अम्बा, माता, जननी	नाती (धेवता)	– दौहित्रः, नप्ता (ऋ.)
औरत	– स्त्री, महिला	नाना	– मातामहः
चचेरा भाई	– पितृव्यजः	नानी	– मातामही
चाचा	– पितृव्यः	नौकर	– सेवकः, भृत्यः
चाची	– पितृव्या	नौकरानी	– परिचारिका
छोटा भाई	– अनुजः	पति	– पतिः
जमाई (दामाद)	– जामाता (तृ)	पति-पत्नी	– दम्पती
जीजा (बहनोई)	– भगिनीपतिः, आवुत्तः	परदादी	– प्रपितामही
ताई (बड़ी चाची)	– ज्येष्ठाम्बा	परदादा	– प्रपितामहः
ताऊ (बड़े चाचा)	– ज्येष्ठतातः	परनाना	– प्रमातामहः
दादा	– पितामहः	परनानी	– प्रमातामही
दादी	– पितामही	परपोता	– प्रपौत्रः
देवर	– देवरः	परपोती	– प्रपौत्री
देवरानी	– याता	पिता	– तातः, जनकः पिता (ऋ.)
ननद	– ननान्दा (ऋ.)		
पुत्र	– पुत्रः, तनयः	भाभी	– भ्रातृजाया
पुत्रवधू	– पुत्रवधूः, स्नुषा	मामा	– मातुलः
पुत्री	– पुत्री, तनया	मामी	– मातुलानी

पोता	– पौत्रः	मित्र	– मित्रम्, वयस्यः, सखा, सुहृद्
पोती	– पौत्री	मौसा	– मातृष्वसृपतिः
फूआ, बुआ	– पितृष्वसा (ऋ.)	मौसी	– मातृष्वसा (सृ)
फूफा	– पितृष्वसृपतिः	सहेली	– सखी, वयस्या, आलिः
फुफेरा भाई	– पैतृष्वसेयः	सहोदर	– सोदरः, सहोदरः
बड़ा भाई	– अग्रजः	समधिन	– सम्बन्धिनी
बहन	– स्वसा (सृ.), भगिनी	समधी	– सम्बन्धी
बड़ी बहन	– अग्रजा	ससुर	– श्वशुरः
छोटी बहन	– अनुजा	साढ़ू	– श्यालीपतिः
भतीजा	– भ्रातृपुत्रः, भ्रातृव्यः	साला	– श्यालः
भतीजी	– भ्रातृसुता, भ्रातृव्या	साली	– श्याली, श्यालिका
भाई	– भ्राता (तृ)	सास	– श्वश्रूः
भानजा (भगिना)	– भागिनेयः, स्वस्रीयः	सुहागिन	– सौभाग्यवती, पुरन्ध्रिः
भानजी	– भागिनेयी		

टिप्पणी—इन शब्दों की विपुलता भारतीय परिवार की सांस्कृतिक एकता का परिचय देती है। आज इनमें कई शब्द अप्रासंगिक हो गये हैं।

५. घरेलू वस्तुएँ (Domestic)

आलमारी	– काष्ठमञ्जूषा	खाट	– खट्वा
आइना (शीशा)	– दर्पणः, मुकुरः, आदर्शः	गद्दा	– गर्दिका
आरामकुर्सी	– सुखासन्दिका	गलीचा	– कुथः
ऊखल	– उलूखलम्	घड़ी	– घटिकायन्त्रम्
कंघी	– कंकतिका	चक्की (जाँता)	– पेषणी
कुंजी (ताली)	– ताली, कुञ्चिका, तालिका	चटाई	– कटः
कुर्सी	– आसन्दिका	चलनी	– चालनी, तितउः
कुल्हाड़ी	– कुठारः	चाकू	– छुरिका
कैंची	– कर्तरी	चूल्हा	– चुल्लिका
छड़ी	– यष्टिका	चौकी	– चतुष्पादिका
छाता	– आतपत्रम्, छत्रम्	पेटी (Box)	– मञ्जूषा, पेटिका
जूता	– उपानह्, पादत्राणम्	फर्नीचर	– उपस्करः

झाड़ू	–	मार्जनी
डाइनिंग टेबुल	–	भोजनफलकम्
डिब्बा	–	सम्पुटकः
डेस्क	–	लेखनपीठम्
तखत	–	काष्ठपटलम्
		तष्टम्
तकली	–	तर्कुः, तर्कुटिः
तराजू	–	तुला
ताला	–	तालकम्, तालम्
तिपाई	–	त्रिपादिका
थैला (बैग)	–	स्यूतः
दियासलाई	–	दीपशलाका
दिया (Lamp)	–	दीपकः
दोना	–	पत्रपुटम्
पत्तल	–	पत्राली
पलंग	–	पर्यङ्कः, पल्यङ्कः
पंखा (Fan)	–	व्यजनम्
पीढा	–	पीठम्
स्टूल	–	उच्चपीठम्
बुकरेस्ट	–	पुस्तकाधानम्
बेलन	–	वेल्लनम्
बेंच	–	काष्ठासनम्,
		फलकम्
बोतल	–	काचपूपिका
बोरसी (अँगीठी)	–	हसन्ती,
		अग्नीष्टिका
बोरा	–	गोणी, स्यूतः,
		शणपुटः
मूसल	–	मुस (श) लम्
मूँगड़ा	–	लोष्टभेदनः
मेज (टेबुल)	–	फलकम्
रस्सी	–	रज्जुः
लालटेन	–	प्रदीपकोशः
सिलौट (सिल)	–	शिलावर्तः
सन्दूक	–	मञ्जूषा
सरौता	–	शङ्कुला
सूई	–	सूचिः, सूचिका
सूप	–	शूर्पः, प्रस्फोटनी
सोफा	–	पर्यङ्कः, सोफा

६. बर्तन (Utensils)

कटोरा	–	कंसः, कच्चोलकः
कटोरी	–	कच्चोलिका
कठौत	–	काष्ठपात्री, पात्रम्
कड़ाही	–	कटाहः, स्वेदनी
कण्डाल (ड्राम)	–	वारिधिः
करछुल	–	दर्वी
काँच का जार	–	काचघटी
काँच का ग्लास	–	काचकंसः
कुल्हड़ (प्याला)	–	मल्लकः, चषकः
कुल्हिया	–	मल्लिका
केतली	–	कन्दुः
गिलास	–	गल्लकः, कंसः
घड़ा	–	घटः, कलशः
चम्मच	–	चमसः, चमसम्
चिमटा	–	कङ्कमुखः, सन्दंशः
टब (Tub)	–	द्रोणी, द्रोणिः
टी-पॉट	–	चायपात्रम्
टोकरा, टोकरी	–	करण्डः, कण्डोलः
		करण्डिका
तवा	–	ऋजीषम्

तसला	– धिषणः	बड़ी कड़ाही	– आचार्यः
तस्तरी (Plate)	– शरावः	बर्तन	– पात्रम्, अमत्रम्, भाजनम्, भाण्डम्
थाली	– स्थाली, पात्री, स्थालिका		
बटलोई	– स्थाली, पिठरः	बाल्टी (Bucket)	– उदञ्चिका
परात	– परामत्रम्	मिट्टी की प्याली	– कुण्डिका
पानदान	– ताम्बूलकरण्डः	लोटा	– करकः, गण्डूकः
पीकदान	– पतद्ग्रहः	सकोरा	– शरावः, वर्धमानकः
प्याला (Cup)	– चषकः, मल्लिका, पानपात्रम्	सँड़सी	– संदंशिका
सुराही	– कर्करी	हँड़िया, हाँड़ी	– हण्डिका, स्थाली

७. वस्त्र परिधान (Clothes)

अंगरखा	– अङ्गरक्षिका	टोपी	– टोपिका, शिरस्कम्
अंगोछा (गमछा)	– अङ्गप्रोञ्छनी, गात्रमार्जनी	तकिया	– उपधानम्, उपबर्हः
अंडरवीयर	– अर्धोरुकम्	तोषक	– तूलिका, तोषकम्
ऊनी वस्त्र	– राङ्कवम्, ऊर्णावस्त्रम्	दरी	– सप्तरङ्गी, आस्तरणम्
ओढ़नी	– प्रच्छदपटः, प्रावारः	दुपट्टा	– दुकूलम्
ओवरकोट	– बृहतिका	धोती	– धौतवस्त्रम्, अधोवस्त्रम्
कच्छा	– कच्छपटम्		
कमरबन्द	– कटिसूत्रम्, रशना, परिकरः	नाइट-ड्रेस	– नक्तकम्
		नाइलोन	– नवजीनकम्
कम्बल	– कम्बलः	पगड़ी	– उष्णीषम्, मूर्धवेष्टनम्, शिरस्त्रम्
कमीज, कुर्ता	– कञ्चुकः, निचोलः		
कोट	– कोटः, प्रावारः, आच्छादः	परदा	– अवगुण्ठनम्, तिरस्करिणी
चादर	– प्रावारः, उत्तरीयः	पायजामा	– पादयामः
घूँघट	– अवगुण्ठनम्	पेटीकोट	– अन्तरीयम्
जनेऊ	– यज्ञोपवीतम्	पैण्ट	– आप्रपदीनम्
जाकिट, बंडी	– उरच्छदः (Jacket)	बिछावन	– तल्पम्, आस्तरणम्
टोप	– टोपः, शिरस्कम्	बेड-शीट	– शय्याच्छादनम्, प्रच्छदः

मसनद	– महोपधानम्	ब्लाउज	– कञ्चुलिका
मोजा	– पादप्रच्छदः	वस्त्र	– वसनम्, वासः
रजाई	– नीशारः, तूलिका, तूलपट्टी		– (नपु.) वस्त्रम्
रूई	– तूलः, कार्पासः	शेरवानी	– प्रावारकम्
रूमाल	– करपटः, करवस्त्रम्	सलवार	– स्यूतवरः
रेशम	– कौशेयम्, क्षौमम्	साड़ी	– शाटिका, शाटी
लंगोटी	– कौपीनम्	सूती	– कार्पासम्
लोई	– रल्लकः	सेज	– शय्या, शयनीयम्
स्वेटर	– ऊर्णावरकम्		

८. आभूषण (Ornaments)

अँगूठी	– अङ्गुलीयकम्	पायल	– पदचारुकः
कड़ा	– कटकः, वलयः	पैरों के कड़े	– पादकटकः
कानफूल	– कर्णपूरः, कर्णिका	बाजूबन्द	– केयूरम्, अङ्गदम्
कमरधनी	– मेखला, रशना, काञ्ची	बिछुआ	– नूपुरम् (पुं.भी), मञ्जीरम्
कंठा	– कण्ठाभरणम्		
कंगन	– कङ्कणम्, करभूषणम्	बुलाक	– वरमौक्तिकम्
कान की बाली	– कुण्डलम्	भूषण	– भूषणम्, अलङ्कारः आभरणम्
घुँघरू	– किङ्किणी		
चूड़ी	– काचवलयः, यम्	मुकुट (मौर)	– किरीटम्, मुकुटम्
टिकुली	– ललाटाभरणम्	मोतियों की कण्ठी	– उरःसूत्रिका
नथ	– नासाभरणम्	मोतियों की माला	– हारः, मुक्तावली
नाक का फूल	– नासापुष्पम्	वेणी	– मूर्धाभरणम्
पहुँची	– कटकः, वलयः	सोने का कड़ा	– कटकम्, वलयम्
पायजेब	– झांकृतम्	हँसुली	– ग्रैवेयकम्

९. अन्नों के नाम (Corns)

अन्न	– अन्नम्, धान्यम्	चना	– चणकः
अरहर	– आढकी	जौ	– यवः
उड़द	– माषः, कुरुबिन्दः	तिल	– तिलः
कोदो	– कोद्रवः	दाल	– द्विदलम्, दालिः
गेहूँ	– गोधूमः	फसल	– सस्यम्
बाजरा	– बर्जरी, प्रियङ्गु	मोठ	– मकुष्ठः, वनमुद्गः

चावल	– तण्डुलः, अक्षतः	राई	– राजिका, राजी
धान	– धान्यम्, व्रीहिः	लोबिया (राजमा)	– राजमाषः
चावल (महीन)	– शालिः	बासमती चावल	– अणुः
मक्का (Maize)	– महाकायः, मकायः	मूँग	– मुद्गः
मटर	– कलायः, वर्तुलः	सरसों	– सर्षपः
मसूर	– मसूरः, रागदालिः	साठी चावल	– षष्टिकः

१०. फलों के नाम (Fruits)

अखरोट	– अक्षोटम्	खीरा	– चर्भटिः, त्रपुषम्
अंगूर	– द्राक्षा, मृद्वीका	गूलर	– उदुम्बरम्
अनार	– दाडिमम्	छुहारा	– क्षुधाहरम्, शुष्कखर्जूरम्
बेदाना	– निर्बीजम्	जामुन	– जम्बू, जम्बूफलम्
अमरूद	– अमृतफलम्	तरबूजा	– तारबूजम्, कालिन्दम्
आड़ू	– आर्द्रालुः	नारियल	– नारिकेलम्
आम	– आम्रम्, रसालम्	नाशपाती	– रुचिफलम्
इमली	– अम्लिका, चिञ्चा	नींबू	– निम्बुकम्, जम्बीरकम्
आँवला	– आमलकी, धात्रीफलम्		दन्तशठः
ककड़ी	– कर्कटिका	पपीता	– एरण्डफलम्
कटहल	– पनसः, बृहत्फलम्	पिण्डखजूर	– पिण्डखर्जूरम्
कदम्ब	– कदम्बः, नीपः	पिस्ता	– पिस्तम्, अंगोलकम्
कलमी आम	– राजाम्रम्	पोस्ता	– पौष्टिकम्
कागजी नींबू	– निम्बुकम्	फालसा	– पुन्नागम्, गिरिपीलुः
काजू	– काजूतकः, काजवम्	बड़हल	– लकुचम्, क्षुद्रपनसः
काफल	– श्रीपर्णिका	बादाम	– वातादम् (पुं.भी)
किशमिश	– शुष्कद्राक्षा	बिजौरा नींबू	– बीजपूरम्, मातुलुङ्गः
केला	– कदली, रम्भाफलम्	बेर	– बदरीफलम्, कर्कन्धुः
कैथ	– कपित्थम्	बेल	– बिल्वम्, श्रीफलम्, मालूरम्
खजूर	– खर्जूरम्		
खरबूजा	– खर्बजम्	मकोय	– स्वर्णक्षीरी
खिरनी	– क्षिरिका, क्षीरिका	मखाना	– मखान्नम्
महुआ	– मधूकम्	संतरा (नारंगी)	– नारङ्गम्, नारङ्गकम्
मुनक्का	– मधुरिका	शरीफा	– सीताफलम्
मुसम्मी	– मातुलुङ्गः	सिंघाड़ा	– शृङ्गाटकम्

मूँगफली	– भूमिशिम्बिका	(पानीफल)	
मेवा	– शुष्कफलम्	सेब	– सेवम्, बदरम्
लीची	– लीचिका		

११. सब्जी-मसाले (Vegetables + Spices)

अजवाइन	– यवानी	तरोई	– कोशातकी
अदरख	– आर्द्रकम्, शृंगवेरम्	परवल	– पटोलः, पटोलकम्
अरबी (पेपची)	– आलुकी	पालक	– पालकी, पालक्या
आलू	– आलुः, आलुकम्	तेजपत्ता	– तेजपत्रम्
इमली	– तिन्तिडीकम्, चिञ्चा, अम्लिका	दालचीनी	– दारुत्वचम्
इलायची	– एला, चन्द्रवाला	धनियाँ	– धान्यकम्, छत्रा, वितुन्नकम्
कटहल	– पनसः, काष्ठफलम्	पान	– ताम्बूलम्
करैला	– कारवेल्लम्	पोई	– पोतकी
करौंदा	– करमर्दकः	पोदीना ()	– पुदिनः, अजगन्धः
काला नमक	– कृष्णलवणम्	प्याज	– पलाण्डुः, सुकन्दकः
काली मिर्च	– कृष्णा, कृष्णमरिचम्	फ्रेंचबीन	– सुसिम्बः
काशीफल (कुम्हड़ा)	– कुष्माण्डम्	बैगन (भण्टा)	– भण्टाकी, वंगनः वृन्ताकम्
कुन्दरू (कुन्दरी)	– कुन्दरुः,	भिण्डी (रामतरोई)	– भिण्डकः, रामकोशातकी
खीरा	– चर्भटी, त्रपुषम्, चर्भटिः		
गाजर	– गृञ्जनम्	मटर	– कलायः
गोभी	– गोजिह्वा	मसाला	– उपस्करः, सौरभम्
चूना	– चूर्णः	मिर्च	– मरिचम्
छोटी पीपल	– पिप्पली	मूली	– मूलकम्, हरिपर्णम्
जीरा	– जीरकम्, जरणः	मेथी	– मेथिका
टमाटर	– रक्ताङ्गः, वृन्ताकम्	लहसुन	– लशुनः, रसोनकः
टिंडा	– टिण्डिशः	लालमिर्च	– रक्तमरिचम्
लौकी	– अलाबुः	सूरन (ओल)	– शूरणः
लौंग	– लवङ्गम्	सेंधानमक	– सैन्धवम्
बथुआ (साग)	– वास्तुकम्	सेम	– सिम्बा, ग्राम्या
शकरकन्द	– शक्रकन्दः	सोंठ	– शुण्ठिः, शुण्ठी, महौषधम्
शलगम	– श्वेतकन्दः		

शाक	–	शाकम्	सौंफ	–	मधुरा, शतपुष्पी,
समुद्री नमक	–	समुद्रलवणम्			वितुन्नकम्, छत्रा
सलाद	–	शदः	हल्दी	–	हरिद्रा, काञ्चनी
साँभर नमक	–	रौमकम्	हींग	–	हिंगुः, रामठम्
सुपारी	–	पूगीफलम्			

१२. पुष्पों के नाम (Flowers)

कनेर	–	कर्णिकारः	दुपहरिया	–	बन्धूकः
कमल	–	कमलम्, पङ्कजम् पद्मम्, सरोरुहम्	नीलकमल	–	कुवलयम्, नीलकमलम्, इन्दीवरम्
कुन्द	–	कुन्दः	नेवारी	–	नवमालिका
केवड़ा	–	केतकपुष्पम्	फूल	–	प्रसूनम्, पुष्पम्, कुसुमम्
गुड़हल	–	जपापुष्पम्	मौलसरी	–	बकुलः
गुलदस्ता (गुच्छा)	–	स्तबकः	रात की रानी	–	रजनीगन्धा
गुलाब	–	स्थलपद्मम्, पाटलम्	लालकमल	–	कोकनदम्, रक्तकमलम्
गेन्दा	–	गन्धपुष्पम्	वेला	–	मल्लिका
चमेली	–	मालती	श्वेतकमल	–	कुमुदम्, पुण्डरीकम्
चम्पा	–	चम्पकः	हरसिंगार	–	शेफालिका
जूही	–	यूथिका			

१३. पशु-पक्षी (Animals and Birds)

उल्लू	–	उलूकः, कौशिकः, पेचकः	कुतिया	–	शुनी, सारमेयी
			कोयल	–	कोकिलः, पिकः, परभृतः
ऊँट	–	उष्ट्रः, क्रमेलकः			
कबूतर	–	कपोतः, पारावतः	कौआ	–	काकः
काला हरिण	–	कृष्णसारः	क्रौञ्च	–	क्रौञ्चः
कुत्ता	–	कुक्कुरः, श्वा, सारमेयः	खरगोश	–	शशः, मृदुलोमकः
गधा	–	गर्दभः, खरः,	टिड्डी	–	शलभः, पतङ्गः
गरुड़	–	गरुड़ः, खगेशः	पक्षी	–	पक्षी, पतत्री
गाय	–	गौः, धेनुः	पशु	–	पशुः
गीदड़ (सियार)	–	गोमायुः, फेरुः, शृगालः, क्रोष्टा	पण्डुक	–	श्वेतकपोतः
			पपीहा	–	चातकः
गीध	–	गृध्रः	पागल कुत्ता	–	अलर्कः

गेंडा – गण्डकः, खड्गः
गोह – गोधा
घोड़ा – घोटकः, अश्वः
घोड़ी – बडवा
घोंसला – नीडम्, कुलायः
चकवा – चक्रवाकः
चमगादड़ – जतुका
चिड़िया (गौरैया) – चटकः, चटका
चीता – चित्रकः
चींटी – पिपीलिका
चील – चिल्लः, चिरम्भषः
चूहा – मूषकः, आखुः
चौपाया – चतुष्पात्
छिपकली – गृहगोधिका
गिरगिट – सरठः
जलकाक – कारण्डवः
जुगनू – खद्योतः
झींगुर – झिल्लिका
तीतर – तित्तिरिः, कपिञ्जलः
तेंदुआ – तरक्षुः, मृगादनः
तोता – कीरः, शुकः
नीलकण्ठ – नीलकण्ठः, चाषः
नीलगाय – गवयः
नेवला – नकुलः
टिटहरी – टिट्टिभः, टिट्टिभी
मैना – सारिका
मोर – मयुरछ, बर्ही
शेर – सिंहः, केसरी, मृगराजः
सर्प (साँप) – सर्पः, भुजंगः, अहिः
सारस – सारसः
साही – शल्लकी
सूअर – शूकरः, वराहः

बकरा – छागः, अजः, बर्करः
बकरी – छागी, अजा, बर्करी
बगुला – बकः, शुक्लवायसः
बटेर – लावः, वर्तिका
बत्तख – वर्तकः, वर्तिका
बन्दर – वानरः, कपिः, शाखामृगः, वनौकाः, मर्कटः
बाघ व्याघ्रः, शार्दूलः, द्वीपी
बाज – श्येनः
बिच्छू – वृश्चिकः
बिलार – बिडालः, मार्जारः
बिल्ली – विडाली, मार्जारी
बैल – बलीवर्दः, वृषभः, वृषः
भालू – ऋक्षः, भल्लूकः
भेंड़ – मेषः, अविः, एडका
भेड़िया – वृकः, ईहामृगः
भैंस – महिषी
भैंसा – महिषः, हेरम्बः
भौंरा – भ्रमरः, षट्पदः
मकड़ी – लूता
मक्खी – मक्षिका
मधुमक्खी – मधुमक्षिका
मच्छर – मशकः, दंशी
मुर्गा – कुक्कुटः, ताम्रचूड़ः
मेढक – भेकः, मण्डूकः, दर्दुरः
हरिण – हरिणः, मृगः, कुरङ्गः
हाथी – हस्ती, गजः, करी, दन्ती
हंस – हंसः, मरालः
हंसी – वरटा
हारियल – हीरतः

१४. वृक्षों के नाम (Trees)

अर्जुन	– अर्जुनः	पीपल	– पिप्पलः, बोधिद्रुमः
आक (अकवन)	– अर्कः		– अश्वत्थः
आबनूस	– तमालः, सप्तपर्णः	बकायन	– मन्दारः, पारिजातकः
आम	– आम्रः, रसालः	बड़ (बरगद)	– वटः, न्यग्रोधः
आँवला	– आमलकी, धात्री	बबूल	– कीकरः
एरण्ड (रेंड़)	– एरण्डः, उरुबकः	बहेड़ा	– विभीतकः, अक्षः
कचनार	– कोविदारः	बेल	– बिल्वः, मालूरः
कटहल	– पनसः	महुआ	– मधूकः
कदम्ब	– नीपः, कदम्बः	रीठा	– फेनिलः, अरिष्टः
करील	– करीरः	लसौड़ा	– श्लेष्मातकः
खैर	– खदिरः	लोध	– लोध्रः, गालवः
गूलर	– उदुम्बरः	वन	– विपिनम्, वनम्,
चीड़	– भद्रदारुः		काननम्, अरण्यम्
जामुन	– जम्बूः	वृक्ष	– वृक्षः, तरुः, द्रुमः
ढाक	– पलाशः		महीरुहः
ताड़	– तालः	शीशम	– शिंशपा
देवदार	– देवदारुः	सर्ज	– सर्जः
धतूर	– धत्तूरः	साल	– सालः
नारियल	– नारिकेलः	सेमर	– शाल्मलीतरुः
नीम	– निम्बः, अरिष्टः	हर्रे	– हरीतकी
पाकड़	– प्लक्षः, पर्कटी	हिंगोट	– इङ्गुदी

१५. भक्ष्य-पेय पदार्थ

अचार	– सन्धितम्	पराठा	– पूपिका, पोलिका
आटा	– चूर्णम्, पिष्टकम्	पापड़	– पर्पटी, पर्पटः
आलू की टिकिया (कचालू)	– पक्वालुः	पूरी	– पूलिका, पूरी
		फुलका	– पोलिका
कचौड़ी	– माषगर्भा, पिष्टिका	फुलौरी	– माषवटी
कढ़ी	– क्वथिता, तेमनम्	फेनुस (शीघ्र ब्यायी गाय का दूध)	– पीयूषम्, पेयूषम्
काफी	– कफघ्नी, काफी		
कोल्ड ड्रिंक	– शीतपेयम्		
खास्ता पूरी	– शष्कुली	बड़ा	– वटकः

खिचड़ी	–	कृशरः	बिस्किट	–	पिष्टकः
खीर	–	क्षीरान्नम्, पायसम्	बेसन	–	चणकचूर्णम्
घी	–	घृतम्	भात	–	भक्तम्, ओदनः
चटनी	–	अवलेहः	मक्खन	–	नवनीतम्
चाट	–	अवदंशः	मठरी	–	मठकः
चाय	–	चायम्	मट्ठा	–	तक्रम्
चिउड़ा	–	चिपिटान्नम्	मलाई	–	सन्तानिका
चीला (छिलका, पपड़ी)	–	चित्रापूपः	मसाला	–	उपस्करः
			मावा (खोवा)	–	किलाटः, कूर्चिका
नाश्ता	–	जलपानम्	मुरब्बा	–	मिष्टपाकः
टोस्ट	–	भृष्टापूपः	रसोई	–	रसवती
तेल	–	तैलम्	रसोईघर	–	महानसः
दही	–	दधि	रोटी	–	रोटिका, करपट्टिका
दहीबड़ा	–	दधिवटकः	लप्सी	–	यवागूः
दालमोठ	–	दालमुद्गः	लस्सी	–	दाधिकम्
दाल (बनी हुई)	–	सूपः	लावा	–	लाजाः (बहु.)
दूध	–	दुग्धम्, क्षीरम्, पयः	शाक	–	शाकम्
नमकीन	–	लवणान्नम्	समोसा (सिंघाड़ा)	–	समोषः, त्रिकोणिका
पकवान	–	पक्वान्नम्	सेवई	–	सूत्रिका
पकौड़ी	–	पक्ववटी	हलवा	–	संयावः
पपड़ी	–	पर्पटी			

*

सांस्कृतिक सूचना
(Cultural Information)

१. **सात ऋषियों के नाम (सप्तर्षि)**—कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि तथा वसिष्ठ।

कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च सप्तर्षयः प्रकीर्तिताः ॥

२. **दस अवतारों के नाम**—मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध तथा कल्कि।

मतस्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्किस्तथा दश ॥

३. **शंकराचार्य के पाँच पीठ**—(क) शृंगेरी (कर्नाटक), (ख) गोवर्धनपीठ, पुरी (ओड़िशा), (ग) द्वारकापीठ, द्वारका (गुजरात), (घ) ज्योतिष्पीठ, जोशीमठ (उत्तराखण्ड) तथा (ङ) काञ्चीपीठ, कांजीवरम् (तमिलनाडु)।

४. **सात दिनों के नाम**—(क) रविवारः, आदित्यवारः (ख) सोमवारः, चन्द्रवारः (ग) मङ्गलवारः, भौमवारः (घ) बुधवारः (ङ) बृहस्पतिवारः, गुरुवारः, जीवः (च) शुक्रवारः, भृगुवारः (छ) शनिवारः, शनैश्चरवारः।

५. **बारह महीनों के नाम**—(क) चैत्रः, मधुमासः (ख) वैशाखः, माधवः (ग) ज्येष्ठः, ग्रीष्मः, शुचिः (घ) आषाढः (ङ) श्रावणः, नभः (च) भाद्रः, भाद्रपदः (छ) आश्विनः (ज) कार्तिकः, कौमुदः (झ) आग्रहायणः, मार्गशीर्षः (ञ) पौषः, तैषः, सहस्यः (ट) माघः, तपः, शिशिरः (ठ) फाल्गुनः, तपस्यः।

६. **तिथियों के नाम**—प्रतिपद् (प्रतिपदा), द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा (पौर्णमासी, राका), अमावस्या (दर्शः)।

७. **छः ऋतुओं के नाम**—वसन्तः (चैत्रवैशाखौ), ग्रीष्मः (ज्येष्ठाषाढौ), वर्षाः (श्रावणभाद्रपदौ), शरद् (आश्विनकार्तिकौ), हेमन्तः (आग्रहायणपौषौ), शिशिरः (माघफाल्गुनौ)। यह प्राचीन व्यवस्था थी; आधुनिक काल में भौगोलिक अव्यवस्था के कारण ऋतुएँ एक-एक मास पूर्व की ओर खिसक गई हैं।

८. बारह राशियों के नाम तथा उनकी सूर्य संक्रान्ति (निकटतम)—

१. मेष (१४ अप्रैल से १४ मई)
२. वृष (१५ मई से १४ जून)
३. मिथुन (१५ जून से १५ जुलाई)
४. कर्क (१६ जुलाई से १७ अगस्त)
५. सिंह (१८ अगस्त से १७ सितम्बर)
६. कन्या (१८ सितम्बर से १७ अक्टूबर)
७. तुला (१८ अक्टूबर से १६ नवम्बर)
८. वृश्चिक (१७ नवम्बर से १५ दिसम्बर)
९. धनु (१६ दिसम्बर से १४ जनवरी)
१०. मकर (१५ जनवरी से १२ फरवरी)
११. कुम्भ (१३ फरवरी से १४ मार्च)
१२. मीन (१५ मार्च से १३ अप्रैल)

यह आकलन वर्तमान वर्ष (२०१२-१३) के अनुसार है। वर्ष के अनुसार यह एक-दो दिन आगे पीछे होता रहता है। स्मरणीय है कि सूर्य के धनु और मीन राशियों में रहने पर 'खरमास' माना जाता है तथा शुभ कार्य बन्द हो जाते हैं। इनकी समाप्ति पर क्रमशः मकरसंक्रान्ति (प्रायः १४ जनवरी) और मेष-संक्रान्ति (प्रायः १४ अप्रैल) पर्व मनाये जाते हैं। उत्तर भारत में मकर संक्रान्ति को 'चूड़ा-दही' का और मेष-संक्रान्ति को 'सत्तू' का पर्व कहते हैं। यह हमारी कृषिप्रधान संस्कृति के बोधक हैं।

९. आठ सिद्धियाँ—

अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा।
प्राप्तिः प्राकाम्य ईशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः॥

अणिमा (बहुत सूक्ष्म होना), महिमा (विशाल होना), गरिमा (बहुत भारी बनना), लघिमा (अत्यन्त हल्का होना), प्राप्ति (सर्वत्र पहुँचना), प्राकाम्य (कामना करते ही वस्तु का मिलना), ईशित्व (शासन में सबका आना), वशित्व (सबको वश में रखना)।

१०. नौ निधियाँ—ये धन के भाण्डागार हैं, इनमें कुछ के नाम उच्च संख्याओं के रूप में हैं। पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील तथा खर्व—ये ही नौ निधियाँ हैं। अमरकोश में कहा गया है—

पद्मोऽस्त्रियां महापद्मः शंखो मकरकच्छपौ ।
मुकुन्द-कुन्द-नीलाश्च खर्वश्च निधयो नव॥

११. **सोलह संस्कारों के नाम—**

(क) जन्मपूर्व-गर्भाधानम्, पुंसवनम्, सीमन्तोन्नयनम् **(३)**

(ख) शैशव-संस्कार-जातकर्म, नामकरणम्, निष्क्रमणम्, अन्नप्राशनम्, चौलकर्म (चूडाकरणम्, मुण्डनम्), कर्णवेधः **(६)**

(ग) शिक्षासंस्कार-विद्यारम्भः (अक्षरारम्भः), उपनयनम्, वेदारम्भः, केशान्तः (गोदानम्), समावर्तनम् **(५)**

(घ) गार्हस्थ्य संस्कार – विवाहः **(१)**

(ङ) अन्तिम संस्कार – अन्त्येष्टिः **(१) = १६**

१२. **चार आश्रमों के नाम**—ब्रह्मचर्याश्रमः, गृहस्थाश्रमः, वानप्रस्थाश्रमः, संन्यासाश्रमः।

१३. **चार पुरुषार्थ (चतुर्वर्ग)**—धर्मः, अर्थः, कामः, मोक्षः।

१४. **धर्म के दस लक्षण**—धृतिः (धैर्य), क्षमा, दमः (मन पर नियन्त्रण), अस्तेयम् (किसी अन्य की वस्तु न छूना), शौचम् (शरीर और मन से शुद्ध रहना), इन्द्रियनिग्रहः (इन्द्रियों पर नियन्त्रण), धीः (बुद्धि का प्रयोग), विद्या (ज्ञान प्राप्त करना), सत्यम् (मन, वचन, कर्म की एकरूपता), अक्रोधः (क्रोध न करना, चित्त की शान्ति)।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ (मनुस्मृति ६.९२)

*

संस्कृत व्याकरण में विद्यालय तथा महाविद्यालय स्तर के विद्यार्थियों के लिए रचित यह पुस्तक व्याकरण के समस्त ज्ञातव्य विषयों को सरल शैली में प्रस्तुत करती है। मुख्यतः पाणिनीय सूत्रों को सर्वत्र प्रमाण के रूप में उद्धृत करते हुए पाठकों को पाणिनि की महत्ता का भी दिग्दर्शन कराती है। इसमें वर्ण-परिचय, पारिभाषिक शब्द, सन्धि, सुबन्त, संख्या, तिङन्त, प्रत्ययान्त धातु और अन्य लकार (लिट्, लुङ्, लुट् तथा आशीर्लिङ्), आत्मनेपद-परस्मैपद, अव्यय, उपसर्ग, कृत्-प्रत्यय, स्त्री-प्रत्यय, तद्धित, विभक्ति-प्रकरण और समास-प्रकरण के रूप पाठ-क्रम हैं। अन्त में रचना के अन्तर्गत वाच्य, विशेष्य-विशेषण, पत्र-लेखन, अनुच्छेद-लेखन तथा व्यावहारिक शब्दकोश भी है।

प्रो. उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि'

जन्म : १० दिसम्बर, १९[illegible])।

शिक्षा : एम.ए. (संस्कृत), स्वर्ण[illegible]लिट्. (१९७३ ई. पटना विश्वविद्यालय), साहित्याचार्य ([illegible]) पारिवारिक परम्परा से शास्त्रों तथा काव्य रचना की शिक्षा प्राप्त की।

अध्यापन : पटना कॉलेज, राँची कालेज तथा पटना विश्वविद्यालय १९८० में रीडर तथा १९८५ में प्रोफेसर, १९९८ दिसंबर में विभागाध्यक्ष के रूप में सेवा-निवृत्त। ५४ छात्रों का सफल शोध-निर्देशन (पीएच.डी.)।

प्रकाशन : चौखम्भा-परिवार के प्रकाशन-संस्थानों से निरुक्त, ऋग्वेद, सर्वदर्शनसंग्रह, मीमांसासूत्र आदि शास्त्र ग्रन्थों की टीकाएँ। संस्कृत व्याकरण में कारकतत्त्वानुशीलन, ऋक्सूक्तनिकर, संस्कृत साहित्य का इतिहास आदि मौलिक ग्रन्थ, भारतीय इतिहास के आदि और मध्यकाल के दो ग्रन्थों का अंग्रेजी और बांग्ला से अनुवाद (ओरियंट ब्लैकस्वान), सटीक वाक्यपदीय और शब्दार्थरत्न।

सम्मान : भारत सरकार का वेदाङ्ग पुरस्कार (२००१), राष्ट्रपति सम्मान (२०१०), रामकिंकर सम्मान (२०११ गुरुपूर्णिमा–अयोध्या में, जापान (क्योटो) में १९९७ में हिन्दू-धर्म पर व्याख्यान, अनेक विश्वविद्यालयों की समितियों में सदस्यता।

चौखम्भा क्लासिका

Lotus Books Stores

₹ 395.00

ISBN 978-93-91730-01-7
9 789391 730017